चर्य्याचन्द्रोय भाषाटीकासहित.

इसग्रन्थमें दिनचर्य्या खाद्य लड्डु जलेबी पेडा बरफी घेंवर पूप अपूप पूरी कचौरी भात दाल साग कढी शिखरणी आदि सम्पूर्ण पदार्थोंके बनानेकी विधि, तथा भोजनविधि सर्वेपदार्थोंका गुणदोष इंद्रियोपक्रमणीयाध्याय रात्रिचर्य्या शय्यालक्षण शयनविधि स्त्रीपुरुषलक्षणादि अनेक विषयहै यह ग्रन्थ सम्पूर्ण सद्गृहस्थोंके रखनेलायक हैं प्रशंसा जो कीजाय सो थोडीहै देखनेसे इच्छा पूर्ण होगी मूल्य २ रु०

	रु०	आ०
बृहन्निघंटुरत्नाकर प्रथमभाग और द्वितीय भाग	६	।॥
अष्टांगहृदय (वाग्भट्ट) भाषाटीका छपता है *		
वीरसिंहावलोकन ज्योतिषशास्त्रादि कर्मविपाक चिकित्सा नवीनटाईपमें अतिउ०	१॥	।॥
नाडीदर्पण	।=	८—
बालबोधपाकावली	८=	८॥
चिकित्साक्रमकल्पवल्ली	२॥	।॥
कूटमुद्गराख्यसटीक	८=	८॥
चर्य्याचंद्रोदयभाषाटीका	२	।॥
चिकित्साधातुसार भाषा	।=	८—
योगतरंगिणी	२	।॥
माधवनिदान भाषाटीका	२॥	।=
लोलिंबराज संस्कृतटीका और भाषाटीका	१।	।॥
श्रीमद्भागवतभाषाटीका छपताहै तयार है स्कंध १—२।३।४।५।६।७।१० छपके तयार है और बाकी छपता है सो संवत् १९४६ भाद्रपदमासमें तैयार होयगा.	१९	२

चिकित्साक्रमकल्पवल्ली.

यह वैद्यकका अपूर्व ग्रन्थहै जिस्के श्लोकोंकी लालित्यको देखके काव्यके श्लोक मन्द मालूम होते है चिकित्सामें यथानामा तथागुणा अजमायशकीहुई दवाई इस्में है देखनेसे इच्छा पूर्ण होगी. मूल्य २॥ रु०.

योगतरंगिणी.

यह वैद्यकका ग्रन्थ श्रीत्रिमल्लभट्टविरचित टिपणीसहित छपके तैयार हुआ भाई पाठक इस्की इच्छा बहोत कालसे करतेथे सो अलभ्य ग्रन्थ तयार हुआ इस्की चिकित्साकी प्रशंसा बहोत विद्वज्जनोंके मुखसे सुनी है इस लिये जादा लिखना व्यर्थ है किं० २.

नाडीदर्पण.

नाडीपरीक्षाके बहोत पुस्तक अनेकजगे छपेहै परन्तु इस्की उत्तमता हे पाठकगण देखनेहीसे विदित होगी भाषाटीका सहित छपके तैयार है इस्मे अंगरेजीमतसेभी परीक्षा भली विधिकही है मूल्य केवल डाकव्ययसहित ७ आणे मात्र है.

प्रस्तावना.



भरतखंडमे वैद्यशास्त्रमे रोगके निदान; वैद्य, रोगी, औषध इत्यादिकोंका वर्णन आचार गुणागुण जिसमे वर्णन किये ऐसे सूत्रस्थान, चिकित्सा शारीरक इत्यादिकोंका विस्तारसे अच्छेतरहका विचार जिसमें किया ऐसे बहोत ग्रंथ एकएक विषयकरके प्रसिद्ध है तैसे निदानमे ओ रुग्विनिश्चिय जिसकू माधवनिदान कहते है वोही प्रसिद्ध है. जैसे—

निदाने माधवः प्रोक्तः सूत्रस्थाने तु वाग्भटः ।
शारीरे सुश्रुतः प्रोक्तश्चरकस्तु चिकित्सिते ।

अर्थ.—सब निदानग्रंथमे माधवनिदान श्रेष्ठ है, सूत्रस्थानमे वाग्भट अच्छा, शारीर-स्थानमे सुश्रुत उत्तम और चिकित्सा नाम औषधविचारमे चरक बहोत अच्छा । इस ग्रंथका कर्ता ग्रंथनामसेही माधव मालुम पडता है. पंडितमाधवके सब शास्त्रोंमें ग्रंथ है. इसको भाषा काशीआदि नगरमे भई है, परंतु ऐसी कहांबी नही. इस टीकामे सब शब्द प्रसिद्ध बालकोंकेबी समझमे जलदी आजाय ऐसे है और इस्मे मधुकोश आतंकदर्पण इत्यादि टीकाके आशयकेबी पंक्तीकी भाषा बनाई और शंकासमाधान लिखा है और बहुतसे निदान जो आजतक किसी टीकाकारोंने नहीं लिखे सो प्रसंगवशसे इस्मे लिखदीने है जैसे चरकके मतसे क्लीबका निदान इत्यादि, और अंग्रेजी मतसे हकीमके मतसे जो निदान है ओबी लिखे है और परिशिष्टमेबी शुक्र आर्तव गर्भ स्नायु इत्यादि निदानका अन्य ग्रंथोंसे प्रमाणलेके इस्की भाषा बनाई है.

इस भाषाके बनानेवाले प्रसिद्ध आयुर्वेदोद्धारक माथुरपंडित दत्तारामजी है. इनोंने भाषाकरके दोबार दिल्लीमे और मथुरामे छपायीथी तो इनसे कृपासे सब हक्क लेके यहा उक्त पंडितसेही शुद्ध कराके और बढाके हमने छापी. सो इस ग्रंथकूं इस मतीसे और दिल्ली और मथुरामे छपे पुस्तकसेबी कोई छापने नही पावे. इति प्रार्थना.

श्रीकृष्णदासात्मज गंगाविष्णु खेमराज.
श्रीवेंकटेश्वर छापाखाना बंबई ।

॥ श्रीः ॥

माधवनिदानस्थविषयाणामनुक्रमणिका.



इंग्रजीमतानुसार ज्वरनिदानं. ,,

अतिसारनिदानम्‌ ४५

मूर्छानिदानम् ११३

मदात्ययानदनिम् ११८

दाहनिदानम् ,,

उन्मादनिदानम् १२६

अपस्मारनिदानम् १३४

वातरक्तनिदानम् ,,

ऊरुस्तंभनिदानम् १५९

आमवातनिदानम् १६१

शूलनिदानम् १६३

उदावर्तनिदानम् १६७

आनाहरोगनिदानम् १७०

गुल्मनिदानम् १७१

हृद्रोगनिदानम् १७७

मूत्रकृच्छ्रनिदानम् १७९

मूत्राघातनिदानम् १८२

अश्मरीरोगनिदानम् १८६

माधवनिदानका उत्तर भाग.

प्रमेहनिदानम् १८९

दंतरोग ८ लिख्यते २९५

जिव्हागत ५ रोग २९७

तालुगत ९ रोग २९८

कंठगत १७ रोग २९९

मुखपाक (मुखआना)

कर्णरोगनिदानम्

परिशिष्ट (अंथशेष)

शुक्रार्तवदोषनिदानम् ३८२

शुक्रदोषनिदानम्

ॐ

श्रीशम्वन्दे

श्रीनिकुंजविहारिणे नमः

अथ माधवनिदानप्रारम्भः।



नरवरवपुधारीगोकुलानंदकारी।
व्रजयुवतिविंहारीरासलीलाप्रचारी।
प्रणवहुवनवारीकंसकोमानमारी।
सकलविघनटारीलीजियेसुधिहमारी॥ १॥

तथाच

कर्त्ताभर्तातथाहर्ताभोगमोक्षैकदायिनम्।
वन्देश्रीगिरजाकान्तंशङ्करंलोकशंकरम्॥ २॥

अथ परमकारुणिक श्रीसदाशिवचरणचंचरीक श्रीमाधवाचार्य्य निश्शेषविघ्नविघातार्थ और ग्रन्थकी निर्विघ्न परिसमाप्तिके निमित्त ग्रन्थके आदिमें मंगलाचरण करतेहैं।

युग्मम्

प्रणम्य जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणम्। स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं त्रैलोक्यशरणं शिवम्॥ १॥ नानामुनीनां वचनैरिदानीं समासतः सद्भिषजां नियोगात्। सोपद्रवारिष्टनिदानलिङ्गो निबध्यते रोगविनिश्चयोऽयम्॥ २॥

मया अयं रोगविनिश्चयो ग्रन्थः इदानीं समासतः निबध्यते, किं कृत्वा शिवं प्रणम्य, कथंभूतं शिवं जगदुत्पत्तिस्थितिसंहारकारणं, पुनः कथंभूतं शिवं, स्वर्गापवर्गयोर्द्वारं पुन० त्रैलोक्यशरणं, किंविशिष्टो ग्रन्थः सोपद्रवारिष्टनिदानलिंगः कैः नानामुनीनां वचनैः कस्मात् सद्भिषजां नियोगादित्यन्वयः॥ १॥ २॥

अर्थ—जगत्की उत्पत्ति पालन और प्रलयके प्रधान कारण, स्वर्ग (सुख)

अपवर्ग (मोक्ष) के द्वार अर्थात् दाता, तथा त्रिलोकीके रक्षक शिवको प्रणामकर अनेक चरक सुश्रुत आदि मुनीश्वरोंके वचनोंके अनुसार उत्तम वैद्योंकी आज्ञासें अब मैं संक्षेपसें रोगविनिश्चय नाम ग्रन्थकी रचना कर्त्ताहूं। जिसमें उपद्रव, अरिष्ट, निदान, और चिन्ह इनका लक्षण अच्छीरीतिसें किया गयाहै ॥१॥२॥

*शिष्य-*यह अतिसूक्ष्म निदानपंचक सर्वज्ञ ऋषिमुनियोंके जानने योग्यहै उनके वाक्योंका निरादरकर मनुष्यकृत तुह्मारे ग्रन्थमें मनुष्योंकी कैसे प्रवृत्ति होवेगी? इसकारण माधवाचार्य्यने "नानामुनीनां वचनैः" इस पदको धरा, अर्थात् अनेकमुनीश्वरोंके वचनोंका आशयले मैने यह ग्रन्थ निर्माण कियाहै. किंतु मेरे मनकी उक्तिसें कल्पित नहींहै। *शंका-*पहलेहीं वहुत ग्रन्थ निर्माणकरे उपस्थितहैं फिर तुह्मारे इस ग्रन्थको कौन पढैगा? इसकारण माधवाचार्य्यने "इदानीम्" पद मूलमें धरा, इसपदका यह आशयहै-कि हमहीं अनेक मुनीश्वरोंके वचनोंसे अब ऐसा अलौकिक ग्रंथ रचतेहैं कि, पहिले किसीआचार्यने अद्यापि नहीं निर्माणकरा। कोईवादी शंका करे कि, तुमने ग्रन्थ रचाभी परंतु किसीने नहीं पढ़ातौ आपका ग्रन्थ निर्माण करना व्यर्थ होयगा. इसकारण माधवाचार्यने "सद्भिषजां नियोगात्" यह पद धरा इसपदका आशय यह है कि, हमारे पढ़नेके निमित्त कोई निदानग्रन्थ निर्माणकरौ ऐसें बुद्धिमान् वैद्योंके कहनेसें इसग्रन्थकी रचना करीहै *शंका-*श्रीमहादेवजीके हर मृड रुद्र शाम्भव इत्यादिनामोंको त्यागकर शिव इसनामको क्यों प्रणामकरा? *उत्तर* इसरोगविनिश्चयग्रन्थके पठनपाठन करनेवालोंकी कल्याणकी इच्छाकर सर्वकामना देनेवाला कल्याणवाचक शिवनाम विचार इसीको ग्रन्थके आदिमें माधवाचार्य्यने प्रणामकरा ॥ १ ॥ २ ॥

नानातंत्रविहीनानां भिषजामल्पमेधसाम् ।
सुखं विज्ञातुमातंकमयमेव भविष्यति ॥ ३ ॥

अयमेव आतंकं अल्पमेधसां भिषजां सुखं विज्ञातुं भविष्यति-किंविशिष्टानां भिषजां नानातंत्रविहीनानामित्यन्वयः ॥ ३ ॥

अर्थ-अन्यनिदान ग्रन्थोंसें इसकी उत्तमता दिखातेहैं। अनेक ग्रंथोंके विचार करनेमें असमर्थ ऐसें मन्दबुद्धिवाले वैद्योंको सुखपूर्वक रोगज्ञानके निमित्त यही ग्रन्थ कारण होवेगा. क्योंकि रोगका जाननाही मुख्यहै सो ग्रन्थान्तरोंमें लिखाहीहै।

१ उपद्रवो-रोगारम्भकदोषप्रकोपजन्योविकारः । २ नियतमरणख्यापकंलिंगमरिष्टम् । ३ निदानरोगोत्पादकोहेतुः । ४ लिंग-रोगव्यापकोहेतु. । तेनलिंग्यतेज्ञायते व्याधिःअनेनेति व्युत्पत्त्यापूर्वरूप-रूपो-पशय संप्राप्तयोविज्ञायते । ५ रोगमादौपरीक्षेततदनन्तरमौषधं ॥ ततःकर्मभिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वंसमाचरेत् ॥ १ ॥ रोगज्ञानार्थमेवादौयत्नःकार्यो भिषग्वरैः ॥ सतितस्मिन्क्रियारम्भ. पुष्यायवनमेधिवं ॥ २ ॥ प्रसंगवश रोगज्ञानकी विधि कहतेहैं जैसे रोग चारप्रकारसें जानाजाताहै प्रत्यक्ष-अनुमान-उपमान-और शब्दसें तहां चित्रकुष्ठादि व्याधि प्रत्यक्ष देखनेसें प्रतीतहोतीहै ज्वरादि त्वकइन्द्रीसें जानेजातेहैं।

रोग जाननेके पाँच उपाय उन्को कहतेहैं

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा ।
संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पंचधा स्मृतम् ॥ १ ॥

रोगाणां विज्ञान पञ्चधा स्मृतम् इत्यन्वयः ॥

अर्थ-निदान पूर्वरूप रूप उपशय और संप्राप्ति ए पांच प्रकार पृथक् पृथक् और समस्तव्याधिके बोधक होतेहैं। इसप्रकार रोगोंका जानना मुनीश्वरोंने पांच प्रकारका कहाहै ।

*इसश्लोकमे (उपशयस्तथा) यह जो पद धरा इसका यह आशयहै कि, जैसे निदान पूर्वरूप और रूपसे रोग जानाजायहै उसीप्रकार उपशयसे और संप्राप्तिसेभी रोग जानाजाताहै (सम्प्राप्तिश्चेति) इसपदमे च और इतिके धरनेसें यह प्रयोजनहै कि रोगजाननेके इन पांचोसें विशेष और उपाय नहींहै अब कहतेहै कि रोगोका निदान संनिकृष्ट (समीप) और विप्रकृष्ट (दूर) इन भेदोसे दो प्रकारकाहै * संनिकृष्ट उसे कहतेहै कि जैसे वातादिक कुपित ज्वरादिक रोगोको प्रगटकरेहैं * और विप्रकृष्ट उसे कहतेहै जैसें हेमंतऋतुमें संचितहुआ कफ वसंतऋतुमे कुपित होताहै * (पूर्वरूप) उसे कहतेहै जैसे ज्वरमें आलस्यादिधर्म * (रूप) उसे कहतेहै जैसे १८ के श्लोकमै लिखाहै * स्वेदावरोधइति * अर्थात् पसीनोका अवरोध होना इत्यादिक * (उपशय) उसे कहतेहै जैसे वातरोग तैलआदिके लगानेसे शान्ति होयहै सम्प्राप्ति उसे कहतेहै जैसे १० के श्लोकमै लिखाहै यथादुष्टेनदोषेण इत्यादि-शंका-क्यौजी ए पांच जो व्याधि जाननेके उपाय कहे इनमै एकहीसे रोगका निश्चय होसकेहै फिर माधवाचार्यने पाचप्रकार व्यर्थ क्यौ लिखे? क्योकि पांचोंका प्रयोजन केवल रोगका जाननाहै-उत्तर-तुमने कहा सो ठीकहै परंतु इन पांचोका पृथक् पृथक् प्रयोजनहै जैसें निदान सै यह प्रयोजनहै कि जिसवस्तुके खानेसै या लगानेसे रोग प्रगटहो उसका त्याग करनेसै रोग नहीं बढे किंतु उलटा शातिही होताहै और * पूर्वरूप के जाननेसै यह प्रयोजनहै जैसे सुश्रुत मे लिखाहै कि, वातज्वरके पूर्वरूपमे घृतपानकरानेसै वातज्वरकी उत्पत्ति नहीं होय * रूप के जाननेसै यह प्रयोजनहै कि व्याधि अर्थात् रोगका साध्याऽसाध्य और कष्टसाध्यत्व निश्चय होताहै जैसे जिसरोगका अल्परूप होवे वह सुखसाध्यहै और मध्यरूप कष्टसाध्य और संपूर्णरूप असाध्य जाननेसै असाध्यका परित्याग करना और कष्टसाध्य तथा

१ अर्थात् नाडी नेत्र जिव्हामल मूत्र आदि परीक्षाओंसे रोगोका ज्ञान यथार्थ नही हो । २ वातिकज्वरे-पूर्वरूपेघृतपानमिति तथाच साध्यासाध्यत्वमपिज्ञायते । ३ कष्टसाध्यके लक्षण चरकमें लिखे हैं-यथा-निमित्तपूर्वरूपाणिरूपाणांमध्यमेबलेइति । ४ गूढलिंगव्याधिमुपशयाऽनुपशयाभ्यांबुध्येतइति ।

सुखसाध्यकी औपधिकरनी उचितहै * उपशयके जाननेसैं यह प्रयोजनहै कि सुपरीक्षितव्याधिके संपूर्ण लक्षण न मिलनेसे व्याधिका यथार्थज्ञान नहीं होय उसको उपशयके द्वारा निश्चय करे सो चरक मे लिखाहै कि जिस व्याधिके लक्षण प्रगट न होय उसकी उपशय और अनुपशयके द्वारा परीक्षा करे उसीप्रकार * सुश्रुत मे लिखाहै जैसे उवटना तेल लगाना स्वेदनविधि इत्यादिक कर्म करनेसे वातरोग शांत न होय तो उसके रुधिरका विकार जाने और संप्राप्ति के जाननेसे यह प्रयोजनहै कि संप्राप्तिके विना जाने पूर्वरूपादिकोंकरके जानीभईभी व्याधि चिकित्साके योग्यभीहै परंतु अंशांश विकल्प बल,काल आदिको जबतक नहीजाने तबतक चिकित्सा यथार्थ नहीं होसके इसीसैं अतएव वैद्य निदानपंचकका अवश्यही परिचय करे ।[1]

निमित्तहेत्वाऽऽयतनप्रत्ययोत्थानकारणैः ।
निदानमाहुः पर्यायैः

अर्थ–अव निदानके पर्यायवाचक शब्दोंको कहैहैं निमित्त हेतु आयतन प्रत्यय उत्थान और कारण ये निदानके पर्य्यायवाचक शब्द शास्त्रव्यवहारके अर्थ मुनीश्वर कहतेहैं कारण इनके कहनेका यहहै कि व्यवहारके वास्ते अर्थात् शास्त्रमें इनछहौं शब्दोंमेंसैं कोईशब्द आवे उस्को निदान वाचकहीजाने ।

प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ ५ ॥
उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणाऽनधिष्ठितः ।
लिंगमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ६ ॥

येन उत्पित्सुःआमयः लक्ष्यते ज्ञायते तत्प्राग्रूपम्–किंभूतः आमयः दोषविशेषेणानधिष्ठितः अत एव ज्वरादिव्याधीनां अल्पत्वात् अव्यक्तं लिंगं तत् यथायथं आत्मीयमात्मीयमूह्यं इत्यन्वयः ।

अर्थ–जिस जंभाई आलस्य आदि करके उत्पत्ति होनेवाली व्याधिका ज्ञान होवे उसको प्राग्रूप अर्थात् पूर्वरूप कहतेहैं फिर वो व्याधि दोष (वात पित्त कफ) सैं वहुधा अप्रगट होवे । *शंका—यदि वातादिक दोषोंसैं अप्रगट होवेगी तो व्याधिका प्रगट होना असम्भवहै क्यांकि कारण तो वातादिक दोषहैं जव दोषही नहीं तो रोग कैसैं प्रगट होसकेहै । * उत्तर—इसपदका यह अर्थहै कि दोष वातपित्त कफ इनका व्याधिके अल्प होनेसैं अप्रगटरूप होना अर्थात् थोड़ा थोड़ा होना. अत एव तत्तत् ज्वरादिव्याधिका अपने अपने अप्रगट लक्षण पूर्वरूप तैसातैसाही होतेहै अव कहतेहैं कि पूर्वरूप दोप्रकारका है एक सामान्य दूसरा वि-

---

१ अभ्यंगस्नेहस्वेदाद्यैर्वातदोषोनशाम्यति । विकारस्तत्रविज्ञेयोदुष्टमत्रास्तिशोणितमिति ।

शिष्ट सामान्यप्राग्रूप (पूर्वरूप) उसे कहतेहैं जैसैं दोष (वात पित्त कफ) सैं दूषित धातु उसके विगड़नेसैं प्रगट होनेवाले ज्वरादि व्याधिमात्रहीकी प्रतीति होवे और वात आदि दोषोंके चिन्ह न मालूमहों*जैसैं "श्रमोरतिर्विवर्णत्व-मिति" अर्थात् ज्वरमें श्रमहो । मनका न लगना, देहका विवर्ण, इत्यादि लक्षण * और जिसमें होनहार रोगारम्भक दोष उन्होंके चिन्ह तिसके एक अंशकी प्रतीतिहो उसको विशिष्ट प्राग्रूप कहतेहैं जैसैं "जृंभात्यर्थं समीरणात्" अर्थात् जंभाईका आना केवल वातके दोषसैंहीहै । इसमें होनहार रोग कौन ज्वर, उसका आरम्भक दोष कौन वात, उस वातका एक अंश कौन जंभाई, ऐसैं औरभी जानने चाहिये । इस विशिष्ट पूर्वरूपमें जंभाईआदि रूप देखकर कदाचित् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये । क्योंकि यह तो केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिन्ह है, इस वातको दृष्टान्त देकर समझाते हैं । दृष्टान्त । जैसैं तृणके समूहमें छोटी अग्निकी चिनगारी गिरनेसैं धूम (धूआं) मात्र प्रकट देखकर हाथ, वस्त्र आदिके मारनेसैं ही शान्ति करसकतेहैं, परन्तु जब अग्नि एकसाथ जोरसैं प्रज्वलित होगई तब शान्ति नहीं होसकै ऐसैंही विशिष्ट पूर्वरूपको अल्प होनेसैं चिकित्सा करनेसैं शान्ति कर सक्ते है, परन्तु जब रूप होगया तब उसका उपाय नहींहोसके हैं इसीसैं पूर्वरूप और रूपमैं भेद है * अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरक अर्थात् शरीरसैं सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक अर्थात् मनसैं सम्बन्ध रखते हैं शारीरक जैसैं ज्वरमैं मुखका विरस होना देह भारी नेत्रसैं जल गिरना इत्यादिक*और मानसिक जैसैं मनका एक जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंसैं शान्ति न होना तथा खट्टे चरपरे पदार्थपर मन चलना इत्यादि ।

तदेवव्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते ।
संस्थानं व्यञ्जनं लिंगं लक्षणं चिन्हमाकृतिः ॥ ७ ॥

अर्थ–जब पूर्वोक्त प्राग्रूप प्रगट होजाय तब उसको रूप ऐसैं कहतेहैं । और संस्थान व्यंजन लिंग लक्षण चिन्ह और आकृति यह छः शब्द रूपके पर्यायवाचकहैं ॥

उपशयके लक्षण

हेतुव्याधिविपर्य्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणाम् ।
औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ ८ ॥

विद्यादुपशयं व्याधेः सहि सात्म्यमिति स्मृतः ।

व्याधेः सुखावहं उपयोगं उपशयं विद्यात् स हि सात्म्यं इति स्मृतः—केषां औषधान्न-विहाराणां किंभूतानां हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्य्यस्तार्थकारिणाम् । इत्यन्वयः ।

अर्थ—उपयोगःसुखावहस्तमुपशयंविद्यात् जानीयात् । उपयुज्यतइतिउपयोगःसेवनं सुखमावहतिसम्यगनुबंधेनसुखमुत्पादयतीति सुखावहः केषामुपयोगः औषधान्नविहाराणां । औषधंचान्नंच विहारश्चौषधान्नविहारास्तेषां औषधं हरीतक्यादि अन्नं रक्तशाल्यादि, विहारो देहमनोनिर्वर्तितचेष्टाविशेषः, व्यायामोजागरणाध्ययनादिरूपः । किंभूतानां औषधान्नविहाराणां हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणां हेतुश्च व्याधिश्च हेतुव्याधीतयोर्व्यस्तसमस्तयोः विपर्यस्ताव्याधिनिदानयोर्विपरीताः तथा विपर्यस्तानां अर्थोविपर्यस्तार्थःतयोर्व्यस्तसमस्तयोरेवविपरीतमर्थंकुर्वतीतिविपर्यस्तार्थकारिणः हेतुव्याधिविपर्यस्ताश्चविपर्यस्तार्थकारिणश्चहेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्यस्तार्थकारिणः तेषां केषां विपर्यस्तानां अर्थंकुर्वंतीतिप्रकृतत्वात् हेतुव्याधिविपर्यस्तानां । तदायमर्थः । निदानरोगयोर्व्यस्तसमस्तयोर्विपरीताअपिकारणरूपाइवभासमानाः व्याधिरूपाइवभासमानाः हेतुव्याधिविपरीतानांअर्थंव्याध्युपशमलक्षणंकुर्वन्तीति यथाहेतुविपरीतैः औषधान्नविहारैः व्याध्युपशमः क्रियते प्रतिपक्षत्वात् एवंविपर्यस्तार्थविपर्यस्तार्थकारिभिरपीत्यर्थः । तथाचहेतुविपरीतानां व्याधिविपरीतानां हेतुव्याधिविपरीतानां हेतुविपरीनार्थकारिणां व्याधिविपरीतार्थकारिणां हेतुव्याधिविपरीतार्थकारिणां औपधान्नविहाराणांयःसुखावहउपयोगः सउपशयइतिपिंडार्थः अथैपांक्रमेणोदाहरणानिभाषायांवेदितव्यानि—

अर्थ—अब उपशयके लक्षणको कहतेहैं हेतुविपरीत व्याधिविपरीत हेतुव्याधिविपरीत हेतुविपर्यस्तार्थकारी व्याधिविपर्यस्तार्थकारी हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी ऐसें जो औषध अन्न (पथ्य) विहार (आचरण) इनका सेवन सुखकारक जानना उसको व्याधिका उपशय कहतेहैं इसका तात्पर्य यह है कि, रोग और रोगका हेतु इनको सुखकारक जो औषधि पथ्य आचरणरूप प्रयोग उसको उपशय कहतेहैं और व्याधिसात्म्य ये पर्यायवाचक नाम उसी उपशयका है सुखकारकके कहनेसें यह प्रयोजनहै कि दाह और प्यासयुक्त नवीन ज्वरमें शीतलजलका पीना व्याधिका बढ़ानेवाला है यासैं शीतलजल सुखकर्त्ता न भया अतएव शीतलजलको उपशय न समझनाचाहिये परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतलजल उपशय माना जायगा क्योंकि सुखकारक है ।

आगे अब क्रमसें उदाहरण लिखतेहैं

हेतुविपरीत औषध—जैसें शीत कफ ज्वरमें सोंठ, तो इसमें प्रथम समझना

चाहिये कि यहां हेतु कौन है कि वात (सर्दी) उस वातका शीतल धर्म है–तो अब शीत कफ यह कब शान्ति होय कि जब सर्दी और कफके विपरीत औषध मिले, ऐसी औषध कौन कि शुंठी ये सर्दीको और कफ दोनोंको शान्ति करे है तो शीत कफ ज्वरमें हेतुविपरीत औषध सोंठ हुई ॥ * ॥ ऐसैंही हेतुविपरीत अन्न जैसैं श्रम और सरदीसैं प्रगट ज्वरमैं मांसको रस और चावल इसमें हेतु कौनकि श्रम और सरदी, ये कब शान्ति होय कि श्रम और सर्दी हरणकर्त्ता पथ्य मिले ऐसी पथ्य कौनकि मांसरस और चावलौंका भात ये श्रम और सर्दीके विपरीतहैं अर्थात् नाशकहैं ॥ * ॥ ऐसैंही हेतुविपरीतविहार कहिये आचरण कौन जैसैं दिनके सोनेसैं प्रगट कफपर रातमें जागना, यहां हेतु कौन भयाकि दिनका सोना, उससें प्रगट दोष कौनकि कफ, यह कफ कब शान्ति होयकी जिस हेतुसैं प्रगटभया उस हेतुसैं विपरीत आचरण कराजाय, तौ दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन कि रातमैं जागना, तो यह हेतुविपरीत आचरणभया । इसीप्रकार और उदाहरण व्याधिविपरीत आदिके आगे लिखे हुए चक्रके अनुसार बुद्धिवान् मनुष्य समझ लेवेंगे ।

नाम	औषध	अन्न	विहार
हेतुविपरीत	शीतज्वरमे गरम औषधि सौंठ	श्रम और वादीसैं प्रगटरोगपर मांसको रस और भात	दिनके सोनेसैं प्रगट कफरोगपर विपरीत आचरण रातमें जागना
व्याधिविपरीत	अतिसारमैं दस्त बंदकरनेवाली औषधि पाठाआदि	दस्तौंमैं दस्तके बंदकारक पथ्य मसूर	उदावर्त्तरोगमें शब्दपूर्वक अधोवायुका निकसना मन्त्रऔषधधारण देवगुरुकी सेवा करनी
हेतुव्याधिविपरीत	वातकी सूजनमें दशमूलका काढा वात और सूजनदोनोंको दूरकरनेवालाहै	कफकी संग्रहणीमें छाछका पीना वातनाशक कफनाशक और संग्रहणीनाशक	स्निग्ध जो दिनके सोनेसैं उत्पन्नतंद्रा तिसमे रूक्षतंद्रासैं विपरीत और स्निग्धतानाशक रात्रिमैं जागना
हेतुविपर्यस्तार्थकारी	जैसे पित्त प्रधानव्रणसूजनमैं पित्तकारक उष्णपिंडीका बांधना	पित्तकी सूजनमें दाहकारक अन्नका भोजन करना	जैसैं वातसे पैदा उन्मादमैं त्रासका देना
व्याधिविपर्यस्तार्थकारी	जैसे कफरोगमें वमनकारक मैनफल आदि	अतीसाररोगमैं दस्तकारक दुग्ध देना	छर्दिरोगमें हाथका अगुठा गलेमें करवा कमलनालआदिसैं उलटीका लाना
हेतुव्याधिविपर्यस्तार्थकारी	जैसैं अग्निजलेपर गरम अगरआदिलेप अथवा विषपर विष	जैसे मद्यपानके करनेसे प्रगट मदात्ययरोगमें मदकारक फेर मद्य पीना	दंडकसरतसैं प्रगट वातमें जलका तैरना रूपव्यायामका करना

अनुपशयके लक्षण

विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्यमिति स्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ–जो उपशयके लक्षण कहेहैं उससे विपरीत लक्षण अनुपशयके हैं और व्याधीका * असात्म्य अर्थात् असमान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द है ॥ ९ ॥

सम्प्राप्तिके लक्षण

यथा दुष्टेन दोषेण यथाचानुविसर्पता ।
निर्वृत्तिरामयस्याऽसौ सम्प्रातिर्जातिरागतिः ॥ १० ॥

अर्थ–दोष कहिये वातपित्त कफ इनका दुष्टहोना नाम कुपित होना अनेक प्रकारकाहै अर्थात् स्वकारण या दूसरेके कारण करके जैसें कुपितदोप अपने स्थानको छोड़कर देहमें ऊपर नीचे तिरछे विचरते हैं उस विचरनेसें जो रोग प्रगटहो उसको सम्प्राप्ति कहतेहैं और जाति तथा आगति ये दोनो पर्य्यायवाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं * तात्पर्यार्थ ये है कि मनुष्यके देहमें वात पित्त कफ ये सम्पूर्णदोप वढ़कर जैसें रोगको प्रगटकरैं तैसैंहीं उसको सम्प्राप्ति कहतेहैं * उदाहरण—जैसैं कुपितदोषोंका आमाशयमें प्रवेश होनेसें और उसस्थानमें इतस्ततो गमन करनेसें तथा रसकी वहनेवाली नाडियोंके मार्गोंको रोकनेसें और पक्वाशयमैं रहनेवाली अग्निको वाहिर निकालनेसें तथा उसी जठर अग्निसें सर्व देहके तप्तहोनेसें ये ज्वरहै, ऐसा जो निश्चय किया जायहै उसीको संप्राप्ति कहतेहैं । ऐसेंही अतिसारादिरोगोंकी संप्राप्ति जाननी चाहिये ॥ १० ॥

सम्प्राप्तिके भेद

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः ।

अर्थ–अव संप्राप्तिके भेद कहतेहैं सा कहिये सो संप्राप्ति संख्यादि विशेषण करके पांचप्रकारकीहै जैसें १ संख्या २ विकल्प ३ प्राधान्य ४ वल ५ काल इति ॥

संख्यारूपसंप्राप्तिके लक्षण

सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौज्वरा इति ॥ ११ ॥

अर्थ–जैसें इसी ग्रन्थमें आगे आठ प्रकारका ज्वर पांच प्रकारकी खांसी अर्थात् रोगोंकी गणनाकोही संख्यारूप सम्प्राप्ति कहतेहै ।

विकल्परूपसंप्राप्तिके लक्षण

दोपाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना ।

अर्थ–मिलेहुए दोष कहिये वात पित्त कफ इनके अंशांशका अनुमान करना उसको विकल्परूपसम्प्राप्ति कहतेहैं * जैसे धूंएके निकलनेसैं ये पर्वत अग्निवानहै ऐसैंही ये रोगीके देहमैं वातका अंश विशेषहै काहेसैं कि वातके अंश विशेष मिलनेसैं इसी अनुमानको विकल्पसंप्राप्ति कहतेहैं * उदाहरण—जैसैं रूखी शीतल हलकी और फैलनेवाली इत्यादि गुणयुक्त जो पवन उसका रौक्षादि गुणयुक्त कषेलारस वातको सर्वांशकरके बढ़ानेवालाहै * जैसेही कटुरस सर्वभावकरके पित्तका बढानेवालाहै अर्थात् कटु, उष्ण, तीक्ष्णत्वकरके हींग पित्त को बढ़ानेवालीहै * तैसेही मधुररस जैसैं भैंसका दूध ये सर्वभावकरके कफ बढानेवालाहै इत्यादि इसमें दोषाणां जो बहुवचनहै सो दोषोंके पृथक् पृथक् ग्रहणके वास्ते है और समवेतानाम् ये पद जो है सो द्वंद्वज और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धराहै ।

प्राधान्यरूपसंप्राप्तिकेलक्षण

स्वातंत्र्यपारतंत्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत् ॥ १२ ॥

व्याधेः स्वातंत्र्येण च पुनः पारतंत्र्येण प्राधान्यं आदिशेत् अप्राधान्यं चेति शेषः इत्यन्वयः ।

अर्थ–व्याधिके स्वतंत्र और परतंत्रकरके प्राधान्यता कहीहै * जैसे स्वतंत्रज्वरको प्रधानताहै और ज्वराधीन श्वास आदिरोगोंको अप्रधानताहै ॥

बलरूपसंप्राप्तिकेलक्षण

हेत्वादिकार्त्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणम् ।

अत्रापि व्याधेरित्यनुवर्त्तते । हेत्वादेः हेतुपूर्वरूपरूपाणां कार्त्स्न्येन साकल्येन अवयवैर्बलाबलयोर्विशेषणं विशेषाववोधः ।

अर्थ–हेतु आदिशब्दसैं पूर्वरूप और रूप इनके सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसैं व्याधिको बलवान् जानना, और थोडे लक्षण मिलनेसैं निर्बल जानना. जैसे रोगके प्रति जो निदान कहाहै वो निदान सम्पूर्ण रोगको उत्पन्न करनेवालाहै कि एकदेश * ऐसेही पूर्वरूपभी समस्त अवयवोंकरके व्याधिका प्रकाशितहै या एकदेशसैं इत्यादि ।

कालरूपसंप्राप्तिके लक्षण

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथामलम् ॥ १३ ॥

अर्थ–नक्त (रात्रि) दिन (दिवस) ऋतु (वसन्तादि) भुक्त (आहार) इनका

अंशं कहिये एकदेश उस कोयथा दोप (वात, पित्त, कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटनेवढनेके हेतुका समय जाने*उदाहरण दिखातेहैं जैसं रात्रिके तीन भाग करे प्रथम मध्य और अंत तौ रात्रिका प्रथमभाग कफका है, मध्यभाग पित्तका, अंतभाग वातकाहै ऐसेंहीं दिनके वी तीन भाग करे तो पूर्वाण्ह कफका, मध्यान्ह पित्तका, अपरान्ह वातका, ऐसेंहीं ऋतु जैसै वसंतऋतुमें कफ, ग्रीष्मऋ-में पित्त, और वर्षामें वात कुपित होतीहै एसेंहीं भोजनका जैसें भोजनकरनेके स-मय कफका काल, और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जव भलेप्रकार परिपक्क होगया तव वातका काल, इसके जाननेसें यह प्रयोजनहै कि जिम दोप (वात, पित्त, कफ) का जो काल कहाहै उसका उसी २ कालमें जानलेना क-ठिन मालूम नहींहोता ।

निदानपंचकका उपसंहार

इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते ॥ १४ ॥

अर्थ–इति कहिये यह संक्षेपप्रकारसें जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक प्रति रोगके निदान पूर्वरूपादिकरके कहतेहैं ।

सर्वेपामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ।
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाऽहितसेवनम् ॥ १५ ॥

अर्थ–अव पूर्व चतुर्थश्लोकको व्याख्यामें कहे निदानके दो भेद कौन सन्नि-कृष्ट और विप्रकृष्ट तिसमें सन्निकृष्ट कौन वातादिक समीपके कारणकरके सर्व रो-गोंका कारणहै सो कहतेहैं सर्वेपामिति । कुपितभये जो मल (वात पित्त कफ) ये सम्पूर्ण रोगोंके कारण होतेहैं और उन् वात पित्त कफ दोपोंके कोपका कारण अनेकप्रकारका जो अपथ्यसेवन करना सो हैं ।

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते ।
तद्यथा ज्वरसंतापाद्रक्तपित्तमुदीर्यते ॥ १६ ॥
रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते ।
प्लीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ १७ ॥
अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ।
प्रतिश्यायादथो कासः कासात्संजायते क्षयः ॥ १८ ॥

---

१ केचन ऋत्वंशाः कतिपयाहोरात्राणि कथयंति यदुक्त वाग्भटे ऋत्वोंरित्यादिसप्ताहावृतुसंधिरिनिस्मृत ।

क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते ।

अर्थ–कोई प्रश्नकरे कि जो पूर्वकहआएहैं येही निदानहै अथवा इसके व्यतिरिक्त और इसलिये कहते हैं रोगका रोगभी निदान होताहै अर्थात् जो निदानसैं कार्य्य होताहै वोही रोगसैं भी होताहै इसवास्ते दृष्टांत देकर कहतेहै तथ्थेति जैसैं ज्वर संतापसैं रक्तपित्त प्रकट होताहै और रक्तपित्तसैं ज्वर, और रक्तपित्तज्वरसैं श्वास प्रगट होताहै और प्लीहके बढ़नेसैं जैसैं उदररोग और उदररोगसैं सूजन, और बवासीरसैं जैसैं उदररोग और गुल्म (गोला) रोग और पीनसरोगसैं खांसी तथा खांसीसे ओजप्रभृति धातुओंका क्षय होताहै और ये क्षयरोग राजयक्ष्मा जो सम्पूर्णरोगोंमें राजा है उसको प्रगट करेहै ।

ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः ॥ १९ ॥

अर्थ–वे रोग प्रथम स्वतंत्रथे और जब बल मिलगया तौ वेही हेत्वर्थकारी अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होतेहैं जैसैं ज्वरसैं रक्तपित्त होताहै ।

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा प्रशाम्यति ।

न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेत्वर्थं कुरुतेऽपि च ।

एवं कृच्छ्रतमा नृणां दृश्यंते व्याधिसंकराः ॥ २० ॥

अर्थ–अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधिकी विचित्रता दिखातेहैं जैसे कोईएक दूसरेका कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगटकर आप शांत होजाताहै जैसे पीनसरोग आप शांत नहीं होनेपाता और खांसी उत्पन्न होतीहै । और कोई रोग दूसरे रोगको प्रगटकर आप जैसा का तैसा बना रहताहै जैसे बवासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदर रोग पैदा होतेहैं । इस प्रकार मनुष्योंकैं घोरक्लेशदायक मिलेहुए रोग दिखाते हैं विशेषकरके चिकित्सा विरुद्ध होनेसैं ये रोग कृच्छ्रतम होतेहैं ।

तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् ।

ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः ॥ २१ ॥

अर्थ–अब कहेभये निदानादिपंचकद्वारा रोग निवृत्तिरूप सिद्धीको इच्छा करके अवश्य जानने योग्यको कहते हैं तस्मादिति । इसीकारण उत्तम सिद्धी हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सद्वैद्योंकी इच्छाहै उनको ज्वरादिरोगोंका निदान जो आगे कहतेहैं वो यत्नसैं जानना चाहिये ।

इति श्रीमाधवभावार्थदीपिकायां माथुरीटीकायां सर्वरोगनिदानादिपंचककथनं समाप्तम् ॥१॥

ज्वरनिदान

अब सर्वदेहके रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसैं, वली देह इन्द्री मनको तपायमान करनेसैं जन्म मरणका कारण होनेसैं स्थावर जंगम प्राणोंनमें स्थिति होनेसैं सम्पूर्ण शरीरके रोगोंमें चरक सुश्रुतादि आचार्योंने ज्वर राजा कहाहै।

तदुक्तं चरके

देहेन्द्रियमनस्तापी सर्वरोगाग्रजो बली।
ज्वरः प्रधानो रोगाणामुक्तो भगवता पुरा॥ १॥

अर्थ–देह इन्द्री मनको तपायमान करनेसैं रोगोंमें प्रथम प्रगट होनेसैं बलवान् ज्वरको सब रोगोंमें प्रधानताहै।

ज्वरकी उत्पत्ति

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः।
ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वंद्वसंघातागंतुजः स्मृतः॥ २॥

अर्थ–दक्षप्रजापतिकृत तिरस्कारसैं क्रोधित श्रीरुद्रभगवान्‌के श्वाससैं उत्पन्न जो ज्वर सो आठप्रकारका है वात पित्त कफ इनसैं ३ द्वंद्वज ३ सन्निपात १ और आगंतुज १ ऐसैं मिलकर संक्षेपसैं ज्वर आठप्रकारका है॥ * ॥

इसश्लोकमें [निश्वाससम्भवः] ये जो पद धराहै सो श्वास इस जगह क्रोधके लक्षण करके कहाहै किंतु ज्वरकी श्वाससैं उत्पत्ति नहींहै क्योंकि जैसै सुश्रुतमें लिखाहै यथा " रुद्रकोपाग्निसंभूतः सर्वभूतप्रतापनः " इति अर्थात् क्रोधित रुद्रने ललाटस्थ तीसरे अग्निमय चक्षु (नेत्र) को स्पर्शकर आग्नेयवाण निर्माण किया तथा च चरके " स्पृष्ट्वा ललाटे चक्षुर्वै दग्ध्वा तानसुरान्प्रभुः। वाणं क्रोधाग्निसंतप्तमसृजच्छत्रुनाशनम् " इत्यादिक वाक्योंसैं ज्वरमात्रकी पित्तप्रकृति जाननी प्रयोजन यहहै कि सर्वज्वरमें पित्तकी विरोधी क्रिया न करे सो वाग्भटने कहाहै यथा–" उष्मा पित्तादृते नास्ति नात्युष्माणं विना ज्वरः। तस्मात्पित्तविरुद्धानि सजेत्पित्ताधिकेऽधिकम् " इति। अर्थात् गरमी पित्तके विना नहीं होती और ज्वर गरमीके विना नहींहोवे इसीसैं ज्वरमें पित्तविरुद्ध क्रिया न करैं

---

१ अकाले चातिमात्रं च असात्म्यं यच्च भोजनम्। विषमाशनं च यद्युक्तं मिथ्याहारः स उच्यते॥ १॥ इस श्लोकमें हिन्दी और फारसीकी ऐक्यता दिखाईहै।

और पित्तज्वरमें विशेषकरके पित्तविरुद्ध क्रिया त्याज्यहै ॥ अन्य आचारी कहतेहैं कि श्रीरुद्रसैं उत्पत्ति होनेसैं ज्वर देवता हैं इस लिये ज्वरका पूजन करनेसैं शांत होताहै जैसैं विदेहका वाक्य है " ज्वरस्तु पूजनैर्वापि सहसैवोपशाम्यति " और ज्वरका स्वरूपभी हरिवंशमें लिखाहै यथा " ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिराः षड्भुजो नवलोचनः। भस्मप्रहरणो रौद्रः कालान्तकयमोपमः ॥ " इति। अर्थात् ज्वरके तीन चरण तीन मस्तक छह भुजा नवनेत्र भस्मयुक्त देह रौद्रकालकाभी काल यमराजके समानहै।

ज्वरसंप्राप्ति

मिथ्याहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः।
बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ ३ ॥

अर्थ–मिथ्या आहार (देश काल प्रकृति आदिसैं विरुद्ध और संयोगविरुद्ध भोजन) * मिथ्याविहार (देहके पुरुषार्थसैं विशेष कामका करना) इन कारनोसैं दुष्ट हुये जो दोष (वात पित्त कफ) सो नाभिस्तनके वीच आमाशयमें प्राप्त हो रसको विगाडकर और कोष्ठस्थानमें रहती जो अग्नि उसको देहके बाहर निकाल ज्वरके प्रगट करनेवाले होतेहैं ॥ * ॥

ये संप्राप्ति शारीर रोगोंकीहै आगंतुजकी नहींहै क्यौं कि आगंतू रोगोंका तो व्यथापूर्वक वातादिदोषोंके रोकनेसैं प्रयोजन है जैसे सुश्रतमें लिखाहै श्रम और चोटके लगनेसैं देहधारीयोंके देहमें कुपित हुई वात सवदेहकों परिपूर्णकर ज्वरको पैदा करतीहै * और चरक में भी लिखाहै कि चोटके लगनेसैं प्रगट वात रुधिरको विगाड व्यथा और शोष तथा विवर्णयुक्त वातज्वरको प्रगट करतीहै * शंका–क्यौंजी आगंतुभी शारीर रोगहींहै क्यौंकि आगंतुज्वरमेंभी गरमी रहतीहै क्यौंकि * "उष्मा पित्तादृते नास्ति " * इत्यादि वाक्य प्रमाण होनेसैं * उत्तर–ये जो तुमने कहा सो ठीकहै * परंतु इस आगंतुरोगोंमें पित्तकी पूर्वकालसैं ही उत्पत्ति नहीं होती पीछे उत्पत्ति होतीहै यासैं आगंतुरोगोंको शारीरत्व नहींहैं ॥ * ॥ इसश्लोकमें (कोष्ठाग्नि) यह जो पद धराहै सो धातुकी अग्निके निवारणार्थहै अर्थात् जव धात्वग्नि वाहर आयजावेगी तो दोषोंका पचना नहीं होसके और दोष पचेविना ज्वर शांति नहींहोवेगा इसलिये इसका अर्थ

---

१ अशक्तः कुरुते कर्म्म शक्तिमान्न करोति च। मिथ्याविहार इत्युक्तः सदा चैव विवर्जयेत् ॥

२ नाभिस्तनान्तरं जन्तोरामाशय इति स्मृतः ॥

ऐसा न करना चाहिये (वहिर्निरस्य कोष्ठाग्निम्) कोठेके अग्निकी गरमीको वाहर निकालकर ऐसा अर्थ करना चाहिये ।

ज्वरके लक्षण

स्वेदावरोधस्संतापः सर्वांगग्रहणं तथा ।
युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ ४ ॥

अर्थ-जिस रोगमें पसीना न आवे देहमें सन्ताप और सर्वांगमें पीडा ये एकही समें हो उसको ज्वर ऐसें कहतेहैं ॥ * शंका-क्योंजी पित्तज्वरमें तो पसीने आतेहैं तो इस श्लोकमें विरुद्धता आतीहै * इसपर जेज्जटादिक उत्तर लिखतेहैं कि स्वेदावरोध कहिये " स्विद्यते अनेनेति स्वेदः " इस व्युत्पत्ति करके स्वेद कहिये अग्नि तिस्का अवरोध कहिये दोपकी व्याप्ति ऐसा अर्थ करनेमें श्लोकार्थमें विरुद्ध नहीं पडता ।

ज्वरका पूर्वरूप

श्रमोरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः ।
इच्छा द्वेषो मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥ ५ ॥
जृम्भांगमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ।
अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पित्सति ज्वरे ॥ ६ ॥

अर्थ-कारण विनाही श्रम कर्मकरनेमें उत्साह नहो अथवा खेलनेमें अरुची देहमें मलीनता मुखमें विरसता नेत्र अश्रुपात युक्त सर्दी गर्मी पवन इनकी वारंवार इच्छा होना और वारंवार द्वेप हो इसमें जो आदि शब्दहै उससें जल और अग्निका ग्रहणहै अर्थात् इनकी वार २ इच्छा और द्वेप ये चरक का मतहै तदुक्तं चरके-" ज्वलनातपवाय्वंबुभक्तद्वेषाभिलाषिता " इति । अन्ये तु शैत्यौष्ण्यसाधर्म्याज्जलाऽनलौ गृह्णंति ते तु आदिशब्देन शयनादिकं मन्यंते * और अन्य आचारी सर्दी गरमीके साधर्म्यतें जल अग्निको कहतेहैं और वे आदिशब्दसें शयन आदिमानतेहैं * जंभाई अंगोंका टूटना देहभारी रोमांचोंका खडा होना अन्नमें अरुचि अंधेरेका आना आनंदकी निवृत्ति सरदीका लगना * शंका-क्योंजी पूर्व कहिआये कि सरदी गरमीका वार वार इच्छा और वार वार द्वेप फेर पुनः शीत पद क्यों धरा ? *-उत्तर-इस पदके धरनेसें सरदीकी आधिक्यता दिखाई अर्थात् सरदी विशेष लगे ये लक्षण ज्वरके पूर्व होतेहैं ॥

ये माधवाचार्य्यने सामान्यपूर्वरूपके लक्षण सुश्रुतोक्त लिखेहैं विशिष्टपूर्वरूपके लक्षण नहीं लिखे सो हम ग्रन्थान्तरसैं लिखतेहैं ।

सामान्यतो विशेषात्तु जृंभात्यर्थं समीरणात् ।
पित्तान्नयनयोर्दाहः कफान्नान्नाभिवन्दनम् ॥ ७ ॥

अर्थ–विशेषकरके वातज्वरमें जंभाइ बहुत आतीहैं पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह हो और कफज्वरमें अन्नमें अरुचि होतीहै ये श्लोक क्षेपकहै परंतु बहुत पुस्तकोंमें मूलके साथ लिखाहै ॥

वातज्वरके लक्षण

वेपथुर्विषमो वेगः कंठोष्ठमुखशोषणम् ।
निद्रानाशः क्षवः स्तंभो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ ८ ॥
शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता ।
शूलाध्माने जृंभणं च भवन्त्यनिलजे ज्वरे ॥ ९ ॥

अर्थ–कंपहोना ज्वरका विषमवेग कंठ, होठ, मुख, इनका सूखना, निद्राका नाश छींकका नआना देहकारूखापना चकारसैं नेत्र, विष्ठा, मूत्र, इनका काला होना और आचारी " रौक्ष्यमेव च " इसजगे " श्यावांगमलमूत्रता " ऐसा पाठ कहतेहैं और मस्तक हृदय गात्र इनमें पीडा कोई शंका करे कि गात्र पदके धरनेसैंही मस्तक हृदय आदिका बोध होगया फेर मस्तक और हृदय पद क्यों धरा ? उत्तर–ये दोनों पदके धरनेसैं इनमें दर्दकी आधिक्यता दिखाई अर्थात् मस्तक हृदयमें बहुत पीडा होय मुखका विरसता, मलका रुकना, शूल, अफरा, जम्भाई ये लक्षण वातज्वरके होतेहैं ।

पित्तज्वरके लक्षण

वेगस्तीक्ष्णोऽतिसारश्च निद्राऽल्पत्वं तथा वमिः ।
कंठोष्ठमुखनासानां पाकः स्वेदश्च जायते ॥ १० ॥
प्रलापो वक्त्रकटुता मूर्च्छा दाहो मदस्तृषा ।
पीतविण्मूत्रनेत्रत्वक् पैत्तिके भ्रम एव च ॥ ११ ॥

अर्थ–ज्वरका तीक्ष्णवेग हो अतिसार (यानी पित्तके वेगसैं दस्तका पतला होना न कि अतिसार रोगहो) थोडी निद्रा आवै पित्तको कफके स्थानमें पहुंच-

नेसैं वमनका होना, कंठ, होठ, मुख, नाक, इनका पकना और पसीनोंका आना वडवडाना मुखमें कटुआट, मूर्च्छा, दाह, उन्मत्तपना, प्यास, विष्ठा, मूत्र, नेत्र, देहकी त्वचा इनका पीला होना तथा भ्रम ये लक्षण पित्तज्वरमें होतेहैं * शंका– क्यौंजी भ्रमको वातविकारमें लिखाहै यासैं ये तो वातका धर्महै फिर पित्तके विकारमें भ्रमशब्द क्यौं धरा ? * उत्तर–तुमने कहासो ठीकहै परंतु रोग एकही दोषसैंही नहीं प्रगट होवे किंतु अनेक दोषोंसैं होयहै सो लिखाहै " न रोगोप्येकदोषजः इति " और " पैत्तिके भ्रम एव च " इस श्लोकमें च कार जो पडाहै इस्से इस श्लोकमें जो नहीं कहै कोन तीव्रगरमी लालचकते शीतकी इच्छा दाह अरुचि इत्यादि जानने ।

कफज्वरके लक्षण

स्तैमित्यं स्तिमितो वेग आलस्यं मधुरास्यता ।
शुक्लमूत्रपुरीषत्वक्स्तम्भस्तृप्तिरथापि च ॥ १२ ॥
गौरवं शीतमुत्क्लेदो रोमहर्षोऽतिनिद्रता ।
प्रतिश्यायोऽरुचिः कासः कफजेऽक्ष्णोश्च शुक्लता ॥ १३ ॥

अर्थ–स्तैमित्य (गीले कपडेसैं देहको आच्छादित करदेनेसैं जैसा हो ऐसा मालूमहो) ज्वरका मंदवेग आलस्य मुख मीठा मलमूत्र सफेद देहका जकडना तृप्तसरीखा अन्नमें अरुचि देहभारी शीतलगे ओकारी आवे * अन्य आचार्य कहतेहैं कि कफका थूकना, रोमांचका होना, अतिनिद्रा, रसके वहनेवाली नाडीके मार्गोंका रुकना, दस्तका थोडा उतरना, पसीना मुखमें, नोनकासा सवादहो, देहका थोडा गरमहोना, रद्दका होना लारका गिरना मुखपाक तथा मुखनाकमें कफका पडना, अरुचि खांसी नेत्र श्वेतहों ये लक्षण कफज्वरमें होतेहैं " स्तंभस्तृप्तिरथापि च" इस पदमें जो चकारहै उस्से देहमैं पीडा, शीतका लगना, लारका गिरना, वमन, तंत्रिकरोग, हृदयल्हिसासा, गरमी प्यारी लगे, मन्दाग्नि इत्यादि जानने ।

वातपित्तज्वरके लक्षण

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा ।
कंठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तमः ॥ १४ ॥
पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ।

अर्थ–प्यास, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्रानाश, मस्तकपीडा, कंठ, मुखका सू-

खना, वमन, रोमांच, अरुचि, अंधकारदर्शन, संधियोंमें पीडा और जंभाई ये वातपित्तज्वरके लक्षण है।

वातकफज्वरके लक्षण

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रागौरवमेव च ॥ १५ ॥

शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः स्वेदाप्रवर्त्तनं ।

संतापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ १६ ॥

अर्थ–स्तैमित्य नाम (गीले कपडेसैं देहको ढकनेसैं जैसा हो ऐसा माल्लुमहो) संधियोंमें फूटनी, निद्रा, देह भारी, मस्तक भारी, नाकसैं पानी गिरे, खांसी, पसीनाका आना, शरीरमें दाह, ज्वरका मध्यमवेग ये वातश्लेष्मज्वरके लक्षण हैं।

पित्तकफज्वरके लक्षण

लिप्ततिक्तास्यता तंद्रा मोहः कासोऽरुचिस्तृषा ।

मुहुर्दाहो मुहुः शीतं श्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ॥ १७ ॥

अर्थ–मुखकफसैं लिप्तहो तथा पित्तके जोरसैं मुखमें कडुआट, तंद्रा, मूर्च्छा, खांसी, अरुचि, प्यास वारंवार दाहहो और वारंवार शीतका लगना ये कफपित्तज्वरके लक्षणहै. स्तंभ (देहका जकडना) पसीना, कफ, पित्तका गिरना ये सुश्रुतोक्त लक्षण औरभी जानने चाहिये।

सन्निपातज्वरके लक्षण

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसंधिशिरोरुजा । सस्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने ॥ १८ ॥ सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कंठः शूकैरिवावृतः । तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥ १९ ॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिव्हा स्रस्तांगता परम् । ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥ २० ॥ शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ २१ ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनं । कोष्ठानां श्यावरक्तानां मण्डलानां च दर्शनं ॥ २२ ॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च । चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपातज्वराकृतिः ॥ २३ ॥

अर्थ—अकस्मात् क्षणमें दाह, क्षणभरमें शीत लगे, हाड, संधि, मस्तक इनमें शूल, अश्रुपातयुक्त काले और लाल तथा फटेसे नेत्र होजावे (अथवा टेढे नेत्र हों ये जेज्जटका मत है) कानोंमें शब्द और पीडाहो कंठमें कांटे पडजाय; तंद्रा, बेहोशी हो, अनर्थ बोले; खांसी, श्वास, अरुचि, भ्रम ये हो जीभ परिदग्धवत् (काली) और खर्दरी गोजीभके समान तथा सिथिल (लठर) हो पित्त और रुधिर मिला कफ थूके, शिरको इधर उधर पटके, तृषा बहुत लगे, निद्राका नाशहो, हृदयमें पीडा, पसीना, मूत्र मल इनका बहुतकालमें थोडा उतरना, दोषोंके पूर्ण होनेसें देहका कृश न होना, कंठमें कफका निरंतर बोलना, रुधिरसैं काले लाल कोढ¹ और चकत्तोंका होना, शब्द बहुत मन्द निकले, कान, नाक, मुख आदि छिद्रोंका पकना, पेटका भारी होना, वात पित्त कफ इनका देरमें पाकहो (उदरस्य च) इस पदमें जो चकारहै यासैं वाग्भटने जो लिखेहैं कोन; शीतका लगना, दिनमें घोर निद्राका आना, नित्यरात्रिमें जागना, अथवा निद्रा कभी आवेही नहीं, पसीना बहुत आवै और नहीं आवै, कभी गान करे, कभी नांचे, हंसे, रोवै, और चेष्टा पलटजाय इत्यादि जानने ये सन्निपातज्वरके लक्षण जानने ।

१ कोढके लक्षण भालुकिने कहेहे यथा-" वरटीदंशसंकाशः कंडूमान् लोहितोऽस्त्रकफापित्तवान् क्षणिकोत्पत्तिविनाशः कोढ़ इत्यभिधीयते सद्भिः इति ।

* शंका * क्योंजी वातादिक दोपोके परस्पर विरुद्ध गुण हैं फेर उनको एकत्रमिलकर एकही कार्यका करना नही घट सकेहै क्यौकि परस्पर विरुद्ध गुण होनेसै * जैसे * अग्नि और जलके विरुद्ध गुण होनेसे एकही कार्य नही होसके ऐसेहीं वात पित्त कफके विरुद्ध गुणहैं फेर ये मिलकर कैसै सन्निपात रूपी विकारको प्रगट करतेहै * उत्तर * इसका समाधान दृढबल आचार्यने इस प्रकार कराहे कि गुण विरुद्धभी वात पित्त कफ दोषहै तथापि एक संग उत्पन्न होनेसै तथा परस्पर समान गुण होनेसे एक दूसरे दोषको शांति नहीं कर सक्तेहै जैसे सर्पका विप सर्पको बाधक नहीं * गदाधेर] आचार्य इसमे और हेतु कहेहैं जैसै दैवकी इच्छासै और दोपोंके स्वभावसै तथा विरुद्ध गुण होनेसें सन्निपातमें एक दोष दूसरे दोषका नाशक नहींहै * शंका * क्योजी वात पित्त कफका अलग अलग कालमें संचय होताहै और अलग अलग कालमे कोप होताहै इनका एकही कालमें प्रगट होना असंभव है तो कहिये फिर ये तीनों दोप मिलकर कैसे सन्निपात ज्वरको प्रगट करतेहैं * उत्तर * ये त्रिदोष प्रकट कारक कारण औषध अन्नविहारके वलकरके एकही कालमें इनतीनो दोपोका प्रकोप होताहै ये सिद्धांत है ॥

१ विरुद्धैरपिनत्वेतेगुणैर्घ्नंति परस्पर । दोषास्सहजसाम्यत्वाद्विषंघोरमहीनिव २ दैवात् दोषस्वभावाद्वादोषाणांसान्निपातिके । विरुद्धैश्चगुणैस्तैश्चनोपघातःपरस्परम् ॥

सन्निपातोंके भेद

सुश्रुत वाग्भटकें मतसें सन्निपात एकही प्रकारका है परंतु और आचारीन्के मतसें उल्वणादि भेद करके ५२ प्रकारका है यथा ।

भ्रमःपिपासादाहश्चगौरवंशिरसोतिरुक् । वातपित्तोल्बणेविद्यात्लिङ्गंमन्दकफेज्वरे ॥ १ ॥ शैत्यंकासोऽरुचिस्तन्द्रापिपासादाहरुग्व्यथाः । वातश्लेष्मोल्बणेव्याधौलिङ्गंपित्तानुगेविदुः ॥ २ ॥ छर्दिःशैत्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोऽस्थिवेदना । मन्दवातेव्यवस्यन्तिलिङ्गंपित्तकफोल्बणे ॥ ३ ॥ सन्ध्यस्थिशिरसःशूलंप्रलापोगौरवंभ्रमः । वातोल्बणेस्याद्व्यनुगेतृष्णाकण्ठास्यशुष्कता ॥ ४ ॥ रक्तविण्मूत्रतादाहःस्वेदतृष्णाबलक्षयः । मूर्छाचेतित्रिदोषेस्याल्लिङ्गंपित्तेगरीयसि ॥ ५ ॥ आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरतिभ्रमैः । कफोल्वणंसन्निपातंतन्द्राकासेनचादिशेत् ॥ ६ ॥ प्रतिश्याच्छर्दिरालस्यंतन्द्रारुच्यग्निमार्दवम् । हीनवातेपित्तमध्येलिङ्गंश्लेष्माधिकेमतम् ॥ ॥ ७ ॥ हारिद्रमूत्रनेत्रत्वंदाहस्तृष्णाभ्रमोरुचिः । हीनवातेमध्यकफेलिङ्गंपित्ताधिकेमतम् ॥ ८ ॥ शिरोरुग्वेपथुःश्वासप्रलापच्छर्द्यरोचकाः । हीनपित्तेमध्यकफेलिङ्गंवाताधिकेमतम् ॥ ९ ॥ शीतकंगौरवंतन्द्राप्रलापोऽस्थिशिरोऽतिरुक् । हीनपित्तेवातमध्येलिङ्गंश्लेष्माधिकेविदुः ॥ १० ॥ वर्चोभेदोग्निदौर्बल्यंतृष्णादाहोरुचिर्भ्रमः । कफहीनेवातमध्येलिङ्गंपित्ताधिकेविदुः ॥ ११ ॥ श्वासःकासप्रतिश्यायौमुखशोषोतिपार्श्वरुक् । कफहीनेपित्तमध्येलिङ्गंवाताधिकेमतम् ॥ १२ ॥

ये उल्वणादि भेद चरकके मतसें कहेहैं परंतु भालुकी आचारीने अपने ग्रंथमें उल्वणादिलक्षण और ही प्रकारसें कहेहैं यथा ।

वातपित्ताधिकोयस्यसन्निपातःप्रकुप्यति । तस्यज्वरोङ्गमर्द-

स्तृट्तालुशोषप्रमीलकाः ॥ १३ ॥ आध्मानतन्द्रावरुचि-
श्वासकासभ्रमश्रमाः । पित्तश्लेष्माधिकोयस्यसन्निपातःप्र-
कुप्यति ॥ १४ ॥ अन्तर्दाहोबहिःशीतस्तस्यतन्द्राविवर्द्धते ।
तुद्यतेदक्षिणंपार्श्वमुरःशीर्षगलग्रहाः ॥ १५ ॥ निष्ठीवेत्क-
फपित्तश्चतृष्णाकण्ठश्चदूयते । विड्भेदश्वासहिक्काश्चबाध्य-
न्तेसप्रमीलकाः ॥ १६ ॥ (विधुफल्गू) चतौनाम्नासन्नि-
पातावुदाहृतौ । श्लेष्मानिलाधिकोयस्यसन्निपातःप्रकुप्यति
॥ १७ ॥ तस्यशीतज्वरोनिद्राक्षुत्तृष्णापार्श्वसंग्रहः । शिरो-
गौरवमालस्यंमन्यास्तम्भप्रमीलकाः ॥ १८ ॥ उदरन्तुद्यते
चास्यकटीबस्तिश्चदूयते । सन्निपातःसविज्ञेयो (मकरीति)
सुदारुणः ॥ १९ ॥ वातोल्बणःसन्निपातोयस्यजन्तोःप्रकु-
प्यति । तस्यतृष्णाज्वरग्लानिपार्श्वरुग्दृष्टिसंक्षयाः ॥ २० ॥
पिण्डिकोद्वेष्टनंदाहउरुसादोबलक्षयः । सरक्तश्चास्यविण्मूत्रं
शूलंनिद्राविपर्य्ययः ॥ २१ ॥ निर्भिद्यतेगुदश्चास्यबस्तिश्च-
परिकृष्यति । आयम्यतेभिद्यतेचहिक्कतेविलपत्यपि ॥२२॥
मूर्च्छतिस्फार्यतेरौतिनाम्ना (विस्फुरकः) स्मृतः । पित्तो-
ल्बणःसन्निपातोयस्यजन्तोःप्रकुप्यति ॥ २३ ॥ तस्यदाह-
ज्वरोघोरोबहिरन्तश्चवर्द्धते । शीतंचसेवमानस्यकुप्यतःकफ-
मारुतौ ॥ २४ ॥ ततश्चैनंप्रधावन्तेहिक्काश्वासप्रमीलकाः ।
विषूचिकापर्व्वभेदःप्रलापोगौरवंक्लमः ॥ २५ ॥ नाभिपार्श्व-
रुजातस्यस्विन्नस्याशुविवर्द्धते । स्विद्यमानस्यरक्तश्चस्रोतो-
भ्यःसंप्रपद्यते ॥ २६ ॥ शूलेनपीड्यमानस्यतृष्णादाहश्चव-
र्द्धते । असाध्यसन्निपातोयं (शीघ्रकारीति) कथ्यते॥२७॥
नहिजीवत्यहोरात्रमेतेनाविष्टविग्रहः । कफोल्बणःसन्निपा-

तोयस्यजन्तोःप्रकुप्यति ॥ २८ ॥ तस्यशीतज्वरस्वप्नगौर-
वालस्यतन्द्रिकाः । छर्दिमूर्च्छातृषादाहतृष्णारोचकहृद्ग्रहाः ।
॥ २९ ॥ ष्ठीवनंमुखमाधुर्य्यश्रोत्रवाग्दृष्टिनिग्रहः ।

मतान्तरभेद

कुम्भीपाकः पौर्णनावः प्रलापीह्यंतर्दाहोदंडपातोऽतकश्च ।
एणीदाहश्चाथहारिद्रसंज्ञोभेदाएते सन्निपातज्वरस्य ॥ १ ॥
अजघोषभूतहासौ यंत्रापीडश्च संन्यासः ।
संशोषी च विशेषास्तस्यैवोक्तास्त्रयोदश च ॥ २ ॥

अर्थ—१ कुम्भीपाक २ पौर्णनाव ३ प्रलापी ४ अंतर्दाह ५ दण्डपात ६ अन्तक ७ एणीदाह ८ हारिद्रसंज्ञक ९ अजघोष १० भूतहास ११ यंत्रापीड १२ संन्यास १३ संशोषी ए तेरह प्रकारके सन्निपात हैं ।

इन तेरहके क्रमसैं लक्षण लिखै हैं

कुम्भीपाक

घोणाविवरगलद्बहुशोणासितलोहितं सार्ति ।
विलुठन्मस्तकमभितः कुंभीपाकेन पीडितं विद्यात् ॥ १ ॥

पौर्णनाव

उत्क्षिप्य यः स्वमंगं क्षिपत्यधस्तान्नितांतमुछ्वसाति ।
तं पौर्णनावजुष्टं विचित्रकष्टं विजानीयात् ॥ २ ॥

प्रलापी

स्वेदभ्रमांगमर्दाः कंपो दवथुर्वमी व्यथा कण्ठे ।
गात्रं च गुर्वतीदं प्रलापिजुष्टस्य जायते लिंगं ॥ ३ ॥

अन्तर्दाह

अन्तर्दाहः शैत्यं बहिश्च यस्यातिसंततः श्वासः ।
अंगमिव दग्धकल्पं सोंतर्दाहार्दितः कथितः ॥ ४ ॥

दण्डपात

नक्तं दिवा न निद्रामुपैति गृह्णाति मूढधीर्नभसः ।

उत्थाय दण्डपाते भ्रमातुरः सर्वतो भ्रमति ॥ ५ ॥

अन्तक

संपूर्य्यते शरीरं ग्रन्थिभिरभितस्तथोदरं मरुता ।
श्वासातुरस्य सततं विचेतनस्यांतकार्त्तस्य ॥ ६ ॥

एणीदाह

परिधावतीव गात्रे रुक्पात्रे भुजगपतंगहरिणगणः ।
वेपथुमतः सदाहस्यैणीदाहज्वरार्त्तस्य ॥ ७ ॥

हारिद्र

यस्यातिपीतमंगं नयने सुतरां मलं ततोप्यधिकम् ।
दाहोतिशीतता बहिरस्य स हारिद्रको ज्ञेयः ॥ ८ ॥

अजघोष

छगलकशरीरगंधः स्कंधरुजावान्निरुद्धगलरंध्रः ।
अजघोषसन्निपातादाताम्राक्षः पुमान्भवति ॥ ९ ॥

भूतहास

शब्दादीनधिगच्छति नस्वान्विषयान् यदिंद्रियग्रामः ।
हसति प्रलपति परुषं स ज्ञेयो भूतहासार्तः ॥ १० ॥

यंत्रापीड

येन मुहुर्ज्वरवेगाद्यंत्रेणेवावपीड्यते गात्रं ।
रक्तं पीतं च वमेद्यंत्रापीडः सविज्ञेयः ॥ ११ ॥

संन्यास

अतिसरति वमति कूजति गात्राण्यभितश्चिरं नरः क्षिपति ।
सन्याससन्निपाते प्रलपति भुग्नाक्षिमण्डलो भवति ॥ १२ ॥

संशोषी

मेचकवपुरतिमेचकलोचनयुगलोऽबलोत्सर्गात् ।
संशोषिणिसितपिटकामण्डलयुक्तोज्वरो भवति ॥ १३ ॥

इति कुम्भीपाकादीनां त्रयोदशानां लक्षणानि

सन्निपातके विस्फारकादि १६ भेदोंको कहतेहैं

१ विस्फारक २ शीघ्रकारी ३ कम्पन ४ बभ्रु ५ विद्धाख्य ६ शर्कराख्य ७ भग्न ८ कूटपालक ९ संमोहक १० पाकल ११ याम्य १२ संग्राम १३ क्रकच १४ कर्कोटक १५ दारिक १६ व्यालाकृति ॥ इन १६ सन्निपातोंके लक्षण ग्रन्थवढनेके भयसैं हमने नहीं लिखे अब प्रसंग बस सम्पूर्ण सन्निपातोंकी उत्पत्ति और सम्प्राप्ति ग्रन्थान्तरोंसैं लिखतेहैं।

अम्लस्निग्धोष्णतीक्ष्णैःकटुमधुरसुरातापसेवाकषायैः
कामक्रोधातिरूक्षैर्गुरुतरपिशिताहारनीहारशीतैः।
शोकव्यायामचिंताग्रहगणवनितात्यंतसंगप्रसङ्गैः
प्रायःकुप्यंतिपुंसांमधुसमयशरद्वर्षणेसन्निपाताः ॥ १ ॥

अर्थ—खट्टा चिकना गरम तीखा कडुआ मीठा मद्य सूर्यकी घामसे आदिले तापका सेवन कसेला काम क्रोध रूक्ष भारी मांस आदि पदार्थका सेवन नीहारकौल शीत शोक दंडकसरत आदिश्रम चिंता भूतपिशाचकी वाधा अत्यंत स्त्रीसंग इनकारणसैं और चैत्र वैशाख आश्विन कार्तिक श्रावण भाद्रपद इनमहीनोंमें मनुष्योंके प्राय सन्निपातोंका कोप होयहै।

आमोह्याहारदोषात्प्रथममुपचितोहंतिवन्हिंशरीरे ।
श्लेष्मत्वंयातिभुक्तंसकलमपिततोऽसौकफोवायुदुष्टः।
श्रोतांस्यापूर्य्यरुध्यादनिलमथमरुत्कोपयेत्पित्तमंतः।
संमूर्छ्याऽन्योन्यमेतेप्रबलमितिनृणांकुर्वतेसन्निपातम् ॥ २ ॥

अर्थ—आहारके दोषसैं प्रथम संगृहीत जो आम सो देहकी अग्निको शान्ति करे और मनुष्य जो कुछ खाय सो सब कफ होजाय और फेर इस कफको वायु दूषित करै तब ये पवनके वहनेवाली नाडियोंके मार्गमें प्राप्तहो उन्को रोकदे तब पवनपित्तको कुपित करै ऐसें तीनों दोष अन्योऽन्य कुपित हो मनुष्योंके प्रबल सन्निपात रोग प्रगट करेहैं।

अब संधिकादि तेरह सन्निपातोंके लक्षण पृथक् पृथक् लिखतेहैं

संधिकश्चांतकश्चैवरुग्दाहश्चित्तविभ्रमः । शीताङ्गस्तांद्रिकःप्रोक्तःकंठकुब्जश्चकर्णकः ॥ ३ ॥ विख्यातोभुग्ननेत्रश्चरक्तष्ठीवीप्रलापकः । जिह्वकश्चेत्यभिन्यासस्सन्निपातास्त्रयोदश ॥ ४ ॥

अर्थ—१ संधिक २ अंतक ३ रुग्दाह ४ चित्तविभ्रम ५ शीतांग ६ तंद्रिक ७ कंठकुब्ज ८ कर्णक ९ भुग्ननेत्र १० रक्तष्ठीवी ११ प्रलापक १२ जिव्हक १३ अभिन्यास ये तेरह सन्निपात कहेहैं।

अथ तेरहसन्निपातोंकी मर्यादा

संधिकेवासराःसप्त चान्तकेदशवासराः । रुग्दाहेविंशतिर्ज्ञेया वन्ह्यष्टौचित्तविभ्रमे ॥ ५ ॥ पक्षमेकंतुशीतांगेतन्द्रिकेपंचविंशतिः । विज्ञेयावासराश्चैवकंठकुब्जेत्रयोदश ॥६॥ कर्णकेचत्रयोमासाभुग्ननेत्रेदिनाष्टकं । रक्तष्ठीवीदशाहानिचतुर्दशप्रलापके ॥ ७ ॥ जिह्वकेषोडशाहानिकलाभिन्यासलक्षणे । परमायुरिदंप्रोक्तंम्रियतेतल्लक्षणादपि ॥ ८ ॥

अर्थ—संधिककी ७ अन्तककी १० रुग्दाहकी २० चित्तविभ्रमकी २४ शीतांगकी १५ तंद्रिककी २५ कंठकुब्जकी १३ कर्णककीतीन महीना (९० दिन) भुग्ननेत्र ८ रक्तष्ठीवीकी १० प्रलापकी १४ जिव्हककी १६ अभिन्यासकी १६ दिनकीये सन्निपातोंकी परमायुके दिन कहेहैं। परंतु रोगी शीघ्रवी मरजाताहै।

उक्तसन्निपातोंमें साध्याऽसाध्य विचार

सन्धिकस्तन्द्रिकश्चैवकर्णकःकंठकुब्जकः ।
जिव्हकश्चित्तविभ्रंशःषट्साध्याःसप्तमारकाः ॥ ९ ॥

अर्थ—संधिक १ तंद्रिक २ कर्णक ३ कण्ठकुब्ज ४ जिव्हक ५ चित्तविभ्रंश ६ येछह साध्यहैं बाकी बचे सातसो मारक हैं।

असाध्यकृच्छ्रसाध्यके लक्षण

दोषेविवृद्धेनष्टेग्नौसर्वसम्पूर्णलक्षणः ।
सन्निपातज्वरोसाध्यःकृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ १० ॥

अर्थ—जिसमें दोष (वात पित्त कफ) वृद्धि होकर अर्थात् सम्पूर्ण लक्षण होकर मिलतेहों और अग्नि शांत होगई हो वो सन्निपातज्वर असाध्यहै और इससें विपरीत अर्थात् दोष बढे नहों अल्प लक्षण हों अग्नि थोडी दीप्त हो वो सन्निपात ज्वर कृच्छ्रसाध्य है।

(जैजटने) दोषशब्दका मल अर्थ कराहै अर्थात पुरीपादिक बढेसंते इत्यादि इस श्लोकका तात्पर्यार्थ ये है कि असाध्य और कृच्छ्रसाध्य भयेपर सुखसाध्य नहिं होताहै इसीसें (भालुकी) आचारीने लिखाहै।

मृत्युनासहयोद्धव्यंसन्निपातंचिकित्सता ।
यस्तुतत्रभवेज्जेतासजेताऽऽमयसंकुले ॥ ११ ॥

अर्थ-जो वैद्य सन्निपातकी चिकित्सा करेहै वो मौंतके साथ संग्राम करेहै जो इस सन्निपातको जींते अर्थात् शांत करे वो सर्व रोगके गणोंका जीतनेवालाहै ।

तथाच

सन्निपातार्णवेमग्नंयोभ्युद्धरतिमानवम् ।
कस्तेननकृतोधर्मःकांचपूजांनसोर्हति ॥ १२ ॥

अर्थ-जो वैद्य सन्निपातरूपी सागरमें डूबे मनुष्यको निकालताहै उसनें कौनसा धर्म न करा अर्थात् सब धर्म्मकर चुका और वो कौन पूजाके योग्य नहींहै अर्थात् वो सब पूजाओंके योग्यहै ।

संधिक

पूर्वरूपकृतशूलसम्भवंशोषवातबहुवेदनान्वितं ।
श्लेष्मतापबलहानिजागरंसन्निपातमितिसन्धिकंवदेत् ॥ १ ॥

अर्थ-जिसके पूर्वरूपमें शूल शोष वातसें बहुत पीडा कफका गिरना सन्ताप बलहानि रात्रिमें जागरण ये लक्षण होय तिसको (सन्धिक) सन्निपात कहतेहैं १

अन्तक

दाहंकरोतिपरितापनमातनोति मोहंददातिविदधा-
तिशिरःप्रकंपं । हिक्कांकरोतिकसनंचसमाञ्जहोतिजा-
नीहितंविबुधवर्जितमंतकाख्यम् ॥ २ ॥

अर्थ-दाहकरे संतापको वढावे मोहको देवे शिर कंपावै हिचकी करे और खांसीको वढ़ावे ऐसा पंडितोंकरके साज्य (अन्तक) सन्निपात जानना ॥

रुग्दाह

प्रलापपरितापनप्रबलमोहमांद्यश्रमः परिभ्रमणवेदनाव्य-
थितकण्ठमन्याहनुः ॥ निरंतरतृषाकरःश्वसनकासहिक्काकु-
लः सकष्टतरसाधनोभवतिहन्तरुग्दाहकः ॥ ३ ॥

अर्थ-अनर्थभाषण सन्ताप अतिमोह मंदता अनायासश्रम भौंर पीड़ा कंठ मन्यानाड़ी और ठोड़ी इनमें व्यथा निरंतर प्यास लगे श्वास खांसी और हिचकी इनलक्षणकरके युक्त ऐसा ये (रुग्दाहनामक) सन्निपात कष्टसाध्यहै ॥ ३ ॥

चित्तभ्रम

यदिकथमपिपुंसांजायतेकायपीडा । भ्रममदपरितापोमोह-
वैकल्यभावः ॥ विकलनयनहासोगीतनृत्यप्रलापी । ह्यभिद-
धतिअसाध्यंकेपिचित्तभ्रमाख्यम् ॥ ४ ॥

अर्थ–जिसके कोई प्रकार करके पीड़ा होय तथा भ्रम (धतूरा खाये सरीखी अवस्था हो) सन्ताप मोह विकलता नेत्रोंमें वेकली हंसना गाना नाचना वकना ये लक्षण होंय उसको कोई असाध्य (चित्तभ्रम) सन्निपात ऐसैं कहतेहैं ॥ ४ ॥

शीतांग

हिमसदृशशरीरोवेपथुश्वासहिक्का शिथिलितसकलांगःखि-
न्ननादोग्रतापः ॥ क्लमथुदवथुकासच्छर्द्यतीसारयुक्तस्त्वरितम-
रणहेतुःशीतगात्रप्रभावात् ॥ ५ ॥

अर्थ–शरीर वर्फके समान शीतल होय कम्प श्वास हिचकी सर्व अङ्ग सिथिल हो मन्द शब्द देहकेभीतर उग्र सन्ताप अनायासश्रम मनका संताप खांसी छर्दि अतीसार ये लक्षणयुक्त सन्निपातको (शीताङ्ग) कहतेहैं ये प्राणोंका शीघ्र नाशकर्त्ताहै ।

तंद्रिक

प्रभूततंद्रार्त्तिज्वरकफपिपासाकुलतरो भवेच्छ्यामाजिह्वापृ-
थुलकठिनाकंटकवृता ॥ अतीसारःश्वासःक्लमथुपरितापःश्रु-
तिरुजोभृशंकंठेजाड्यंशयनमनिशंतंद्रिकगदे ॥ ६ ॥

अर्थ–तंद्रा वहुत होय शूल ज्वर कफ तृषासैं रोगी वहुत पीडित हो जीभ कालेरंगकी मोटी कठोर और कांटेयुक्त हो और अतीसार श्वास ग्लानि संताप कर्णशूल कंठमें जड़ता और रातदिन निद्रा ये लक्षण तंद्रिक संनिपातमें होतेहैं यह असाध्यहै ।

कंठकुब्ज

शिरोर्तिकंठग्रहदाहमोहकंपज्वरारक्तसमीरणार्तिः । हनुग्रह-
स्तापविलापमूर्च्छाःस्यात्कण्ठकुब्जःखलुकष्टसाध्यः ॥ ७ ॥

अर्थ–शिरमें पीड़ा कण्ठमें पीड़ा दाह वेहोशी कंप ज्वर वातरक्तसम्वन्धी पीडा

हनुग्रह संताप बकना और मूर्च्छा ये लक्षण युक्त सन्निपातको (कण्ठकुब्ज) कहतेहैं यह कष्टसाध्यहै।

कर्णक

प्रलापश्रुतिह्रासकंठग्रहांगव्यथाश्वासकासप्रसेकप्रभावं।
ज्वरंतापकर्णांतयोर्गल्लपीडा बुधाःकर्णकंकष्टसाध्यंवदंति॥ ८॥

अर्थ—अनर्थभाषणकरे बहरा होजावे कंठमें दर्द होय अंगोंमें पीड़ा श्वास कास पसीना लारका गिरना ज्वर सन्ताप कर्ण और गाल इनमें पीड़ा जिसमें ये लक्षण हों उस्को पण्डित कष्टसाध्य (कर्णक) सन्निपात कहतेहैं।

भुग्ननेत्र

ज्वरबलापचयःस्मृतिशून्यताश्वसनभुग्नविलोचनमोहितः।
प्रलपनभ्रमकंपनशोफवांस्त्यजतिजीवितमाशुसभुग्नदृक्॥ ९॥

अर्थ—ज्वर बलका नाश स्मृतिनाश श्वास टेढी दृष्टी बेहोसी अनर्थभाषण भ्रम कंप और सूजन ये लक्षण (भुग्ननेत्र) सन्निपातके हैं ये रोगी जल्दी मरताहै।

रक्तष्ठीवी

रक्तष्ठीवीज्वरवमितृषामोहशूलातिसारा हिक्काध्मानभ्रमणदवथुश्वाससंज्ञाप्रणाशाः॥ श्यामारक्ताधिकतररसनामंडलोत्थानरूपा रक्तष्ठीवीनिगदितइहप्राणहंताप्रसिद्धः॥ १०॥

अर्थ—रक्तकी उलटीकरे ज्वर वमन तृषा मूर्च्छा शूल अतिसार हिचकी अफरा भौंरका आना संताप श्वास संज्ञानाश काली और लाल जीभ देहमें रुधिरके विकारसें चकत्ता जिस्में ये लक्षणहों उसको (रक्तष्ठीवी) सन्निपात कहतेहैं ये प्राणनाशक प्रसिद्धहै।

प्रलापक

कंपप्रलापपरितापनशीर्षपीडा प्रौढप्रभावपवमानपरोऽन्यचिन्ता॥ प्रज्ञाप्रणाशविकलप्रचुरप्रवादः क्षिप्रंप्रयातिपितृपालपदंप्रलापी॥ ११॥

अर्थ—कंप बडबडाना संताप शिरमें पीडा इनका विशेष जोर हो पवित्रतामें आशक्त दूसरेकी चिंता करे बुद्धिका नाश हो विकल और बहुत बकवाद करे ऐसा ये प्रलापक सन्निपातवाला रोगी यमराजके पुरको पधारे।

जिह्वक

श्वसनकासपरितापविह्वलःकठिनकंटकपरीतजिह्वकः ।
बधिरमूकबलहानिलक्षणोभवति कष्टतरसाध्यजिह्वकः ॥ १२ ॥

अर्थ–श्वास खांसी संताप विव्हल कठोर और कांटेनसे व्याप्त ऐसी जीभ वहरा गूंगा और वलकी हानि इन लक्षणोंसें संयुक्त ऐसा ये (जिह्वक) सन्निपात कष्टसाध्य है ।

अभिन्यास

दोषत्रयस्निग्धमुखत्वनिद्रा वैकल्यनिश्चेष्टनकष्टवाग्मी ॥ बलप्रणाशःश्वसनादिनिग्रहोऽभिन्यासउक्तोननुमृत्युकल्पः ॥१३॥

अर्थ–त्रिदोषोंके कोपके समान मुखपर चिकनापना निद्रा वेकली चेष्टाहीनहो कष्टसैं बोलै वलनाश श्वासादिकोंका रुकना ये लक्षण (अभिन्यास) सन्निपातमें होतेहैं ये महाअसाध्य मृत्युके तुल्यहै ।

सन्निपातोपद्रव

सन्निपातज्वरस्यांतेकर्णमूलेसुदारुणः ।
शोथःसंजायतेतेनकश्चिदेवप्रमुच्यते ॥ १४ ॥
ज्वरस्यपूर्वंज्वरमध्यतोवाज्वरांततोवाश्रुतिमूलशोथः ।
क्रमादसाध्यःखलुकष्टसाध्यःसुखेनसाध्योमुनिभिःप्रदिष्टः ॥१५॥

अर्थ–सन्निपातज्वर शांति होनेके पीछे कानकी जडमें दारुण सूजन पैदा होतीहै उस सूजनसे कोई रोगी वचैहै भायये मारही डालेहै ॥ १ ॥ यदि यह सूजन ज्वरके पहिले होवे तौ असाध्यहै ज्वरके मध्यमें होय तौ कष्टसाध्यहै और ज्वरके अंतमें होय तौ सुखसाध्य है । ऐसें मुनीश्वरोंने कहाहै । *

सद्यस्त्रिपंचसप्ताहाद्दशाहाद्द्वादशादपि ।
एकविंशद्दिनैःशुद्धःसन्निपातीसुजीवति ॥ १६ ॥

अर्थ–सन्निपात हुएपर तत्काल तीन पांच सात दश और वारह दिनसें इकीस दिवसतक सन्निपातवाला रोगी शुद्धहोकर जीवैहै ।

त्रिदोषज्वरोंकी साधारण मर्यादा

सप्तमीद्विगुणायावन्नवम्येकादशीतथा ।

---

१ सप्तमेदिवसेप्राप्तेदशमेद्वादशेपिवा ॥ पुनर्घोरतरोभूत्वाप्रशमंयातिहंतिवा इति ॥

एषांत्रिदोषमर्यादामोक्षायचवधायच ॥ १७ ॥
पित्तकफानिलवृद्ध्यादशदिवसद्वादशाहसप्ताहात् ।
हंतिविमुंचतिपुरुषंत्रिदोषजोधातुमलपाकात् ॥ १८ ॥

अर्थ–ज्वरसैं त्रिदोष प्रकटहो उस दिनसैं लेकर ७ किंवा १४ और ९ किंवा १८ तथा ११ किंवा २२ दिनतक त्रिदोषज्वरोंकी मर्यादाहै इस अवधिमें ज्वर जातारहै अथवा मृत्युहोय ॥ १ ॥ सात नौ और ग्यारह दिनमें मर्य्यादा वाताधिक पित्ताधिक और कफाधिक सन्निपातोंकी क्रमसैं जाननी पित्त कफ और वात इनकी वृद्धी क्रमकरके दशदिनकी बारहदिनकी और सातदिनकी है इसमें त्रिदोषजज्वर धातुपाक होनेसैं मार डाले और मलपाक होनेसैं रोगी रोगमुक्त होजाय ।

धातुपाकलक्षण

निद्राबलौजोरुचिवीर्यनाशो हृद्वेदनागौरवताल्पचेष्टा ।
विष्टंभतायस्यकिलारतिःस्यात्सधातुपाकीमुनिभिःप्रदिष्टः ॥१९॥

अर्थ–निद्रा बल तेज रुचि वीर्य इन्का नाश हृदयमें पीडा देह भारी हीनचेष्टा अफरा मनका न लगना ये लक्षण जिसके हों उसको धातुपाकी मुनीश्वरोंने कहाहै धातुपाक कहिये उत्तरोत्तर रोगकी वृद्धि और बलकी हानि होयकर शुक्रादि धातुसहित मूत्रादिकोंका जो पाक होय उसे धातुपाक कहतेहैं ।

मलपाकलक्षण

दोषप्रकृतिवैकृत्यंलघुताज्वरदेहयोः ।
इन्द्रियाणाञ्चवैमल्यंदोषाणांपाकलक्षणम् ॥ २० ॥

अर्थ–दोषोंका स्वभाव पलटजाय ज्वरका हलका होना देह हलकी हो इन्द्रियोंका निर्मल होना ये (मलपाक) के लक्षण जानने धातुपाक और मलपाक होना केवल ईश्वरपर है इसमें दूसरा कोई हेतु नहींहै ।

आगंतुकज्वर

अभिघाताभिचाराभ्यामभिषंगाभिशापतः ।
आगंतुर्जायतेदोषैर्यथास्वंतंविभावयेत् ॥ २१ ॥

अर्थ–तलवार छुरा मुक्का लकडी इत्यादि शस्त्रआदिके लगनेसैं प्रगट ज्वरको अभिघातज कहतेहैं और विपरीतमंत्रके जपनेसैं लोहके श्रुचासैं मारणार्थ सर्षपा-

दिक होम अथवा कृत्याका प्रयोग करनेसैं उत्पन्नज्वरको अभिचारज कहतेहैं काम शोक भय क्रोध भूतादिकोंके आवेशसैं उत्पन्न ज्वरको अभिषंगज कहतेहैं ब्राह्मण गुरु वृद्ध सिद्ध इनके शाप देनेसैं प्रगट ज्वरको अभिशापज कहतेहैं ये चार प्रकारसें आगंतु ज्वर उत्पन्न होयहै इस ज्वरके आरंभसैं पूर्वकोई दोषका प्रकाश नहीं हो पीछें जैसें दोष कुपितहों वे तिनको उन्हीं उन्हीं दोषोंके लक्षण करके जाने जैसें (कामशोकभयाद्वायुः) अर्थात् काम शोक भयसैं वात कुपित होतीहै ।

विषजन्य आगंतुकज्वर

श्यावास्यताविषकृतेदाहोतीसारएवच ।
भक्तारुचिःपिपासाचतोदश्चसहमूर्च्छया ॥ २२ ॥

अर्थ–अब आगंतुज्वरोंके हेतु भेदकरके लक्षण कहतेहैं. स्थावर जंगम विष भक्षण करनेसैं जो ज्वर होय उससे मुख श्यामवर्ण और दाह तथा दस्तोंका होना अन्नमें अरुचि प्यास सुई चुभनेकीसी पीडा और मूर्च्छा ये लक्षण होतेहैं ।

औषधगंधजनितज्वर

औषधीगन्धजेमूर्च्छाशिरोरुग्वमथुःक्षवः ।

अर्थ–तीक्ष्ण औषधके सूंघनेसें जो ज्वर होय उसमें मूर्च्छा शिरमें पीडा वमन छींक ये लक्षण होतेहैं ।

कामज्वरके लक्षण

कामजेचित्तविभ्रंशस्तन्द्राऽलस्यमभोजनं ॥ २३ ॥
हृदयेवेदनाचास्य गात्रंचपरिशुष्यति ।

अर्थ–सुन्दर स्त्रीके देखनेसैं मनुष्यके मनमें घोर कामकी बाधा उत्पत्तिहो उससै प्रगट ज्वरके ये लक्षणहैं । चित्तकी अस्थिरता तंद्रा आलकस भोजनमें अरुचि हृदयमें पीडा और शरीर सूखजावे ।

अथ भयशोक और कोपज्वर

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः ॥ २४ ॥

अर्थ–भयसैं और शोकसैं उत्पन्नज्वरमें अनर्थ बके, कोपसे प्रगट ज्वरमें कंप होय ।

अभिचार और अभिघातजज्वरके लक्षण

अभिचाराभिघाताभ्यांमोहस्तृष्णाचजायते ।

अर्थ–अभिचार और अभिघातसैं प्रगटज्वरमें मोह और तृष्णा होवे ।

भूताभिषंगज्वरके लक्षण

भूताभिषंगादुद्वेगोहास्यरोदनकंपनम् ॥ २५ ॥

अर्थ–भूतबाधासैं उत्पन्नज्वरमें चित्तमें उद्वेग हसें रोवे और कम्प ये लक्षण होतेहैं ।

कामशोकभयाद्वायुःक्रोधात्पित्तंत्रयोमलाः ।

भूताभिषंगात्कुप्यंतिभूतसामान्यलक्षणाः ॥ २६ ॥

अर्थ–काम शोक और भय इनसें वात कुपित होताहै क्रोधसें पित्तकुपित होताहै और भूताभिषंगसैं तीनोंदोष कुपित होतेहैं इसमें औरभी लक्षण होतेहैं अर्थात् उन्माद निदानमें जिसजिस देवग्रहोंके लक्षण (हास्यरोदनकंपादिक) कहेहैं वो लक्षण होतेहैं ।

विषमज्वरकी संप्राप्ति

दोषोऽल्पोऽहितसंभूतोज्वरोत्सृष्टस्यवापुनः ।

धातुमन्यतमंप्राप्यकरोतिविषमज्वरम् ॥ २७ ॥

अर्थ–जिसमनुष्यके ज्वर, औषधादिक सेवन करनेसैं शांति होनेके पश्चात् और आरंभसैं इक्कीसदिन बीतनेपर तथा जीर्ण अवस्था होनेपर अपथ्यकरनेसैं वातपित्तादि दोष पुनः थोडे प्रकुपितहो रसरक्तादिधातुओंमेंसें किसीधातुमें प्राप्तहो और उनको दूषितकर विषमज्वर कहिये तृतीय चतुर्थादिक ज्वर उत्पन्नकरें* वाशब्दकरके प्रथमसेंही विषमज्वर होयहै ये सूचनाकरी * यथा * " आरम्भाद्विषमोयस्तु " इति * अल्पशब्दसैं ये दिखाया कि वह दोष बलहीन होनेसैं कालांतरमें बलवान् होकर ज्वरकरे और जो दोष बलवान्है वो निरज्वर करेहै * विषमज्वरके लक्षण * भालुकीने कहेहैं सो ऐसें * अनियतकालमें शीत उष्णकरके विषमवेगज्वर होय उसज्वरको विषमज्वर ऐसें कहतेहैं दूसरे लक्षण ऐसें कि " मुक्तानुबंधित्वं विषमत्वं " * अर्थात् जो ज्वर छोडदे और फेर आजावे उसको विषमज्वर ऐसें कहतेहैं ।

धातुगतज्वरके नाम

संततःसततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ । सततंरसरक्तस्थःसोऽन्येद्युःपिशिताश्रितः ॥ मेदोगतस्तृतीयेह्निअस्थिमज्जागतः पुनः । कुर्य्याच्चातुर्थिकंघोरमंतकंरोगशंकरम् ॥ २८ ॥

अर्थ–संतत सतत अन्येद्यु (द्व्याहिक) तृतीयक (त्र्याहिक जिसको तिजारी

कहतेहैं) और चतुर्थक जिसको चौथिया कहतेहैं ऐसें पांचप्रकारके विषमज्वर हैं संतत शब्दकरके सतत और संतत ये दोनों जानने अर्थात् रसस्थदोष संततज्वर करेहै और रक्तस्थदोष सतत ज्वर करेहै इस्सें संतत और सतत ये दोनों शब्द केवल संज्ञावाचकहैं सातत्यवाचक नहींहैं ऐसें जाने वेही दोष मांसगत अन्येद्युष्क अर्थात् ऐकाहिक (एकतरा) को करेहै और मेदगतदोष तृतीयक (तिजारी) ज्वर करेहै और वेहीदोष अस्थिमज्जामें प्राप्तभये दुःसह मृत्युकारक अनेक रोगोंसें व्याप्त ऐसा चातुर्थिक ज्वर प्रगट करेहै ।

संततज्वरके लक्षण

सप्ताहंवादशाहंवाद्वादशाहमथापिवा ।
संतत्यायोविसर्गीस्यात्संततःसनिगद्यते ॥ २९ ॥

अर्थ—सात दिनपर्यंत किंवा दशदिनपर्यंत किंवा बारहदिनपर्यंत एकसा जो ज्वर रहै और उतरे नहीं तिसको संततज्वर कहते हैं. * सात दश बारह ये जो कहे सो अनुक्रमकरके वात पित कफ इनके उल्वणसें कहेहैं ये संततज्वर त्रिदोषज है कारण इसका बारह पदार्थोंका साथ होना है ऐसैं वातादिदोषधातूके प्रमाण मूत्र और मल इनको एकही समयमें ग्रसकर संततज्वर उत्पन्न करैहैं बारह पदार्थ ये हं वातादिदोष ३ सप्तधातु ७ मूत्र १ और मल १ मिलकर बारह हुये ॥

संततकादिकोंके लक्षण

अहोरात्रेसततकोद्वौकालावनुवर्त्तते। अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रमेककालंप्रवर्त्तते ॥ ३० ॥ तृतीयकस्तृतीयेऽन्हिचतुर्थेऽन्हिचतुर्थकः । केचिद्भूताभिषंगोत्थंवदंतिविषमज्वरम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—काल छः हैं १ पूर्वान्ह २ मध्यान्ह ३ अपरान्ह ४ प्रदोष ५ अर्द्धरात्रि ६ प्रत्यूष पूर्वान्ह प्रदोष ये कफके काल हैं मध्यान्ह और अर्द्धरात्रि ये पित्तके काल हैं अपरान्ह और प्रत्यूष ये वातके काल हैं संततकज्वर दिनरातमें दो समय आता है * ईशानदेव कहते हैं कि दिनके दो वेला अथवा रात्रिके दो वेला अथवा दिनके एक वेला और रात्रिके एक वेला एकके दो वेला अमुक वेलामें आवेगा जैसें ज्वरके आवनेका समय नहीं कहा है (अन्येद्युष्कज्वर) अहोरात्रिमें एकवेलामें आता है * (तृतीयकज्वर) जिस दिन आता है उससे तीसरे दिन फेर आता है और (चातुर्थक) चौथे दिन आता है * और कोई आचारी इस विषमज्वरको भूताभिषंगोत्थ कहते हैं ये मत सुश्रुताचार्यहीका मान्य है अर्थात्

उसने विषमज्वरपर बलि होमादिकभूतोचित और कषायपानादिक दोषोचित ऐसी चिकित्सा कही है और विषमज्वर ये प्रायशः आगंतूका सम्बन्धी है ये चरकने कहा है ॥

उत्कृष्टदोष भेदकरके तृतीयक चतुर्थकोंके दूसरे लक्षण.

कफपित्तात्त्रिकग्राहीपृष्ठाद्वातकफात्मनः । वातपित्ताच्छिरोग्राहीत्रिविधःस्यात्तृतीयकः ॥३२॥ चातुर्थिकोदर्शयतिप्रभावं द्विविधंज्वरः॥जंघाभ्यांश्लैष्मिकःपूर्वंशिरसोऽनिलसंभवः ॥ ३३ ॥

अर्थ–तृतीयक ज्वर कफ पित्तके जोरसैं त्रिकस्थान (तीन हड्डी) में पीडा करे हैं वातकफके जोरसें पीठमें पीडा करे वातपित्तके जोरसे मस्तकमें पीडा करे है ऐसें (तृतीयक ज्वर) तीन प्रकारका है त्रिकग्राही जो कहा इसका तात्पर्य ये है कि त्रिकवातका स्थान है उस्के स्थानमें कफ पित्त दूसरेके स्थानमें पहुंचनेसें निर्बल हो जाते हैं यासैं तीसरे दिन ज्वर करते हैं * यदि कफ पित्त स्वस्थानपर स्थित होय तौ संततज्वरको करते हैं ये जैज्जटका मत है ऐसेंहीं मस्तक कफका स्थान है और पीठ पित्तका स्थान है इनमें दूसरें दोषोंके पहुंचनेसैं दुर्बल होय करके (तृतीयक ज्वर) करते हैं * शंका * यदि त्रिकवातका स्थान है तौ फेर आप पित्तकफका उस स्थानमें गमन कैसें कहते हो * उत्तर * ये स्थानका नियम प्रकृति स्थिति दोषोंका कहा है कुपित दोषोंका नहीं कहा है क्योंकि कुपित दोषोंका सर्वत्र गमन होता है ये (सुश्रुत)का मत है * ऐसेंही दोषोंको अन्यस्थानगतत्व होनेसैं तथा दोषोंको निर्बलत्व होनेसैं चातुर्थिक ज्वरमेंभी जानना * (चातुर्थक ज्वर) दो प्रकारकी शक्ति दिखाता है–सो ऐसें कफाधिक जिसमें होवे वो प्रथम जंघाओंमें व्याप्त होकर पश्चात् सर्व देहमें व्याप्त होय और वाताधिक्य जिसमें होवे वो पहिले मस्तकमें व्याप्त होकर पीछे सर्व देहमें व्याप्त होता है ये पांच प्रकारके विषमज्वर प्रायशः सन्निपातसैं प्रगट होते है ये (चरकका मत है) हारीतऋषि कहते हैं कि (चातुर्थक) ज्वरमें पित्त प्रधान है इन विषमज्वरोंकी उत्पत्तिक्रम (वृद्धसुश्रुतमें) इसप्रकार लिखी है कफके पांच स्थान हैं उनमें जिस जिस स्थानमें दोष प्राप्त होते हैं वहां उसी उसी विषमज्वरको प्रगट कर्त्ते हैं * उन पांच स्थानोंके नाम आमाशय १ हृदय २ कंठ ३ शिर ४ और संधि तहां आमाशयमें दोष पहुंचनेसैं संततक ज्वर दो समय आता है हृदयस्थितिदोष आमाशयमें आनेसैं एकतरा

१ त्रिक कहिये कमर और जंघाके मध्यकी तीन हड्डी.

२ सुश्रुते–कुपितानाहिदोषाणांशरीरेपरिधावतां। यत्रसंगःस्ववैगुण्याद्व्याधिस्तत्रोपजायते॥१॥

एक समय आता है * कंठमें स्थितदोष एकदिनमें हृदयमें आताहै दूसरेदिन आमाशयमें प्राप्त हो ज्वर प्रगट करे उसे तृतीयक (तिजारी) कहते हैं शिरमें स्थित जो दोष सो क्रमसें कंठ हृदय और आमाशयमें तीन दिनमें प्राप्त हो चतुर्थ दिवस (चातुर्थक) ज्वर प्रगट करते हैं और उन दोषोंका उलट कर पुनः स्वस्थानमें पहुंचना उसी दिन होता है क्योंकि दोष वेगवान होते है और दोष संधिस्थित होते हैं तव * (प्रलेपक ज्वर) प्रगट करते हैं ये विषमज्वरके समान ज्वर है कारण इसका ये है कि संधि आमाशयमें स्थित है और (सुश्रुतने) कहाहै कि* प्रलेपक यह विषमज्वर है ये धातुशोप रोगीन्को क्लेशका देनेवाला है।

विषमज्वरके भेद

विषमज्वरएवान्यश्चातुर्थिकविपर्ययः।
समध्येज्वरयत्यन्हीआद्यंतेचविमुंचति ॥ ३४ ॥

अर्थ–चातुर्थक ज्वरका उलटा ये दूसरा विषमज्वर है ये प्रथम और अंतका दिन छोडकर वीचके दोदिन आता है जैसें ये चातुर्थिकका विपर्यय है तैसेंहीं तृतीयक आदिकाभी विपर्यय होता है उनको कहते हैं जैसें वीचके एकदिन ज्वर आवै और आदि अन्तके दिन नहिं आवै ये तृतीयकका विपरीत और जो एक काल छोडकर सव दिनरात्री ज्वर रहै वो अन्येद्युष्क (इक तरेका) विपरीत जानना–इनके विपयमें ग्रन्थकारोंके भिन्नभिन्न मत हैं विस्तारके भयसें इस जगे नहीं लिखे हैं।

वातवलासकज्वर

नित्यंमन्दज्वरोरूक्षःशूनकस्तेनसीदति।
स्तब्धांगःश्लेष्मभूयिष्ठोनरोवातबलासकी ॥ ३५ ॥

अर्थ–वातवलासक नामक ज्वर जिस मनुष्यके हो वो उसज्वरकरके सोथयुक्त अर्थात् सूजन हो और मन्दज्वर सदैव वनारहै देह रूखी हो अंग जिकडजावै कफ विशेष होय ये ज्वर वात और कफसें होता है इसको वातवलासक ज्वर कहते है।

प्रलेपकज्वर

प्रलिंपन्निवगात्राणिघर्मेणगौरवेणच।

---

१ प्रलेपकस्त्वविपमःप्रायःक्लेशायशोपिणां। अन्येरात्रिज्वरादयोऽपिविपमज्वराबोद्धव्याः (यथोक्तं) समौवातकफौयस्यक्षीणपित्तस्यदेहिनः। रात्रौप्रायोज्वरस्तस्यादिवाहीनकफस्यतु ॥ १ ॥

मन्दज्वरविलेपीचसशीतःस्यात्प्रलेपकः ॥ ३६ ॥

अर्थ–जिस ज्वरमें पसीनासैं तथा सूर्यकी घामसे अथवा देहके गौरवसैं मानों देहको लिप्त करदियासा मालूम हो इसी हेतुसैं मन्द ज्वर हो शीत लगे ये ज्वर कफ पित्तसैं प्रगट होता है। और राजयक्ष्मारोगमें ये होता हैं कोई इस्को त्रिदोषजनित कहते हैं इसको (प्रलेपक ज्वर) कहते है।

विषमज्वरविशेषभेद

विदग्धेऽन्नरसेदेहेश्लेष्मापित्तेव्यवस्थिते ।

तेनार्धशीतलंदेहमर्धमुष्णंप्रजायते ॥ ३७ ॥

अर्थ–अन्नका रस दुष्ट होनेसैं और देहमें कफ पित्त दुष्ट होकर स्थित होनेसैं (अर्ध नारीश्वररूप * अथवा नरसिंहरूप) अर्धांग ज्वर प्रगट करे है * अर्थात् अर्धदेह कफसैं शीतल और अर्धदेह पित्तसैं गरम होता है।

कायेदुष्टंयदापित्तंश्लेष्माचान्तेव्यवस्थितः ।

तेनोष्णत्वंशरीरस्यशीतत्वंहस्तपादयोः ॥ ३८ ॥

अर्थ–जिस मनुष्यके कोठेमें पित्त दुष्ट होय और कफ हाथपैरमें दुष्ट होकर स्थित होवे तिसकरके सब देह उष्ण रहै और हाथ पग शीतल रहैं।

इन्होंका विपरीत द्वितीय ज्वर

कायेश्लेष्मायदादुष्टःपित्तंचान्तेव्यवस्थितम् ।

शीतत्वंतेनगात्राणामुष्णत्वंहस्तपादयोः ॥ ३९ ॥

अर्थ–जिस समय कोठेमें कफ दुष्ट हो और पित्त हाथपैरमें दुष्ट होकर रहै तब शरीर शीतल हो और हाथपैर उष्ण होय।

शीतपूर्वज्वरके लक्षण

त्वक्स्थौश्लेष्मानिलौशीतमादौजनयतोज्वरं ।

तयोः प्रशांतयोः पित्तमन्ते दाहं करो तिच ॥ ४० ॥

अर्थ–कफ और वात ये दुष्ट होकर त्वचामें प्राप्त हो अर्थात् रसधातूका आश्रय कर प्रथम शीतज्वर उत्पन्न करते हैं और जब इनका वेग शांत होता है तब पिछाडी पित्त दाह करे है।

दाहपूर्वज्वरके लक्षण

करोत्यादौतथापित्तंत्वक्स्थंदाहमतीवच । तस्मिन्प्रशान्तेत्वि-

तरौकुरुतः शीतमंततः ॥४१॥ द्वावेतोदाहशीतादीज्वरौसंस-
र्गजौस्मृतौ । दाहपूर्वस्तयोः कष्टः सुखसाध्यतमोऽपरः ॥४२॥

अर्थ–उसीप्रकार पहिले पित्तरसगत होयकर अत्यंत दाह करैं हैं पीछे उस्का वेग शांति भयेपर वात कफ ये शीत करते हैं ॥ दाहपूर्वक और शीतपूर्वक ये दोनों ज्वर संसर्ग अर्थात् त्रिदोषोंके संबंधसें होतेहैं ऐसें ऋषियोंने कह्याहै उ-नमें दाहपूर्वक ज्वर दुःखप्रद और कृच्छ्रसाध्य है और शीतपूर्व ज्वर सुखसाध्य है।

सप्तधातुगत ज्वरोंके लक्षणं रसगत ज्वरके लक्षण

गुरुताहृदयोत्क्लेशः सदनंछर्द्यरोचकौ ।
रसस्थेतुज्वरेलिंगंदैन्यंचास्योपजायते ॥ ४३ ॥

अर्थ–रसधातुमें स्थितज्वर होय तौ देह भारी दोषोंको हृदयमें स्थित होनेसैं उपस्थित वमनसी मालूम हो ग्लानि ओकारी अन्नमें अरुचि और दैन्य कहिये मनमें खेद ये चिन्ह होते हैं।

रक्तगतज्वरके लक्षण

रक्तनिष्ठीवनंदाहोमोहश्छर्दनविभ्रमौ ।
प्रलापः पिडकातृष्णारक्तप्राप्तेज्वरेनृणाम् ॥ ॥ ४४ ॥

अर्थ–रुधिरका गिरना दाह मोह वमन भ्रम अनर्थ बोले देहमें फुंसी प्यास ये लक्षण रक्तगतज्वरके होनेसैं होते हैं।

मांसगतज्वरके लक्षण

पिंडिकोद्वेष्टनंतृष्णासृष्टमूत्रपुरीषता ।
उष्मांतर्दाहविक्षेपौग्लानिः स्यान्मांसगेज्वरे ॥ ४५ ॥

अर्थ– जानुके नीचे मांसका पिंड हो तथा दंड आदिके लगने कीसी पीड़ा प्यास मलमूत्रका निकलना गरमी अंतर्दाह हाथ पैरका इधरउधर पटकना और ग्लानि ये लक्षण जब मांसमें ज्वर पहुंच जाय है तब होते हैं।

मेदोगतज्वरके लक्षण

भृशंस्वेदस्तृपामूर्च्छाप्रलापश्छर्दिरेवच ।
दौर्गन्ध्यारोचकौग्लानिर्मेदःस्थेचासहिष्णुता ॥ ४६ ॥

अर्थ–अत्यंत पसीनेका आवना प्यास मूर्च्छा प्रलाप वमन देहमें दुर्गंध अन्नमें अरुचि ग्लानि औ वेदना न सही जाय यह लक्षण मेदगत ज्वरमें होते हैं।

अस्थिगत ज्वरके लक्षण

भेदोऽस्थ्नांकूजनंश्वासोविरेकश्छर्दिरेवच ।
विक्षेपणंचगात्राणामेतदस्थिगतेज्वरे ॥ ४७ ॥

अर्थ–हड फूटनी तथा हाडोंका गूंजना श्वास दस्तका होना वमन हाथ पैरका चलना ये अस्थिगत ज्वरके लक्षण हैं ।

मज्जागत ज्वरके लक्षण

तमःप्रवेशनंहिक्काकासःशैत्यंवमिस्तथा ।
अन्तर्दाहोमहाश्वासोमर्मच्छेदश्चमज्जगे ॥ ४८ ॥

अर्थ–अंधेरा आना हिचकी खांसी शीतलगे वमन अंतर्दाह महाश्वास अर्थात् जो श्वासके निदानमें कहेंगे औरमर्म२में पीडा ये मर्म शब्द इस जगह हृदयवाचक है अर्थात् हृदयमें पीडा हो ये मज्जागत ज्वरके लक्षण है ।

शुक्रगत ज्वरके लक्षण

मरणंप्राप्नुयात्तत्रशुक्रस्थानगतेज्वरे ।
शेफसःस्तब्धतामोक्षःशुक्रस्यचविशेषतः ॥ ४९ ॥

अर्थ–रसादि धातुगत ज्वर शुक्रस्थानमें ज्वर पहुंचनेसें रोगीका मरण होय इस ज्वरमें लिंगका जकड जाना और शुक्रका विशेष स्राव होना और (सुश्रुता)-दिक आचार्य कहते हैं कि रक्तादि पदार्थका थोडा थोडा स्राव हो ।

प्राकृत और वैकृत ज्वरके लक्षण

वर्षाशरद्वसंतेषुवाताद्यैःप्राकृतःक्रमात् ।
वैकृतोऽन्यःसुदुःसाध्यःप्राकृतश्चानिलोद्भवः ॥ ५० ॥

अर्थ–वर्षाऋतु शरदऋतु और वसंतऋतु इनके मध्यमें वातादिकके क्रमसें जो ज्वर होय वो (प्राकृत) ज्वर कहाता है जैसे वर्षाकालमें वातज्वर शरत्कालमें पित्तज्वर और वसंतकालमें कफज्वर इससे विपरीत जो ज्वर होय उससें (वैकृतज्वर) कहते हैं जैसें वर्षाकालमें पैत्तिक शरदऋतुमें श्लैष्मिक और वसंतऋतुमें वातिक ये वैकृत ज्वर दुःसाध्य है अर्थात् प्राकृत ज्वर सुखसाध्य है और वातजन्य प्राकृत ज्वरभी दुःसाध्य है और रोगोंमें प्राकृतत्व दुःसाध्य है परन्तु ज्वरमें व्याधिस्वभाव करके सुखसाध्यत्व कहा है[1] ।

---

१ (यदुक्तं) प्राकृतः सुखसाध्यस्तु वसंतशरदुद्भवः ।

प्राकृतज्वरोंकी चिकित्साके निमित्त उत्पत्तिक्रम कहते

वर्षासुमारुतोदुष्टःपित्तश्लेष्मान्वितोज्वरम् । कुर्याच्चपित्तंशरदितस्यचानुवलःकफः ॥५१॥ तत्प्रकृत्याविसर्गाच्चतत्रनानशनाद्भयम् । कफोवसन्तेतमपिवातपित्तंभवेदनु ॥ ५२ ॥

अर्थ—ग्रीष्मऋतुमें संचित हुआ वायु वर्षाकालमें कुपित हो पित्तकफयुक्त हो ज्वरको प्रगट करे है उसीप्रकार वर्षाकालमें संचित हुआ पित्त शरदऋतुमें दुष्ट होकर ज्वरको उत्पन्न करे है उसको कफका अनुबंध होता है * उस ज्वरमें कफ पित्तके स्वभाव करके और विसर्ग * काल करके लंघन करनेसें भय नहीं होय* तैसेंही हेमंतकालमें संचित भया कफ वसंतकालमें ज्वर उत्पन्न करे है तिसके पिछाडी वातपित्त सहायक होते हैं ।

कालेयथास्वंसर्वेषांप्रवृत्तिर्वृद्धिरेववा ।
निदानोक्तानुपशयोविपरीतोपशायिता ॥ ५३ ॥

अर्थ—वातादिकोंका आप अपने कालमें उत्पत्ति और वृद्धि होवे है * जैसें काल ये दोष विशेष जाननेका लक्षण है * उसीप्रकार उपशय और अनुपशयभी रोग जाननेके कारण है । सो इसप्रकार जानना निदानमें करके जे आहार विहार कहे हैं उन्के सेवन करनेको अनुपशय कहिये दुःख उत्पत्ति होती है और दोषोंके विपरीत जे आहार विहार उन्होंसें उपशायिता कहिये सुखकी उत्पत्ति होय है ।

अंतर्दाहोऽधिकातृष्णाप्रलापःश्वसनंभ्रमः । संध्यस्थिशूलमस्वेदोदोपवर्चोविनिग्रहः ॥५४॥ अंतर्वेगस्यलिंगानिज्वरस्यैतानिलक्षयेत् । संतापोऽभ्यधिकोवाह्यतृष्णादीनांचमार्दवम् ॥ ५५ ॥ वहिर्वेगस्यलिंगानिसुखसाध्यत्वमुच्यते ।

---

१ अनुवलयथा * स्वतंत्रस्यकस्यचिद्राज्ञो गजरथतुरगपुरुषादिवलवतो वैरिभिः सहयुध्यमानस्य पश्चादन्यवलं तच्छक्तेरनुवलोपबृंहणार्थमागच्छति एवं स्वतंत्रस्य पित्तस्य ज्वरं कुर्वतो बलोपबृंहण शरदि कफः करोति तयोः पित्तश्लेष्मणोः प्रकृत्यास्वभावेन तत्कृतयोर्ज्वरयोरनशनाल्लंघनाद्भयं नभवतीति ॥ * वर्षा शरद और हेमंत ये विसर्गकाल हैं इसमें चन्द्रमाका बल रहे है इसमें प्राणोंका वल बढे है * और वसंत और शिशिर ग्रीष्म ये (आदान) काल है इसमें सूर्यका वल अधिक होता है इसीसें प्राणोंका वल क्षीण होता है ।

अर्थ–पिछाडी जो ज्वर कहे हैं उन्होंमें सम्प्राप्तिके भेदसैं कोई एक ज्वर अंतर्वेग होय है और कोई बहिर्वेग होय है तिन दोनोंके लक्षण कहते हैं * अंतर्दाह अतितृषा बडबडना श्वास भ्रम संधि और हाड इनमें पीडा पसीना न आवै वायु और मलका बाहर न निकलना ये अंतर्वेग ज्वरके लक्षण जानने ।

शरीरके बाहर संताप अधिक होवें तृणादिक लक्षण थोडे होवे ये बहिर्वेगज्वरके लक्षण यह ज्वर सुखसाध्य है इस ज्वरके सुखसाध्य कहनेसैं अंतर्वेगज्वर कृच्छ्रसाध्य और असाध्य है यह सूचना करी ।

लालाप्रसेकहृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः । तंद्रालस्याविपाका-
स्यवैरस्यंगुरुगात्रता ॥ ५६ ॥ क्षुन्नाशोबहुमूत्रत्वंस्तब्धताब-
लवान्ज्वरः । आमज्वरस्यलिंगानिनदद्यात्तत्रभेषजम् ॥५७॥
भेषजंह्यामदोषस्यभूयोजनयतिज्वरम् । शोधनंशमनीयञ्च
करोतिविषमज्वरम् ॥ ५८ ॥

अर्थ–चिकित्सा करनेके निमित्त आम पच्यमान और निराम ज्वरके लक्षण कहते हैं लारका गिरना खाली ओकारीका आना हृदयमें जडत्व अरुचि तन्द्रा आलकस अन्नका परिपाक न होना मुखका स्वाद जाना रहै देह भारी भूखका नाश वारंवार मूतना देहका जकडना देहमें बलवान् ज्वर हो ये अपक्व ज्वरके लक्षण जानने इस ज्वरमें औषधि वैद्य न देय अपक्व ज्वरमें औषधि देनेसैं ज्वरकी वृद्धि होय है * और शोधन तथा शमन औषध देनेसैं विषमज्वरको करे है ।

ज्वरके दश उपद्रव

श्वासोमूर्च्छाऽरुचिस्तृष्णाछर्द्यतीसारविड्ग्रहाः ।
हिक्काकासोंऽगदाहश्चज्वरस्योपद्रवादश ॥ ५९ ॥

अर्थ–(भावप्रकाश)के मतसे ज्वरके दश उपद्रवोंको कहतेहैं श्वास मूर्च्छा अरुचि प्यास वमन अतिसार मलका रुकना हिचकी खांसी देहमें दाह ये दश ज्वरके उपद्रवहैं ।

पच्यमानज्वरके लक्षण

ज्वरवेगोऽधिकातृष्णाप्रलापःश्वसनंभ्रमः ।
मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशःपच्यमानस्यलक्षणम् ॥ ६० ॥

अर्थ–ज्वरका वेग अधिक प्यास प्रलाप श्वास भ्रम मलकी प्रवृत्ति उपस्थित वमनसी मालूम होय ये पच्यमानज्वरके लक्षण हैं।

पक्वज्वर किंवा निरामज्वरके लक्षण

क्षुत्क्षामतालघुत्वंचगात्राणांज्वरमार्दवम्।
दोषप्रवृत्तिरुत्साहोनिरामज्वरलक्षणम् ॥ ६१ ॥

अर्थ–भूखका लगना देहका कृश होना अंगोंका हलकापना मन्दज्वरका आना अधोवायुकी प्रवृत्ति होना मनमें उत्साहका होना ये निरामज्वरके लक्षण जानने।

ग्रन्थान्तरसें जीर्णज्वरके लक्षण

त्रिसप्ताहेव्यतीतेषुज्वरोयस्तनुतांगतः।
प्लीहाग्निसादंकुरुतेसजीर्णज्वरउच्यते ॥ ६२ ॥

अर्थ–२१ दिवस व्यतीत होनेपर जो ज्वर बारीकहो देहमें रहै जिस्से प्लीह अर्थात् तापतिल्ली रोग और मंदाग्नि होवे उस्को जीर्णज्वर कहतेहैं।

साध्यज्वरके लक्षण

बलवत्स्वल्पदोषेषुज्वरःसाध्योऽनुपद्रवः।

अर्थ–बलवान् पुरुषके थोडे दोषयुक्त और श्वास आदि उपद्रव करके रहित जो ज्वर हो वो साध्य जानना।

असाध्यज्वरके लक्षण

हेतुभिर्बहुभिर्जातोबलिभिर्बहुलक्षणः।
ज्वरःप्राणान्तकृद्यश्चशीघ्रमिंद्रियनाशनः ॥ ६३ ॥

अर्थ–जो ज्वर बहुत प्रबल कारणोंसें उत्पन्न भयाहो और जिसमें सम्पूर्ण लक्षण मिलतेहों वो ज्वर प्राणोंका हरण करनेवाला जानना और जो ज्वर प्रगट होते ही चिकित्सा करते २ इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट करदे (अर्थात् अंधा बहिरा इत्यादि) वोभी ज्वर असाध्य जानना।

ज्वरःक्षीणस्यशूनस्यगंभीरोदैर्घ्यरात्रिकः।
असाध्योबलवान्यश्चकेशसीमंतकृज्ज्वरः ॥ ६४ ॥

अर्थ–जो पुरुष ज्वरसें क्षीण पडगयाहो अथवा सूजन जिसके देहमें आयगई हो वो ज्वर असाध्यहै। और जिस्के ज्वर धातुके भीतरहो अथवा अंतर्वेगज्वर

अथवा जिसमें वातादिदोषोंका निश्चय न होसके और बहुत दिनतक रहनेवाला ज्वर असाध्य होयहै और जो ज्वर बलवान्हो तथा जिसमें रोगी अपने हाथसैं केश (बालों)की सीमंत आदि रचना करे वो ज्वर असाध्यहै ।

गंभीरज्वरके लक्षण

गंभीरस्तुज्वरोज्ञेयोह्यंतर्दाहेनतृष्णया ।
आनद्धत्वेनचात्यर्थंश्वासकासोद्गमेनच ॥ ६५ ॥

अर्थ–अंतर्दाह प्यास दोष अर्थात् विरुद्ध दोषके बढनेसैं (मल)के रुकनेसैं तथा श्वास खांसीके उत्पन्न होनेसैं (गंभीर) ज्वर जानना ।

दूसरे असाध्यज्वरके लक्षण

आरंभाद्विषमोयस्ययस्यवादैर्घ्यरात्रिकः । क्षीणस्यचातिरू-
क्षस्यगंभीरोहंतिमानवं ॥६६॥ विसंज्ञस्ताम्यतेयस्तुशेतेनि-
पतितोपिवा । शीतार्दितोऽन्तरुष्णश्चज्वरेणम्रियतेनरः ॥ ६७ ॥

अर्थ–जो ज्वर प्रगट होतेही विषम पडजाय और जो ज्वर बहुत दिनसैं आयाकरे और क्षीण तथा अतिरूक्ष देहवाले पुरुषके जो गम्भीर ज्वर होय वो मृत्युकारक होताहै और जो वेहोस होकर मोहको प्राप्तहो तथा गिरकर जिस्से उठा न जाय पडाही रहे अथवा बाहरी शीत लगे और देहके भीतर दाह हो ऐसे ज्वरवाला पुरुष मरजावे ।

और असाध्यलक्षण

योहृष्टरोमारक्ताक्षोहृदिसंघातशूलवान् । वक्त्रेणचैवोच्छ्वसति
तंज्वरोहंतिमानवम् ॥ ६८ ॥ हिक्काश्वासतृषायुक्तंमूढंविभ्रां-
तलोचनम् । संततोच्छ्वासिनंक्षीणंनरंक्षपयतिज्वरः ॥ ६९ ॥
हतप्रभेन्द्रियंक्षाममरोचकनिपीडितम् । गंभीरतीक्ष्णवेगार्तं
ज्वरितंपरिवर्जयेत् ॥ ७० ॥

अर्थ–जिसके देहमें रोमांच खडे रहैं लाल नेत्र हों हृदयमें गांठ होनेसैं जैसी पीडाहो तैसा हो और संघात इस पदका यह अर्थ करतेहैं कि नानाप्रकारका शूलहो मुखके द्वारा श्वास ले वो ज्वररोगी मनुष्यको मारडाले ।

हिचकी श्वास प्यास इनकरके व्याप्तहो मोहयुक्तहो चलायमान नेत्रहों निरंतर श्वासलेय ऐसे लक्षणयुक्त मनुष्यको ज्वर मारडालताहै ।

इन्द्रियोंकी शक्ति नष्टहोनेसैं और शरीरकी कांति निस्तेजहोनेसैं अथवा इन्द्री (नाक कान नेत्र) ये नष्टहोजावे कृशदेह होजावे अरुचिसैं अत्यंत पीडितहो (अरोचकनिपीडितं) इसजगह (जेज्जट)ने दो पाठ लिखेहैं एकतौ (दुरात्मानमुपद्रुतं) इस्का अर्थ ये है कि दुष्ट अंतःकरण होवै और उपद्रवयुक्त होवे। दूसरा पाठान्तर ये है कि (दुरात्यभिरुपद्रुतं) अर्थात् राक्षसादिकरके युक्तहो तथा अतिघोर अंतर्वेगकरके परिपीडितहो ऐसैं ज्वरवान् पुरुषको वैद्य छोडदेवे। इसी जगह कोई टीकाकारोंने जो असाध्य लक्षण लिखेहैं सो (आतंकदर्पण) तथा (मधुकोश) टीकासैं लिखेहैं वो सव (वाग्भट) और (हारीत)के कालज्ञान देखनेसैं निश्चय होजायगे सो देखलेवे इस जगह हम ग्रंथ वढनेके भयसें नहीं लिखते।

ज्वरमुक्तीके पूर्वरूप

दाहःस्वेदोभ्रमस्तृष्णाकंपोविड्भिदसंज्ञिता।
कूजनंचातिवैगंध्यमाकृतिर्ज्वरमोक्षणे ॥ ७१ ॥

अर्थ–दाह पसीना भ्रम प्यास कंप मलका पतला होना संज्ञाका नाश होना गूंजे देहमें अत्यंत दुर्गंध आवे ये लक्षण ज्वर छोडताहै तव होतेहैं * शंका–क्योंजी दोष (वात पित्त कफ) नाशके विना रोगकी निवृत्ति होय नहीं और जव दोष क्षीण होगये तो उक्त दाहादिलक्षण कैसे करते हैं ? उत्तर–इसका कारण ये है कि कोई एक वस्तुका ऐसा स्वभाव है कि क्षीण होनेके समयमें अपनी शक्तिको दिखाती है जैसे दीपकमें तेल नहीं रहै और वुझनेको होय है तव एक संग पहिली अपेक्षा असंत वलने लगे है और थोडी देर वलकर शांत हो जाताहै ऐसेंही जव दोष शांत होनेकौ होते हैं तव अपनी शक्ति दाहादिकोंको दिखाते हैं * अथवा * दूसरा उत्तर ये है कि जैसें वंदर वृक्षकी डालीको हिलायकर दूसरे स्थानपर चला जाताहै परंतु वो वृक्षकी डाली वहुत देरपर्यंत हिला करती है इसी प्रकार ज्वर गयेपरभी उसके असरसैं दाहादिक रहतेहै ये दाहसैं आदिलैं लक्षण त्रिदोष ज्वरके शांति होनेके समय होतेहैं और सव ज्वरोंमें नहीं होते और ज्वरमें केवल पसीनाही आतेहं ये (भालुकी) आचारीका मतहै।

त्रिदोषजेज्वरेह्येतदन्तर्वेगेचधातुजे।
लक्षणंमोक्षकालेस्यादन्यस्मिन्स्वेददर्शनं ॥ ७९ ॥

ज्वरमुक्तिके लक्षण

स्वेदोलघुत्वंशिरसःकंडूःपाकोमुखस्यच ।
क्षवथुश्चान्नकांक्षाचज्वरमुक्तस्यलक्षणम् ॥ ८० ॥

अर्थ–पसीना आवै देह हलका हो मस्तकमें खुजली चले मुखका पाक अर्थात् होठोंमें पपड़ी परिजाय छींक आवैं भोजन करनेकी इच्छा होय ये लक्षण ज्वरमुक्तके हैं ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां ज्वरनिदानं समाप्तम् ।

इंग्रेजी मतानुसार ज्वरनिदान ।

ज्वरको इङ्ग्रेजीमें (Fever) फीवर कहतेहैं उस्की उत्पत्ति ।

१ सरदी

सरदी पड़नेसैं मनुष्यके सब देह रोमांच बद्ध होजावे तब पसीनेका निकलना रुक जाय इस हेतुसैं देहका जो औगुन सो देहके बाहर नहीं निकले इसीसे देह हलका नहीं होय और वोही देहका अवगुन ज्वर रोगको प्रगट करताहै इस ज्वरको सामान्य ज्वर कहतेहैं । अथवा देह अति गरमीसें पीड़ित होय उस समय किसी कारणसै शीतल करे तो सरदी होती है अथवा किसी अतिपरिश्रम करनेसें मनुष्यके देहसें पसीने निकलें उस समय हवामें बैठें अथवा हवामें शयन करनेसैं सरदी होती है अथवा रातमें मैदानमें सोनेसें अथवा रातमें शीतल पवनके लगनेसैं पसीना नहीं निकलें इस हेतुसैं सरदी होय अथवा गीला कपड़ा ओढ़कर बैठनेसैं वा सोनेसैं सरदी होय है इन कारणोंसैं सरदी होय वो सरदी अनेकप्रकारके ज्वरोंकी उत्पत्ति करे है ।

२ मन्दवायु

जिस समय पृथ्वीमें वर्षाका अथवा और प्रकार जल सूखे उस्में घास पत्ता सडजावे तब इनसैं मन्द वायु अथवा बाष्प उत्पन्न होय तिसके द्वारा अनेकप्रकारके ज्वर प्रगट होय विशेषकरके आमज्वरकी अधिक उत्पत्ति होय इसीसे जलाशयस्थान तलाव आदि और झील खाल इनस्थानोंमें मन्दवायू अधिक होय है इस्से नानाप्रकारके ज्वर प्रगट होय ये हवा सोताके जलसैं उत्पन्न नहिं होयहै किंतु जिस जगह थोड़ा जल होय जैसें तलैया आदि उस्में घास लगनेसैं जल

पक्व होकर मन्दवायुको अधिक उत्पन्न करे हैं यह वायू दिनमें सूर्यकी किरणसें बहुत हलकी होकर ऊपरको उठे इसीसे यह बड़ा नुकसान करनेवाली होतीहै और संध्या तथा रात्रिमें यह वायु शीतल होनेसें नीचे उतर सर्व साधारण मनुप्योंको नुकसान करनेवाली होतीहै और हवाओंसे यह हवा अधिक भारी होतीहै घरके किवाड़ लगानेसे यह हवा घरके भीतर कम जातीहै इसीसें घरके किवाड़ देकर (मसैरी) जिसको पूरवके लोग बहुधा रखतें हैं यह कपड़ेकी बनीहुई होतीहै इसमें सोना चाहिये।

गरिष्ठभोजन

जो मनुष्य भारी द्रव्य भोजन करै तब उसके वो पचे नहीं और पेटमें पीडा करे उस पीडाके होनेसें ज्वर उत्पन्न होय विशेपकरके यह ज्वर बालकोंके होय है।

अनेकप्रकारके ज्वरोंके लक्षण

नाड़ी और श्वास जलदी चलें मस्तकमें पीड़ा होय त्वचा शुष्क और गरम होय प्रलाप होय अथवा न होय पेसाव लाल उतरे जीभ मलीन होय शरीरमें सदा ज्वर रहा करै कभी कम होजाय कभी ज्यादा होजाय।

फुमफुमज्वरके लक्षण

श्वास लेते समय मंदमंद पीड़ा होय खांसी होय कफकुछ नीले रंगका गिरे ज्वर अल्प होय वक्षस्थलमें पीड़ा होय खांसते समय श्वास जलदी चलै नाड़ी कुछ कुछ थोडी ओर शीघ्र चले त्वचा सदैव थोड़ी गरम रहै जिस समय रोगकी वृद्धि होय श्वासके चलनेसें पीड़ा होय उस्से अधिक पीड़ा होय इस रोगके आरम्भमें कफ नहीं निकले किंतु दो तीन दिनके बाद कफ श्वेत निकल पड़े उस रोगीका हलदीके समान पीला वर्ण होय कभी कभी जलके सदृश वर्ण होय इस रोगकी विशेपता होनेसे कफ पतला होजाय। यह रोग अत्यंत बढकर पचनेको होय तब कफका शाकके समान रंगहो अथवा काले रंगका और दुर्गंधयुक्त होय बहुत सरदी पड़नेसें इसकी उत्पत्ति होतीहै।

यकृत् वा कलेजाज्वरके लक्षण

दहने पांसूमें पीड़ा होय जीभ शरीरमें थोडा ज्वर होय तथा आहारमें अरुचि होय जीभ मलिन नेत्र पीले होय मल मट्टीके रंगका अथवा सपेद तथा काला होय और कठिन पेशावलाल।

प्रसंगवशाज्ज्वरमुक्तलक्षणं ग्रन्थांतरे

देहोलघुर्व्यपगतक्लममोहतापःपाकोमुखेकरणसौष्ठवमव्यथ-

त्वम् ॥ स्वेदःक्षवःप्रकृतियोगिमनोन्नऽलिप्साकंडूश्चमूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ १ ॥

इति ज्वरनिदानम्

अथ अतिसारनिदानम्।

भाषा–पित्तज्वरमें अतिसार होताहै तथा ज्वरको और अतिसारको अन्योन्य उपद्रव होनेसें ज्वरके अनन्तर अतिसाररोगको कहते हैं।

गुर्वतिस्निग्धतीक्ष्णोष्णद्रवस्थूलातिशीतलैः । विरुद्धाध्यशनाजीर्णैर्विषमैश्चातिभोजनैः ॥ १ ॥ स्नेहाद्यैरतियुक्तैश्चमिथ्यायुक्तैर्विषैर्भयैः । शोकदुष्टाम्बुमद्यातिपानैःसात्म्यर्तुपर्ययैः ॥ २ ॥ जलाभिरमणैर्वेगविघातैःकृमिदोषतः । नृणांभवत्यतीसारोलक्षणंतस्यवक्ष्यते ॥ ३ ॥

अर्थ–प्रमाणसें अधिक भोजन करे अथवा स्वभावतें जड़ पदार्थ (जैसे उड़द आदि)के खानेसें अति चिकनी अति तीखी अति गरम अत्यंत पतली और अत्यंत स्थूल (अर्थात् जिसके अवयव कठिन हो जैसे लड्डू, घेवर, गूंझा इत्यादि) अत्यंत शीतल (स्पर्शसें तथा वीर्यसें) विरुद्ध (जैसे क्षीर, मत्स्य इत्यादिक) अध्यसन कहिये (पूर्वदिनका भोजन परिपाक नहीं होय और उसपर भोजन करना) विना पका अन्न नित्य भोजनके समयको त्याग कर और समय थोडा वा बहुत भोजन करनेसें स्नेह स्वेद आदि पंचकर्मके अत्यंत योगके करनेसें (वा) थोडे योग करनेसैं स्थावरादिक दूषी विषके खानेसैं, भयसैं, सोच करनेसैं, अति दुष्ट जलके पीनेसैं, तथा अति मद्यके पीनेसैं, सात्म्य और ऋतुके पलटनेसैं, जलमैं अति क्रीडा करनेसैं, मल, मूत्र, आदि वेगोंके रोकनेसैं, कृमिरोगके उपद्रवसैं अथवा कृमिजनित वातादिकके कोपसैं, अतिसाररोग होताहै, इन लक्षणोंसैं यह निदान वातादि दोषोंका यथासम्भव जानना, आगे अतिसारके लक्षण कहे हैं।

---

१ वातबलासलक्षणं ग्रन्थान्तरे। बलासोवायुनायुक्तःशीतादिषडहेज्वर ॥ जनयेन्नयनस्रावंहृत्पीडांमधुरास्यतां ॥ १ ॥

२ (तदुक्तंचरके) भुक्तंपूर्वान्नशेषेतुपुनरध्यशनंमतम् ॥

अतिसाररोगकी सम्प्राप्ति

संशम्यापांधातुरग्निंप्रवृद्धोवर्चोमिश्रोवायुनाधःप्रणुन्नः । सा-
र्यैतातीवातिसारंतमाहुर्व्याधिंघोरंषड्विधंतंवदंति ॥ ४ ॥ ए-
कैकशःसर्वशश्चापिदोषैःशोकेनान्यःषष्ठआमेनचोक्तः ।

अर्थ–पूर्वोक्त कहे कुपथ्यसें अत्यंत दुष्ट भये शरीरमें रस, जल, मूत्र, स्वेद, मेदा, कफ, पित्त, रुधिर इत्यादि जलरूप धातु सो अग्निको मन्द कर और वही जल मलमिश्रित हो पवनका प्रेरित गुदाके मार्गसें वारंवार नीचेको वहुत उतरे तिसको अतिसार कहते है । यह भयंकर अतिसाररोग ६ प्रकारका है १ वातका २ पित्तका ३ कफका ४ सन्निपातका ५ शोकका ६ और आमातिसार ऐसे छः प्रकारका अतिसार है । द्वंद्वज अतिसार व्याधिस्वभावकरके नहीं होते (सुश्रुत)ने आमातिसार नहीं कहा । भय और शोकसें दो कहाकर संख्या पूरी करी है और आमातिसारको सन्निपातातिसारके अन्तर्गत कहा है । यहां माधवाचार्यने भयातिसारकी वातज अतिसारमें गणना करी है ।

अतिसारके पूर्वरूप

हृन्नाभिपायूदरकुक्षितोदगात्रावसादानिलसन्निरोधाः । वि-
ट्संगआध्मानमथाविपाकोभविष्यतस्तस्यपुरःसराणि ॥ ५ ॥

अर्थ–हृदय, नाभि, गुदा, पेट, कूख इनमें पीडा हो शरीरमें फूटनी हो गुदाका पवन रुकजाय मलका अवरोध हो अफरा हो और अन्न पचे नहीं ये लक्षण अतिसाररोगके पूर्व होते हैं ।

वातातिसारके लक्षण

अरुणंफेनिलंरूक्षमल्पमल्पंमुहुर्मुहुः ।
शकृदामंसरुक्शब्दंमारुतेनातिसार्यते ॥ ६ ॥

अर्थ–कुछ ललाईको लिये झाग मिला तथा रूखा थोडा थोडा वारंवार आम मिला हुआ दस्त उतरे और शूल चले तथा मल उतरतेसमय शब्द होवे तौ वातातिसार जानना ।

पित्तातिसारके लक्षण

पित्तात्पीतंनीलमालोहितंवातृष्णामूर्च्छादाहपाकोपपन्नम् ।

अर्थ–पित्तसें, पीला, काला, धूंसरे रंगका मल उतरे तथा तृष्णा, मूर्च्छा, दाह, गुदा पकजाय यह लक्षण पित्तातिसारके हैं ।

कफातिसारके लक्षण

शुक्लंसांद्रंसकफंश्लेष्मयुक्तंविस्रंशीतंहृष्टरोमामनुष्यः ॥ ७ ॥

अर्थ-कफातिसारवाले पुरुषका मल सफेद, गाढा, चिकना, कफमिश्रित, दुर्गंधयुक्त और शीतल उतरे तथा रोमांच खडे होय यह लक्षण कफातिसारके जानने ।

सन्निपातके अतिसारके लक्षण

वाराहस्नेहमांसांबुसदृशंसर्वरूपिणम् ।
कृच्छ्रसाध्यमतीसारंविद्याद्दोषत्रयोद्भवम् ॥ ८ ॥

अर्थ-शूकरकी चरबीसदृश अथवा मांसके धोयेहुए पानीके सदृश और वातादि त्रिदोषोंके जो लक्षण कहे हैं उन लक्षणसंयुक्त हो ऐसा ये त्रिदोषजनित अतिसार कष्टसाध्य जानना ।

शोकातिसारके लक्षण

तैस्तैर्भावैःशोचतोऽल्पाशनस्यबाष्पोष्मावैवह्निमाविश्यजंतोः ॥ ९ ॥ कोष्ठंगत्वाक्षोभयेत्तस्यरक्तंतच्चाधस्तात्काकणंतीप्रकाशं । निर्गच्छेद्वैविड्भिमिश्रंह्यविड्वानिर्गंधंवागंधवद्वातिसारः ॥ १० ॥

अर्थ-जिस पुरुषके पुत्र, मित्र, स्त्री, धन इनका नाश होजावे वो उसी उसी वस्तुका शोच करे इसीसैं क्षुधा मन्द होनेसैं (धातुक्षय होय) ऐसैं प्राणीके बाष्प (नेत्र, नासा, गले, आदिसैं जो शोकद्वारा जल गिरे) सो और उष्मा कहिये शोकजन्य देह तेज ये दोनों बाष्पोष्मा कोठेमें प्राप्त हो अग्निको मन्द कर रुधिरको कुपित करे तब ये रुधिर चिरमिठीके रंगसदृश गुदाके मार्ग होकर मलयुक्त अथवा मलरहित निकले तथा गंधयुक्त अथवा गंधरहित दस्त उतरे इसको शोकातिसार कहते हैं इसीप्रकार भयातिसारभी जानलेना ।

शोकातिसारके कृच्छ्रसाध्यलक्षण

शोकोत्पन्नोदुश्चिकित्स्योऽतिमात्रंरोगोवैद्यैःकष्टएषःप्रदिष्टः ।

अर्थ-शोकसैं उत्पन्न भया जो अतिसार सो चिकित्सा करनेमें बहुत कठिन है। कारण शोकशांति भयेविना केवल औषधसैं शांति नहीं होवे यासैं वैद्योंने ये कष्टसाध्य कहा है ।

आमातिसारके लक्षण

अन्नाजीर्णात्प्रद्रुताःक्षोभयंतःकोष्ठंदोपाधातुसंघान्मलांश्च ।
नानावर्णैनैकशःसारयंतिशूलोपेतंपष्ठमेनंवदन्ति ॥ ११ ॥

अर्थ–अन्नके न पचनेसें दोप (वात पित्त कफ) स्वमार्गकूं छोड़कर कोठेमें प्राप्तहो कोठेको दूपित कर रक्तादि धातु और पुरीषादि मलको वारंवार गुदाके मार्गसें वाहर निकाले और इस्का रंग अनेकप्रकारका होय तथा शूलयुक्त दस्त उतरे इस्को छटा आमातिसार वैद्यक कहतेहैं *शंका–प्रथम कहि आये कि अतिसार रोग छः प्रकारका होताहै पुनः (पष्ठमेनंवदंति) ये पद क्यों धरा? उत्तर–ये पद नियमके अर्थ माधवाचार्यने धराहै अर्थात् भय स्नेह अजीर्ण विशूचिका ववासीर आदि निमित्तकरके और अतिसार नहीं हैं क्योंकि भयादि अतिसारोंका वात पित्त कफ अतिसारोंके अंतर्गतत्वहै ।

आमके लक्षण

संसृष्टमेभिर्दोषैस्तुन्यस्तमप्स्ववसीदति ।
पुरीषंभृशदुर्गंधिपिच्छिलंचामसंज्ञितम् ॥ १२ ॥

अर्थ–पूर्वकहे जो वातादिक अतिसारोंके मिलेहुए लक्षणसंयुक्त जो मल सो जलमें गेरनेसें डुव जायहै क्योंकि आम जड़है और उसमें वहुत दुर्गंध आवै तथा अत्यंत गाढीहो उसकी आमसंज्ञाहै ।

अथ पक्वलक्षण

एतान्येवतुलिंगानिविपरीतानियस्यवै ।
लाघवंचविशेषेणतस्यपक्वंविनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

अर्थ–और ऊपरके श्लोकसें विपरीत लक्षण होय अर्थात् शरीर हलका होय तथा मल जलमें डूवे नहीं और दुर्गंधिरहित हो ववूला रहित होय उस रोगीका मलपक्व भया जाने ।

असाध्य लक्षण

पक्वजांववसंकाशंयकृत्पिंडनिभंतनु । घृततैलवसामज्जावेसवारपयोदधि ॥ १४ ॥ मांसधावनतोयाभंकृष्णंनीलारुणप्रभम् । मेचकंकर्वुरंस्निग्धंचन्द्राकोपगतंघनम् ॥ १५ ॥ कुणपंमातुलुंगाभंदुर्गंधंक्कुथितंवहु । तृष्णादाहाऽरुचिश्वासहि-

क्वापार्श्वास्थिशूलिनम् ॥ १६ ॥ संमूर्च्छारतिसंमोहयुक्तंप-
क्ववलीगुदं । प्रलापयुक्तंचभिषग्वर्जयेदतिसारिणम् ॥ १७ ॥

अर्थ–पके जामवके रंगसदृश काला और चिकना मेचक तथा काला और लोहित रंग पतला घृत तेल चरबी मज्जा वेसवार दूध दही और मांसके धोनेसे जैसा जल निकलेहै ऐसा रंग होय काजलके रंगसमान अथवा नीलमिश्रित अरुण रंग अर्थात् पपैया पक्षीके पंखके रंगसमान अथवा खंजन पक्षीके वर्णसदृश तथा अनेक रंगका चिकना मोरकी चंद्रिकाके सदृश रंग दृढ मुरदाकीसी दुर्गंधयुक्त मस्तककी मज्जाके समान गंधयुक्त बुरी दुर्गंधके समान प्यास दाह अरुचि श्वास हिचकी पसवांड़ोंके हाड़ोंमें पीड़ा मनको मोह और इन्द्रीनको मोह अरति ये लक्षण होय तथा गुदाके आठेनका पकना अनर्थ भाषण करे ऐसे अतिसारी रोगीको वैद्य छोडदेवे।

दूसरे असाध्य लक्षण

असंवृतगुदंक्षीणंदुराध्मानमुपद्रुतम् ।
गुदेपक्वेगतोष्माणमतिसारिणमुत्सृजेत् ॥ १८ ॥

अर्थ–जिसकी गुदाको दस्तके पिछाड़ी संकोचन होवे क्षीण पुरुष अत्यंत अफरायुक्त अथवा (दुरात्मानं) ऐसाभी पाठान्तर है अर्थात् जिसकी इन्द्री वस न होवे। तथा अतिसारके शोथादिक उपद्रवकरके युक्त और गुदाके स्थानमे पाककर्ता अर्थात् पकानेवाला पित्त विद्यमान होते और जिसकी देहमें गरमीसी नहीं दीखे अर्थात् देह शीतल हो अथवा जिसकी अग्नि नष्ट होजावे ऐसे अतिसारी रोगीको वैद्य त्याग देवे।

अतिसारके उपद्रव

शोथंशूलंज्वरंतृष्णांश्वासकासमरोचकम् ।
छर्दिमूर्च्छांचहिक्कांचदृष्ट्वातीसारिणंत्यजेत् ॥ १९ ॥

अर्थ–सोजन, शूल, ज्वर, तृषा, श्वास, खांसी, अरुचि, वमन, मूर्च्छा, हिचकी ऐसे लक्षण जिस रोगीमें होय उसको वैद्य छोडदेवे।

असाध्य लक्षण

श्वासशूलपिपासार्त्तंक्षीणंज्वरनिपीड़ितम् ।

१ मेचक काला लाल पीला मिला जैसा रंग होय ऐसा मेचकरंग होयहै।

२ वेसवार नाम मासमेंसे हड्डी निकाल और कूटकर दही दूध काली मिरच डालकर जो पदार्थ वनातेहै तत्सदृश रंग होय।

विशेषेणनरंवृद्धमतिसारोविनाशयेत् ॥ २० ॥

अर्थ–श्वास, शूल, प्यास इनसैं पीडित क्षीण ज्वरसैं पीडित और वृद्ध मनुष्यके ये लक्षण होय तौ यह अतिसाररोग मनुष्यको विनाश करे ।

रक्तातिसारलक्षण

पित्तकृन्तियदात्यर्थंद्रव्याण्यश्नातिपैत्तिके ।

तदोपजायतेऽभीक्ष्णंरक्तातीसारउल्बणः ॥ २१ ॥

अर्थ–पित्तातिसारवाला पुरुष अथवा पित्तातिसार होनेवाला पुरुष जब अत्यंत पित्त करनेवाली वस्तु भोजन करे तब भयंकर रक्तातिसार प्रगट होताहै इसके लाल, काले, पीले आदि रंग वातादि दोषोंके दूषित होनेसें होते हैं येभी पित्तातिसारके भेद हैं ।

प्रवाहिकाकी सम्प्राप्ति

वायुःप्रवृद्धोनिचितंबलासंनुदत्यधस्तादहिताशनस्य ।

प्रवाहतोल्पंबहुशोमलाक्तंप्रवाहिकांतांप्रवदंतितज्ज्ञाः ॥ २२ ॥

अर्थ–अपथ्य सेवन करनेवाले पुरुषके कुपित हुई जो वात सो संचित हुये कफको मलसंयुक्त करके वारंवार गुदाके मार्गसे वाहर निकाले और मरोडाके साथ थोडा थोडा मल निकले इसको प्रवाहिका कहते हैं । प्रवाहिका और अतिसार इन दोनोंका एकसाधर्म है इसीसैं अतिसाररोगमें प्रवाहिका कही है । परंतु अतिसारमें अनेक प्रकारके द्रवधातु निकले हैं और प्रवाहिकामें केवल कफ निकले है । इतना भेद हैं इसमें (निचितंवलासं) ये जो पद कहा अर्थात् कफसैं मिलकर सोये केवल कफका तो उपलक्षण है अर्थात् कफके कहनेसैं पित्त और रुधिरभी जानना । भोजने इस रोगका नाम विवसी कहा है पराशरऋषीने इसको अन्तरग्रंथी कहा हैं हारीतऋषीने निश्चारक कहा है कोई आचारी निर्वाहिका कहते हैं ।

प्रवाहिकाके वातादि भेदकरके लक्षण

प्रवाहिकावातकृतासशूलापित्तात्सदाहासकफाकफाच्च । सशोणिताशोणितसंभवाचताःस्नेहरूक्षप्रभवामतास्तु । तासामतीसारवदादिशेच्चलिंगंक्रमंचामविपक्वतांच ॥ २३ ॥

अर्थ–वातकी प्रवाहिकामें शूल होताहै पित्तकी दाहयुक्त कफकी कफयुक्त

और रक्तसैं रक्तयुक्त होतीहै यह चिकने और रूखे पदार्थ भोजन करनेसैं होयहै अर्थात् चिकने पदार्थसैं कफकी रूखे पदार्थसैं वातकी तुशब्दकरके तीक्ष्ण और खट्टे पदार्थसे क्रमसैं पित्तकी और रुधिरकी होतीहै ऐसैं जानना। या प्रवाहिकाके लक्षण क्रम आम और पक्कावस्था ये अतिसार निदानके सदृश जानना।

अतीसार चलागयाहोय उसके लक्षण

यस्योच्चारंविनामूत्रंसम्यग्वायुश्चगच्छति।
दीप्ताग्नेर्लघुकोष्ठस्यस्थितस्तस्योदरामयः॥ २४॥

अर्थ—जिस मनुष्यको मूत्र करतेसमय दस्त न होय और अपानवायु जिसकी शुद्ध निकले और अग्नि देदीप्यमान होवे कोठो हलका होवे उस मनुष्यको अतिसार गयो जानिये।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाथुरीमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां अतिसाररोगः समाप्तः॥

अथ ग्रहणीनिदानं।

ग्रहणीकी सम्प्राप्ति

अतिसारेनिवृत्तेपिमन्दाग्नेरहिताशिनः।
भूयःसंदूषितोवह्निर्ग्रहणीमभिदूषयेत्॥ १॥

अर्थ—पहले मनुष्यके अतिसाररोग होकर जातारहा होय फिर उस मनुष्यके कुपथ्य करनेसैं मन्द हुई जो अग्नि सो पुरुषके उदरमें रहनेवाली जो पित्तधरानामक छठी कला जिसको ग्रहणी कहते हैं उसको विगाड़ अपिशब्द करके अतिसार न भया होय तोभी अपने कारणकरके पूर्वोक्त ग्रहणीको विगाड़कर संग्रहणीरोगको प्रगट करे यह सूचना करी। कोई आचार्य ऐसैं कहते हैं कि अतिसार न गया होय वीचमेंही ग्रहणीरोग होताहै (मन्दाग्नेः) इसपद करके ये सूचना करी कि जिस पुरुषकी अग्नि तीक्ष्ण है वो कुपथ्यभी करे तथापि कुछ औगुन नहीं होय अन्नको ग्रहण करेहै इसीसैं इसको ग्रहणी कहेहैं इसीसैं ग्रहणीके विगड़नेसैं अन्नका परिपाक अच्छेप्रकार नहीं होय अर्थात् वारंवार आममिश्रित मल गुदाके मार्गसे गिरताहै।

ग्रहणीरोगकी सम्प्राप्तिपूर्वक सामान्य लक्षण

एकैकशःसर्वशश्चदोषैरत्यर्थमूर्छितैः। सादुष्टाबहुशोभुक्तमा-

ममेवविमुंचति ॥ स्पृतिपक्वंवासृजंपूतिमुहुर्बद्धंमुहुर्द्रवम् ।
ग्रहणीरोगमाहुस्तमायुर्वेदविदोजनाः ॥ ३ ॥

अर्थ–असंत कुपित हुए पृथक् पृथक् दोप (वात पित्त कफ) और सर्व दोप मिलकर ग्रहणीको दुष्ट करैं सो ग्रहणी दुष्ट होकर कच्चे अथवा पके अन्नको गुदाके मार्ग होकर निकाले और पीडा होय तथा उस मलमें दुर्गंधि आवे वादीसे पतला मल और पित्तसैं गाढा दस्त वारंवार होवे और कभी कफसैं पानीसरिखा अधोवायुयुक्त निकले इसको आयुर्वेदके जाननेवाले वैद्य संग्रहणीरोग कहतेहैं ।

पूर्वरूप

पूर्वरूपंतुतस्येदंतृष्णालस्यंबलक्षयः ।
विदाहोन्नस्यपाकश्चचिरात्कायस्यगौरवम् ॥ ४ ॥

अर्थ–प्यास, आलकस, वलनाश, अन्नका दाह, (पाकके समय अग्निसी जले) और अन्नको पाक देरमें होय, देह भारी होय, यह ग्रहणीरोगको पूर्वरूपहै ।

वातज ग्रहणीका निदान

कटुतिक्तकषायातिरूक्षसंदुष्टभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ ५ ॥ मारुतःकुपितोवह्निंसंछाद्यकुरुते गदान् ।

अर्थ–कडुआ, तीपा, कसैला, अतिरूषा और संयोगविरुद्ध ऐसे भोजनतैं तथा थोडे भोजनसैं, उपवाससैं, वहुत चलनेसैं, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसैं, अत्यंत मैथुनसैं कुपित भई जो वात सो अग्निको दूपित कर रोगोंको प्रगट करेहै ।

वातज संग्रहणीका रूप

तस्यान्नंपच्यतेदुःखंशुक्तपाकंखरांगता ॥ ६ ॥ कंठास्यशोपः क्षुत्तृष्णातिमिरंकर्णयोःस्वनः । पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुगभीक्ष्णं विषूचिका ॥ ७ ॥ हृत्पीडाकार्श्यदौर्बल्यंवैरस्यंपरिकर्त्तिका । गृद्धिःसर्वरसानांचमनसःस्यंदनंतथा ॥ ८ ॥ जीर्णेजीर्यतिचाध्मानंभुक्तेस्वास्थ्यमुपैतिच । सवातगुल्महृद्रोगप्लीहाशंकी चमानवः ॥ ९ ॥ चिराद्दुःखंद्रवंशुष्कंतन्वामंशब्दफेनवत् । पुनःपुनःसृजेद्वर्चःकासश्वासार्दितोऽनिलात् ॥ १० ॥

अर्थ–उस वातग्र सम्प्राप्ति दुःखसैं पचै अन्नका पाक खट्टा होय अंगमें कर्कशता (यह वायुग्रांसमेदांसिसंदू पन शोखनेसे होताहै) कंठ, मुखका सुखना; भूख, प्यास लगे म शब्द हो पसवाडे जांघ पेडू और कंधामें पीडा होवे विशूचिक नपानादौकुर्वत्य द्वारसैं कच्चे अन्नकी प्रवृत्ति होवे) हृदय दूखे देह दुबला होजा प तचा मांस है जातारहै गुदामें कतरनी कीसी पीडा हो मीठेसैं आदि ले सर्व रसोंके खानेकी इच्छा मनमें ग्लानि अन्न पचनेउपरांत पेटका फूलना भोजन करनेसैं स्वस्थता पेटमें गोला हृद्रोग तापतिल्लीकीसी शंका वातके योगसैं खांसी श्वाससैं पीडित बहुत देरसैं बडे कष्टसैं कभी पतला कभी गाढा थोडा शब्द और झागमिला वारंवार दस्त जाय।

पित्तग्रहणीके लक्षण.

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैःपित्तमुल्बणं । आप्लावयद्धंत्य-
नलंजलंतप्तमिवानलम् ॥ ११ ॥ सोऽजीर्णनीलपीताभंपी-
ताभस्सार्यतेद्रवं । सधूमोद्गारहृत्कंठदाहारुचितृड्र्दितः १२

अर्थ–जो पुरुष कटु अजीर्ण मिरच आदि तीखी दाहकारक (वंश-करील-कीकोपल) आदि खट्टी खारी (ओंगा आदिका खार) आदिशब्दसैं नोनका गरम पदार्थ इनकारणसैं कुपित हुआ जो पित्त सो जठराग्निको बुझायदे जैसे तत्ताजल अग्निको शांति करदे और कच्चाही नीले पीले रंगको पतले मलको निकाले तथा धूमयुक्त डकार आवे हिये और कंठमें दाह होवे अरुचि और प्यासकरके पीड़ित होवे यह पित्तकी संग्रहणीके लक्षण हैं।

कफसंग्रहणीकी उत्पत्ति

गुर्वतिस्निग्धशीतादिभोजनादतिभोजनात् । भुक्तमात्रस्यच
स्वप्नाद्धंत्यग्निंकुपितःकफः ॥ १३ ॥ तस्यान्नंपच्यतेदुःखंहृ-
ल्लासच्छर्द्यरोचकाः । आस्योपदेहमाधुर्यकासष्ठीवनपीनसाः
॥ १४ ॥ हृदयेमन्यतेस्त्यानमुदरंस्तिमितंगुरु । दुष्टोमधु-
रउद्गारःसदनंस्त्रीष्वहर्षणम् ॥ १५ ॥ भिन्नामश्लेष्मसंसृष्ट-
गुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् । अकृशस्यापिदौर्बल्यमालस्यंचकफात्मके १६

अर्थ–भारी अत्यंत चिकना शीतल आदि पदार्थके खानेसैं अति भोजनसैं तथा भोजन करके सोनेसैं इनकारणोंसे कुपित हुआ कफ जठराग्निको शांत करै

तव इसके खाया अन्न कष्टसें पचे हृदयमें पीड़ा जंपूतिमुहुर्व: रुचि मुखको कफसे लियासा तथा मुखका मीठा रहना खांसी [illegible] ना: ॥ ३ ॥ [illegible] होय हृदय पानीसे भरासदृश होय पेट भारी और जड़ हो [illegible] ार आवै अग्निशांति हो स्त्रीरमणमें अरुचि पतला आम क[illegible]ोप (वात पित्त क[illegible] ऐसा मल निकले वल विना शरीर पुष्ट दीखै आलस्य वहुत अ[illegible]ेकर कच्चे अथव [illegible] संग्रहणीके लक्षण हैं।

त्रिदोपकी संग्रहणीके लक्षण

पृथग्वातादिनिर्दिष्टहेतुलिंगसमागमे ।
त्रिदोषंलक्षयेदेवंतेपांवक्ष्यामिभेषजम् ॥ १७ ॥

अर्थ—वातादि तीनों दोपोंके जो लक्षण कहआयेंहैं वे सव जिसमें मिलते होय उसको त्रिदोपकी संग्रहणी जानिये (तेपांवक्ष्यामिभेपजम्) ये पद केवल पादपूरणार्थ लिखाहै ।

डाक्टरीमतके अनुसारपरीक्षा

आमसे मिला मल उतरे दस्तहोतेसमय गुदा शब्द करे ऐसे एक महीना अथवा अधिक दिवस पर्यंत पीड़ा होय ।

कारण

भारी द्रव्यके खानेसे अथवा देहके दुर्वल होनेसे मनुष्यके संग्रहणी रोग होयहै।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाथुरीमाधवार्थदीपिकाभापाटीकायां ग्रहणीरोगः समाप्तः ॥

अतिसार ग्रहणी और अर्श इनका परस्परसम्बन्ध है यासें ग्रहणीरोगके पीछे अर्शरोग कहते हैं।

संख्यारूपसम्प्राप्ति

पृथग्दोपैःसमस्तैश्चशोणितात्सहजानिच ।
अर्शांसिपट्प्रकाराणिविद्याद्गुदवलित्रये ॥ १ ॥

अर्थ—पृथक् पृथक् दोपसें ३ समस्तदोप मिलकर १ रुधिरसें १ और सहज १ ऐसें छः प्रकारकी अर्श (ववासीर) रोगहै यह रोग गुदाकी तीन वलीके भीतर होयहै गुदामें प्रवाहिनी सर्ज्जनी ग्राहिणी यह तीन वली (आंटेहैं)

---

१ मनुष्यकी गुदामें तीन आंटे हैं एक ऊपर एक नीचे एक बीचमें ऊपरके आंटेका नाम

सम्प्राप्तिपूर्वक अर्शका रूप

दोषास्त्वङ्मांसमेदांसिसंदूष्यविविधाकृतीन् ।
मांसांकुरानपानादौकुर्वन्त्यर्शांसिताञ्जगुः ॥ २ ॥

अर्थ–वातादि दोष त्वचा मांस और मेदा इनको और उस ठिकानेके रुधिरको दूषित कर अपान (गुदा)में अनेकप्रकारकी आकृतिके मांसके अंकुर उत्पन्न करे अर्थात् मस्से प्रगट करे उनको ववासीर कहते हैं । आदिशब्दसैं नाक, नेत्र, नाभिमेंभी जानना ये मत (सुश्रुत)का है कायचिकित्सक तो गुदामें जो होयहै उसीको ववासीर कहते हैं जो नाशिकाआदिमें होय उसको अधिमांस कहते हैं क्योंकि नासिकाआदिमें जो ववासीर होताहै उसमें पूर्वरूपके लक्षण नहीं मिलते हैं ।

वातकी ववासीरके कारण

कषायकटुतिक्तानिरूक्षशीतलघूनिच । प्रमिताल्पाशनंतीक्ष्णमद्यंमैथुनसेवनम् ॥ ३ ॥ लंघनंदेशकालौचशीतौव्यायामकर्मच । शोकोवातातपस्पर्शौहेतुर्वातार्शसांमतः ॥ ४ ॥

अर्थ–कषेला, कडुवा, तीखा, रूखा, सीतल और अतिलघु ऐसे पदार्थके खानेसैं तथा अति थोडा खानेसैं भोजनकालके उल्लंघन करनेसैं तीव्र मद्यके पान करनेसैं अत्यंत मैथुन (स्त्रीसंग) करनेसैं उपवास शीतदेश और शीतकाल (हेमंतादि ऋतु) दंडकसरतसैं शोकसैं हवा घाममें डोलनेसैं ये वातकी ववासीर होनेके कारण हैं ।

पित्तका ववासीरके कारण

कट्वम्ललवणोष्णानिव्यायामाग्न्यातपश्रमाः । देशकालावशिशिरौक्रोधोमद्यमसूयनम् ॥ ५ ॥ विदाहितीक्ष्णमुष्णंचसर्वपानान्नभेषजम् । पित्तोल्बणानांविज्ञेयःप्रकोपेहेतुरर्शसाम् ॥ ६ ॥

अर्थ–कडुवा, खट्टा, लवणका, गरम ऐसे पदार्थसैं दंडकसरतके अग्निके समीप तथा घाममें रहनेसैं श्रम, गरम देश, (मारवाड आदि देश) और उष्णकाल

प्रवाहिनी है सो मल पवन आदिको वाहर काढे बीचका आंटा मलपवनको वाहर पटकदे इस्का नाम सर्जनी है तीसरा नीचेका आंटा मलपवन निकले पीछे ज्योंकात्यो गुदाको करदे तिसको नाम ग्राहिणी है ।

तत्र इस ग्रीष्मऋतु, क्रोध, मद्यपान, परद्रव्य देखकर जलना, दाहकारक, तीखी, गरम वस्तुका पीना, अन्नका और गरम औषधिका सेवन यह सब पित्ताधिक ववासीरके कारण हैं।

कफकी ववासीरका कारण

मधुरस्निग्धशीतानिलवणाम्लगुरूणिच । अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखेरतिः ॥ ७ ॥ प्राग्वातसेवाशीतौचदेशकालावचिंतनम् । श्लेष्मोल्बणानामुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम् ८

अर्थ–मीठा, चिकना, शीतल, खारी, खट्टा, भारी ऐसे भोजनसैं व्यायामके न करनेसैं, दिनमें सोनेसैं, सेज, गद्दी इनके सेवन करनेसैं, पूरवकी हवा खानेसैं शीतल देश, शीतकाल, चिंतारहित होनेसैं ये कफकी ववासीर होनेके हेतु हैं।

द्वंद्वज ववासीरके कारण

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्वंद्वोल्बणानिच ।

अर्थ–दो दो दोषोंके कारण और लक्षण मिलैं तो द्वंद्वज ववासीर भई है ऐसे जाने।

त्रिदोषकी ववासीरके कारण

सर्वोहेतुस्त्रिदोषाणांलक्षणंसहजैःसमम् ॥ ९ ॥

अर्थ–पृथक् वातादि ववासीरके जो कारण कहे हैं वो सर्व त्रिदोषकी ववासीरके कारण हैं और जो सहज अर्शके अर्थात् सहज ववासीरके लक्षण सोही इसके लक्षण जानने।

वातकी ववासीरके लक्षण

गुदांकुरावह्वानिलाःशुष्काश्चिमिचिमान्विताः । म्लानाःश्यावारुणाःस्तब्धाविशदाःपरुषाःखराः ॥ १० ॥ मिथोविसदृशावक्रास्तीक्ष्णाविस्फुरिताननाः । बिंबीकर्कंधुखर्जूरकार्पासीफलसन्निभाः ॥ ११ ॥ केचित्कदंबपुष्पाभाःकेचित्सिद्धार्थकोपमाः । शिरःपार्श्वांसकट्यूरुवंक्षणाभ्यधिकव्यथाः १२ क्षवथूद्गारविष्टंभहृद्ग्रहारोचकप्रदाः । कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः ॥ १३ ॥ तैरार्तोग्रथितंस्तोकंसशब्दंसप्रवा-

हिकम् । रुक्फेनपिच्छानुगतंविबद्धमुपवेश्यते ॥ १४ ॥ कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रश्चजायते । गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासंभवस्ततएवच ॥ १५ ॥

अर्थ—वाताधिक्यसें गुदाके अंकुर सूखे (स्रावरहित) चिमचिम पीडायुक्त, मुरझाये हुए, काले, लाल, टेढे, विशद, कर्कश, खरदरे, एकसे न होई, वांके, तीखे, फटे मुखके, कंदूरी, बेर, खजूर, कपासके फलसदृश होय कोई कदंबके फूलसमान हों कोई सरसोंके सदृश हों शिर, पसवाडे कन्धा, कमर, जांघ, पेडू, इनमें अधिक पीडा हो छींक, डकार, दस्तका न होना हृदय पकडासा मालूम हो अरुचि, खांसी, श्वास, अग्निका विषम होना, अर्थात् कभी अन्न पचे कभी नहीं पचे कानोंमें शब्द होय भ्रम होय उस ववासीरकरके पीडित मनुष्यकें पत्थरके समान थोडा शब्दयुत और वातकी प्रवाहिकाके लक्षणसंयुक्त शूल झाग चिकटा इन लक्षणसंयुक्त हौलै हौलै दस्त होय उस मनुष्यकी त्वचाका रंग तथा नख, विष्टा, मूत्र, नेत्र, मुख, ये काले होय, गोला, तापतिल्ली, (उदररोग) अष्ठीला (वातकी गांठ) यह रोगोंके उपद्रव इस वातकी ववासीरमें होतेहैं ।

पित्तकी ववासीरके लक्षण

पित्तोत्तरानीलमुखारक्तपीतासितप्रभाः । तन्वस्रस्राविणो विस्रास्तनवोमृदवःश्लथाः ॥ १६ ॥ शुकजिह्वायकृत्खंडजलौकावक्त्रसन्निभाः । दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छारुचिमोहदाः ॥ १७ ॥ सोष्माणोद्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः । यवमध्याहरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥ १८ ॥

अर्थ—मस्सोका मुख नीला, लाल, पीला, और सुपेदाई लिये होवै उन मस्सोंमेंसे महीनधारसें रुधिर चुचाय और रुधिरकी वास आवै महीन और कोमल तथा सिथिल हो और उनका आकार तो ताकी जीभ कलेजा और जोकके मुखके समान हो और देहमें दाह हो गुदाका पकना, ज्वर, पसीना, प्यास, मूर्च्छा, अरुचि और मोह ये होवे और हातके स्पर्श करनेसें गरम मालूम होवै और जिसके मलका द्रव नीला, पीला, लाल, गरम, आमसंयुक्त होय जवके समान बीचमें मोटे हो और जिसके त्वचा, नख, नेत्रादिक हरे पीले हरतालके समान और हलदीके समान होवे ये लक्षण पित्ताधिक ववासीरके है ।

कफकी ववासीरके लक्षण

श्लेष्मोल्बणामहामूलाघनामन्दरुजःसिताः । उत्सन्नोपचिताःस्निग्धाःस्तब्धावृत्तगुरुस्थिराः ॥ १९ ॥ पिच्छिलास्तिमिताःश्लक्ष्णाःकंड्वाढ्याःस्पर्शनप्रियाः । करीरपनसास्थ्याभास्तथागोस्तनसन्निभाः ॥ २० ॥ वंक्षणानाहिनःपायुबस्तिनाभिविकर्षिणः । सश्वासकासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥ २१ ॥ मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरज्वरकारिणः । क्लैब्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ॥ २२ ॥ वसाभाः सकफप्रायपुरीषाःसप्रवाहिकाः । नस्रवंतिनभिद्यन्तेपाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥ २३ ॥

अर्थ–कफकी ववासीरके लक्षण ये हैं जैसे की गुदाके मस्से महामूल (दूर धातुके भति जाननेवाले) कठिन मंद पीडाके करनेवाले सपेद, लंबे, मोटे, चिकने, करडे, गोल, भारी, स्थिर, गाढे, कफसें लिपटे मणीके समान स्वच्छ खुजली बहुत होय और प्यारी लगे करील कटहर इनके कांटेके समान होय गायके थनकेश सदृश होय पेडूमें अफरा करनेवाले गुदा, मूत्रस्थान और नाभि इनमें पीडा करनेवाले श्वास, खांसी, खाली, ओकी, लारका टपकना, अरुचि, पीनस इनको करनेवाले, प्रमेह, मूत्रकृच्छ्र, मस्तकका भारी होना, शीतज्वर, नपुंसकपना, अग्निका मन्द होना, वमन और आम जिनमें बहुत ऐसे अतिसार, संग्रहणीआदि रोगके करनेवाले, वसा (चर्वी) और कफ मिला दस्त होवे प्रवाहिका उत्पन्न करनेवाले और मस्सोंमेंसें रुधिर न निकले गाढा मल होनेसेंभी मस्से न फूटें और शरीरका रंग पीला और चिकना होय ये कफकी ववासीरके लक्षण हैं ।

सन्निपात और सहज ववासीरके लक्षण

सर्वैःसर्वात्मकान्याहुर्लक्षणैःसहजानिच ।

अर्थ–जो पूर्ववातादिक तीनों दोषोंकी ववासीरोंके लक्षण कहे सो सब लक्षण मिलतेहों उसको सन्निपातकी ववासीर जानना और येही लक्षण सहज ववासीरके हैं ।

---

१ सामान्यतोववासीररीहीग्वनीद्विधाभवेत् । खूनीअपिचवातस्यविनाकोपनसंभवेत् ॥ १ ॥ इति यवनशास्त्रे ।

रक्तार्शके लक्षण

रक्तोल्बणागुदेकीलाःपित्ताकृतिसमन्विताः ॥ २४ ॥ वटप्ररोहसदृशागुंजाविद्रुमसन्निभाः । तेऽत्यर्थंदुष्टमुष्णंगचाढविट्कप्रपीडिताः ॥ २५ ॥ स्रवंतिसहसारक्तंतस्यचातिप्रवृत्तितः । भेकाभःपीड्यतेदुःखैःशोणितक्षयसंभवैः ॥ २६ ॥ हीनवर्णबलोत्साहोहतौजाःकलुषेन्द्रियः । विट्श्यावंकठिनं रूक्षमधोवायुर्नगच्छति ॥ २७ ॥

अर्थ—गुदाके मस्सोंका रंग चिरमिठीके रंगके समान न होवे अथवा वटके अंकुरसें हों और पित्तकी ववासीरके लक्षण जिसमे मिलतेहों। मुंगाके सदृशहों और दस्त कठिन उतरनेसें मस्से दवे तव उन मस्सोंमेंसें दुष्ट और गरमागरम रुधिर पडे और रुधिरके वहुत पडनेसें वर्षाऋतुके मेंडकाके समान पीला रंग होजाय रुधिरके निकलनेसें (जो प्रगट त्वचाका कठोरपना, नाडीका शिथिलपना, और खट्टीवस्तु, तथा शीतकी इच्छा इत्यादि दुःख तिनसें पीडित होय) हीनवर्ण, वल, उत्साह, पराक्रमका नाश होय, सम्पूर्ण इन्द्रियोंका व्याकुल होना, उसका काला, कठिन और रूखा ऐसा मल होय, अपानवायु सरे नहीं, यह लक्षण रुधिरकी ववासीरके जानने चाहिये।

अव इसी रक्तार्शनिदानके वातादिभेदकरके लक्षण

तनुचारुणवर्णंचफेनिलंचासृगर्शसाम् । कटयूरुगुदशूलंचदौर्बल्यंयदिचाधिकम् । तत्रानुबंधोवातस्यहेतुर्यदिचरूक्षणम् २८

अर्थ—ववासीरमेंसें रुधिर थोडा, अरुणवर्ण और झागसंयुक्त निकले, और कमर, जांघ और गुदा इनमें दर्द होवे। यदि दुर्वलता विशेष होजावे और उसमें कोई रूक्षहेतु पहुंचाहोवे तौ इस रक्तार्शको वातको सम्वध है ऐसें जानना।

कफसंवंधके लक्षण

शिथिलंश्वेतपीतंचविट्स्निग्धंगुरुशीतलं । यद्यर्शसांघनंचासृक्तंतुमत्पांडुपिच्छिलम् ॥ २९ ॥ गुदंसपिच्छंस्तिमितंगुरुस्निग्धंचकारणम् । श्लेष्मानुवंधोविज्ञेयस्तत्ररक्तार्शसांवुधैः ३०

अर्थ—जिसमेंसें शिथिल, सफेद, पीला, चिकना, भारी और शीतल ऐसा दस्त होवै और जिसका रुधिर गाढा, तंतुयुक्त, पीला तथा चंवूलेयुक्त निकले

और गुदा वंबूलेयुक्त गीली होवे और भारी चिकनी ऐसें कोई कारण होवे तो उस रक्तार्शको कफका सम्बन्ध जानना ॥ ३० ॥ * शंका–क्योंजी पित्तके अनुवन्धकी ववासीर क्यों नहीं कही * उत्तर–रक्तके और पित्तके मायकरके समान लक्षण होनेसें नहीं कहे, क्योंकि पहले २४ के श्लोकमें कहिआयेहैं कि (पित्ताकृतिसमन्विता) इति ।

ववासीरका पूर्वरूप

विष्टंभोऽन्नस्यदौर्वल्यंकुक्षेराटोपएवच । कार्श्यमुद्गारवाहुल्यं सक्थिसादोऽल्पविट्कता ॥ ३१ ॥ ग्रहणीदोपपांड्वर्तेराशंका चोदरस्यच । पूर्वरूपाणिनिर्दिष्टान्यर्शसामभिवृद्धये ॥ ३२॥

अर्थ–अन्नका परिपाक अच्छी तरह होय नहीं, अन्न कूखमें रहै देहमें दुर्वलता हो कूखमें अफरा हो अग्नि मंद होजावे डकार वहुत आवें जंघामें पीडा थोडा दस्त उतरे संग्रहणी और पांडुरोगकी भ्रांति होना क्योंकि इनके लक्षण मिलते हैं और उदररोगकी शंका होना यह लक्षण होवे तव जानना कि इस पुरुषके ववासीर रोग होवेगा ।

शंका–केवल गुदामें दोषोंके कोपसे ववासीर रोग होय है फिर सव देहमें कृशत्व और काला होजाना कैसें होताहै ।

उत्तर

पंचात्मामारुतःपित्तंकफोगुदवलित्रये । सर्वएवप्रकुप्यंतिगुदजानांसमुद्भवे ॥ ३३ ॥ तस्मादर्शांसिदुःखानिवहुव्याधिकराणिच । सर्वदेहोपतापीनिप्रायःकृच्छ्रतमानिच ॥ ३४॥

अर्थ–गुदाके तीन आटोंमें ववासीरके मस्से प्रगट होनेसें पांचप्रकारकी वायु पांचप्रकारका पित्त, पांचप्रकारका कफ ये सव दोष कुपित होते हैं ।

प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान ये पांच प्रकारकी वायु, हृदय, गुदा, नाभि, कंठ और सर्व देह ये इनके क्रमसें स्थान हैं, तथा आलोचक, रंजक, साधक, पाचक, भ्राजक इन भेदोंसें पित्त पांचप्रकारका है। इनके स्थान आलोचक नेत्रोंमें, रंजक यकृत और प्लीहमें, साधक हृदयमें, पाचक पक्वाशय और आमाशयमें, भ्राजक त्वचामें रहताहै। ऐसेंही कफवी अवलंपक, क्लेदक, वोधक, तर्पक और श्लेपक या पांच भेदके क्रमकरके हृदय, आमाशय, जीभ, मस्तक और सन्धि इन पांचों स्थानमें रहता है इस प्रकार सर्व दोप अपने अपने पांच

पांच स्वरूपसैं कुपित होते हैं, यासे ये रोग (ववासीर) बहुत दुःखकारक और अनेकप्रकारकी व्याधि (उदर और अग्निमांद्य इत्यादि उपद्रव) कर्त्ता सर्व देहको क्लेशदायक और विशेषकरके कृच्छ्रसाध्य तथा असाध्य जानने ।

सुखसाध्य लक्षण

बाह्यायांतुवलौजातान्येकदोषोल्बणानिच ।
अर्शांसिसुखसाध्यानिनचिरोत्पतितानिच ॥ ३५ ॥

अर्थ—बाहरके आटेमें भई हो एक दोषोल्बण होय और जिसको एक वर्ष व्यतीत न भयाहो ऐसी बवासीर सुखसाध्य है ।

कृच्छ्रसाध्यके लक्षण

द्वंद्वजानिद्वितीयायांवलौयान्याश्रितानिच ।
कृच्छ्रसाध्यानितान्याहुःपरिसंवत्सराणिच ॥ ३६ ॥

अर्थ—दो दोषसैं प्रगट भईहो और दूसरी वली (अर्थात् आंटेमें) होय और जिसको एक वर्ष व्यतीत होगयाहो ऐसी बवासीरके मस्से कृच्छ्रसाध्य होय है और जो बाहरकी वलीमें द्विदोषोल्बण होय और एक दोषोल्बण दूसरी वली (दूसरे आंटे)में होवे तौ येभी कृच्छ्रसाध्य जानना ।

असाध्यके लक्षण

सहजानित्रिदोषाणियानिचाभ्यंतरावलिम् ।
जायंतेऽर्शांसिसंश्रित्यतान्यसाध्यानिनिर्दिशेत् ॥ ३७ ॥

अर्थ—सहज कहिये जन्म होनेके समयसैं जो होय अथवा तीन दोषोंसैं प्रगट भईहो और जो तीसरा अंतका आंटा है उसमें भईहो सो बवासीर असाध्य जाननी ।

याप्यलक्षण

शेषत्वादायुषस्तानिचतुःपादसमन्विते ।
याप्यंतेदीप्तकायाग्नेःप्रत्याख्येयान्यतोऽन्यथा ॥ ३८ ॥

अर्थ—यदि असाध्य बवासीर होय और उस रोगीकी आयुष्य बाकी होय, और चतुःपाद सम्पत्ति (वैद्य, औषध, परिचारक और रोगी ये जैसे चाहिये ऐसे होवे) तौ और रोगीकी जठराग्नि प्रदीप्त होवे तौ रोगी याप्य जानना । और इससें विपरीत होवे तौ रोगीको वैद्य छोडदेवे । [प्रसंगवस रोगी, वैद्य, औषध और सेवकके लक्षण कहे हैं ।]

वैद्योव्याध्युपसृष्टश्चभेषजंपरिचारकः ।
एतेपादाश्चिकित्सायाःकर्मसाधनहेतवः ॥ ३९ ॥

अर्थ-वैद्य, रोगी, औषध और सेवक ए कर्मसाधनहेतु चिकित्साके पाद है ।

तत्रादौ वैद्यलक्षण

तत्वाधिगतशास्त्रार्थोदृष्टकर्मास्वयंकृती । लघुहस्तःशुचिःशूरःसज्जोपस्कृतभेषजः ॥ ४० ॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धीमान्व्यवसायीप्रियंवदः । सत्यधर्म्मपरोयश्चवैद्यईदृक्प्रशस्यते ॥४१॥

अर्थ-गुरुसे भलेप्रकार शास्त्रको पढाहो और दूसरे वृद्ध वैद्यकी चिकित्सा अर्थात् इलाज जिसनें देखा होय और आप चिकित्सा करनेंमें चतुर होय तथा सिद्धहस्त अर्थात् जिस रोगीका इलाज करे सो शीघ्र अच्छा होजावे पवित्र रहै शूर हो श्रेष्ठ औषधि चन्द्रोदय आदिरसादिक सामग्री जिसके समीप रहा करे तत्काल जिसकी बुद्धी स्फुरणवाली होय बुद्धिमान् संसारके व्यवहारको जाननेवाला होय प्रियवचन बोलनेवाला सत्य और धर्मका आचर्ण करनेवाला ऐसा वैद्य प्रशंसाके योग्य होताहै ।

निषिद्धवैद्यके लक्षण

कुचैलःकर्कशःस्तब्धःकुग्रामीस्वयमागतः ।
पंचवैद्यानपूज्यन्तेधन्वन्तरिसमाअपि ॥ ४२ ॥

अर्थ-मैले वस्त्रवाला बूरा बोलनेवाला अभिमानी व्यवहारमें न समझे और जो विना बुलाये आवे ये पांच वैद्य श्रीधन्वंतरिके समानभीहों तौभी पूजने योग्य नहींहै ।

रोगीके लक्षण

आयुष्मान्सत्ववान्साध्योद्रव्यवानात्मवानपि ।
उच्यतेव्याधितःपादोवैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ४३ ॥

अर्थ-आयुवाला बलयुक्त साध्य द्रव्यवान् ज्ञानी वैद्यकी आज्ञाकारी और आस्तिक ऐसा रोगी होना चाहिये ।

उत्तमऔषधके लक्षण

प्रशस्तदेशसंभूतंप्रशस्तेहनिचोद्धृतम् ।
अल्पमात्रंबहुगुणंगंधवर्णरसान्वितम् ॥ ४४ ॥

अर्थ—उत्तम स्थानमें प्रगटभई होय और शुभ दिनमें उसको उखाड़ी होय थोड़ा मात्रा देनेसें बहुत गुण करै दुर्गंधरहितउत्तमस्वरूप और रसयुक्त होय सो औषध उत्तम है।

दुष्टऔषधके लक्षण

वल्मीककुत्सितानूपश्मशानोखरमार्गजाः।
जंतुवह्निहिमव्याप्तानौषध्यःकार्यसाधकाः ॥ ४५ ॥

अर्थ—इतने स्थानकी औषध कार्यकर्त्ता नहीं होती बांबीखोटीधरतीकी जलके समीपकी श्मशानकी ऊसरकी जहां रेह चूना निकलता होय तहांकी और रास्तेकी कीड़ोंकी खाई अग्निसे जरी भई जाड़ेकी मारी ऐसी औषध कार्य करनेवाली नहीं होतीहै।

अथ दूतके लक्षण

स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान्युक्तोव्याधितरक्षणे।
वैद्यवाक्यकृदश्रांतःपादःपरिचरःस्मृतः ॥ ४६ ॥

अर्थ—नवीन अवस्थाका बलवान् रोगीकी रक्षा करनेमें तत्पर होय वैद्यके वचनका करनेवाला होवै आलस्यरहित ऐसा परिचारक अर्थात् दूत होय इन पूर्वोक्तको चतुष्पाद सम्पत्ति कहतेहैं सो यह विना आयुशेषके नहीं मिलते।

अथ उपद्रवसें असाध्यत्व कहतेहैं

हस्तेपादेगुदेनाभ्यांमुखेवृषणयोस्तथा।
शोथोहृत्पार्श्वशूलंचतस्यासाध्योऽर्शसोहिसः ॥ ४७ ॥

अर्थ—जिसके हाथ पैर गुदा नाभि मुख और अंडकोश इनमें सूजनहो हृदय और पसवाड़े दूखें वो रोगी असाध्य जानना।

हृत्पार्श्वशूलंसंमोहश्छर्दिरंगस्यरुग्ज्वरः।
तृष्णागुदस्यपाकश्चनिहन्युर्गुदजातुरम् ॥ ४८ ॥

अर्थ—हृदय और पसवाड़ेन्में दर्द होय इन्द्री और मन इनमैं मोह होय वमन अंगोंमें पीड़ा ज्वर प्यास गुदाका पकना (अर्थात् गुदाके ऊपर पीले फोड़ा) ये लक्षण होनेसें ववासीरवाला रोगी असाध्य जानना।

तृष्णारोचकशूलार्त्तमतिप्रस्नुतशोणितं।
शोथातिसारसंयुक्तमर्शांसिक्षपयंतिहि ॥ ४९ ॥

मात्रेप्रताम्यति ॥ ९ ॥ तृट्कासदाहमोहाःस्युर्व्याधयोऽत्य-
ग्निसंभवाः ।

अर्थ—क्षीण कफवाले पुरुषके कफ कुपित हो वायुसैं मिलकर उष्माके साथ पाचकस्थानमें जायकर अग्निको बल देवे तब जठराग्नि वातकी सहायता पायकर प्रबल होकर देहको रूखा करदेवे और उसके जोरसैं वारंवार अन्नको पचावै। अन्नको पचाय पीछै रुधिरआदि धातुओंको पचावै रुधिरआदिके पचनेसैं देहमें दुर्बलताका रोग और मृत्युको मनुष्य प्राप्त होवे जब अन्नको खावे तबतो शांति होजाय और जब अन्न पचजाय तब मूर्च्छित होय प्यास, खांसी, दाह, मोह (अर्थात् कुछ सुध न रहै) ये रोग असंत अग्निसैं होताहै।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधनीमाथुरीभाषाटीकायां अग्निमांद्यनिदानम्।

अथ अजीर्णनिदानम्।

अग्निमांद्य और अजीर्ण इनका परस्पर कारण है इसीसे अग्निमांद्यके पीछे अजीर्णनिदानको कहते हैं।

आमंविदग्धंविष्टब्धंकफपित्तानिलैस्त्रिभिः। अजीर्णंकेचिदि-
च्छंतिचतुर्थंरसशेषतः ॥ १ ॥ अजीर्णंपंचमंकेचिन्निर्दोषंदि-
नपाकिच। वदंतिषष्ठंचाजीर्णंप्राकृतंप्रतिवासरम् ॥ २ ॥

अर्थ—मनुष्यके कफसैं आम, पित्तसैं विदग्ध, वातसैं विष्टब्ध ऐसे तीन प्रकारका अजीर्णरोग होताहै और जो भोजन करा सो पक्व होय नहीं रस शेष रहै सो रस शेषसैं चतुर्थ अजीर्ण होय है और रात्रिदिनमें जो आहार पचे और जिसमें अफरा हड़ फूटन कुछ न होय ये पांचवा अजीर्ण किसीके मतसें हैं और जो निसही स्वाभाविक अजीर्ण रहै (विकृतिजन्य न होय) उसको छटा अजीर्ण कहते हैं। इस अजीर्णके पचानेके अर्थ (सुश्रुत)में वामपार्श्वशयनादिक उपाय कहे हैं सो करने चाहिये।

भुक्त्वाशतपदंगच्छेद्वामपार्श्वेनसंविशेत्। शब्दरूपरसस्पर्श-
गंधांश्चमनसःप्रियान्। भुक्तवानुपसेवेततेनान्नंसाधुतिष्ठति ३

अर्थ—भोजनकरे पीछे सौ पैंड डोलना बाईंकरवट शयन करना अपने मनको

जो प्रियशब्द रूप, रस, स्पर्श, सुगंध उनको सेवन करना या प्रकार करनेसैं अन्न भले प्रकार पचेहैं ।

अजीर्णके कारण

अत्यंबुपानाद्विषमाशनाच्चसंधारणात्स्वप्नविपर्ययाच्च । का-
लेपिसात्म्यंलघुचापिभुक्तमन्नंनपाकंभजतेनरस्य ॥ ४ ॥
ईर्ष्याभयक्रोधपरीक्षितेनलुब्धेनशुग्दैन्यनिपीडितेन । प्रद्वे-
षयुक्तेनचसेव्यमानमन्नंनसम्यक्परिपाकमेति ॥ ५ ॥

अर्थ–बहुत जल पीनेसैं भोजनके समयको छोड़ पीछे भोजन करनेसैं मल-मूत्र आदिवेगोंके रोकनेसें दिनमें सोवनेसें रातमें जागनेसैं इनकारणोंसैं भोजनके समय यदि लघु और शीतल पदार्थ खाय तो अन्न अच्छी रीतिसैं नाहिं पचे ये देहके कारण कहे ॥ २ ॥ अब अजीर्णके कारण जो मनसैं सम्बंध राखतेहैं उनको कहतेहैं ईर्ष्या कहिये परद्रव्यको न देखसकना, डरना, क्रोध करना इन कारणोंसैं तथा लोभ शोक दीनता इन कारणोंसें और मत्सरता करना इन कारणोंसैं मनुष्यके भोजन कराभया अन्न भलेप्रकार पचता नहीं हैं ।

आमादिकअजीर्णोके लक्षण

तत्रामेगुरुतोत्क्लेदःशोथोगंडाक्षिकूटगः ।
उद्गारश्चयथाभुक्तमविदग्धःप्रवर्तते ॥ ६ ॥

अर्थ–उन चारों अजीर्णोमें प्रथम आमाजीर्णके लक्षण कहतेहैं, पेट और अंग भारी होंय वमनका आना ऐसा प्रतीत हो कपोल और नेत्रोंमें सूजन होवै और इसी अजीर्णके प्रभावसैं जैसा भोजन करो होय मीठाआदि उसी प्रकारकी डकार आवै ।

विदग्धाजीर्णके लक्षण

विदग्धेभ्रमतृण्मूर्च्छाःपित्ताच्चविविधारुजः ।
उद्गारश्चसधूमाम्लःस्वेदोदाहश्चजायते ॥ ७ ॥

अर्थ–विदग्ध अजीर्णमें भ्रम प्यास और मूर्च्छा ये लक्षण होतेहैं और पित्तके अनेक रोग प्रगटहों तथा धूंएके साथ खट्टी डकार आवैं पसीना आवै और दाह होय।

विष्टब्धअजीर्णके लक्षण

विष्टब्धेशूलमाध्मानंविविधावातवेदनाः ।

मलवाताप्रवृत्तिश्चस्तंभोमोहोऽगपीड़नम् ॥ ८ ॥

अर्थ–विष्टब्ध अजीर्णके यह लक्षण हैं शूल अफरा अनेक वातकी पीड़ा मल और अधोवायुका रुकजाना देह जकड़ जाय मोह और देहमें पीड़ा होय।

रसशेषअजीर्णके लक्षण

रसशेषेऽन्नविद्वेषोहृदयाशुद्धिगौरवे ।

अर्थ–रसशेष अजीर्णके यह लक्षण हैं। अन्नमें अरुचि हृदयमें शुद्धि न होय और देह भारी होय।

अजीर्णके उपद्रव

मूर्च्छाप्रलापोवमथुःप्रसेकःसदनंभ्रमः ।
उपद्रवाभवंत्येतेमरणंचाप्यजीर्णतः ॥ ९ ॥

अर्थ–मूर्छा, बड़बड़, ओकारी अर्थात् वमन, लारका गिरना, ग्लानी, भ्रम ये अजीर्णके उपद्रव हैं और बहुत बड़ा अजीर्ण मनुष्यको मारभी डालता है।

बहुत भोजनही अजीर्णका हेतु है उसीको कहते हैं

अनात्मवंतःपशुवद्भुंजतेयेऽप्रमाणतः ।
रोगानीकस्यतेमूलमजीर्णप्राप्नुवंतिहि ॥ १० ॥

अर्थ–जिन मनुष्योंकी इन्द्री स्वाधीन नहीं हैं वे पशूके समान अप्रमाण भोजन करते हैं उन्होंके अनेक रोगोंका कारण अजीर्णरोग प्रगट होताहै।

अब कहते हैं कि अजीर्णरोगसें विषूचिकारोगकी उत्पत्ति होयहै यासें अजीर्णके अनंतर विषूचिकाको कहैं हैं।

अजीर्णमामंविष्टब्धंविदग्धंचयदीरितम् ।
विषूच्यलसकौतस्माद्भवेच्चापिविलंबिका ॥ ११ ॥

अर्थ–आम, विष्टब्ध और विदग्ध ये जो अजीर्ण कहेहैं उनसें विषूचिका (हैजा) अलस और विलंबिका पैदा होयहैं इनमें चौथा रस शेष अजीर्णको विषूच्यादिक उत्पादक नहीं लिखाहै इसका कारण यह है कि उस रसाजीर्णको अपरिणाममात्रलकरके विषूचिकाआदिके आरंभल स्वभावादिकोपमतके कहनेसैं आम, विदग्ध और विष्टब्ध इनसैं क्रमपूर्वक विषूचिका, अलस, विलंबिका ये प्रगट होती हैं ऐसैं कार्तिककुंड आचारी कहताहै सो असत्य है क्योंकि विदग्धाजीर्णको विलंबिकाका प्रगट करना असम्भव है क्योंकि उस विलंबिकाको

विलंबिकाके लक्षण

तुष्टंतुमुक्तंकफमारुताभ्यांप्रवर्त्ततेनोर्ध्वमधश्चयस्यां ।
विलंबिकांतांभृशदुश्चिकित्स्यामाचक्षतेशास्त्रविदःपुराणाः ॥१७॥

अर्थ–जिस मनुष्यके भोजन कराभया अन्न, कफ वातकरके दूषित होय ऊपर नीचे नहीं जाय अर्थात् वमन, विरेचन न होय, उसको वैद्य विद्याके जाननेवाले जिसकी चिकित्सा नहीं ऐसी विलंबिकारोग कहते हैं । * कोई शंका करे कि अलसक और विलंबिका इन दोनोंको वातकफके प्रबल होनेसैं ऊपर नीचे प्रवृत्ति होती है इन दोनोंमें भेद क्या है सो कहो * उत्तर–अलसकमें शूल आदि घोर पीडा कर्त्ता होते हैं और विलंबिकामें नहीं हो इतनाहीं भेद है ।

अजीर्णसैं प्रगट विषूच्यादिको कहिकर अजीर्णजन्य
आमके दूसरे कार्यांतर कहैहैं

यत्रस्थमामंविरुजेतमेवदेशंविशेषेणविकारजातैः ।
दोषेणयेनावततंशरीरंतल्लक्षणैरामसमुद्भवैश्च ॥ १८ ॥

अर्थ–जिस ठिकानेपर आम रहता है उस ठिकानेपर जिस दोषसैं वह स्थान व्याप्त हो उसके लक्षण करके (पीडा, दाह, गौरव आदि) और आमजन्य विकारकरके (आमवातादिक) विशेष पीडा होती है यासे जाना गया कि और ठिकानेपर थोडी पीडा होती है और (यत्र) या सर्वनाम शब्दसैं कुपित भये वातादिकोंके सदृश आमका कोई स्थान नहीं है ये दिखाया ।

अब विषूचिका और अलसक इनके असाध्य लक्षण

यःश्यावदंतोष्ठनखोऽल्पसंज्ञोवम्यर्दितोऽभ्यंतरयातनेत्रः ।
क्षामस्वरःसर्वविमुक्तसंधिर्यायान्नरोऽसौपुनरागमाय ॥ १९ ॥

अर्थ–जिस रोगीके दांत, नख, होठ काले पडजावे और संज्ञा जाती रहै वमनसैं पीडित होवे और नेत्र भीतरको बैठ जाय मन्द स्वर हो तथा हाथपैरकी संधि ढीली पडजाय वो मनुष्य बचै नहीं विलम्बिकास्वरूपसैंही असाध्य है यह जैज्जट आचार्यका मत है ।

निद्रानाशोऽरतिःकम्पोमूत्राघातोविसंज्ञिता । अमीउपद्रवा
घोराःविषूच्यांपंचदारुणाः ॥२०॥ प्रायेणाहारवैषम्यादजीर्णं
जायतेनृणाम् । तन्मूलोरोगसंघातस्तद्विनाशाद्विनश्यति ॥२१॥

अर्थ-निद्राका नाश, मनका लगना, कम्प, मूत्रका रुकना, संज्ञाका नाश ये विषूचिकाके घोर पांच उपद्रव हैं। बहुधा भोजनकी विषमतासैं अजीर्णरोग मनुष्योंके होताहै वही अजीर्ण सब रोगोंका कारण है उस अजीर्णरोगके नाश होनेसैं सब रोगोंका नाश होय है ये दोनों श्लोक क्षेपक हैं।

अजीर्ण जातारहा उस्के लक्षण

उद्गारशुद्धिरुत्साहोवेगोत्सर्गोयथोचितः।
लघुताक्षुत्पिपासाचजीर्णाहारस्यलक्षणम् ॥ २२ ॥

अर्थ-शुद्ध डकार आवै, शरीर मनका प्रसन्न होना, जैसा भोजन कराहो उसके सदृश मलमूत्रकी भलेप्रकार प्रवृत्ति होना, शरीर हलका होय परंतु कोष्ठ विशेष हलका हो, भूख और प्यास लगे, भोजन पचनेके उत्तर यह लक्षण होतेहैं।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाथुरीमाधवार्थबोधनीटीकायां अजीर्णरोगनिदानम्।

अथ कृमिरोगनिदानम्।

अजीर्णरोगसैं कृमिरोग प्रगट होय है इसीसैं अजीर्णरोगके अनन्तर कृमिरोग कहेहैं।

कृमयस्तुद्विधाप्रोक्ताबाह्याऽभ्यंतरभेदत
बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विध

अर्थ-कृमिरोग दो प्रकारका है एक बाहरका दूस
मल (पसीनाआदि) और कफ, रुधिर, विष्ठा इन का (७६) . चारि प्रकारका है उनके नाम वीस प्रकारके है।

बाह्यकृमीके नाम

नामतोविंशतिविधाबाह्यास्तत्रमलोद्भवाः। तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाःकेशांबराश्रयाः ॥ २ ॥ बहुपादाश्चसूक्ष्माश्चयूकालिक्षादिनामतः। द्विधातेकुष्ठपिटिकाकंडूगंडान्प्रकुर्वते ॥ ३ ॥

अर्थ-वह कृमिरोगके वीस नामसे वीस भेद हैं। तहां वाहरके मलसैं प्रगट कृमि, तिलके प्रमाण श्वेत, काली, केश और वस्त्रमें रहनेवाली होती है तथा बहुत पैरकी और छोटी जूं लीख नामसैं प्रसिद्ध दो प्रकारकी है ये कृमि कोढ, पीडिका, खाज, गांठ इत्यादि रोग प्रगट करै है।

क्रिमिरोगका कारण

अजीर्णभोजीमधुराम्लनित्योद्रवप्रियःपिष्टगुडोपभोक्ता ।
व्यायामवर्जीचदिवाशयानोविरुद्धभुक्संलभतेक्रमींस्तु ॥ ४ ॥

अर्थ–अजीर्णमें भोजन करे प्रतिदिन मीठा, खट्टा, खावे तथा पतला पदार्थ (जैसे कढी, रायता आदि) खावे पिसा अन्न मैदा आदि और गुडके पदार्थ खावे और भोजन करके परिश्रम न करे दिनमे सोवे, विरुद्ध भोजन जैसे दूध, मछली आदिको खावे ऐसे पुरुषके क्रमिरोग प्रगट होता है ।

कौनकारणसैं कौनसी क्रमि प्रगट होतीहै

माषपिष्टान्नलवणगुडशाकैःपुरीषजाः । मांसमाषगुडक्षीर-दधिशुक्तैःकफोद्भवाः । विरुद्धाजीर्णशाकाद्यैःशोणितोत्थाभ-वंतिहि ॥ ५ ॥

अर्थ–उरद, पिसा अन्न, (लड्डू, घेवर, गूंझाआदि) नोनके, गुडके तथा शाक आदि ऐसे पदार्थ खानेसैं मलकी क्रमि प्रगट होती है । मांस, उडद, गुड, दूध, दही कांजी ऐसे पदार्थ खानेसैं कफकी क्रमि पैदा होती है ।

विरुद्ध पदार्थ जैसें दूध मछली और आधा कच्चा आधा पका शाक जैसें हरा चनेका आदि ऐसें भोजनसैं रुधिरजन्य क्रमि पैदा होती है ।

पेटमें क्रमि पडगईहो उसके लक्षण

ज्वरोविवर्णताशूलंहृद्रोगःसदनंभ्रमः ।
भक्तद्वेषोऽतिसारश्चसंजातक्रमिलक्षणम् ॥ ६ ॥

अर्थ–ज्वर हो शरीरका रंग औरही प्रकारका होजावे शूल हृदय दूखे वमन कीसी इच्छा हो भ्रम भोजन बुरा लगे दस्त होय ये लक्षण जिसके पेटमें गिंडोहा आदि क्रमि पडजातें उसको होते हैं ।

कफकी क्रमिके लक्षण

कफादामाशयेजातावृद्धाःसर्पंतिसर्वतः । पृथुब्रध्ननिभाःके-चित्केचिद्गंडूपदोपमाः ॥ ७ ॥ रूढधान्यांकुराकारास्तनुदी-र्घास्तथाणवः । श्वेतास्ताम्रावभासाश्चनामतःसप्तधातुते ॥ ८ ॥
अंत्रादाउदरावेष्टाहृदयादामहारुजः । चुरवोदर्भकुसुमाःसु-

गंधास्तेचकुर्वंते ॥ ९ ॥ हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरो-
चकं । मूर्च्छाच्छर्दिस्तृषानाहकार्श्यश्वयथुपीनसान्॥ १० ॥

अर्थ—कफसैं आमाशयमें प्रगट हुई कृमि जब बढ़जाती है तब चारों तरफ डोलती है कोई चामके सदृश कोई गिंडोहेके आकार कोई धान्यके अंकुरके समान होती है कितनीही छोटी, बडी, चौडी होती है और किसीका वर्ण श्वेत, किसीका तामेके समान होय है उन्होंके सात नाम हैं सो इस प्रकार १ अंत्राद, २ उदरावेष्ट, ३ हृदयाद, ४ महारुज, ५ चुरु, ६ दर्भकुसुम और ७ सुगंध ये नाम कोई सार्थक है और कोई निरर्थक है। व्यवहारके निमित्त पहले आचार्योंने कहे हैं इन कृमियोंसैं वमन कीसी इच्छा होय मुखसैं पानी गिरै अन्नका पाक न होना, अरुचि, मूर्च्छा, वमन, प्यास, अफरा, शरीर कृश होवे, सूजन और पीनस इतने विकार होतेहै।

रुधिरकी कृमिके लक्षण

रक्तवाहिशिरास्थानारक्तजाजंतवोऽणवः । अपादावृत्तता-
श्चाश्वसौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥ ११ ॥ केशादारोमविध्वंसा
रोमद्वीपाउदुंबराः । षट्तेकुष्ठैककर्माणःसहसौरसमातरः १२

अर्थ—रुधिरकी वहनेवाली नाडीन्में रुधिरसैं प्रगट कृमि बारीक, पादरहित, गोल, तामेके रंगके होते हैं कोई बहुत बारीक होती है वो देखनेसेभी नहीं दीखे ये कृमि छः प्रकारकी है उनके नाम ये हैं १ केशाद, २ रोमविध्वंस, ३ रोमद्वीप, ४ उदुंबर, ५ सौरस और ६ मातर ये कुष्ठको पैदा करतीहै।

विष्ठासैं प्रगट कृमिके लक्षण

पक्वाशयेपुरीषोत्थाजायंतेऽधोविसर्पिणः । प्रवृद्धाःस्युर्भवेयु-
श्चतेयदाऽमाशयोन्मुखाः ॥ १३ ॥ तदास्योद्गारनिःश्वासा
विड्गंधानुविधायिनः । पृथुवृत्ततनुस्थूलाःश्यावपीतसिता-
सिताः ॥ १४ ॥ तेपंचनाम्नाकृमयःककेरुकमकेरुकाः । सौ-
सुरादामलूनाश्चलेलिहाजनयंतिच ॥ १५ ॥ विड्भेदशूल-
विष्टंभकार्श्यपारुष्यपांडुताः । रोमहर्षाग्निसदनगुदकंडूर्वि-
मार्गगाः ॥ १६ ॥

अर्थ–पक्वाशयमें विष्ठासैं प्रगट कृमि गुदाके मार्ग होकर बाहर निकसती है जब यह बढजाती है तब आमाशयमें प्राप्त होकर डकार और श्वाससे विष्ठाकीसी वास आने लगती है। ये कृमि, बडी, छोटी, गोल, मोटी, रंगमें काली, पीली, सफैद, नीली होती है इनके पांच नाम हैं १ ककेरुक, २ अकेरुक, ३ सौसुरादा, ४ मलून, ५ लेलिह। जब ये कृमि मार्गको छोड अन्य मार्गमें जाते हैं तब इतनें रोग प्रगट करे हैं दस्तका पतला होना, शूल, अफरा, देहमें कृशता तथा देहमें कठोरता पांडुरोग, रोमांच, मंदाग्नि, और गुदामें खुजलीका होना।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीभाषाटीकायां कृमिरोगनिदानं समाप्तम्।

अथ पाण्डुरोगनिदानम्।

पांडुरोगाःस्मृताःपंचवातपित्तकफैस्त्रयः।
चतुर्थःसन्निपातेनपंचमोभक्षणान्मृदः॥ १ ॥

अर्थ–मलसैं प्रगट कृमिरोग पांडु (पीलिया)रोगकों प्रगट करै है इसी कारण कृमिरोगके अनन्तर पांडुरोगका निदान कहैहैं तहां प्रथम पांडुरोगकी संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं १ वातका, २ पित्तका, ३ कफका, ४ सन्निपातका और ५ माटीके खानेसैं ऐसें पाण्डुरोग पांच प्रकारका कहा है।

पाण्डुरोगके कारण और सम्प्राप्तिके लक्षण

व्यवायमम्लंलवणानिमद्यंमृदंदिवास्वप्नमतीवतीक्ष्णम्।
निषेव्यमाणस्यविदूष्यरक्तंदोषास्त्वचंपांडुरतांनयंति॥ २ ॥

अर्थ–अति मैथुन, खट्टे पदार्थका भोजन, नोनका पदार्थ खानेसैं, बहुत मद्य पीनेसैं, मिट्टी खानेसैं, दिनमें सोनेसैं, अत्यंत तीखा पदार्थ खानेसैं इन कारणोंसे तीनो दोष रुधिरको विगाड देहकी त्वचाको पीले रंगकी कर देते हैं इस जगह रुधिरकातो उपलक्षणमात्र है रक्तके कहनेसैं त्वचा, मांस इनको दूषित करते हैं।

हारीतने–रसको दूष्य कहा है दोष नाम वातादिक और दूष्य कहिये रसरक्तादि।

पूर्वरूप

त्वक्स्फोटनष्ठीवनगात्रसादमृद्भक्षणप्रेक्षणकूटशोथाः।
विण्मूत्रपीतत्वमथाविपाकोभविष्यतस्तस्यपुरःसराणि॥ ३ ॥

अर्थ–त्वचाका फटना, मुखसें वारंवार थूकना, अंगोंका जिकडना माटी खानेकी इच्छा, नेत्रोंपर सूजन, मलमूत्र पीले हो, अन्नका परिपाक न होय ये लक्षण पांडुरोग प्रगट होनेवाला होय है तब होते हैं ।

वातपांडुरोगके लक्षण

त्वङ्मूत्रनयनादीनांरूक्षकृष्णारुणात्मता ।
वातपांड्वामयेकंपतोदानाहभ्रमादयः ॥ ४ ॥

अर्थ–वातके पांडुरोगमें त्वचा, मूत्र, नेत्र इनमें रूखापना कालापना और लाली होय है तथा कंप सुई छेदनेका साचभका अफरा, भ्रम आदिशब्दसैं भेद और शूलादिकभी होतेहैं ।

पित्तज पांडुरोगके लक्षण

पीतमूत्रशकृन्नेत्रोदाहतृष्णाज्वरान्वितः ।
भिन्नविट्कोऽतिपीताभःपित्तपांड्वामयीनरः ॥ ५ ॥

अर्थ–पित्तपांडुरोगीके ये लक्षण होते हैं मलमूत्र और नेत्र पीले हों दाह, प्यास, ज्वर इनसैं पीडित हो मल पतला हो और उस रोगीके देहकी कांती अत्यंत पीली होती है ।

कफपांडुरोगके लक्षण

कफप्रसेकश्वयथुतन्द्रालस्यातिगौरवैः ।
पांडुरोगीकफाच्छुक्लैस्त्वङ्मूत्रनयनाननैः ॥ ६ ॥

अर्थ–मुखसैं कफका गिरना, सूजन, तन्द्रा, आलकस, शरीरका भारी होना, त्वचा, मूत्र, नेत्र, मुख, इनका सफेद होना इन लक्षणोंसैं कफका पांडुरोग जानना ।

जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों उसको सन्निपातका पांडुरोग जानना ।

सन्निपातयुक्त पांडुरोगके असाध्य लक्षण

ज्वरारोचकहृल्लासच्छर्दितृष्णाक्लमान्वितः ।
पांडुरोगीत्रिभिर्दोषैस्त्याज्यःक्षीणोहतेंद्रियः ॥ ७ ॥

अर्थ–ज्वर, अरुचि, ओकारी, प्यास और क्लम तथा वमन इतने उपद्रवयुक्त जो त्रिदोषजन्य पांडुरोगी और क्षीण होगयाहो और जिस रोगीके इन्द्रियोंकी अपना अपना विषय ग्रहण करनेकी शक्ति जाती रहीहो ऐसें रोगीको वैद्य त्याग दे ।

मट्टी खानेसे प्रगट पांडुरोगके लक्षण

मृत्तिकादनशीलस्यकुप्यत्यन्यतमोमलः । कषायामारुतंपित्तमुखरामधराकफं ॥८॥ कोपयेन्मृद्रसादींश्चरौक्ष्याद्भुक्तंचरूक्षयेत् । पूरयत्यविपक्वैवस्त्रोतांसिनिरुणद्ध्यपि ॥ ९ ॥ इन्द्रियाणांबलंहत्वातेजोवीर्यौजसीतथा । पांडुरोगंकरोत्याशुबलवर्णाग्निनाशनम् ॥ १० ॥

अर्थ–मिट्टी खानेका जिस मनुष्यको अभ्यास पडजाय उसके वातादिक दोष कुपित होवे कषेली माटीसैं वात कुपित होय खारी माटीसैं पित्त और मीठी माटीसैं कफ कुपित होवे फिर वही मिट्टी पेटमें जायकर रसादिक धातुओंको रूखा करै। जब रौक्ष्य गुण प्रगट होजाय तब जो अन्न खाय सो रूखा होजाय। फिर वही मिट्टी पेटमें विना पके रसको रस वहनेवाली नसोंमें प्राप्त कर उनके मार्गको रोकदे रसके वहनेवाली नसोंका मार्ग जब रुकजाय तब इन्द्रियोंका बल अर्थात् अपने अपने विषय ग्रहण करनेकी शक्ति नाश होय शरीरकी कांति तेज और ओज कहिये. सब धातूनका सार (हृदयमें रहता है सो) क्षीण होकर पांडुरोग प्रगट कर उसमें बल, वर्ण और अग्नि इनका नाश होता है।

विशेष लक्षण

शूनाक्षिकूटगंडभ्रूःशूनपन्नाभिमेहनः ।
कृमिकोष्ठोऽतिसार्येतमलंचासृक्कफान्वितम् ॥ ११ ॥

अर्थ–नेत्र, कपोल, भृकुटी, पैर, नाभि और लिंग इनमें सूजन हो और कोठेमें कृमि पडजाय तथा रुधिर और कफ मिला दस्त उतरे सब पांडुरोगोंमें जब पेटमें कृमि पडजाय है तब ये पूर्वोक्त लक्षण होते हैं यह (जैज्जट आचारीका) मत है और कोई कहता है ये मृत्तिकाजन्य पांडुरोगके लक्षण हैं क्योंकि मृत्तिकाजन्य पांडुरोगलक्षणके अनंतर लिखे हैं परंतु विदेहने तो ये मृत्तिकाजन्य पांडुरोगके लक्षण स्पष्ट कहे हैं।

असाध्य लक्षण

पांडुरोगश्चिरोत्पन्नःखरीभूतोनसिद्ध्यति । कालप्रकर्षाच्छूनांगोयोवापीतानिपश्यति ॥ १२ ॥ बद्धाल्पविट्सहरितंसकफंयोऽतिसार्यते । दीनःश्वेतातिदिग्धांगश्छर्दिमूर्च्छातृपा-

न्वितः ॥ १३ ॥ सनास्त्यसृक्क्षयाद्यस्तुपांडुःश्वेतत्वमाप्नु-
यात् । पांडुदंतनखोयस्तुपांडुनेत्रश्चयोभवेत् ॥ १४ ॥ पां-
डुसंघातदर्शीचपांडुरोगीविनश्यति । अंतेषुशूनंपरिहीनमध्यं
म्लानंतथांतेषुचमध्यशूनं ॥ १५ ॥ गुदेचशेफस्यथमुष्कयो-
श्चशूनंप्रताम्यंतमसंज्ञकल्पं । विवर्जयेत्पाण्डुकिनंयशोर्थी
तथातिसारज्वरपीडितंच ॥ १६ ॥

अर्थ–बहुत दिनका पांडुरोग काल बहुत वीतनेसैं पुराना होजाय है सो अ-च्छा नहीं होय ।

अथवा–सब देहमें सूजन आगई होवे और उसको पदार्थ पीले दीखें सोभी असाध्य है ।

अथवा–जिस मनुष्यका बंधा हुआ मल थोडा हरे रंगका कफमिश्रित उतरे सोभी असाध्य है ।

अथवा–जो पुरुष दीन कहिये ग्लानयुक्त हो और जिसकी देहका श्वेत वर्ण हो और वमन, मूर्च्छा, प्यास इनसैं पीडित होवे सो पांडुरोगी नष्ट होवे ।

अथवा–जो रुधिरक्षय होनेसैं पांडुरोग उत्पन्न होय सोभी असाध्य है जिसके दांत, नख और नेत्र पीले होय वो रोगी असाध्य है । जिसको सब पदार्थ पीलेही पीले दीखें वो रोगी मरे । हाथ, पैर, शिर इनमें सूजन हो और जिसका मध्य पतला होय ऐसा पांडुरोगी असाध्य है यासें विपरीत साध्य है ।

जिस रोगीके देहके मध्यमें सूजन हो और हाथ, पग, शिर ये सूखजाय तथा गुदा, लिंग इनमें सूजन होय तथा मरेके समान होगया होय ऐसे पांडुरोगीको जिस वैद्यको यशकी इच्छा हो सो त्याग दे । उसीप्रकार अतिसार और ज्वर इनसें पीडित रोगीको वैद्य त्याग देवे ॥ १६ ॥ परंतु इस अंतके श्लोकमें जो (पांडुकिनं) यह पाठ है इस जगह (पानकिनं) ऐसा पाठ कोई आचारी मानते हैं सो ठीक है क्यौंकि ऐसा पढनेसैं पांडुरोगकी अवस्था अर्थात् पांडुरोगका भेद जो पानकी है उसकेभी लक्षण इस पाठसैं आयगये सो (सुश्रुत)में लिखाभी है इसीका आशय लेकर किसीने लिखाभी है । यथा—

अंतेशूनःकृशोमध्येत्वथवागुदशेफसि ।
शूनोज्वरातिसाराद्यैर्मृतकल्पस्तुपानकी ॥ १७ ॥

१ सकामलापानकिपांडुरोगः कुम्भाह्वयोलाघरिकोलसाख्यः इति ।

अर्थ–जिस मनुष्यके हाथपैरपर सूजन होय और देहका मध्य कृश होगया होय अथवा गुदा लिंगपर सूजन हो तथा ज्वर अतिसारकरके मुर्दाके समान होय यह लक्षण पानकी रोगके हैं। पांडुरोगका भेद कामला है।

अथ कामलाके लक्षण

पांडुरोगीतुयोऽत्यर्थंपित्तलानिनिषेवते। तस्यपित्तमसृङ्मांसं दग्ध्वारोगायकल्पते॥ १८॥ हारिद्रनेत्रःसभृशंहरिद्रत्वङ्नखाननः। रक्तपित्तशकृन्मूत्रोभेकवर्णोहतेन्द्रियः॥ १९॥ दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः। कामलाबहुपित्तैषा-कोष्ठशाखाश्रयामता॥ २०॥

अर्थ–जो पांडुरोगी असंत पित्तकारक वस्तूनका सेवन करे उस्के पित्त, रुधिर मांसको जलाय (दुष्ट कर) कामलारूप रोग प्रगट करनेको समर्थ होय उस मनुष्यके नेत्र असंत पीले होय त्वचा, नख और मुख ये पीले होय मल मूत्र काले होय अथवा पीले होय वह मनुष्य वर्षाऋतुके मेंडकेके समान पीला होवे इन्द्रियोंकी शक्ति नष्ट होय दाह अन्न पचे नहीं दुर्बलता, अंगग्लानि, अन्नमें अरुचि इनसैं पीडित होय जिसमें पित्त प्रबल ऐसी यह कामला एक कोष्ठाश्रय और दूसरी शाखा (रक्तादि धातु) आश्रित है। उसीप्रकार कामला स्वतंत्र होय है।

अब कहतेहैं कि पांडुरोगकी उपेक्षा करनेसैंही कामलादिक होते हैं उसीकी दूसरी अवस्था कुंभकामला है।

अथ कुंभकामलाके लक्षण

कालांतरात्खरीभूताकृच्छ्रास्यात्कुंभकामला।

अर्थ–बहुत कालसैं पुरानी पडनेसैं जो कुंभकामला होवे सो कृच्छ्रसाध्य होती है। कुम्भ कहिये कोष्ठ तद्गत जो कामला अर्थात् कोष्ठाश्रय कामला।

असाध्य लक्षण

कृष्णपीतशकृन्मूत्रोभृशंशूनश्चमानवः।
संरक्ताक्षिमुखच्छर्दिर्विण्मूत्रोयश्चताम्याति॥ २१॥

अर्थ–जिस मनुष्यका मल काला और मूत्र पीला हो और शरीरपर सूजन विशेप होवे और नेत्र, मुख, वमन, मल और मूत्र ये असंत लाल होय मोह होय वो कामलावान् रोगी बचे नहीं।

दूसरे असाध्य लक्षण

दाहाऽरुचितृडानाहतंद्रामोहसमन्वितः ।
नष्टाग्निसंज्ञःक्षिप्रंचकामलावान्विपद्यते ॥ २२ ॥

अर्थ-दाह, अरुचि, प्यास, अफरा, तंद्रा, मोह इन लक्षणयुक्त तथा मन्दाग्नि और विस्मृतिवान् कामलावाला रोगी तत्काल मरे ।

कुंभकामलाके असाध्य लक्षण

छर्द्यरोचकहृल्लासज्वरक्लमनिपीडितः ।
नश्यतिश्वासकासार्तोविड्भेदीकुंभकामली ॥ २३ ॥

अर्थ-वमन, अरुचि, ओकारीका आना, ज्वर, अनायासश्रम इनसैं पीडित तथा श्वास खांसी इनसे जर्जरित और अतिसारयुक्त ऐसा कुम्भकामलावाला रोगी मरजावे ।

पांडुरोगसैं हलीमक रोग प्रगट होताहै सो कहते हैं ।

यदातुपांडुवर्णःस्याद्धरितःश्यावपीतकः । बलोत्साहक्षयस्त-
न्द्रामन्दाग्नित्वंमृदुज्वरः ॥ २४ ॥ स्त्रीष्वहर्षोंगमर्दश्चदाहतृ-
ष्णारुचिर्भ्रमः । हलीमकंतदातस्याविद्यादनिलपित्ततः ॥ २५ ॥

अर्थ-जिस समय पांडुरोगीका वर्ण हरा, काला, पीला होय और बल व उत्साह इनका नाश, तंद्रा, मन्दाग्नि, महीनज्वर, स्त्रीसंभोगकी इच्छाका नाश, अंगोंका टूटना, दाह प्यास, अन्नमें अप्रीति और भ्रम ये उपद्रव वातपित्तसैं प्रगट हलीमक रोगके है ।

पानकी लक्षण

सन्तापेभिन्नवर्चस्त्वंबहिरन्तश्चपीतता ।
पांडुतानेत्रयोर्यस्यपानकीलक्षणंभवेत् ॥ २६ ॥

अर्थ-सन्ताप कहिये इन्द्री मन इनका ताप मलका पतला होना भीतर वाहर पीला होजावे और नेत्रोंका पीला होना ये पानकी रोगके लक्षण हैं ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरविरचितमाधवार्थबोधिन्यां भाषाटीकायां पाण्डुकामला हलीमकनिदानम् ।

अथ रक्तपित्तनिदानम् ।

पांडुरोगके सदृश रक्तपित्तकोभी पित्तजन्य होनेसें तदनन्तर रक्तपित्तनिदानको कहते हैं

घर्मव्यायामशोकाध्वव्यवायैरतिसेवितैः । तीक्ष्णोष्णक्षारलवणैरम्लैःकटुभिरेवच ॥ १ ॥ पित्तंविदग्धंस्वगुणैर्विदहत्याशु शोणितम् । ततःप्रवर्त्ततेरक्तमूर्ध्वंवाधोद्विधापिवा ॥ २ ॥ ऊर्ध्वंनासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः । कुपितंरोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्त्तते ॥ ३ ॥

अर्थ–धूपमें बहुत डोलनेसें, अति परिश्रम करनेसें, शोकसें, बहुत मार्ग चलनेसें, अति मैथुन करनेसें, मिरच आदि तीखी वस्तू खानेसें, अग्निके तापनेसें, जवाखार आदि खारे पदार्थ नोनते आदिले लवणके पदार्थ खट्टी, कडुवी ऐसी वस्तूके खानेसें कोपको प्राप्त भया जो पित्त सो अपने तीक्ष्ण द्रव पूति इत्यादि गुणोंसें रुधिरको विगाडे तब रुधिर ऊपरके अथवा नीचेके मार्ग अथवा दोनोंमार्ग होकर प्रवृत्त हो (निकले) ऊपरके मार्ग नाक, कान, नेत्र, मुख इनकेद्वारा निकले और अधोमार्ग कहिये लिंग, गुदा और योनि इनके रास्ते होकर निकले और जब रुधिर अत्यंत कुपित होय तब दोनों मार्ग और सब रोमांचोंसें निकले है ।

पूर्वरूप

सदनंशीतकामित्वंकण्ठधूमायनंवमिः ।
लोहगंधिश्चनिःश्वासोभवत्यस्मिन्भविष्यति ॥ ४ ॥

अर्थ–ग्लानि, शीतकी इच्छा, कंठसें धूआं निकलना वमन और तपाये भये लोहपर जल गेरनेसें जैसी गंध आवै ऐसी श्वास लेनेसे गंधका आना । जिस मनुष्यमें इतनें लक्षण मिलते होय उसके जानना कि इसके रक्तपित्त प्रगट होवेगा ।

कफयुक्त रक्तपित्तके लक्षण

सांद्रंसपांडुसस्नेहंपिच्छिलंचकफान्वितं ।

अर्थ–सघन कुछ पीला और कुछ चिकना तथा गाढा ऐसा रक्तपित्त कफमिश्रित जानना ।

वातिक रक्तपित्तके लक्षण

श्यावारुणंसफेनंचतनुरूक्षंचवातकम् ॥ ५ ॥

अर्थ—नीला वर्ण, लाल वर्ण, कुछ झागयुक्त पतला और रूखा ऐसा रक्तपित्तवातका जानना ।

पित्तके रक्तपित्तके लक्षण

रक्तपित्तकषायाभंकृष्णंगोमूत्रसंनिभम् ।
मेचकागारधूमाभमंजनाभंचपैत्तिकम् ॥ ६ ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त काढेके रंगसमान हो काला गौके मूत्रसमान हो अथवा मोरकी चन्द्रिकाके समान नीलवर्ण होय अर्थात् बैंजनी रंगके सदृश होय घरके धुआंके सुर्माके समान होय ये पित्तके रक्तपित्तके लक्षण हैं * शंका—क्योंजी केवल पैत्तिक रक्तपित्त नहीं होसके है कारण इस्का यह है कि जैसे कफके रक्तपित्तका मार्ग कहा है इसप्रकार पित्तके रक्तपित्तका नहीं कहा * उत्तर—तुमने कहा सो ठीक है परंतु यह मार्ग जो कहा है सो वातकफके लक्षण प्रति नहीं कहा है ।

द्विदोषजादि लक्षण

संसृष्टलिंगंसंसर्गात्त्रिलिङ्गंसान्निपातिकं ।
ऊर्ध्वगंकफसंसृष्टमधोगंमारुतान्वितम् ॥ ७ ॥
द्विमार्गंकफवाताभ्यामुभाभ्यामनुवर्त्तते ।

अर्थ—दो दोषके मिलनेसे जो रक्तपित्त होय है उसमें दोनों दोषोंके लक्षण मिलनेसें द्विदोषज जानना और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलनेहों उसको सन्निपातका रक्तपित्त जानना ऊपरके मार्गमें कफका और नीचेके मार्ग होकर वातका और दोनों मार्गसें जो रक्तपित्त निकले सो वात और पित्त इन दोषोंसें प्रगट भया जानना ।

ऊर्ध्वगादिकोंका साध्यासाध्यविचार

ऊर्ध्वंसाध्यमधोयाप्यमसाध्यंयुगपद्गतम ॥ ८ ॥

अर्थ—ऊपरके मार्गसे लोही निकले सो साध्य है [क्योंकि कफसे प्रगट है सो कफके रक्तपित्तमें क्वाथ तीक्ष्ण सम कफ पित्तके हरण कर्त्ता होते है] और नीचेके मार्गमें जिसमें रुधिर गिरे सो याप्य (साध्यासाध्य) है [इसका कारण यह है कि पित्तके हरणमें विरेचन मुख्य है और इसपर वातपित्त वमन करनेवाला प

धुर रस प्रधान है वमन देनेसै विरुद्धमार्गी होय है अर्थात् वेगमात्रका अवरोधक है। परंतु पित्तका हरण करनेवाला नहीं है] । और दोनों मार्गसे गिरनेवाला रक्तपित्त असाध्य है। कारण इसपर विरुद्ध चिकित्सा करनी पडती है।

साध्य होनेके कारण

एकमार्गंबलवतोनातिवेगंनवोत्थितम् ।
रक्तपित्तंसुखेकालेसाध्यंस्यान्निरुपद्रवम् ॥ ९ ॥

अर्थ–बलवान् पुरुषके एक मार्ग (अर्थात् ऊपरके मार्ग)से जाता होय अति वेग नहीं होवे नवीन प्रगट भया होय और हेमन्त शिशिर कालमैं प्रगट भया हो और दुर्बलता आदि उपद्रवरहित होय। ऐसा रक्तपित्त साध्य होय है।

दोषभेदसे साध्यासाध्यलक्षण

एकदोषानुगंसाध्यंद्विदोषंयाप्यमुच्यते ।
त्रिदोषजमसाध्यंस्यान्मंदाग्नेरतिवेगितम् ॥ १० ॥
व्याधिभिःक्षीणदेहस्यवृद्धस्यानश्नतश्चयत् ॥ ११ ॥

अर्थ–एक दोषका रक्तपित्त साध्य है द्विदोषका याप्य है और तीनों दोषोंका असाध्य है। मन्दाग्नि अतिवेगसे होय रोगसे क्षीण देहवालेका बूढे मनुष्यके और जिसका आहार थकगया होय ऐसे मनुष्यके रक्तपित्त असाध्य होय है।

रक्तपित्तके उपद्रव

दौर्बल्यश्वासकासज्वरवमथुमदाःपांडुतादाहमूर्छाभुक्तेघोरो
विदाहस्त्वधृतिरपिसदाहृद्यतुल्याचपीडा । तृष्णाकोष्ठस्य
भेदःशिरसिचतपनंपूतिनिष्ठीवनत्वंभक्तद्वेषाविपाकौविकृति-
रपिभवेद्रक्तपित्तोपसर्गाः ॥ १२ ॥

अर्थ–अशक्तता, श्वास, खांसी, ज्वर, वमन, धतूरेके फल खानेसे जैसी अवस्था होय ऐसी अवस्था, शरीरका पीला वर्ण होजावे, दाह, मूर्च्छा, अन्न खानेसे अत्यंत दाह होय, अधीरजपना, सर्व काल हृदयमें विलक्षण पीडा, प्यास, कोष्ठभेद (अर्थात् मल पतला होय), मस्तकमें पीडा, दुर्गंधयुक्त थूकना, अन्नमें अरुचि, आहारका परिपाक न होना, ये रक्तपित्तके उपद्रव हैं और उसीप्रकार उस रक्तपित्तकी विकृतीभी होय है सो आगे (मांसप्रक्षालनाभं) इत्यादि श्लोककरके कहते हैं।

असाध्य लक्षण

मांसप्रक्षालनाभंक्वथितमिवचयत्कर्दमांभोनिभंवामेदःपूया-
स्रकल्पंयकृदिवयदिवापक्वजम्बूफलाभम्। यत्कृष्णंयच्चनी-
लंभृशमतिकुणपंयत्रचोक्ताविकारास्तद्वर्ज्यंरक्तपित्तंसुरपतिध-
नुषायच्चतुल्यंविभाति ॥ १३ ॥

अर्थ-जो रक्तपित्त मांस धोये हुए जलके समान हो अथवा सडे पानीके समान अथवा कीचके समान, अथवा जलके समान, उसीप्रकार मेद राध रुधिर इनके समान, अथवा कलेजेके टुकडेके समान, अथवा पकी जामनके समान, किंवा काले रंगका किंवा नील कहिये पपैया पक्षीके पंखके समान अथवा जिसमें मेरखठ मल कीसी वास आवै और जिसमें पूर्वोक्तकहे श्वासकासादि विकारयुक्त हों ऐसा रक्तपित्त वर्जित है और जो रक्तपित्त इन्द्रधनुषके वर्णसमान रंग हो सोवी साध्य है अर्थात् ऐसें रक्तपित्तका वैद्य चिकित्सा न करे।

दूसरे असाध्य लक्षण

येनचोपहतोरक्तंरक्तपित्तेनमानवः।
पश्येद्दृश्यंवियच्चापितच्चासाध्यमसंशयम् ॥ १४ ॥

अर्थ-जिस रक्तपित्तने मनुष्यको ग्रसलिया होय वो दृश्य कहिये घटपटादि और अदृश्य कहिये आकाश इनको रक्तवर्णका देखे वो रोगी निःसन्देह असाध्य जानना।

दूसरे असाध्य लक्षण

लोहितंछर्दयेद्यस्तुबहुशोलोहितेक्षणः।
लोहितोद्गारदर्शीचम्रियतेरक्तपैत्तिकः ॥ १५ ॥

अर्थ-जो वारंवार रुधिरकी वमन करे और जिसके लाल नेत्र होय तथा डकारभी लाल आवै सो रक्तपित्तवाला रोगी मरजावे।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाथुरीमाधवार्थदीपिकाभाषाटीकायां रक्तपित्तनिदानम्।

अथ राजयक्ष्मनिदानम् ।



वेगरोधात्क्षयाच्चैवसाहसाद्विषमाशनात् ।
त्रिदोषोजायतेयक्ष्मागदोहेतुचतुष्टयात् ॥ १ ॥

अर्थ-वात, मूत्र, पुरीष आदि वेगोंके रोकनेसें अति मैथुन, उपवास, इर्ष्या, खेद इत्यादिक धातुक्षयके कारणोंसें बलवानसे वैर करनेसें विषमाशन कहिये कुसमय थोडा अथवा बहुत भोजन करनेसें इन चार कारणोंसें तीनों दोषोंके कोपसे मनुष्यके राजयक्ष्मा रोग होय है । वेगका रोकनाही वातकोपका कारण है यह सत्य है तथापि वातकोपसे अग्नि दुष्टहोकर कफपित्तका कोप होय है इन चार हेतुओंमें असंख्य हेतूओं अन्तर्भाव होय है । रसादि धातूके शोषण (सुखाने)से इस रोगको (शोष) कहते हैं । तथा शरीरमें पाचनादि सर्व क्रियाओंको क्षयकरे है इसीसे इस रोगको (क्षय) कहते हैं । और राजा (चन्द्र) इस रोगसे अति पीडित भया इसीसे इसको (राजयक्ष्मा) कहते हैं । यह (सुश्रुत)का आशय है और (वाग्भट)ने इसको सर्व रोगोंका राजा कहा है इसीसे इसको (राजयक्ष्मा) नाम कहाहै इस श्लोकमें जो कहाहै कि त्रिदोषका एकही यक्ष्मारोग प्रगट होयहै उसका तात्पर्य यह है कि तीनों दोषोंके कारणभेदसे अनेक प्रकारका नहींहै सो (सुश्रुत)में कहाभी है और इस श्लोकमें (वेगरोधात्)इस पदसें केवल वात, मूत्र, मल इनकाही ग्रहण करना चाहिये । भ्रमादिक सबोंका ग्रहण नहींहै सो (चरक)में लिखाहै इति ।

राजयक्ष्माकी विशिष्टसंप्राप्ति

कफप्रधानैर्दोषैस्तुरुद्धेषुरसवर्त्मसु । अतिव्यवायि-
नोवापिक्षीणेरेतस्यनंतराः ॥ २ ॥ क्षीयंतेधातवःसर्वे
ततःशुष्यतिमानवः ।

अर्थ-कफहै प्रधान जिनमें ऐसे जो वातादिक दोष तिनकरके रसके वहने-

---

१ संशोषणाद्रसादीनांशोषइत्यभिधीयते । क्रियाक्षयकरत्वाच्चक्षयइत्युच्यतेपुनः ॥ राज्ञश्चंद्रमसो यस्मादभूदेषकिलामयः । तस्मात्तंराजयक्ष्मेतिकेचिदाहुर्मनीषिणः ॥ इति ॥

२ एकएवमतःशोषःसन्निपातात्मकोयतः । उद्रेकात्तत्रलिंगानिदोषाणांनिर्मितानिहि ॥ इति ॥

३ ह्रीमत्त्वाद्वाघृणित्वाद्वाभयाद्वावेगमागतम् । वातमूत्रपुरीषाणांनिगृह्णातियदानरः ॥ इत्यादि ॥

वाली नाडियोंके मार्ग रुकजानेसैं (इससे यह सूचना करी कि रसमार्ग वंद होनेसे हृदयमें स्थित जो रस उसको विगाड़ और उसी स्थानमें विकृति कहिये और प्रकारका स्वरूप करकैं खांसीके वेगसैं मुखमार्ग होकर निकाले) सो (चरक)-में लिखाभी है " इससे अनुलोमं क्षय दिखाया " " अवे प्रतिलोम क्षय कैसा होय है उसको कहते है " अथवा अति मैथुन करनेसे मनुष्यका वीर्य क्षीण होय है। जव शुक्र क्षीण होजाय तव समीपकी धातु क्षीण होय तव पुरुष सूखने लगे-जैसे शुक्र क्षीणके अनन्तर मज्जा क्षीण होय मज्जा क्षीणके अनन्तर हड्डी क्षीण होय ऐसे पूर्व पूर्व धातू क्षीण होय जाय। * शंका–क्यौंजी रस, रुधिर, मांस, मेदा, हड्डी, मज्जा, शुक्र इनमें क्रमसे प्रत्येकके क्षीण होनेसे शुक्रका क्षय होना उचित है परंतु कार्यभूत शुक्रका क्षय होनेसें कारणभूत धातुओंका नाश कैसे होय है ? * उत्तर–जव शुक्रका क्षय होय है तव वात कुपित होताहै सो तंत्रान्तरोंमें लिखाहै अर्थात् धातुके नष्ट होनेसैं पवनके वहनेवाली नाडियोंका मार्ग वन्द होकर वायुको कुपित करे तव वही पवन समीपकी मज्जा धातुको सुखावे तदनंतर हड्डी और उसके पश्चात् मेंदा इसी रीतिसें रसपर्यंत धातुओंको सुखावे है इस जग्गेपर * दृष्टांत–है जैसे अग्निमें तपाया भया लोहका गोला गीली पृथ्वीमें धरनेसे प्रथम समीपकी पृथ्वीके आर्द्रपनेको शोषण करे पीछे दूरका गीलापना शोषण करे उसी रीतिसें यहां जानना चाहिये।

पूर्वरूप

श्वासांगसादकफसंस्रवतालुशोषवम्यग्निसादमदपीनसकासनिद्राः। शोषेभविष्यतिभवन्तिसचापिजंतुःशुक्लेक्षणो भवतिमांसपरोरिरंसुः ॥ ३ ॥ स्वप्नेषुकाकशुकशल्लकनीलकंठगृध्रास्तथैवकपयःकृकलासकाश्च । तंवाहयंतिसनदीर्विजलाश्च पश्येच्छुष्कांस्तरून्पवनधूमदवार्दितांश्च ॥ ४ ॥

अर्थ–श्वास, हाथपैरका गलना, कफका थूकना, तालुवेका सूखना, वमन, मन्दाग्नि, उन्मत्तता, पीनस, खांसी और निद्रा ये लक्षण धातुशोष होनेवालेके होते हैं और उस मनुष्यके नेत्र सफैद होते हैं और उस मनुष्यकी मांस खानेपर तथा स्त्रीसंग करनेकी इच्छा होती है और सपनेमैं कौआ, तोता, सेह, नीलकंठ,

१ रससै रुधिर, रुधिरसे मास, इसी रीतिसैं शुक्रपर्यंत धातुओका क्षय होय सो।

२ प्रतिलोम कहिये शुक्रसै रसपर्यंत धातुओका शोष।

(मोर) गीध, वन्दर, करकैटा इनपर अपनेको वैठा देखे और जलहीन नदीको देखे तथा पवन धूर और धूंआं इनसे पीडित ऐसे वृक्ष देखे। चकारसै तृण, केश, आदिका गिरना ये होते हैं ये सव स्वप्न क्षईरोग होनेके पहले दीखते हैं (सो चरकमें लिखा है) * शंका–क्योंजी शुक्रका तो क्षय होजाय है फिर (रिरंसुः) यह पद क्यौं धरा? * उत्तर–यह केवल व्याधिके वढनेसें मनके दोषसे जानना चाहिये।

त्रिरूपक्षयके लक्षण

अंशपार्श्वाभितापश्चसंतापः करपादयोः।
ज्वरःसर्वांगगश्चैवलक्षणंराजयक्ष्मणः ॥ ५ ॥

अर्थ–कन्धा और पसवाडेन्में पीडा हाथपैरमें जलन और सर्व अंगोंमें ज्वर ये राजयक्ष्माके लक्षण ये तीन लक्षण अवश्य होते हैं ऐसे चरकने कहा है।

एकादशरूप षड्रूप और त्रिरूप शोषके लक्षण कहते हैं।

स्वरभेदोऽनिलाच्छूलंसंकोचश्चांशपार्श्वयोः। ज्वरोदाहोऽति-
सारश्चपित्ताद्रक्तस्यचागमः ॥ ६ ॥ शिरसःपरिपूर्णत्वमभक्त-
च्छन्दएवच। कासःकंठस्यचोद्ध्वंसोविज्ञेयःकफकोपतः ॥ ७ ॥
एकादशभिरेतैर्वाषड्भिर्वापिसमन्वितम्। कासातिसारपार्श्वा-
र्तिस्वरभेदारुचिज्वरैः ॥ ८ ॥ त्रिभिर्वापीडितंलिङ्गैर्ज्वरका-
सासृगामयैः। जह्याच्छोषार्दितंजंतुमिच्छन्सुविपुलंयशः ॥ ९ ॥

अर्थ–राजयक्ष्मा ये त्रिदोषसे उत्पन्न है इसमें दोषोंके न्यारे न्यारे मिलायकर सव ग्यारह रूप हैं ये व्याधिके प्रभावसे होते हैं सन्निपातज्वरके सदृश सर्व लक्षण सव दोषोंसे नहीं होते पृथक् पृथक् होते हैं सो दिखाते हैं। वादीके प्रभावसे स्वरभेद कन्धा और पसवाडे इनमें संकोच और पीडा होय पित्तसे ज्वर, दाह, अतिसार और मुखसे रुधिरका गिरना और कफके कोपसे मस्तकका भारीपना,

१ पूर्वरूपप्रतिश्यायोदौर्वल्यंदोपदर्शनं। अदोपेष्वपिभावेषुकायेवीभत्सदर्शनम् ॥ घृणित्वमश्नतश्चापिवलमांसपरिक्षयः। स्त्रीमद्यमांसप्रियताप्रियताचावगुंठने ॥ माक्षिकाघूणकेशादितृणानांपतनानिच। प्रायोन्नपानेकेशानांनखानांचाभिवर्द्धनम् ॥ पतत्रिभिःपतंगैश्चश्वापदैश्चापि घर्षणम्। स्वप्नेकेशास्थिराशीनामस्मनश्चाधिरोहणम् ॥ जलाशयानांशैलानांवनानांज्योतिपामपि। शुष्कतांक्षीयमाणानांपततांचापिदर्शनम् ॥ प्रागरूपंबहुरूपस्यतज्ज्ञेयंराजयक्ष्मणः। इति ॥ अत्रश्वापदाव्याघ्रादयः ॥

अन्नसे द्वेष, खांसी, स्वरभेद ये लक्षण होते हैं इसमें तीन तो वातसे और चार लक्षण पित्तसे तथा चारही लक्षण कफसे ऐसे सब ग्यारह लक्षणसे अथवा खांसी अतिसार, पसवाडेन्में पीडा, स्वरभेद, अरुचि और ज्वर ये छः लक्षणोंसे अथवा ज्वर, खांसी और रुधिरविकार इन तीन लक्षणोंसे पीडित क्षईरोगवाले मनुष्य तथा जिस्का बल, मांस, क्षीण होगया होय ऐसे रोगीकों यशेच्छु वैद्य त्याग देय ऐसा रोगी असाध्य है ।

साध्यासाध्य विचार

सर्वैरर्द्धैस्त्रिभिर्वापिलिङ्गैर्वापिबलक्षये ।
युक्तोवर्ज्यश्चिकित्स्यस्तुसर्वरूपोप्यतोऽन्यथा ॥ १० ॥

अर्थ—स्वरभेदादिक जो ग्यारह लक्षण कहे वो सब लक्षणकरके अथवा उनमेंसे आधे (अर्थात् छः लक्षणोंसे) अथवा तीन लक्षण कहे इन्से युक्त जो खईरोगी बल, मांस क्षीण होनेपर त्याज्य है । यदि बल, मांस, जिस्का क्षीण न भया हो परंतु सर्व लक्षणयुक्तभी है तथापि त्याज्य नहीं है उस्की चिकित्सा करनी चाहिये ।

असाध्य लक्षण

महाशिनंक्षीयमाणमतिसारनिपीडितम् ।
शूनमुष्कोदरंचैवयक्ष्मिणंपरिवर्जयेत् ॥ ११ ॥

अर्थ—जो बहुत भोजन करे परंतु दिनदिनप्रति क्षीण होताजाय (ये असाध्य रोगी है)अतिसार करके अत्यंत पीडित होय सो रोगीभी असाध्य होय है क्यौंकि खईरोगवालेका जीना मलके आधीन है (जैसे लिखा है) उक्तंच यथा—मलायत्तं बलं पुंसां शुक्रायत्तं तु जीवितम् । तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ॥ इति ॥ और जिसके अंडकोश, और उदर ये सूजगयेहों ऐसा रोगी असाध्य है क्यौं कि शोथवाला दस्तके करानेसे अच्छा होय है सो इसपर दस्त करना वर्जित है इसीसे ऐसे रोगीको वैद्य त्यागदेय ।

कौनसे रोगीको औषध देना योग्य है सो कहतेहैं

ज्वरानुबंधरहितंबलवन्तंक्रियासहं ।
उपक्रमेदात्मवंतंदीप्ताग्निमकृशंनरम् ॥ १२ ॥

अर्थ—जिस खईरोगवाले मनुष्यको ज्वरका सम्बन्ध होय नहीं बलवान् औषधादि उपचारका सहनेवाला और जिसकी इन्द्री बलमें हो तथा जठराग्नि जि-

सकी दीप्त होय और कृश न होय ऐसे रोगीकी चिकित्सा (उपचार) करना चाहिये । इस श्लोकमें (अकृशं) इस पदके धरनेका यह प्रयोजनहै कि पुष्ट देहवालाभी इस खईरोगसे हजार दिन बचसके है सोई ग्रन्थान्तरमें लिखाहै ॥

असाध्यलक्षण

शुक्लाक्षमन्नद्वेष्टारमूर्ध्वश्वासनिपीडितम् ।
कृच्छ्रेणबहुमेहंतंयक्ष्माहंतीहमानवम् ॥ १३ ॥

अर्थ–सपेद्नेत्र जिसके होगयेहोंय अन्न जिसको बुरा लगे ऊर्ध्वश्वाससे पीडित और कष्टसे बहुत मूतनेवाला अर्थात् मल मुखसे उतरे यासे ये दिखाया कि जो आहार खाय सो मल होजाय जब आहारका मल होगया तब उसके मांस, रुधिर इनका क्षय होय इसीसे यह असाध्यहै। शुक्लाक्षादिक ये प्रत्येक अलग अलगभी असाध्य हैं। अब कहते हैं कि अति मैथुनादि करनेसै धातुका क्षय होय है इसीसे खईरोग प्रगट होय है ऐसा नहीं किंतु औरभी कारणसे होय है उसको कहते हैं।

व्यवायशोकवार्धक्यव्यायामाध्वप्रशोषिणः ।
व्रणोरःक्षतसंज्ञोचशोषिणोलक्षणंशृणु ॥ १४ ॥

अर्थ–अति मैथुनका शोष, शोकशोषी, वार्द्धक्यशोषी, व्यायामशोषी, मार्गशोषी, व्रणशोषी और उरःक्षतशोषी इन्के न्यारेन्यारे लक्षण कहता हूं।

व्यवायशोषीके लक्षण

व्यवायशोषीशुक्रस्यक्षयलिङ्गैरुपद्रुतः ।
पांडुदेहोयथापूर्वक्षीयंतेचास्यधातवः ॥ १५ ॥

अर्थ–व्यवायशोषी (अति मैथुनसैं क्षीण भया) (सुश्रुत)के कहे अनुसार शुक्रक्षयलक्षणोंसैं (शुक्रक्षय होनेसे लिंग और अंडकोशमें पीडा होय मैथुन करनेमें अशक्ति और बलसे मैथुन करै तौ बहुत देरमें शुक्रका श्राव होय और वह श्राव बहुत अल्प होय अथवा रुधिरका श्राव होय) पीडित होय उसके देहका वर्ण पीला होजाय और शुक्रसे मज्जा मज्जासे हड्डी ऐसे उलटे धातु क्षीण होते जाते हैं।

शोकशोषीके लक्षण

प्रध्यानशीलःस्रस्ताङ्गःशोकशोष्यपितादृशः ।

अर्थ–शोकशोषी अर्थात् शोचसे जिस्को क्षय हो वह चिता करे और हाथ,

---

१ परं दिनसहस्रं तु यदि जीवति मानवः। सुभिषग्भिरुपक्रांतस्तरुणः शोषपीडितः॥ इति।

पैर गलने लगे तथा शुक्रक्षयव्यतिरिक्त शोषवान् हो और पांडुदेह होय ऐसा शोचसे क्षयवाला पुरुष होता है ।

जराशोषीके लक्षण

जराशोषीकृशोमन्दवीर्यबुद्धिबलेन्द्रियः ॥ १६ ॥ कंपनोऽरुचिमान्भिन्नकांस्यपात्रहतस्वरः । ष्ठीवतिश्लेष्मणाहीनंगौरवारुचिपीडितः ॥ १७ ॥ संप्रस्रुतास्यनासाक्षःशुष्करूक्षमलच्छविः ।

अर्थ–जरा (बुढापा)शोषी मनुष्य कृश होय है उसके वीर्य, बुद्धी, बल और इन्द्री ये मन्द होजाय, कंप होय, अन्नमें अरुचि, फूटे कांसेके वासनको लकडीसे बजानेसे जैसा शब्द होय ऐसा शब्द होय कफरहित वारंवार थूके (अर्थात् कफके निकालनेके वास्ते यत्न करे तथापि कफ नहीं निकले) शरीर भारी रहै अरुचिसे पीडित (पुनः अरुचि ग्रहणविशेषताद्योतकके वास्ते कही है) मुख, नाक और नेत्र इन्से श्राव होय मल शुष्क उतरे और देहकी कांति निस्तेज होय ।

अध्वप्रशोषीके लक्षण

अध्वप्रशोषीस्रस्ताङ्गः संभृष्टपरुषच्छविः । प्रसुप्तगात्रावयवःशुष्कक्लोमगलाननः ॥ १८ ॥

अर्थ–अध्वप्रशोषी (अति मार्ग चलनेसे क्षीण हुवा) मनुष्यके हाथ, पैर शिथिल होजावे उसके देहका वर्ण भूजेपदार्थके सदृश और खरदरा होय है सर्व देहमें प्रसुप्तता हृदयमें प्यासका स्थान है सो गला और मुख इन्का सूखना । * शंका–क्यौंजी जराशोषीके अनन्तर व्यायामशोषीके लक्षण कहने चाहिये अध्व (मार्ग)शोषीके लक्षण नहीं कहने चाहिये फिर माधवाचार्यने अध्वशोषीके लक्षण क्यौं कहे । * उत्तर–अध्वशोषीके लक्षण इसवास्ते पहले कहे कि व्यायामशोषीमें इसके सब लक्षण मिलते हैं । अच्छा आप ऐसे कहोंगे तो व्यायामशोषीमें अध्वशोषीके कौनसे लक्षण नहीं मिलते ? * उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है परंतु अध्वशोषीमें उरःक्षत आदि चिन्ह नहीं है यासे पूर्व अध्वशोषीके लक्षण कहे ।

व्यायामशोषीके लक्षण

व्यायामशोषीभूयिष्ठमेभिरेवसमन्वितः । लिङ्गैरुरःक्षतकृतैःसंयुक्तश्चक्षतंविना ॥ १९ ॥

अर्थ–व्यायामशोषी (अत्यंत दंडकसरत आदि श्रमसे क्षीण) मनुष्य, विशेष-

करके अध्वशोषीके लक्षण स्रस्तांगतादियुक्त होय है, अर्थात् जो लक्षण अध्वशोषीमें थोडेथोडे होते हैं वे व्यायामशोषीमें अधिक होते हैं और उस मनुष्यके घावके विनाही उरःक्षतके लक्षण मिलते हैं उरःक्षतके लक्षण (सुश्रुत)में लिखे हैं।

तीनकारणोंसैं व्रणशोष होय है सो कहते हैं।

रक्तक्षयाद्वेदनाभिस्तथैवाहारयंत्रणात् ।
व्रणिनश्चभवेच्छोषःसचासाध्यतमोमतः ॥ २० ॥

अर्थ–रुधिरके क्षयसैं फोड़ाकी पीड़ासैं तैसेही आहारके घटनेसे व्रणीपुरुषके जो शोष होय सो अत्यंत असाध्य जानना।

उरःक्षतसैं धातुशोषहोनेका सम्भवहै अतएव शोषप्रकरणमें निदान सहित उरःक्षतरोग कहतेहैं

धनुषायस्यतोऽत्यर्थंभारमुद्वहतोगुरुं । युध्यमानस्यबलिभिः
पततोविषमोच्चतः ॥ २१ ॥ वृषंहयंवाधावंतंदम्यंचान्यंनि-
गृह्णतः। शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान्क्षिपतोनिघ्नतःपरान् ॥२२॥
अधीयानस्यवाऽत्युच्चैर्दूरंवाव्रजतोद्रुतम् । महानदीर्वातरतो
हयैर्वासहधावतः ॥ २३ ॥ सहसोत्पततोदूराचूर्णवातिप्रनृ-
त्यतः। तथान्यैःकर्मभिःक्रूरैर्भृशमभ्याहतस्यच ॥२४॥ ताडि-
तेक्षवसिव्याधिर्बलवान्समुदीर्यते । स्त्रीषुचातिप्रसक्तस्यरू-
क्षाल्पप्रमिताशिनः ॥ २५ ॥

अर्थ–बहुत तीरंदाजी करनेसें बहुत भारीवस्तु उठानेसें बलवान् पुरुषके साथ युद्ध करनेसे ऊंचे स्थानसैं गिरनेसे बैल घोड़ा हाथी ऊंठ इत्यादिक दौड़ते हुओंको थामनेसे भारी शिला लकड़ी पत्थरनिर्घात (अस्त्रविशेष) इनके फेंकनेसें शत्रुको मारनेवाला जोरसे वेदादिक शास्त्रको पढ़नेसे अथवा दूर दिशावर शीघ्र चलकर जानेसे गंगा यमुनादि महानदीको तरनेवाला अथवा घोड़ाके साथ दौड़नेवाला अकस्मात् कला खानेवाला जल्दी जल्दी बहुत नाचनेसे याप्रकार दूसरे मल्लयुद्धादि क्रूरकर्म करनेसे उर (छाती) फट जातीहै ऐसे पुरुषकी छाती दूखनेसे बलवान् उरःक्षतरूप व्याधी उत्पन्न होयहै और बहुत मैथुन करै तथा

१ तस्योरसिक्षतेरक्तंपूयःश्लेष्माचगच्छति। कासमानश्छर्दयेच्चपीतरक्तासितारुणम् ॥ संतप्तवक्षसोत्यर्थंदयनात्परिताम्यति । दुर्गंधोच्छ्वासवदनोभिन्नवर्णस्वरोनरः ॥

रूखा थोड़ा कुसमय तथा छातीमें चोट लगनेसें अत्यंत स्त्रीरमण करनेसें और रूखा थोडा और अनमानका भोजन करनेवालेके ।

उरोविरुज्यतेऽत्यर्थंभिद्यतेऽथविरुज्यते । प्रपीड्यतेतथापार्श्वे शुष्यत्यङ्गंप्रवेपते ॥ २६ ॥ क्रमाद्वीर्यंबलंवर्णोरुचिरग्निश्चहीयते । ज्वरोव्यथामनोदैन्यंविड्भेदोऽग्निवधादपि ॥ २७ ॥ दुष्टःश्यावःसुदुर्गंधिःपीतोविग्रथितोबहु । काशमानस्यचाभीक्ष्णंकफःसास्रःप्रवर्त्तते ॥ २८ ॥ सक्षतःक्षीयतेऽत्यर्थंतथाशुक्रौजसोःक्षयात् ।

अर्थ–पूर्वोक्त लक्षणयुक्त ऐसे पुरुषका हृदय फटेके सदृश मालूम हो अथवा हृदयके दो टूककर डालें ऐसा मालूम होय और हृदयमें असंत पीडा होय और उसके पसवाडोमें असंत पीडा होय अंग सब सूखनेलगें तथा थरथर कांपनेलगें और शक्ति मांस वर्ण रुचि और अग्नि ये सब क्रमसे घटनेलगें ज्वर रहै व्यथा होय मनमें सन्ताप दीन होजाय अग्नि मन्द होनेसे दस्त होनेलगें और वारंवार खांसते खांसते दुष्ट काला असन्त दुर्गन्धयुक्त पीला गांठके समान बहुत और रुधिर मिला ऐसा कफ गिरे याप्रकार क्षतरोगी असंत क्षीण होय सो केवल क्षतसेही क्षीण होजाय ऐसा नहीं किन्तु स्त्रीसेवन करनेसे शुक्र और ओज (सब धातून्का तेज) इनका क्षय होनेसे ये मनुष्य क्षीण होय है ॥

पूर्वरूप

अव्यक्तंलक्षणंतस्यपूर्वरूपमितिस्मृतम् ॥ २९ ॥

अर्थ–उस उरःक्षतके अप्रगट लक्षणोंको पूर्वरूप कहतेहैं ।

क्षतक्षीणके असाध्य लक्षण

उरोरुक्शोणितच्छर्दिःकासोवैशेषिकःक्षते ।

क्षीणेसरक्तमूत्रत्वंपार्श्वपृष्ठकटिग्रहः ॥ ३० ॥

अर्थ–क्षतक्षीण रोगीके हृदयमें पीड़ा होय रुधिरकी उलटीकरे और विशिष्ट कांस (अर्थात् पूर्वकहे जो दुष्टश्वासादि लक्षण उन्होंसें युक्त होय) और रुधिरयुक्त मूत्रका उतरना पसवाड़े पीठ और कमर इन्में पीडा होय ॥

अथ साध्यलक्षण

अल्पलिङ्गस्यदीप्ताग्नेःसाध्योबलवतोनवः ।

परिसंवत्सरोयाप्यःसर्वलिङ्गंविवर्जयेत् ॥ ३१ ॥

अर्थ—जिसमें थोड़े लक्षण मिलतेहों और जिसको अग्नि दीप्त होय ऐसे पुरुष बलवान्के होय तथा रोग नवा हो तो वो साध्य है और रोगको भये एक वर्ष व्यतीत होगया होय सो याप्य (साध्यासाध्य) है और जिसमें सर्व लक्षण मिलते होय सो असाध्य है उसको वैद्य त्याग देय ।

इति श्रीपण्डितदत्तरामगाथुरनिर्मितमाथुरीमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां राजयक्ष्मरोगः समाप्तः ॥

अथ कासनिदानम् ।

अथ कारणसम्प्राप्ति और निरुक्ति

धूमोपघाताद्रजसस्तथैवव्यायामरूक्षान्ननिषेवणाच्च । विमार्गगत्वादपिभोजनस्यवेगावरोधात्क्षवथोस्तथैव ॥ १ ॥ प्राणोह्युदानानुगतःप्रदुष्टःसंभिन्नकांस्यस्वनतुल्यघोषः । निरेतिवक्त्रात्सहसासदोषोमनीषिभिःकासइतिप्रदिष्टः ॥ २ ॥

अर्थ—नाक मुखमें धूर वा धूंआ जानेसे दंडकसरत, रूक्षान्न इनके नित्य सेवन करनेसे, भोजनके कुपथ्यसे, मलमूत्रके रोकनेसे, उसीप्रकार छिक्का अर्थात् (छिंक) आतीहुईके रोकनेसे, प्राणवायु अत्यंत दुष्ट होकर और दुष्ट उदानवायुसें मिलकर कफपित्तयुक्त अकस्मात् मुखसें बाहर निकले उसका शब्द फूटेकांस्यपात्रके समान होय उसको विद्वानलोग कांस (खांसी) कहते हैं ।

पंचकासाःस्मृतावातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ।
क्षयायोपेक्षिताःसर्वेबलिनश्चोत्तरोत्तरम् ॥ ३ ॥

अर्थ—वात, पित्त, कफ, क्षत और क्षय ऐसे पांचप्रकारकी खांसी होती हैं इनकी औषध न करें तो सर्वका क्षयरूप होजाय है ये उत्तरोत्तर बलवान् जाननी । जैसे वातसे पित्तकी पित्तसे कफकी कफसे क्षतकी क्षतसे क्षयकी खांसी प्रबल है ।

पूर्वरूप

पूर्वरूपंभवेत्तेषांशूकपूर्णगलास्यता ।
कंठेकंडूश्चभोज्यानामवरोधश्चजायते ॥ ४ ॥

अर्थ-मुख और गलेमें कांटेसे पडजाय तथा कंठमें खुजली चले भोजन करा न जाय ये खांसी होनेहारेके लक्षण हैं ।

वातकी खांसीके लक्षण

हृच्छंखमूर्धोदरपार्श्वशूलीक्षामाननःक्षीणबलस्वरौजाः ।
प्रसक्तवेगस्तुसमीरणेनभिन्नस्वरःकासतिशुष्कमेव ॥ ५ ॥

अर्थ-हृदय, कनपटी, मस्तक, उदर, पसवाडा इनमें शूल चले, मुह उतर जाय, बल, स्वर, पराक्रम ए क्षीण पडजाय वारंवार खांसीका उठना स्वरभेद और सूखी खांसी उठे यह वातकी खांसीके लक्षण हैं ।

पित्तकी खांसीके लक्षण

उरोविदाहज्वरवक्त्रशोषैरभ्यर्दितस्तिक्तमुखस्तृषार्तः ।
पित्तेनपीतानिवमेत्कटूनिकासेनपांडुःपरिदह्यमानः ॥ ६ ॥

अर्थ-पित्तकी खांसीसे हृदयमें दाह, ज्वर, मुखका सूखना इनसें पीडित हो मुख कडुआ रहे प्यास लगे पीले रंगकी और कडुवी ऐसी पित्तके प्रभावसें वमन होय रोगीका पीला वर्ण होजाय और सब देहमें दाह होय ।

कफकी खांसीके लक्षण

प्रलिप्यमानेनमुखेनसीदञ्छिरोरुजाऽर्त्तःकफपूर्णदेहः ।
अभक्तरुग्गौरवकंडुयुक्तःकासेद्भृशंसांद्रकफःकफेन ॥ ७ ॥

अर्थ-कफकी खांसीसे मुख कफसें लिपटा रहे मथवाय और सब देह कफसे परिपूर्ण रहे अन्नमें अरुचि शरीर भारी रहे कंठमें खुजली और रोगी वारंवार खांसे कफकी गांठ थूकनेसें सुख माल्म होवे ।

क्षतकासलक्षण

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजनिग्रहैः। रूक्षस्योरःक्षतंवायु-
र्गृहीत्वाकासमावहेत् ॥८॥ सपूर्वकासतेशुष्कंततःष्ठीवेत्सशो-
णितम् । कंठेनरुजताऽत्यर्थंविरुग्णेनेवचोरसा ॥ ९ ॥ सू-
चीभिरिवतीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेनशूलिना । दुःखस्पर्शेनशूले-
नभेदपीडाभितापिना ॥ १० ॥ पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्व-
र्यपीडितः । पारावतइवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात् ॥११॥

अर्थ—बहुत स्त्रीसंग करनेसे भारके उठानेसे बहुत मार्ग चलनेसे मल्लयुद्ध (कुस्ती) करनेसे हाथी घोडा दौडनेको रोकनेसे इनकारणोंसें रूक्ष पुरुषका हृदय फूटकर वायुकोप होकर खांसीको प्रगट करे। सो पुरुष प्रथम सूखा खांसे पीछे रुधिरमिला थूके कंठ अत्यंत दूखे हृदय फूटेसदृश मालुम होय और तीखी सुई-केसे चभका चले और उस्को हृदयका स्पर्श सुहाय नहीं दोनों पसवाडोंमें शूल होय यह (वाग्भट)का मत है तथा दाह हो उस रोगीके गांठ गांठमें पीडा होय ज्वर, श्वास, प्यास, स्वरभेद इनसे पीडित होय क्षतजन्य खांसीके वेगसे रोगी कबूतरकी तरह घुंघुं शब्द करे।

क्षयकी खांसीके लक्षण

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् । घृणिनांशोचतांनृणांव्यापन्नेऽग्नौत्रयोमलाः ॥ १२ ॥ कुपिताःक्षयजं कासंकुर्युर्देहक्षयप्रदम् । सगात्रशूलज्वरदाहमोहान्प्राणक्षयं चापिलभेतकासी ॥ १३ ॥ शुष्यन्विनिष्ठीवतिदुर्बलस्तुप्रक्षीणमांसोरुधिरंसपूयम् । तंसर्वलिंगंभृशदुश्चिकित्स्यंचिकित्सितज्ञाःक्षयजंवदंति ॥ १४ ॥

अर्थ—कुपथ्य और विषमाशनके करनेसें अति मैथुन मलमूत्रादिक वेगधारण इनसै अति दया करनेसे अति शोक करनेसे अग्नि मन्द होय (अर्थात् आहार थककर वायुकुपित हो अग्निको नष्ट करे) तब तीनो दोष कोपको प्राप्त हो क्षयजन्य देहका नाशक ऐसी खांसीको प्रगट करे तब वह खांसी देहको क्षीण करै शूल, ज्वर, दाह और मोह ये होय तब यह प्राणका नाश करे सूखी खांसी रुधिर मांस शरीरको सूखजानो रुधिर और राध थूके ए सर्व लक्षणयुक्त और चिकित्सा करनेमें अति कठिन ऐसे इस खांसीको वैद्य क्षयज कहते हैं।

साध्यासाध्यविचार

इत्येषक्षयजःकासःक्षीणानांदेहनाशनः । साध्योबलवतां वास्याद्याप्यस्त्वेवंक्षतोत्थितः ॥ १५ ॥ नवौकदाचित्सिध्येतामपिपादगुणान्वितौ । स्थविराणांजराकासःसर्वोयाप्यःप्रकीर्त्तितः ॥ १६ ॥ त्रीन्पूर्वान्साधयेत्साध्यान्पथ्यैर्याप्यास्तु यापयेत् ॥ १७ ॥

अर्थ–इस प्रकार यह क्षयजकास (खांसी) क्षीण पुरुषकी घातक होय हैं व-लवान् पुरुषके असाध्य अथवा याप्य (साध्यासाध्य) होय है क्षतज खांसीभी इसीप्रकारकी होती है यदि वैद्यादि पादचतुष्टयसंपन्न हो और ये दोनों प्रकारकी खांसी नवीन होय तौ कदाचित् साध्य होय और बूढे पुरुषके जराकास अर्थात् धातुक्षीण होनेसे भई जो खांसी सो सव प्रकारकी याप्य है सो सव इन्द्रीके अं-तर्गत जाननी । अव कहते हैं कि वात, पित्त, कफ ये तीन खांसी साध्य हैं और वाकी तीन याप्य हैं वो पथ्य सेवन करनेसे नाश होती और अवज्ञा करनेसे अ-साध्य होजाती है ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधनीमाथुरीटीकायां कासरोगनिदानम् ।

हिक्का और श्वासनिदानम् ।

विदाहिगुरुविष्टंभिरूक्षाभिष्यंदिभोजनैः । शीतपानाशन-स्नानरजोधूमातपानिलैः ॥ १ ॥ व्यायामकर्मभाराध्ववेग-घातापतर्पणैः । हिक्काश्वासश्वकासश्चनृणांसमुपजायते ॥२॥

अर्थ–दाहकारक, भारी, अफराकारक, रूखी अभिष्यंदी ऐसे भोजन करनेसे शीतल जल पीनेसे शीतल अन्न खानेसे शीत जलकरके स्नान करनेसे रज और धूंआका मुख नाकमें जानेसे गरमी हवामें डोलनेसे दंडकसरतके करनेसे भारके उठानेसे वहुत मार्गके चलनेसे मलादिक वेगके रोकनेसे और उपवासके करनेसे मनुष्यके हिक्का (हिचकी) श्वास (दमा) और कास (खांसी) ये रोग उत्पन्न होते हैं ।

हिक्काका स्वरूप और निरुक्ति

मुहुर्मुहुर्वायुरुदेतिसस्वनोयकृत्प्लिहांत्राणिमुखादिवाक्षिपन् । सघोषवानाशुहिनस्त्यसून्यतस्ततस्तुहिक्केत्यभिधीयतेवुधैः ॥ ३ ॥

अर्थ–उदानवायु प्राणवायुके साथ मिलकर जव निकले तव मनुष्य हिग्हिग् ऐसा शब्द करे और कलेजा प्लीह इनको मुखपर्यंत खींचलावै (इस स्थानमें मुख

---

१ पूयाभमरुणं स्यावंहरितंपीतनीलकं । निष्ठीवेच्छ्वासकासार्तोनजीवतिहतस्वरः ॥ कास-श्वासक्षयच्छर्दिस्वरभेदादयोगदाः । भवंत्युपेक्षयाऽसाध्यास्तस्मात्तास्त्वरयाजयेत् ॥ इति ।

शब्दकरके प्राण जल, अन्न इनके वहनेवाले मार्ग जानने) और मुखमें आनकर बडा शब्द निकले उस्को वैद्यवर हिक्का (हिचकी) रोग कहै हैं यह शीघ्र प्राणों-का हर्त्ता होय है।

हिक्काके भेद और संप्राप्ति

अन्नजांयमलांक्षुद्रांगंभीरांमहतींतथा।
वायुःकफेनानुगतःपंचहिक्काःकरोतिहि ॥ ४ ॥

अर्थ-वातकफसे मिलकर १ अन्नजा, २ यमला, ३ क्षुद्रा, ४ गंभीरा ५ और महती ऐसे पांच प्रकारकी हिचकी रोगको प्रगट करे।

पूर्वरूप

कंठोरसोर्गुरुत्वंचवदनस्यकषायता।
हिक्कानांपूर्वरूपाणिकुक्षेराटोपएवच ॥ ५ ॥

अर्थ-कंठ और हृदय भारी रहै और वादीसे मुख कसैला रहै कूखमें अफरा रहै यह हिचकीका पूर्वरूप जानना।

अन्नजाके लक्षण

पानान्नैरतिसंभुक्तैःसहसापीडितोऽनलः।
हिक्कयत्यूर्ध्वगोभूत्वातांविद्यादन्नजांभिषक् ॥ ६ ॥

अर्थ-अन्न और पानीके बहुत सेवन करनेसैं वात अकस्मात् कुपित हो ऊर्ध्व-गामी होयकर मनुष्यके अन्नजा हिचकी प्रगट करे।

यमलाके लक्षण

चिरेणयमलैर्वेगैर्याहिक्कासंप्रवर्त्तते।
कंपयंतीशिरोग्रीवांयमलांतांविनिर्दिशेत् ॥ ७ ॥

अर्थ-ठहरठहरकें दोदो हिचकी चलें शिरकंधाको कंपावै उसको यमला हि-चकी जाननी।

क्षुद्राके लक्षण

प्रकृष्टकालैर्योवेगैर्मन्दैःसमभिवर्त्तते।
क्षुद्रिकानामसाहिक्काजत्रुमूलात्प्रधावति ॥ ८ ॥

---

१ उक्तंच। प्राणोदकान्नवाहीनिस्रोतांसिविक्तोनिलः। हिक्काःकरोतिसंरुध्यतासांलिंगंपृथक्‌शृणु ॥ इति।

अर्थ–जो हिचकी बहुत देरमें कंठ हृदयकी संधिसैं मंदमंद चले उस्को क्षुद्रा-नाम हिचकी कहते है।

गंभीराके लक्षण

नाभिप्रवृत्तायाहिक्काघोरागंभीरनादिनी ।

अनेकोपद्रववतीगंभीरानामसास्मृता ॥ ९ ॥

अर्थ–जो हिचकी नाभिके पाससें उठ घोर गंभीर शब्द करे और जि-समैं प्यास ज्वरादि अनेक उपद्रव हो उस्को गंभीराहिचकी कहतेहैं।

महतीहिचकीके लक्षण

मर्माण्युत्पीडयंतीवसततंयाप्रवर्तते ।

महाहिक्केतिसाज्ञेयासर्वगात्रप्रकंपिनी ॥ १० ॥

अर्थ–जो हिचकी मर्मस्थानमें पीडा करती हुई और सर्व गात्रको कपावती हुई सर्वकाल प्रवृत्त होय उसको महाहिका कहते हैं।

असाध्यलक्षण

आयम्यतेहिक्कतोयस्यदेहोदृष्टिश्चोर्ध्वंताम्यतेयस्यनित्यं ।

क्षीणोऽन्नद्विट्क्षौतियश्चातिमात्रंतौद्वौचांत्यौवर्जयेद्धिक्कमानौ ११

अर्थ–जिसका हिचकीसै देहतन जावे ऊंची दृष्टि होजावे और मोह होय क्षीण पडजाय भोजनसे अरुचि होय और छीक बहुत आवे ये दोनों हिचकी-वाला रोगी अर्थात् जिस्को गम्भीरा और महतीहिचकी होय सो वैद्यको साज्य है।

असाध्यलक्षण

अतिसंचितदोषस्यभक्तच्छेदकृशस्यच । व्याधिभिःक्षीणदेह-स्यवृद्धस्यातिव्यवायिनः ॥ १२ ॥ आसांयासासमुत्पन्ना हिक्काहंत्याशुजीवितम् ।

अर्थ–जिस्के असन्त दोषोंका संचय होगयाहो और जिसका अन्न छूटगयाहो जो कृश होगयाहो जिसके अनेक व्याधिसे देह क्षीण होगया होय और जो वृद्ध है अतिमैथुन करनेवाला हो ऐसे पुरुषके ये दोनों हिचकी उत्पन्न होय तौ त-त्क्षण उस रोगीके प्राणनाश करे।

यमिकाके असाध्यलक्षण

यमिकाचप्रलापार्तिमोहतृष्णासमन्विता ॥ १३ ॥

अर्थ-बकवादकरे पीडा होय मोह, प्यास इनलक्षणसेयुक्त जो यमिकानामकी हिचकी सो तत्काल प्राणहर्त्ता जाननी ।

यमिकाके साध्यलक्षण

अक्षीणश्चाप्यदीनश्चस्थिरधात्विंद्रियश्चयः ।
तस्यसाधयितुंशक्यायमिकाहंत्यतोऽन्यथा ॥ १४ ॥

अर्थ-बलवान्, प्रसन्न मन जिसकी धातु और इन्द्री स्थिर होय ऐसे पुरुषकी यमिकाहिचकी साध्य है और इससे विपरीत (अर्थात् क्षीण, दीन इत्यादि) पुरुषको तत्कालही नाश करे । अन्नजा, क्षुद्रा यह दोनों साध्य हीं दोवार आनेसे यमिका कहाती है चरकोक्त यमला इस जगह नहीं ग्रहण करनी चाहिये ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधनीमाथुरीभाषाटीकायां हिक्कारोगनिदानं समाप्तम् ।

अथ श्वासनिदानम् ।

महोर्ध्वच्छिन्नतमकक्षुद्रभेदैस्तुपञ्चधा ।
भिद्यतेसमहाव्याधिःश्वासएकोविशेषतः ॥ १ ॥

अर्थ-हिक्काश्वासका एक हेतु होनेसे हिक्काके अनन्तर श्वासरोगको कहते हैं महाश्वास, ऊर्ध्वश्वास, छिन्नश्वास, तमकश्वास और क्षुद्रश्वास इन भेदोंसे एक श्वासरोग पांचप्रकारका है ।

श्वासके पूर्वरूपके लक्षण

प्राग्रूपंतस्यहृत्पीडाशूलमाध्मानमेवच ।
आनाहोवक्त्रवैरस्यंशंखनिस्तोदएवच ॥ २ ॥

अर्थ-हृदय दूखे, शूल होय, अफरा होय, पेट तनासा होय, कनपटी दूखे, मुखमें रसका स्वाद आवै नहीं यह श्वासरोगका पूर्वरूप है ।

श्वासरोगकी सम्प्राप्ति

यदास्रोतांसिसंरुध्यमारुतःकफपूर्वकः ।
विष्वग्व्रजतिसंरुद्धस्तदाश्वासान्करोतिसः ॥ ३ ॥

अर्थ-सर्व देहमें विचरनेवाला पवन जब कफसे मिलकर प्राण अन्न उदक व-

इनेवाली सब नसोंके मार्गको रोकदेवे तब पवन फिरनेसें रुककर श्वासरोगको प्रगट करे ।

महाश्वासके लक्षण

उद्धूयमानवातोयःशब्दवद्दुःखितोनरः । उच्चैःश्वसितिसंरुद्धो मत्तर्षभइवानिशं ॥ ४ ॥ प्रनष्टज्ञानविज्ञानस्तथाविभ्रांतलोचनः । विष्टब्धाक्षाननोबद्धमूत्रवर्चाविशीर्णवाक् ॥ ५ ॥ दीनःप्रश्वसितंचास्यदूराद्विज्ञायतेभृशम् । महाश्वासोपसृष्टस्तुक्षिप्रमेवविपद्यते ॥ ६ ॥

अर्थ–जिस्का वायु ऊपरको जायके प्राप्तहो ऐसा मनुष्य दुःखित होकर मुखसे शब्दयुक्त श्वासको निकाले ऊंचे स्वरसे अथवा जैसे मतवाला बैल शब्द करे या प्रकार रात्रिदिन श्वाससें पीडित होय उसका ज्ञानविज्ञान जाते रहै नेत्र चंचल होय और जिस्का श्वास लेतेमें नेत्र और मुख फटजाय मलमूत्र बन्द होजाय बोलाजाय नहीं अथवा बोले तौ मन्द बोलै मन खिन्न होय और जिस्का श्वास दूरसे सुनाई देय यह महाश्वास जिस पुरुषको होय वह तत्काल मरणकों प्राप्त होय ।

ऊर्ध्वश्वासके लक्षण

ऊर्ध्वंश्वसितियोदीर्घंनचप्रत्याहरत्यधः । श्लेष्मावृतमुखस्रोताःक्रुद्धगंधवहार्दितः ॥ ७ ॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्चविभ्रांताक्षइतस्ततः । प्रमुह्यन्वेदनार्तश्चशुष्कास्योऽरतिपीडितः ॥८॥

अर्थ–बहुत देरपर्यंत ऊंचो श्वास लेय नीचे आवै नहीं कफसे मुख भर जाय तथा और सब नाडीन्के मार्ग कफसे बन्द होजाय कुपित वायुसे पीडित होय ऊपरको नेत्र कर चंचल दृष्टिसे चारों ओर देखें मूर्च्छासे और पीडासे अत्यंत पीडित होय मुख सूखे तथा वेहोश होय यह ऊर्ध्वश्वासके लक्षण हैं ।

ऊपरकोही श्वास ले नीचे नहीं आवे ये जो कहा उसमें कारण कहते हैं

ऊर्ध्वश्वासेप्रकुपितेह्यधःश्वासोनिरुध्यते ।
मुह्यतस्ताम्यतश्चोर्ध्वंश्वासस्तस्यैवहंत्यसून् ॥ ९ ॥

अर्थ–ऊपरका श्वास कुपित होनेसें नीचेका श्वास बन्द होय अर्थात् हृदयमें रुकजाय अथवा श्वास कहिये वायु सो खाली नीचे नहीं उतरे तब मनुष्यको मोह होय ग्लानि होय ऐसे पुरुषकै ऊर्ध्वश्वास प्राणका हरण करे ।

छिन्नश्वासके लक्षण

यस्तुश्वसितिविच्छिन्नंसर्वप्राणेनपीडितः । नवाश्वसितिदुःखार्तोमर्मच्छेदरुगर्दितः ॥ १० ॥ आनाहस्वेदमूर्च्छार्तोदह्यमानेनबस्तिना । विप्लुताक्षःपरिक्षीणःश्वसन्नक्तैकलोचनः ॥ ॥ ११ ॥ विचेताःपरिशुष्कास्योविवर्णःप्रलपन्नरः । छिन्नश्वासेनविच्छिन्नःसशीघ्रंविजहात्यसून् ॥ १२ ॥

अर्थ—जो पुरुष ठहर ठहरकर जितनी शक्ती उतनी शक्तिसें श्वासको साग करे, अथवा क्लेशको प्राप्तहो, श्वासको नहींछोडे, और मर्म कहिये हृदयबस्ती (मूत्रस्थान) और नाडियोंको मानों कोई छेदन करे ऐसी पीडा होय, पेटका फूलना, पसीना और मूर्च्छा, इनसे पीडित होय, वस्ती (मूत्रस्थान)में जलन होय, नेत्र चलायमान होय, अथवा नेत्र आंसुओंसें भरे होय, श्वास लेते लेते थकजाय, तथा श्वास लेते लेते एक नेत्र लाल होजाय, (यह व्याधीके प्रभावसे होयहै दोषके प्रभावसे होयतौ दोनों होजाय) उद्विग्न चित्त होजाय, मुख सूखे, देहका वर्ण पलट जाय, बकवादकरे, संधिके सब बंध शिथिल होजाय, इस छिन्नश्वासकरके मनुष्य शीघ्र प्राणका त्याग करे ।

तमकश्वासके लक्षण

प्रतिलोमं यदा वायुः स्रोतांसि प्रतिपद्यते । ग्रीवां शिरश्च संगृह्य श्लेष्माणं समुदीर्य च ॥ १३ ॥ करोति पीनसं तेन रुद्धो घुर्घुरकं तथा । अतीव तीव्रवेगेन श्वासं प्राणप्रपीडकम् ॥ १४ ॥ प्रताम्यति स वेगेन त्रस्यते सन्निरुध्यते । प्रमोहं कासमानश्च स गच्छति मुहुर्मुहुः ॥ १५ ॥ श्लेष्मणामुच्यमानेनभृशंभवतिदुःखितः । तस्यैवचविमोक्षांतेमुहूर्तंलभतेसुखम् ॥ १६ ॥ तथास्योद्ध्वंसतेकंठःकृच्छ्राच्छक्नोतिभाषितुं । नचापिनिद्रांलभतेशयानःश्वासपीडितः ॥१७॥ पार्श्वेतस्यावगृह्णातिशयानस्यसमीरणः । आसीनोलभतेसौख्यमुष्णंचैवाभिनन्दति ॥ १८ ॥ उच्छ्रिताक्षोललाटेनस्वि-

घताभृशमार्तिमान् । विशुष्कास्योमुहुःश्वासोमुहुश्चैवावध-म्यते ॥ १९ ॥ मेघांबुशीतप्राग्वातैःश्लेष्मलैश्चविवर्द्धते । सयाप्यस्तमकश्वासःसाध्योवास्यान्नवोत्थितः ॥ २० ॥

अर्थ–जिसकालमें शरीरकी पवन उलटी गतिसैं नाडियोंके छिद्रमें प्राप्त होकर मस्तक तथा कंठका आश्रयकर कफसंयुक्त होय, तब कफसे रुककर अतिवेग-पूर्वक कंठमें घुर घुर शब्द करे, और मस्तकमें पीनसरोग करे और अत्यन्त तीव्र-वेगसे हृदयको पीड़ाका करनेवाला ऐसा श्वासको उत्पन्न करे, उस श्वासके वेगसैं मूर्च्छित होय, त्रासको प्राप्त होय, चेष्टारहित होय, और खांसीके उठनेसे बड़े मोहको वारंवार प्राप्त होय, और जब कफ छूटे तब दुःख होय, और कफ छूट-नेके बाद दोघड़ी पर्य्यन्त सुख पावै, कंठमें खुजली चले, बड़े कष्टसे बोले, श्वा-सकी पीड़ासे नींद न आवे, सोवेतौ वायुसे पसवाड़ोंमें पीड़ा होय, बैठेही चैन पड़े और गरमीके पदार्थसैं खुस होय, नैत्रोंमें सूजन होय, ललाटमें पसीना आवै अत्यन्त पीड़ा होय, मुख सूखे, वारंवार श्वास और वारंवार हाथीपर बैठनेके सदृश सर्वदेह चलायमान होवे, यह श्वास मेघके वर्षनेसैं, शीतसैं पूरवकी पवनसैं और कफकारक पदार्थ इनके सेवन करनेसे बढ़ैहै यह तमकश्वास याप्यहै यदि नया प्रगटभया होय तौ साध्य होयहै।

पित्तका अनुबन्धहोकर ज्वरादिकोंका योग होनेसैं
प्रतमक होय है उसको कहते हैं

ज्वरमूर्च्छापरीतस्यविद्यात्प्रतमकंतुतम् ॥

अर्थ–इस तमकश्वासमें श्वास, ज्वर और मूर्च्छा ये दोनों लक्षण होनेसैं इ-सको प्रतमकश्वास कहते हैं।

प्रतमकके दूसरे लक्षण और कारण कहते हैं

उदावर्त्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः ॥ २१ ॥ तमसावर्ध-तेऽत्यर्थंशीतैश्चाशुप्रशाम्यति । मज्जतस्तमसीवास्यविद्यात्प्र-तमकंतुतम् ॥ २२ ॥

अर्थ–उदावर्त्त, धूल, आमादि, अजीर्ण, विदग्धान्न, मल, मूत्रादि वेगके रो-कनेसैं अथवा क्लिन्नकाय कहिये वृद्ध मनुष्य और निरोध कहिये वेगरोध इन कारणोंसैं प्रगट भई जो श्वास सो अंधकारसैं अथवा तमोगुणसैं अत्यन्त चढ़े और

शीतल उपचारसैं शीघ्र शांति होजाय, इस श्वासके योगसैं रोगीको अन्धकारमें बूडासदृश मालूम होय, इसको प्रतमकश्वास ऐसे कहते हैं।

क्षुद्रश्वासके लक्षण

रूक्षायासोद्भवःकोष्ठेक्षुद्रोवातमुदीरयेत्। क्षुद्रश्वासोनसोऽत्यर्थंदुःखेनांगप्रबाधकः॥ २३॥ हिनस्तिनसगात्राणिनचदुःखो यथेतरे। नचभोजनपानानांनिरुणद्ध्युचितांगतिं॥ २४॥ नेंद्रियाणांव्यथांचापिकांचिदापादयेद्रुजम्। ससाध्यउक्तः

अर्थ–रूखा पदार्थ खानेसैं, श्रमके करनेसें, प्रगट भई जो क्षुद्रश्वास सो पवनको ऊपर लेजाय यह क्षुद्रश्वास असन्त दुःखदायक नहीं हैं। तथा अंगोंको कुछ विकार नहीं करे, जैसे ऊर्ध्व श्वासादिक दुःखदायक हैं। ऐसे यह नहीं हैं और भोजनपानादिकोंकी उचित गतिको बन्द नहीं करे। और इन्द्रीनकोभी पीडा नहीं करे। और कोई रोगकोभी नहीं प्रगट करे। यह क्षुद्रश्वास साध्य कहा है।

बलिनःसर्वेचाव्यक्तलक्षणाः॥ २५॥ क्षुद्रःसाध्यतमस्तेषां तमकःक्षुद्रउच्यते। त्रयःश्वासानसिद्ध्यंतितमकोदुर्बलस्यच २६

अर्थ–बलवान् पुरुषके सब महाश्वासादिकोंके लक्षण प्रगट न होय तौ साध्य है, तिनमेंभी क्षुद्रश्वास असंत साध्य है, और तमकको क्षुद्र कहते हैं। अथवा "तमकः क्षुद्र उच्यते" इस जगह "तमकः कृच्छ्र उच्यते" ऐसाभी पाठ कोई कहते हैं। उसका अर्थ यह है कि तमक कृच्छ्रसाध्य है, महान्, ऊर्ध्व, और छिन्न, ये तीन श्वास सम्पूर्ण लक्षणयुक्त साध्य नहीं हैं और निर्बल पुरुषके तमकश्वासभी साध्य नहीं होय।

कामंप्राणहरारोगाबहवोनतुतेतथा।
यथाश्वासश्चहिक्काचहरतःप्राणमाशुवै॥ २७॥

अर्थ–प्राणहरण करनेवाले ऐसे सन्निपात ज्वरादिक रोग बहुतसे हैं सो ठीक है। परंतु श्वास और हिचकी ये जैसे जल्दी प्राण हरण करते हैं ऐसे और ज्वरादिक नहीं करैं।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधनीमाथुरीभाषाटीकायां हिक्का तथा श्वासनिदानं समाप्तम्।

स्वरभेदनिदानम् ।

अत्युच्चभाषणविषाध्ययनाभिघातसंदूषणैःप्रकुपिताःपवनादयस्तु । स्त्रोतःसुतेस्वरवहेषुगताःप्रतिष्ठांहन्युःस्वरंभवति चापिहिषड्विधःसः ॥ १ ॥

अर्थ–बहुत जोरके बोलनेसें, विषके खानेसें, ऊंचे स्वरके पाठ करनेसें, अर्थात् वेदादि पाठ करनेसें कंठमें लकड़ी काष्ठ आदिकी चोट लगनेसे, कोपको प्राप्तहुये जो वात, कफ, पित्त सो कंठमें स्वरके वहनेवाली चारं नसैं हैं उनमें प्राप्तहो अथवा उनमें वृद्धिको प्राप्त स्वरको नाश करे यह स्वरभेद रोग वात, पित्त, कफ, सन्निपात, क्षय और मेद इन भेदोंसें छः प्रकारका है ।

वातस्वरभेदके लक्षण

वातेनकृष्णनयनाननमूत्रवर्चाभिन्नंस्वरंवदतिगर्द्दभवत्स्वरंच ।

अर्थ–वायुसे स्वरभंग होयतौ रोगीके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा यह काले होय वह पुरुष टूटा हुआ शब्द बोले, अथवा गधाके स्वरप्रमाण कर्कश बोले ।

पित्तजस्वरभेदके लक्षण

पित्तेनपीतनयनाननमूत्रवर्चाब्रूयाद्गलेनसचदाहसमन्वितेन ॥२

अर्थ–पित्तस्वरभेदवाले मनुष्यके नेत्र, मुख, मूत्र और विष्ठा ये पीले होतेहैं और बोलतेसमय गलेसैं दाह होयहै ।

कफके स्वरभेदके लक्षण

ब्रूयात्कफेनसततंकफरुद्धकंठःस्वल्पंशनैर्वदतिचापिदिवाविशेषात् ।

अर्थ–कफके स्वरभेदसे, कंठ कफसैं रुकारहै, और मंद मंद तथा थोड़ा बोले दिनमें बहुत बोले ।

सन्निपातके स्वरभेदका लक्षण

सर्वात्मकेभवतिसर्वविकारसंपत्तंचाप्यसाध्यमृषयःस्वरभेदमाहुः ३

---

१ " विषाध्ययननाभिघातैः " अत्रस्थानेविषाध्यशनाभिघातैः इतिपाठस्साधुः ।

२ यदुक्तं सुश्रुते–द्वाभ्यां भाषते द्वाभ्यां घोषं करोति, भाषणघोषणयोरल्पमहत्त्वाभ्यां भेदः ।

अर्थ–सन्निपातके स्वरभेदमें तीनों दोषोंके लक्षण होय हैं यह स्वरभेद असाध्य है ऐसे ऋषि कहते हैं ।

क्षयजन्यस्वरभेदके लक्षण

धूम्येतवाक्क्षयकृतेक्षयमाप्नुयाच्चवागेपचापिहतवाक्परिवर्जनीयः ।

अर्थ–क्षईके स्वरभेदवाले पुरुषके बोलतेसमय मुखसें धूआंसा निकले, और वाणीक्षय होजाय, अर्थात् यथार्थ स्वर नहीं निकले । इस स्वरभेदमें जिससमय वाणी हत होजाय अर्थात् ओजका क्षय होनेसें बोलनेकी सामर्थ्य नहीं हो तब यह असाध्य होय है । और ओजका क्षय (नाश) नहीं होय तौ साध्य है ।

मेदके स्वरभेदका लक्षण

अंतर्गतंस्वरमलक्ष्यपदंचिरेणमेदोन्वयाद्वदतिदिग्धगलस्तृषार्त्तः॥

अर्थ–मेदके सम्बन्धसें कफ अथवा मेद इनसें गला लिप्त होय अथवा मेदसें स्वरके मार्ग रुकजानेसे प्यास बहुत लगे, गलेके भीतर बोलें, और मंद बोले ।

असाध्यलक्षण

क्षीणस्यवृद्धस्यकृशस्यचापिचिरोत्थितोयस्यसहोपजातः ।
मेदस्विनःसर्वसमुद्भवश्चस्वरामयोयोनससिद्धिमेति ॥ ५ ॥

अर्थ–क्षीण पुरुषके, वृद्धके, कृशके, बहुत दिनका, जन्मके संगही प्रगट भया मोटे पुरुषके, और सन्निपातोद्भव, ऐसा स्वरभेद रोग साध्य नहीं होय ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाथुरीमाधवार्थबोधनीटीकायां स्वरभेदनिदानं समाप्तम् ।

अरोचकनिदानम् ।

वातादिभिःशोकभयातिलोभक्रोधैर्मनोघ्नाशनरूपगंधैः ।
अरोचकाःस्युःपरिहृष्टदंतकषायवक्त्रस्यमतोऽनिलेन ॥ १ ॥

अर्थ–पृथक् वातादि दोषकरके ३, सन्निपातसें १, शोकसें १, भयसें १, अतिलोभसें १, तथा अतिक्रोधसें ऐसे ८ प्रकारका अरोचक (अरुचि) रोगहै । वह मनको क्लेश देनेवाले अन्न, रूप और गंध इन कारणोंसें प्रगट होय है परंतु सुश्रुत और अन्य ग्रन्थोंके मतसे पांचही प्रकार मुख्य मानी हैं भय, लोभ, क्रोधकी

---

१ अरोचके भवेद्दोषैरेको हृदयसंश्रयैः । सन्निपातेन मनसः सन्तापेन च पञ्चमः ॥ इति ।

अरुचिको शोककीही अरुचिके अन्तर्गत मानते हैं। वादीकी अरुचिसे दांत खट्टे हों और मुख कसेला होय।

कट्वम्लमुष्णंविरसंचपूतिपित्तेनविद्याल्लवणंचवक्त्रं।
माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्यविबद्धसंबद्धयुतंकफेन॥ २॥

अर्थ–पित्तकी अरुचिसैं कडुआ, खट्टा, गरम, विरस, दुर्गंधयुक्त ऐसा मुख होय। कफकी अरुचिसे खारा, मीठा, पिच्छल, भारी, शीतल मुख होय है। और मुख वंधा सरीखा अर्थात् खाय नहीं और आंत कफसे लिप्त होय।

शोकादि अरुचिके लक्षण

अरोचकेशोकभयातिलोभक्रोधाद्यहृद्याऽशुचिगंधजेस्यात्।
स्वाभाविकंचास्यमथारुचिश्चत्रिदोषजेनैकरसंभवेत्तु॥ ३॥

अर्थ–शोक, भय, अतिलोभ, क्रोध, अहृद्य (अर्थात् मनको बूरी लगे ऐसी वस्तु) अपवित्र वास इनसैं प्रगट हुई अरुचिमें मुख स्वाभाविक रहै अर्थात् वातजादिकोंके सदृश कसेला, खट्टा आदि नहीं होय। सन्निपातकी अरुचिमें अन्नसैं अरुचि तथा मुखमें अनेक रस मालूम हो।

वातजादि भेदकरके मुखकी विकृतिको कहिकर अन्य ठिकानेपर जो विकृति होय है उसे कहते हैं

हृच्छूलपीडितयुतंपवनेनपित्तात्तृट्दाहशोषबहुलंसकफप्रसेकं।
श्लेष्मात्मकंबहुरुजंबहुभिश्चविद्याद्वैगुण्यमोहजडताभिरथापरंच॥

अर्थ–वातकी अरुचिसैं हृदयमें शूल, और वेदना होती है। पित्तसैं प्यास, दाह, और चूषनेके सदृश पीडा, ये लक्षण होते हैं कफकी अरुचिमें मुखसैं कफ गिरे, सन्निपातकी अरुचिमें पीडा अत्यन्त होय। वैगुण्य कहिये मनकी व्याकुलता मोह, जडत्व इन लक्षणोंसे अपर कहिये आगंतुज अरोचक जाने। भूख होय परंतु खानेकी सामर्थ्य न होना इसको अरुचि कहते हैं। आपको प्रियवी अन्न किसीने दिया हो परंतु खाय नहीं उसको अन्नाभिनन्दन कहते हैं अन्नके स्मरण, श्रवण, दर्शन और वास इनसे जिसको त्रास होय, उस्को भक्तद्वेष कहते हैं। इस प्रकार ये रोग तीन प्रकारका है। इसीवास्तें चरक सुश्रुतने अरोचकं शब्दकरके संग्रह करा है।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधनीमाथुरीभाषाटीकायां अरुचिरोगनिदानं स०

---

१ उक्तंहि वृद्धभोजेन। प्राक्षिप्तं यन्मुखेचान्नं जंतोस्तत्स्वदतेमुहुः। अरोचकः सविज्ञेयो भक्तद्वेषमथोशृणु॥ चिंतयित्वातुमनसादृष्ट्वाश्रुत्वाचभोजनं। द्वेषमायातियोजन्तुर्भक्तद्वेषःसउच्यते॥ कुपितस्य भयार्त्तस्य अभिचाराभिभूतये। यस्यान्नेनभवेत् श्रद्धासभक्तद्वेषउच्यते॥ इति॥

छर्दिनिदानम् ।



छर्दिके कारण और निरुक्ति

दुष्टैर्दोषैःपृथक्सर्वैर्बीभत्सालोकनादिभिः । छर्दयःपंचविज्ञे-
यास्तासांलक्षणमुच्यते ॥ १ ॥ अतिद्रवैरतिस्निग्धैरहृद्यैर्ल-
वणैरपि । अकालेचातिमात्रैश्चतथासात्म्यैश्चभोजनैः ॥ २ ॥
श्रमाद्भयादथोद्वेगादजीर्णात्क्रमिदोषतः । नार्याश्चापन्नस-
त्वायास्तथातिद्रुतमश्नतः ॥ ३ ॥ बीभत्सैर्हेतुभिश्चान्यैर्द्रुत-
मुत्क्लेशितोबलात् । छादयन्नाननंवेगैरर्दयन्नङ्गभञ्जनैः ॥ ४ ॥
निरुच्यतेछर्दिरितिदोषोवक्त्रम्प्रधावति ।

अर्थ–दुष्ट हुये पृथक् और सब दोषोंकरके तथा दुष्ट वस्तुके देखनेसें आदि-शब्दकरके दुष्ट गंधके सूंघनेसें पांच प्रकारकी छर्दि जाननी अर्थात् जिस्को रद्द, वमन, उलटी कहते हैं उसके लक्षण आगे कहते हैं। अत्यन्त पतले अथवा चिकने अहृद्य (अप्रिय) वस्तु, खारके पदार्थ, इनके सेवन करनेसें, कुसमय भोजन करनेसें, अथवा अत्यन्त भोजन करनेसें, अथवा जो न पचे ऐसे भोजन करनेसें, श्रम, भय, उद्वेग, अजीर्ण, कृमिदोष इन कारणोंसें गर्भिणी स्त्रीके गर्भकी पीडासें, तथा जल्दी जल्दी भोजन करनेसें, और बीभत्स (खोटे) कारणोंसें जैसे विष्ठा, राध, आदिका देखना इनसें तीनों दोष कुपित हो बलसे मुखको आच्छादन करे और अंगोंको पीडाकर मुखद्वारा भोजन हुआ सब निकाल देय इस्को (छर्दि) उलटी ऐसे मनुष्य कहते हैं। इसजगे उदान वायू वमन कराती है।

पूर्वरूप

हृल्लासोद्गारसंरोधौप्रसेकोलवणस्तनुः ।
द्वेषोन्नपानेचभृशंवमीनांपूर्वलक्षणम् ॥ ५ ॥

अर्थ–हृदयसें खारा, खट्टा, प्रथमही निकले अथवा सूखी रद्द होय, डकार आवै नहीं, लार गिरे, खारी मुख होजाय, अन्न और पानीसें अत्यन्त अरुचि होय, ये छर्दि (छाट)के पूर्वरूप हैं।

वातकी छर्दिके लक्षण

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषशीर्षनाभ्यर्त्तिकासस्वरभेदतोदैः । उ-
द्गारशब्दंप्रबलंसफेनंविच्छिन्नकृष्णंतनुकंकषायम् ॥ ६ ॥ कृ-
च्छ्रेणचाल्पंमहताचवेगेनाऽर्तोऽनिलाच्छर्दयतीहदुःखम् ।

अर्थ-हृदय और पसवाडा इन्में पीडा होय, मुखशोष, मस्तक और नाभि इन्में शूल होय, खांसी, स्वरभेद, सुई चुभनेकीसी पीडा होय, डकारका शब्द प्रबल होय, वमनमें झाग आवैं, ठहर ठहर कर वमन होय, तथा थोडी होय, वमनका रंग काला होय, पतली और कसैली होय, वमनका वेग बहुत होय, परंतु वमन थोडा होय, और वेगके प्रभावसे दुःख बहुत होय, ये लक्षण वायुकी छर्दिके हैं।

पित्तकी छर्दिके लक्षण

मूर्च्छापिपासामुखशोषशीर्षताल्वक्षिसंतापतमोभ्रमार्तः ।
पीतंभृशोष्णंहरितंसतिक्तंधूम्रंचपित्तेनवमेत्सदाहम् ॥ ७ ॥

अर्थ-मूर्च्छा, प्यास, मुखशोष, मस्तक, तालुआ, नेत्र इनमें सन्ताप अर्थात् तपायमान रहैं, अंधेरा आवे, चक्कर आवै, रोगी पीला गरम हारा कडुआ धूआंके रंगका और दाहयुक्त ऐसा पित्तको वमन करे यह पित्तकी छर्दिका लक्षण है।

कफकी छर्दिके लक्षण

तंद्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकंसंतोषनिद्राऽरुचिगौरवार्त्तः ।
स्निग्धंघनंस्वादुकफाद्विशुद्धंसरोमहर्षोऽल्परुजंवमेत्तु ॥ ८ ॥

अर्थ-तन्द्रा, मुखमें मिठास, कफका पडना, संतोष, (अन्नमें अरुचि) निद्रा, अरुचि, भारीपना इनसैं पीडित हो। चिकना, गाढा, मीठा, सफेद[1] ऐसे कफको वमन करे। जब रद्द करे तब पीडा थोडी होय, रोमांच होय, ये कफकी छर्दिके लक्षण हैं।

त्रिदोषका छर्दिके लक्षण

शूलाविपाकाऽरुचिदाहतृष्णाश्वासप्रमोहप्रबलाप्रसक्तं ।
छर्दिस्त्रिदोषाल्लवणाम्लनीलसांद्रोष्णरक्तंवमतांनृणांस्यात् ॥ ९॥

अर्थ-शूल, अजीर्ण, अरुचि, दाह, प्यास, श्वास, मोह इन लक्षणोंसैं प्रबल

१ यदुक्तं सुश्रुते । शुक्लं हिमं सांद्रकफ कफेन इति ।

भई जो वमन सो सन्निपातसे होय है। रद्द करनेवालेकी वमन खारी, खट्टी, नीली, संघट्ट, (जिसको देशवारी मनुष्य जाडी कहे हैं) गरम, लाल, ऐसी होय है।

असाध्यलक्षण

विट्स्वेदमूत्रांबुवहानिवायुःस्रोतांसिसंरुध्ययदोर्ध्वमेति। उ-
त्सन्नदोषस्यसमाचितंतंदोषंसमुद्धूयनरस्यकोष्ठात् ॥ १० ॥
विण्मूत्रयोस्तत्समगन्धवर्णंतृट्श्वासकासार्तियुतंप्रसक्तं। प्र-
च्छर्दयेद्दुष्टमिहातिवेगात्तयार्दितश्चाशुविनाशमेति ॥ ११ ॥

अर्थ-जिस समय यह वायु पुरीष, पसीना, मूत्र और जल इनके वहनेवाली नाडीन्के मार्गको रोककर ऊपर आवै तब ऊपर आनेवाला दोष (मलमूत्रादि) को कोठेसैं बाहर निकाल वमन करावै, उस वमनमें मलमूत्रकीसी दुर्गंध आवै, तथा वर्णभी मलमूत्रके सदृश होय, प्यास, श्वास, खांसी और शूल ये होय और यह वमन वारंवार बडेवेगसैं होय है। इस वमनसैं पीडित मनुष्य थोडे कालमें नाशको प्राप्त हो, यहभी सन्निपातकी है ऐसे कोई आचार्य कहते हैं और अन्य आचार्य कहते हैं कि सब छर्दि प्रबल है परंतु ऐसी छर्दि असाध्य है।

आगंतुजछर्दिके लक्षण

बीभत्सजादौहृदजाऽमजाचयाऽसात्म्यजावाक्रिमिजाचयाहि।
सापंचमीतांचविभावयेत्तुदोषोच्छ्रयेणैवयथोक्तमादौ ॥ १२ ॥

अर्थ-बीभत्स पदार्थ कहिये मल, राध, रुधिर आदि अपवित्र वस्तुके देख-नेसे, गंधसे, स्वादसे, स्त्रीके गर्भ रहनेसे, आमसे, असमान भोजनसे, अथवा कृ-मिरोगसे इन कारणोंसें प्रगट भई, आगंतुज पांचमी छर्दि होय है। उसमें पूर्वोक्त लक्षणोंमेंसे जिस दोषके अधिक लक्षण मिलें उसी दोषको प्रबल जाने।

कृमिकी छर्दिके लक्षण

शूलहृल्लासबहुलाकृमिजाचविशेषतः।
कृमिहृद्रोगतुल्येनलक्षणेनचलक्षिता ॥ १३ ॥

अर्थ-कृमिकी छर्दिमें शूल, खालीरद्द ये विशेष होते हैं और बहुधा कृमि और हृदयरोग इनके लक्षणसदृश लक्षण जाननो। जैसे पिछाडी कहि आये हैं। उत्क्लेदः ष्ठीवनं तोदः शूलं हृल्लासकस्तमः। अरुचिः श्यावनेत्रत्वं शो-षश्च कृमिजे भवेत्।

साध्यासाध्यलक्षण

क्षीणस्ययाच्छर्दिरतिप्रसक्तासोपद्रवाशोणितपूययुक्ता ।
सचंद्रिकांतांप्रवदेदसाध्यांसाध्यांचिकित्सेन्निरुपद्रवांच ॥ १४ ॥

अर्थ-क्षीण पुरुषकी अथवा वारंवार एकसीहोनेवाली और कासादि उपद्रव-युक्त और रुधिर राध मिली मोरचंद्रिकाके समान ऐसी छर्दी असाध्य है। और जो उपद्रवरहित हो उसको साध्य समझकर उपाय करे।

उपद्रव

कासश्वासोज्वरोहिक्कातृष्णावैचित्यमेवच ।
हृद्रोगस्तमकश्चैवज्ञेयाश्छर्देरुपद्रवाः ॥ १५ ॥

अर्थ-खांसी, श्वासज्वर, हिचकी, प्यास, वेचेत, हृदयरोग, अंधेरा आना ये छर्दिरोगके उपद्रव हैं।

मधुकोशं सुनिर्मथ्य सारमाकृष्य वै मया । व्रजभाषा कृता टीका माधवार्थप्रकाशिका ॥

इति छर्दिनिदानम् ।

अथ तृष्णानिदानं लिख्यते ।

तृष्णाकी सम्प्राप्ति

भयश्रमाभ्यांवलसंक्षयाद्वाप्यूर्ध्वंचितंपित्तविवर्धनैश्च ।
पित्तंसवातंकुपितंनराणांतालुप्रपन्नंजनयेत्पिपासाम् ॥ १ ॥

अर्थ-भयसे, श्रमसे, वलके क्षयसे, और पित्तके वढानेवाले क्रोध उपवासादिकोंसे अपने स्थानमें संचित हुआ जो पित्त और वात ये कुपितहोकर ऊपर तालुऐ (पिपासास्थान)में जाय तृष्णा (प्यास)को उत्पन्न करे। इस जगह तालुकातो उपलक्षणमात्रहै तालुके कहनेसे क्लोमस्थान (हृदयमें जो प्यासका स्थानहै उसकाभी ग्रहणहै क्योंकि वोभी प्यासका स्थानहै सो (चरक)में लिखाहै।

अक्षजादिकतृष्णाकी संप्राप्ति

स्रोतःस्वपांवाहिषुदूषितेषुदोषैश्चतृष्णाभवतीहजंतोः । तिस्रःस्मृतास्ताःक्षतजाचतुर्थीक्षयात्तथाह्यामसमुद्भवाच ॥ २ ॥

---

१ रसवाहिनीचधमनीजिव्हामूलगलतालुक्लोम्नः। संशोष्य नृणां देहे कुरुतस्तृष्णामतिप्रवलौ ।

भक्तोद्भवासप्तमिकेतितासांनिबोधलिंगान्यनुपूर्वशश्च ।

अर्थ—जलके वहनेवाली नसके दूषित होनेसे दोष (अन्न कफ और आम) इन्से तृष्णा रोग होयहै सो तीनहै और चौथी क्षतज तृष्णा [जो व्रणवाले पुरुषके होतीहै] पांचमी क्षयसें होतीहै छठी आमसें होयहै सातवी अन्नसे होयहै उन्होंके लक्षण क्रमसै कहताहूं इनमें पहिली चार तृष्णा सुखसाध्यहै और बाकीकी तीन कष्टसाध्यहैं * शंका—क्योंजी इस श्लोकमें स्रोतःसु यह बहुवचन क्यों धरा ये विरुद्धहै क्योंकि (सुश्रुत)में तो जलके वहनेवाली दोही नाडी मानीहैं * उत्तर—अन्न, कफ, आमको दुष्ट करनेसे तथा दुष्ट रोगोंके सम्बन्ध होनेसे अन्न, आम, कफको दोषत्व ग्रहणहै यह गयदासका मतहै अथवा दोषके कहनेसे वात, पित्त, कफकाही ग्रहण करना चाहिये ।

वातकी तृषाके लक्षण

क्षामास्यतामारुतसंभवायांतोदस्तथाशंखशिरःसुचापि ।
स्रोतोनिरोधोविरसंचवक्त्रंशीताभिरद्भिश्चविवृद्धिमेति ॥ ३ ॥

अर्थ—वातकी तृषा (प्यास)सें मुख उतरजाय अथवा दीन होय, कनपटी और मस्तक इन ठिकाने नोचनेके समान पीडा होय, रस और जल वहनेवाली नाडीन्का मार्ग रुक जाय, मुखसे स्वाद जाता रहै, और शीतल जलके पीनेसे प्यास बढे, यह अनुपशयके लक्षणहैं । चकारसे निद्राका नाश होय ।

पित्तकी तृषाके लक्षण

मूर्च्छान्नविद्वेषविलापदाहारक्तेक्षणत्वंप्रततश्चशोपः ।
शीताभिनंदामुखतिक्तताचपित्तात्मिकायांपरिदूयनंच ॥ ४ ॥

अर्थ—पित्तकी तृषामें मूर्च्छा, अन्नमें अरुचि, वडवड, दाह, नेत्रोंमें लाली, अत्यंत शोप, शीत पदार्थकी इच्छा, मुखमें कडुवाट और सन्ताप यह लक्षण होतेहैं।

कफकी तृषाके लक्षण

बाष्पावरोधात्कफसंवृतेऽग्नौतृष्णाबलासेनभवेत्तथातु ।
निद्रागुरुत्वंमधुरास्यताचतृष्णार्दितःशुष्यतिचातिमात्रं ॥ ५ ॥

अर्थ—अपने कारणसे कुपित कफकरके जठराग्नि आच्छादित होय, तब अग्निकी गरमी अधोगत जलके वहनेवाली नाडीन्को सुखाय कफकी तृषाको प्रगट करे

१ द्वे उदकवहे इति ।

केवल कफसें तृष्णाको प्रगट होना असंभवहै, केवल कफ वढे भयका द्रवीभूतधर्म पतला होनेसे प्यासकर्तृत्व असंभवहै और वात पित्तको तृषा करनेवाले होनेसे होयहै सो ग्रन्थांतरमें लिखाभीहै इसीसे चरकाचार्यने कफकी तष्णा नहीं कही, सुश्रुतने चिकित्सामें भेद होनेसे कहींहै और हारीतनेभी सपित्त कफकी तृषा मानीहै, केवल कफकी नहिं मानी इस तृषामें निद्रा, भारीपना मुखमें मिठास, यह लक्षण होतेहैं इस तृषासे पीडित पुरुष अत्यन्त सूख जायहै।

क्षतजतृष्णाके लक्षण

क्षतस्यरुक्शोणितनिर्गमाभ्यांतृष्णाचतुर्थीक्षतजामतातु ।

अर्थ—शस्त्रादिकके लगनेसे घाव होय तव उस पुरुषके पीडा और रुधिरका स्राव होनेसे जो तृष्णा होय यह चौथी क्षतज तृष्णा जाननी ।

क्षयजतृष्णाके लक्षण

रसक्षयाद्याक्षयसंभवासातयाभिभूतस्तुनिशादिनेषु । पेपीयतेंभःससुखंनयातितांसन्निपातादितिकेचिदाहुः ॥७॥ रसक्षयोक्तानिचलक्षणानितस्यामशेषेणभिषग्व्यवस्येत् ।

अर्थ—रसक्षयसे जो तृष्णा होय उसमें जो लक्षण होयहैं सो सव क्षयजतृष्णामें होतेहैं, तिस्से पीडित पुरुष रात्रि दिन वारंवार पानी पीवै, परंतु संतोष नहीं होय। कोई आचारी इसको सन्निपातसे प्रगट कहतेहैं रसक्षयके जो लक्षण कहे वे सव होतेहैं सो वैद्योंको जानने चाहिये (रसक्षयलक्षण सुश्रुतमें कहेहैं सो इस प्रकार रसक्षय होनेसे हृदयमें पीडा कंप, शोष, वधिरता, (वहरापना) और प्यास, होयहै ।

आमजतृष्णाके लक्षण

त्रिदोषलिंगाऽमसमुद्भवातुहृच्छूलनिष्ठीवनसादकर्त्री ॥ ८ ॥

---

१ यदुक्तं । पित्तं सवातं कुपितं नराणां इत्यादि । चरकेप्युक्तम् । मंदस्याग्नेर्विना हि तृष्णा-पवनाद्वातौ हि शोषणे हेतुरिति । सुश्रुतेप्युक्तम् । मंदस्याग्नेयवायव्यौ गुणावंबुवहानि च । स्रोतासि शोषयेद्यस्माच्चतस्तृष्णा प्रवर्तते ॥

२ तदुक्तंहारीतने । स्वाद्वम्ललवणाजीर्णैः क्रुद्धः श्लेष्मा सहोष्मणा । प्रपद्याम्बुवहस्रोतस्तृष्णां संजनयेन्नृणाम् ॥ शिरसो गौरवं तन्द्रा माधुर्यं वदनस्य च । भक्तद्वेपः प्रसेकश्च निद्राधिक्यं तथैवच ॥ लिंगैरेतैर्विजानीयात्तृष्णा कफसमुद्भवाम् ।

३ रसक्षये हृत्पीडा कंपशोषबधिरता तृष्णा चेति ।

अर्थ—आमज कहिये अजीर्णसे जो तृष्णा होय उसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते-हैं सो सुश्रुतमें लिखाभीहै और हृदयमें शूल लारका गिरना ग्लानि ये सब होयहैं।

अन्नजतृषाके लक्षण

स्निग्धंतथाम्लंलवणंचभुक्तंगुर्वन्नमेवाशुतृषंकरोति ।

अर्थ—चिकना, खट्टा, खारा, [चकारसें कडुआ, कषेला आदि जानना] ऐसे भोजनसे, तथा मात्राधिक, और भारी, ऐसा अन्न खानेसे, अवश्यही शीघ्र प्यासको प्रगट करे। दृढबल आचारीने पांचही प्रकारकी तृष्णा कहीहैं वातकी, पित्तकी, क्षयकी, आमकी, उपसर्गकी तहां कफकी आमकी, तृषाके अंतर्गत कहीहै और क्षतजा वातकी तृषाके अंतर्गत जाननी और अन्नजाभी वातकी तृषाके अंतर्गत कहीहै क्योंकि भोजनसैं वातका कोप होयहै * शंका—क्योंजी सुश्रुतने मद्यके प्रकर्णमें मद्यकी तृष्णा कहीहै फिर माधवाचार्यने सातही तृष्णा कैसै कहीहै * उत्तर—दृढवलाचारीके मतसैं मद्यकी तृषाको वातकी तृषाके अन्तर्गत होनेसे माधवाचार्यने सातही कहीहैं ।

उपसर्गजतृषाके लक्षण

दीनस्वरःप्रताम्यन्दीनाननशुष्कहृदयगलतालुः । भवतिखलुसोपसर्गातृष्णासाशोषिणीकष्टा ॥ ९ ॥ ज्वरमोहक्षयकासश्वासाद्युपसृष्टदेहानां ॥ १० ॥

अर्थ—हीनस्वर, मोह, मनमें ग्लान होय, मुख दीन होजाय, हृदय, गला, और तालु, सूखजाय । यह तृषाके उपद्रवसैं होय है यह मनुष्यको सुखाय डाले और व्याधिसैं शरीर कृश होनेसे यह कष्टसाध्य होजाय है। वो उपद्रव यह हैं ज्वर, मोह, क्षय, खांसी, श्वास, आदिशब्दसे अतिसारादिकोंका ग्रहण है। ये रोग जिसके होय उसके तृष्णा कष्टसाध्य जाननी।

असाध्यलक्षण

सर्वास्त्वतिप्रसक्तारोगकृशानांवमिप्रसक्तानाम् ।
घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णामरणायविज्ञेयाः ॥ ११ ॥

अर्थ—वातजादि सब प्रकारकी तृषा अत्यन्त वढी हुई अथवा रोगसैं कृश

---

१ अजीर्णात्पवनादीनां विभ्रमो बलवान् भवेत् । इति । सततं यः पिबेत्तोयं न तृप्तिमधिगच्छति । पुनः कांक्षति तोयं च तं तृष्णार्दितमादिशेत् ॥ इति ।

भया ऐसे पुरुषके जो तृष्णा है सो अथवा छर्दिसे प्रगट भई जो तृषा और जो भयंकर उपद्रवकरके युक्त ऐसी तृष्णा मारनेका कारण होय है।

मधुकोशंसुनिर्मथ्यसारमाकृष्यवैमया।
व्रजभाषाकृताटीकामाधवार्थप्रकाशिका॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवार्थबोधिनीभाषाटीकायां तृष्णारोगनिदानं समाप्तम्।

मूर्च्छानिदानम्।

निदान और संप्राप्ति

क्षीणस्यबहुदोषस्यविरुद्धाहारसेविनः। वेगाघाताद‌भीघाताद्धीनसत्वस्यवापुनः॥ १॥ करणायतनेषूग्राबाह्येष्वाभ्यंतरेषुच। निविशंतेयदादोषास्तदामूर्च्छंतिमानवाः॥ २॥ संज्ञावहासुनाडीषुपिहितास्वनिलादिभिः। ततोभ्युपैतिसहसासुखदुःखव्यपोहकृत्॥ ३॥ सुखदुःखव्यपोहाच्चनरःपततिकाष्ठवत्। मोहोमूर्च्छेतितामाहुःषड्विधासाप्रकीर्तिता॥ ॥ ४॥ वातादिभिःशोणितेनमद्येनचाविषेणच। षट्स्वप्येतासुपित्तंतुप्रभुत्वेनावतिष्ठते॥ ५॥

अर्थ—तृणामें मोह होय है, इसीसे तृणाके अनन्तर मूर्च्छाको कहते हैं। क्षीण पुरुषके बहुत दोषके संचय होनेसे, विरुद्ध आहार क्षीर मत्स्यादिकके सेवन करनेसे, मलमूत्रादि वेगके धारण करनेसे, लकडी आदिके चोट लगनेसे, अथवा जिस पुरुषका सतोगुण क्षीण होगया होय, ऐसे पुरुषकी बाहरकी और भीतरकी मनके वहनेवाली नाडीन्में दोष प्रवेश करे तब मनुष्यको मूर्च्छा आती है। अर्थात् संज्ञाके वहनेवाली नाडीन्में वातादि दोषोंकरके आच्छादित होनेसे सुखदुःखका ज्ञान नष्ट होय, तब मनुष्य पृथ्वीपर काष्ठ कीसीतरह गिरे। इस रोगको मूर्च्छा अथवा मोह ऐसे कहते हैं। अथवा बाहरकी इन्द्री नेत्र, कान आदि कर्मेंद्रि और बुद्धीन्द्री इनमें बलवान् दोष (वात, पित्त, कफ) प्रवेश कर संज्ञाकी

---

१ उक्तचाभिधानातरे। संज्ञोपघातेमूर्च्छायामूर्च्छास्यान्मूर्च्छनंतथा। कश्मलंप्रलयोमोह संन्याससस्तुमृतोपमः॥ इति।

वहनेवाली जो नाडी तिनको वह वात, पित्त, कफ, रोक अंधकारको प्रगट करे तब मनुष्य काष्ठकी भांति पृथ्वीपर गिरे उसको मूर्च्छा कहते हैं । अथवा मोह कहते हैं। सो मूर्च्छा छः प्रकारकी है । वात, पित्त, कफसें तीनप्रकारकी और रुधिर, विष और मद्य इन भेदोंसें तीन प्रकारकी इन तीनों मूर्च्छान्में पित्त हैं सो मुख्य प्रधान है अथवा व्यापक हैं।

मूर्च्छाका पूर्वरूप

हृत्पीडाजृंभणंग्लानिःसंज्ञादौर्बल्यमेवच ।
सर्वासांपूर्वरूपाणियथास्वंताविभावयेत् ॥ ६ ॥

अर्थ–हृदयमें पीडा, जंभाई, ग्लानि, भ्रांति ये मूर्च्छाके पूर्वरूप हैं । आगे उस मूर्च्छाके वातादि भेद जानने । यह प्रगट अवस्थाके पूर्वरूप अवस्थाके भेद नहीं यह (जैज्जटाचार्यका) मत है ।

वातकी मूर्च्छाके लक्षण

नीलंवायदिवाकृष्णमाकाशमथवाऽरुणम् । पश्यंस्तमःप्रविशतिशीघ्रंचप्रतिबुध्यते ॥ ७ ॥ वेपथुश्चांगमर्दश्चप्रपीडाहृदयस्यच । कार्श्यंश्यावारुणाच्छायामूर्च्छायेवातसंभवे ॥ ८ ॥

अर्थ–जो मनुष्य नीले रंगका अथवा काले रंगका तथा लाल रंगका आकाशको देखे पीछे मूर्च्छाको प्राप्त होय, और जलदी होश होजाय, देहमें कंप, अंगोंका टूटना, हृदयमें पीडा होय, शरीर कृश होजाय, शरीरका रंग काला लाल पडजाय, उसको वातकी मूर्च्छा जाननी ।

पित्तकी मूर्च्छाके लक्षण

रक्तंहरितवर्णंवावियत्पीतमथापिवा । पश्यंस्तमःप्रविशतिसस्वेदश्चप्रबुध्यते ॥ ९ ॥ सपिपासःससंतापोरक्तपीताकुलेक्षणः । संभिन्नवर्चाःपीताभोमूर्च्छाचेत्पित्तसंभवा ॥ १० ॥

अर्थ–जिस्को आकाश लाल, हरा, पीला दीखे पीछे मूर्च्छा आवे और सावधान होतेसमय पसीना आवे, प्यास होय, संताप होय, नेत्र लाल, पीले होय । मल पतला होय । देहका वर्ण पीला होय, ये लक्षण पित्तकी मूर्च्छाके हैं।

कफकी मूर्च्छाके लक्षण

मेघसंकाशमाकाशमावृतंवातमोघनैः । पश्यंस्तमःप्रविशति

चिराच्चप्रतिबुध्यते ॥ ११ ॥ गुरुभिःप्रावृतैरंगैर्यथैवार्द्रेणचर्मणा । सप्रसेकःसहृल्लासोमूर्च्छायेकफसंभवे ॥ १२ ॥

अर्थ–कफकी मूर्च्छामें आकाशको मेघके समान अथवा अंधकारके समान अथवा बद्दल इनसे व्याप्त देखकर मूर्च्छागत होय देरमें सावधान होय, भारी बोझासा देहपर भार मालूम होय, अथवा गीला चमडा धारण करासा मालूम होय, मुखसें पानी गिरे, रद्दहोयगी ऐसा मालूमत होय ।

सन्निपातकी मूर्च्छाके लक्षण

सर्वाकृतिःसन्निपातादपस्मारइवापरः ।
सजंतुंपातयत्याशुविनाबीभत्सचेष्टितैः ॥ १३ ॥

अर्थ–सन्निपातकी मूर्च्छामें सब दोषोंके लक्षण होते हैं, ये रोग दूसरा अपस्मार (मृगी) जानना चाहिये । परन्तु अपस्मारमें दांतोंका चबाना, मुखसें झागका गेरना, नेत्रोंका हाल औरही प्रकारका होजाना, इत्यादिक लक्षण होते हैं सो इस रोगमें नहीं होते, इतनाही भेद है । * शंका–क्यौंजी पूर्व तो छः प्रकारकी मूर्च्छा कहि आये फिर सन्निपातकी मूर्च्छा कैसे कही * उत्तर–चरकको अष्टोत्तरीयाध्यायमें लिखा है, जैसे अपस्मार चार प्रकारका है वातका, पित्तका, कफका, सन्निपातका उसीप्रकार मूर्च्छारोगभी चार प्रकारका है यही मतको ग्रहण कर माधवाचार्यने सन्निपातकी मूर्च्छा कही है ।

रक्तकी मूर्च्छाके लक्षण

पृथिव्यापस्तमोरूपंरक्तगंधस्तदन्वयः । तस्माद्रक्तस्यगंधेन मूर्च्छंतिभुविमानवाः ॥ १४ ॥ द्रव्यस्वभावइत्येकेदृष्ट्वायदभिमुह्यति ।

अर्थ–पृथ्वी और जल ये दोनों तमोगुणविशिष्ट हैं सो सुश्रुतमें लिखा है । और रुधिरकी गंधभी उनदोनोंसें अर्थात् पृथ्वी और जलसें प्रगट है तो रुधिरकी गंधभी तमोगुण विशिष्टहुई इसीसें जो तामसी पुरुष है सो रुधिरकी गंधीसें मूर्च्छित होते हैं । और जो राजसी, सात्विकी पुरुष हैं सो मूर्च्छित नहीं

---

१ चतस्रो मूर्च्छा अपस्मारे व्याख्याताः । यथा चत्वारोपस्माराः वातेन, पित्तेन, श्लेष्मणा, सन्निपातेन, तद्वन्मूर्च्छा अपीत्यर्थः ।

२ तमोबहुला पृथ्वी तमोबहुला आप इति ।

होते * शंका–क्यौंजी चंपक (चम्पा) पुष्पकी गंधसेभी मूर्च्छा होनी चाहिये क्यौंकि उसमेंभी पार्थिव अर्थात् तामसगुणविशिष्ट गंध है इसवास्ते कहते हैं (द्रव्यस्वभावमित्येके) अर्थात् कोई आचार्य कहते हैं कि ये द्रव्यकाही स्वभाव है अर्थात् रुधिरका यही स्वभाव है कि जिसकी गंधसेही मनुष्य मूर्च्छित होय है। अब प्रभावको औरभी दृढ करते हैं (दृष्ट्वा यदभिमुह्यति) अर्थात् रक्तके देखनेसेंभी मूर्च्छित होय है सो लिखावी है।

विष और मद्यसे उत्पन्न मूर्च्छाको कहते हैं

गुणास्तीव्रतरत्वेनास्थितास्तुविषमद्ययोः ॥ १५ ॥
तएवतस्मादाभ्यांतुमोहौस्यातांयथेरितौ ।

अर्थ–तैलादिकोंमें जो दशगुण है वोही गुण विष और मद्यमें असंत तीव्रतासे रहते हैं। इसीसे विष और मद्यके सेवन करनेसें मोह होय है, इसमेंभी मद्यमें तीव्र रहै और विषमें तीव्रतर रहैं इसीसें विषका मोह स्वयं शांति नहीं होय, क्यौंकि विष अपाकी हैं और मद्यका मोह, मद्यके नसा उतरेपर शांति होजाय है यह भेद विष और मद्यमें रहता है।

रक्तजादि तीन मूर्च्छान्के लक्षण

स्तब्धांगदृष्टिस्त्वसृजामूढोच्छ्वासश्चमूर्च्छितः ॥ १६ ॥ मद्येनविलपञ्शेतेनष्टाविभ्रांतमानसः । गात्राणिविक्षिपन्भूमौजरायावन्नयातितत् ॥ १७ ॥ वेपथुस्वप्नतृष्णाःस्युस्तमश्चविषमूर्च्छिते । वेदितव्यंतीव्रतरंयथास्वंविषलक्षणैः ॥ १८ ॥

अर्थ–रुधिरकी मूर्च्छामें अंग और नेत्र निश्चल होजाय, और श्वास अच्छेप्रकार आवै नहीं। बहुत मद्यके पीनेसे जो मूर्च्छा हो उसके ये लक्षण हैं बहुत बके सोय जाय, संज्ञा जाती रहै, भ्रमयुक्त होय, और जबतक मद्य न पचे तबतक पृथ्वीमें हाथपैर पटके। विषजन्य मूर्च्छामें कांपे, सोवे, प्यास लगे, और अंधेरा आवै, एवं मूल, पत्र, दूध इन्के भेदकर जो विषभक्षणसे लक्षण होते हैं सो सब लक्षण होते हैं।

---

१ यदुक्तं । मेदस्तब्धांगदृष्टिश्च गूढोच्छ्वासस्तथैवच । दर्शनादसृजस्तस्माद्गंधाच्चैव प्रमुह्यति ।

२ यदुक्तं दृढबलेन । लघु रूक्षमाशु विशदं व्यवायि तीक्ष्णं विकाशि सूक्ष्मं च । उष्णमनिर्देश्यरसं दशगुणमुक्तं विषं तज्ज्ञैः ।

३ ये विषस्य गुणाः प्रोक्ताः संनिपातप्रकोपिनः । त एव मद्ये दृश्यंते विषे तु बलवत्तराः । इति ।

मूर्च्छा, भ्रम, तन्द्रा और निद्रा इन्के भेद कहते हैं

मूर्च्छापित्ततमःप्रायारजःपित्तानिलाद्भ्रमः ।
तमोवातकफातन्द्रानिद्राश्लेष्मतमोभवा ॥ १९ ॥

अर्थ-मूर्च्छामें पित्त और तमोगुण अधिक रहै हैं। रजोगुण पित्त और वायु इनसे भ्रम होय है । तमोगुण, वायु और कफ इनसे तन्द्रा। और कफ, तथा तमोगुण, इन्से निद्रा उत्पन्न होती है।

तन्द्राके लक्षण

इन्द्रियार्थेष्वसंप्राप्तिर्गौरवंजृंभणंक्लमः ।
निद्रार्त्तस्येवयस्यैतेतस्यतंद्रांविनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

अर्थ-इन्द्री अपने अपने विषयको ग्रहण न करे, देह भारी होजाय, अर्थात् सुस्त होजाय, जंभाई और क्लम होय, ये लक्षण निद्रार्त पुरुषके सदृश जिस्के होय उसको तन्द्रा कहते हैं। इसमें आधे नेत्र खुले रहते हैं, निद्रामें इन्द्री और मनको मोह होय है, तन्द्रामें केवल इन्द्रीनकोही मोह होय है। निद्रा और भ्रम ये दोनों अतिप्रसिद्ध होनेसे माधवाचार्यने नहीं कहे, परंतु चरकमें कहे हैं। सो इस प्रकारकी जिस समय मन और इन्द्री खेदको प्राप्त होय, और अपने अपने विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध) को त्याग देय, तब यह मनुष्यको निद्रा आवती है।

संन्यासके भेदको कहते हैं

दोषेषुमदमूर्च्छाद्यागतवेगेषुदेहिनाम् ।
स्वयमेवोपशाम्यंतिसंन्यासोनौषधैर्विना ॥ २१ ॥

अर्थ-दोषोंके वेग नष्ट होनेसे मदमूर्च्छादिक अपने आप शांति होजाय हैं, परंतु संन्यास यह औषधके विना शांति नहीं होय है।

संन्यासके लक्षण

वाग्देहमनसांचेष्टाआक्षिप्यातिबलामलाः । संन्यस्यंत्यबलं

---

१ तत्र भ्रमः स्थाणौ पुरुषज्ञानं पुरुषे विपरीतसत्वज्ञानादिक अन्ये चक्रस्थितस्येव संभ्रामवस्तुदर्शनमिति ।

२ यदा तु मनसि क्लान्ते कर्मात्मानः क्लमान्विताः। विषयेभ्यो निवर्त्तन्ते तदा स्वपिति मानवः।

३ येनायासश्रमो देहे प्रवृद्धः श्वासवर्जितः । क्लमः स इति विज्ञेय इंद्रियार्थप्रबाधकः ।

जंतुंप्राणायतनमाश्रिताः ॥ २२ ॥ सनासंन्याससंन्यस्तः काष्ठीभूतोमृतोपमः । प्राणैर्विमुच्यतेशीघ्रंमुक्त्वासद्यःफलां क्रियाम् ॥ २३ ॥

अर्थ–असंत वलिष्ठ भये जो दोष, सो वाणी देह, और मन इनके व्यापारको वंद कर हृदयमें प्राप्त हो निर्मल मनुष्यको मूर्च्छित करे, वह संन्याससैं पीडित मनुष्य काष्ठकी भांति पृथ्वीपर गिरे, उसकी सद्यःफल चिकित्सा अर्थात् सुईसे छेदना, तीखा अंजनका लगाना, अनामिकाको पीडित करना, कौंचकी फली लगाना, दाह देना नास देना इसादिक क्रिया न करै तौ वह रोगी प्राणवियुक्त कहिये मरणको प्राप्त हो अन्यथा बचे है ।

मधुकोशं मुनिर्मथ्य सारमाकृष्य यत्नतः ।
व्रजभाषा कृता टीका माधवार्थप्रकाशिका ॥

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मूर्च्छानिदानम् ।

मदात्ययनिदानम् ।

येविषस्यगुणाःप्रोक्तास्तेपिमद्येप्रतिष्ठिताः। तेनमिथ्योपयुक्तेन भवत्युग्रोमदात्ययः ॥ १ ॥ किंतुमद्यंस्वभावेनयथैवान्नंतथा स्मृतम् । अयुक्तियुक्तंरोगाययुक्तियुक्तंयथाऽमृतम् ॥ २ ॥

अर्थ–विषके जो गुण कहेहैं सोई गुण मद्यमेंहैं, अर्थात् यही मद्य अविधिसें सेवन कराभया घोर भयंकर मदात्ययरोग प्रगट करैहै, कोई ऐसी शंका करे कि विषके गुण मद्यमें है यासे विषके समान मद्यको सेवन न करै इस विषयमें कहते हैं मद्य यह स्वभावसेही जैसे अन्न देहधारकहै ऐसाहीहै, परंतु वो मद्य अविधिसैं पीवै तौ रोगकारक होयहै और विधीसे सेवन करै तौ अमृतके समान गुण करै ।

---

१ विधिश्चायं तद्यथा । कुसुमितलतोपगूढः प्रकटनिरंतरनवांकुरनिकैरैरोमाचैः मधुकरमधुरचुत्कारशित्कारैर्मुक्तकंठकलकंठकूजितैर्दक्षिणसमीरणोद्विजितसमुद्भसितपल्लवकरप्रचारैस्तरुणतरुभिः उपक्रांततरललताभिरतिशोभनेषु वनोपवनेषु तुषारकिरणं रजितप्रदोषेषु शृंगारसमुचितालंकृतिकमनीयकामिनीसमर्पितं ललितललनोपनीयमानं सुरभि रुचिरव्यपरसोपदंशकं नामपरिमितपरार्द्धमधुपानं कं न सुखयति चरकेण तु विस्तरेणैतदुक्तंविद्धि ।

विधिसे मद्य पीनेका फल

विधिनामात्रयाकालेहितैरन्नैर्यथाबलं । प्रहृष्टोयःपिबेन्मद्यं तस्यस्यादमृतंयथा ॥ ३ ॥ स्निग्धैःसदन्नैर्मांसैश्चभक्ष्यैश्चस-हसेवितम् । भवेदायुःप्रकर्षायबलायोपचयायच ॥ ४ ॥

अर्थ–विधिपूर्वक प्रमाणके संग योग्य कालमें, चिकना आदि अच्छे अन्नके संग, बलाबलके अनुसार, अत्यंत हर्षके साथ, जो मद्यपान करे, उसको अमृतके तुल्य गुण करे इसके पीनेकी विधि मदात्ययके दूसरे श्लोककी टिप्पनीमें लिख आयेहैं तथा और ग्रन्थान्तरोंमें विधि तथा मात्रा कालका नियम लिखाहै, अर्थात् शुद्ध शरीर होकर प्रातःकाल सोपदंश (अर्थात् मद्यपान करनेके बाद जो चटनी आदि पदार्थ खाये जांय हैं सो) इन करके सहित सो दो पल पीवै मध्यान्हको चार पल पीवै तदनंतर चिकना पदार्थ भोजन करे और सायंकालको आठपल पीवै इस जगह पल नाम जैपुरसाई १ टका पक्केको कहतेहैं ४ अथवा चिकने अन्नके साथ मांसके साथ, अथवा और भक्ष्य हैं उनके साथ मद्यको सेवन करे तौ मनुष्यकी आयुष्य बढे, बल बढे, तथा देह पुष्ट होय, इस श्लोकमें (स्निग्धैःसदन्नैः) यह जो पद धरा सो स्निग्धका एक उपलक्षण मात्र है अर्थात् जो मद्यसे विपरीत गुण रखते हैं जैसे तीक्ष्णादि दश गुण हैं उन्से विपरीत होय उसके साथ मद्य पीना चाहिये सो तीक्ष्णादि दशगुण ग्रन्थांतरोंमें लिखे हैं, और विशेष देखना होय सो (भावप्रकाश)में देखलेवे, इस स्थलमें ग्रन्थविस्तारभयसे हमने साग दीने हैं।

---

१ शुद्धकायः पिबेत्प्रातः सोपदंशपलद्वयं। मध्यान्हे द्विगुणं तच्च स्निग्धाहारेण पाचयेत्। प्रदोषेष्टपलं तद्वन्मात्रामद्ये रसायनम्। आरोग्यं धातुसात्म्यं च कांतिपुष्टिबलप्रदं। अनेन विधिना सेव्यं मद्यं नित्यमतद्रितैः। अन्यैर्नुद्ध्यादयो यावदुल्लसंति निरत्ययाः। मात्रेयं विहितामद्ये पाने रोगाय चापरा। काल इति। तत्रकालो द्विविधः। नित्यकः आवश्यकश्च। तत्र नित्यकः ऋतुसंबंधी यथा ग्रीष्मेशीतमधुरंमाध्वीकादिशीते उष्णातीक्ष्णं गौडिकपिष्टकादि। तथा आवश्यके काले वातेस्निग्धादि एवं वयस्युदाहार्यं।

२ लघुतीक्ष्णो ह्यसूक्ष्माम्लो व्यवायाशुगमेव च। रूक्षं विकाशि विशदं मद्ये दशगुणाः स्मृताः॥ (तथाच सुश्रुते) मद्यं रास्तं तथा तीक्ष्णं सूक्ष्मं विशदमेव च। रूक्षमाशुकरं चैव व्यवायि च विकाशिचेति। अत्र अम्लरसत्व वास्योद्भूतरसत्वेनोक्तं यदुक्तमन्यत्र। सर्वेषामम्लजातीनां मद्यं मूर्ध्नि व्यवस्थितमिति।

---

1 मद्यपानानन्तरभक्षणीयद्रव्यविशेषः।

विधिसे मद्यपीनेके दूसरे गुण

काम्यतामनसस्तुष्टिस्तेजोविक्रमएवच ।
विधिवत्सेव्यमानेतुमद्येसंतिहितागुणाः ॥ ५ ॥

अर्थ–मद्यको विधिपूर्वक पीनेसे सुन्दर स्वरूप, मनको संतोष, उत्साह, दूसरे को जीतनेकी सामर्थ्य इत्यादि हितकारक गुण होय हैं कही हुई विधिसे विरुद्ध मद्यपान करनेसे मदात्यय रोग होय है सो मदात्यय तीन प्रकारका है पूर्वमद, मध्यमद, और अन्त्यमद ।

पूर्वमदके लक्षण

बुद्धिस्मृतिप्रीतिकरःसुखश्चपानान्ननिद्रारतिबंधनश्च ।
संपाठगीतस्वरवर्द्धनश्चप्रोक्तोऽतिरम्यःप्रथमोमदोहि ॥ ६ ॥

अर्थ–बुद्धि, स्मरण और प्रीति इन्को करे सुखकरे पान (पीना) अन्न, निद्रा, और रति इन्को वढावै, सुन्दर पाठ, और गीत गानेको वढावे, ऐसा प्रथम मद अति रमणीय कहाहै * शंका–क्योंजी मदतौ मनमें विकार उत्पन्न करे है फिर आप इसको रमणीय कैसे कहतेहो ? * उत्तर–आपने कहा सो ठीक है परंतु दुःखको दूर करनेसे इसको रमणीयता है, इसी कारण सुश्रुतने (हर्ष)को मनके विकारोंमें कहा है ।

द्वितीयमदके लक्षण

अव्यक्तबुद्धिस्मृतिवाग्विचेष्टाःसोन्मत्तलीलाकृतिरप्रशांतः ।
आलस्यनिद्राभिहतोमुहुश्चमध्येनमत्तःपुरुषोमदेन ॥ ७ ॥

अर्थ–मध्यम मदसे मत्तवाले पुरुषकी बुद्धि स्मरण और वाणी यथार्थ नहीं होय, विरुद्ध चेष्टा करे, और वावलेकीसी चेष्टा करे, प्रचंड होजाय, वारंवार आलकस और निद्रासैं पीडित होजाय ।

तृतीयमदके लक्षण

गच्छेदगम्यांनगुरूंश्चपश्येत्खादेदभक्ष्याणिचनष्टसंज्ञः ।
ब्रूयाच्चगुह्यानिहृदिस्थितानिमदेतृतीयेपुरुषोऽस्वतंत्रः ॥ ८ ॥

अर्थ–तीसरे मदसे पुरुष मदके स्वाधीन होकर अगम्या (गुरूकी स्त्री आदिसे) गमन करे, वडेनका तिरस्कार करे जो वस्तू खानेके योग्य नहीं हैं उस्को खाय, संज्ञा जाती रहै, और जो गुप्त वात हृदयमें हैं उनको कहने लगे ।

चतुर्थमदके लक्षण

चतुर्थेतुमदेमूढोभग्नदार्विवनिष्क्रियः । कार्याकार्यविभागाज्ञो मृतादप्यपरोमृतः ॥ ९ ॥ कोमदंताद्दशंगच्छेदुन्मादमि- वचापरम् । बहुदोषमिवारूढःकांतारंस्ववशःकृती ॥ १० ॥

अर्थ–चतुर्थ मदसे मनुष्य मूढ होकर टूटे वृक्षके समान क्रियारहित होय, कार्य (करनेयोग्य) अकार्य (नहीं करने योग्य) इनको न समझे, वह पुरुष मरेसेभी अधिक मराभया है कौन ऐसा स्ववश अथवा सुकृती पुरुष ऐसे निंद्यमद (अमल)का सहनशील होय है किंतु कोई नही होय कैसे कि जैसे सिंह व्याघ्रादि हिंसक पशु जिस वनमें बहुत हैं ऐसे निर्जन वनमें मार्गमें कौन चतुर मनुष्य जायगा । * शंका– चरक, विदेह, वाग्भट आदि आचार्योंने तो चतुर्थमद कहाही नहीं है, और सु- श्रुतने कहा है इनमें विरोध क्यों है? । * उत्तर–चरकमें जो दूसरे और तीसरे में अन्तर कहा है सोई सुश्रुतने तृतीयमदको मानकर उसके लक्षण कहे हैं और जो चरकमें तृतीय मदके लक्षण कहे हैं सो सुश्रुतने चतुर्थ मदके लक्षण कहे हैं । ऐसे विरोध नहीं हैं वास्तवमें तीनही मद हैं । * शंका–क्योंजी एक मद्यसे ३ प्रकारके मद होय हैं इसमें क्या कारण है? * उत्तर–मद्य यह अग्निके समान है जैसे अग्निमें सुवर्ण (सोना) तपानेसे उत्तम, मध्यम, अधमकी परीक्षा होय है । ऐसेही मद्यभी सतोगुण, रजोगुण, तमोगुणवाले पुरुषोंकी प्रकृतिसूचक है अ- र्थात् सतोगुणवाले पुरुषको प्रथम मद, रजोगुणवाले पुरुषको दूसरा मद, तमोगु- णवाले पुरुषको तीसरा मद प्राप्त होय है । सो (चरक)में लिखा है ।

विधिहीन मद्य सेवनसे और विकार होते हैं उन्को कहते हैं

निर्भक्तमेकान्ततएवमद्यंनिषेव्यमाणंमनुजेननित्यम् । आपादयेत्कष्टतमान्विकारानापादयेच्चापिशरीरभेदं ॥ ११ ॥

अर्थ–जिस पुरुषने अन्नरहित निरंतर मद्यपान नित्य करा होय, वो अत्यंत दुःखदायक विकार (पानात्ययादिक) उत्पन्न करे है । और शरीरका विनाश करे है ।

अन्नके साथ मद्य सेवन कराभयाभी क्रुद्धत्वादिकारणोंसें विकारकर्त्ता होय है सो कहते हैं

क्रुद्धेनभीतेनपिपासितेनशोकाभितप्तेनबुभुक्षितेन । व्याया-

१ प्रधानावरमध्यानां रुक्माणां व्यक्तिदर्शकः । यथाग्निरेवं सत्वानां मद्यं प्रकृतिदर्शकम् ॥

मभाराध्वपरिक्षतेनवेगावरोधाभिहतेनचापि ॥ १२ ॥ अ-
त्यम्लभक्ष्यावततोदरेणसाजीर्णभुक्तेनतथाऽबलेन । उष्णा-
भितप्तेनचसेव्यमानं करोतिमद्यंविविधान्विकारान् ॥ १३ ॥

अर्थ–क्रोधयुक्त, भयसें पीडित, प्यासा, शोकवान्, क्षुधायुक्त, दंडकसरत और भारसे जो क्षीण होगया होय, मलमूत्र आदि वेगसे पीडित हो, अत्यंत अम्लरस खानेसे जिसका पेट भर रहा होय, अजीर्णमें भोजन करनेवाले पुरुषके, निर्वल पुरुषके, गरमीसे तपायमान, ऐसे मनुष्यके मद्य सेवन करनेसे अनेक विकार उत्पन्न होते हैं।

उन विकारोंको कहते हैं

पानात्ययंपरमदंपानाजीर्णमथापिवा ।
पानविभ्रममुग्रंचतेषांवक्ष्यामिलक्षणम् ॥ १४ ॥

अर्थ–पानात्यय, परमद, पानाजीर्ण और पानविभ्रम इत्यादिक भयंकर विकार होते हैं उनके लक्षण कहता हूं।

वातमदात्ययके लक्षण

हिक्काश्वासशिरःकंपपार्श्वशूलप्रजागरैः ।
विद्याद्बहुप्रलापस्यवातप्रायंमदात्ययम् ॥ १५ ॥

अर्थ–हिचकी, श्वास, मस्तकका कंप होना, पसवाडोंमें पीडा, निद्राका नाश और अत्यंत बकवाद, ये लक्षण जिसमें होय उसको वातप्रधान मदात्यय जानना।

पित्तमदात्ययके लक्षण

तृष्णादाहज्वरस्वेदमोहातीसारविभ्रमैः ।
विद्याद्धरितवर्णस्यपित्तप्रायंमदात्ययम् ॥ १६ ॥

अर्थ–प्यास, दाह, ज्वर, पसीना, मोह, अतिसार, विभ्रम (कुछ कुछ ज्ञान होय) देहका वर्ण हरा होय, इन लक्षणोंसें पित्तप्रधान मदात्यय जानना।

कफमदात्ययके लक्षण

छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ।
विद्याच्छीतपरीतस्यकफप्रायंमदात्ययम् ॥ १७ ॥

अर्थ–वमन, (रद्द) अन्नमें अरुचि, खालीरद्द (ओकारी) तन्द्रा, देह गीली और भारी, और शीत लगे, इन लक्षणोंसे कफप्रधान मदात्यय जानना।

सन्निपातमदात्ययके लक्षण

ज्ञेयस्त्रिदोषजश्चापिसर्वलिंगैर्मदात्ययः ॥ १८ ॥

अर्थ–जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलतेहों उसको सन्निपातप्रधान मदात्यय जानना ।

परमदके लक्षण

श्लेष्मोच्छ्रयोऽगगुरुतामधुरास्यताचविण्मूत्रसक्तिरथतंद्रिररोचकश्च। लिंगंपरस्यतुमदस्यवदंतितज्ज्ञास्तृष्णारुजाशिरसिसंधिषुचातिभेदः ॥ १९ ॥

अर्थ–कफका कोप (यह नासास्रावादिक जानना) देहका जड होना, मुखमें मिठास, मलमूत्रका अवरोध, तन्द्रा, अरुचि, प्यास, मस्तकमें पीडा और संधिन्में कुठारीसे तोडनेसरीखी पीडा होय, ये परमदके लक्षण जानने ।

पानाजीर्णके लक्षण

आध्मानमुग्रमथवोद्गिरणंविदाहः
पानेत्वजीर्णमुपगच्छतिलक्षणानि ॥

अर्थ–अत्यंत पेटका फूलना, वमन अथवा डकारका आना, जलन होना, ये लक्षण जब मद्याजीर्ण होय है तब होते हैं ।

पानविभ्रमके लक्षण

हृद्गात्रतोदकफसंस्रवकंठधूममूर्च्छावमिज्वरशिरोरुजनप्रदेहाः।
द्वेषःसुरान्नविकृतेष्वपितेषुतेषुतंपानविभ्रममुशंत्यखिलेनधीराः॥

अर्थ–हृदय और गात्र इनमें सुई चुभानेकीसी पीडा होय, कफका स्राव होय, कंठसे धूआंसा निकलनेकीसी पीडा, मूर्च्छा, वमन, ज्वर, सिरमें पीडा, मुख कफसे लिहसासा होय । अनेकप्रकारकी मैरेय पैष्टिक, इत्यादिक सुराविकृति और लड्डू, पेडा आदि अन्नविकृति इनमें द्वेष होय, ये सर्वलक्षणसे इस रोगको (पानविभ्रम) ऐसे कहते हैं। सन्निपातके अंतर्गत होनेसे ये परमदादिक तीनों चरकने नहीं कहे और पूर्वोक्त मदात्ययके लक्षणोंसें विलक्षण होनेसें सुश्रुत उक्तत्रिदोषज मदात्ययको पृथक् कहा है।

असाध्य लक्षण

हीनोत्तरौष्ठमतिशीतममन्ददाहंतैलप्रभास्यमतिपानहतंत्य-

जेत्तु ॥ २१ ॥ जिह्वौष्ठदंतमसितंत्वथवापिनीलंपीतेचयस्य-
नयनेरुधिरप्रभेवा ॥

अर्थ–ऊपरके होठसे नीचेका होठ कुछ लम्बा होय, देहके वाहर अति शीत लगे, और भीतर असन्त दाह होय, तेलसे लिप्त सदृश मुखहो, जीभ, होठ, दांत, ये काले अथवा नीले होय जाय, नेत्र पीले, अथवा रुधिरके समान लाल होय ऐसा अतिपानसे अर्थात् अतिमद्यपीनेसे नष्ट मनुष्यको वैद्य त्याग देय (चरकमें) ध्वंसक, विक्षेपक, दो मद्यविकार और कहे हैं।

उपद्रव कहतेहैं

हिक्काज्वरौवमथुवेपथुपार्श्वशूलाः
कासभ्रमावपिचपानहतंत्यजेत्तम् ॥ २२ ॥

अर्थ–हिचकी, ज्वर, वमन, कम्प, पसवाडोंमें पीडा होय, खांसी, भ्रम ये उपद्रव जिस्के होय उसको वैद्य त्यागदे परन्तु जैज्जट आचारी कहतेहैं कि असाध्य लक्षणसे पृथक् पाठ होनेसे यह लक्षण होनेसे रोगी कृच्छ्रसाध्य जानना, असाध्य न जानना।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरविरचितमाधवार्थबोधिन्यां भाषाटीकायां मदात्ययरोग-
निदानम् समाप्तम्।

अथ दाहनिदानम्।

त्वचंप्राप्तःसमानोष्मापित्तरक्ताभिमूर्च्छितः।
दाहंप्रकुरुतेघोरंपित्तवत्तत्रभेषजम् ॥ १ ॥

अर्थ–दाहरोग सात प्रकारका है तिसमें प्रथम मद्यजन्य दाहके लक्षण कहतेहैं मद्यपान करनेसे कुपित भया जो पित्त उस पित्तकी उष्णता पित्तरक्तको बढाय भयंकर दाहरोग उत्पन्न करे इसमें पित्तके समान औषध करे।

रक्तज और पित्तज दाहके लक्षण

कृत्स्नदेहानुगंरक्तमुद्रिक्तंदहतिध्रुवम्। समुष्यतेतृप्यतेचता-

---

१ विच्छिन्नमद्यः सहसा योतिमद्यं निषेवते। ध्वंसो विक्षेपकश्चैव रोगस्तस्योपजायते ॥ १ ॥
श्लेष्मप्रसेकः कठास्यशोषः सर्वासहिष्णुता। निद्रातन्द्रातियोगश्च ज्ञेयं ध्वंसकलक्षणम् ॥ १ ॥
हृत्कण्ठरोगसंमोहछर्दिरंगरुजाज्वरः। तृष्णाकासशिरःशूलमेतद्विक्षेपलक्षणम् ॥ २ ॥

आभस्ताम्रलोचनः ॥ २ ॥ लोहगंधांगवदनोवन्हिनेवावकीर्यते । पित्तज्वरसमःपित्तात्सचाप्यस्यविधिःस्मृतः ॥ ३ ॥

अर्थ-सर्व देहका रुधिर कुपितहोकर असन्त दाह करे, और वह रोगी अग्निके समीप रहनेसे जैसा तपे है ऐसा तपे, प्यासयुक्त ताम्रके रंगसदृश देहका रंग होय, और नेत्रभी लाल होय, तथा मुखसे और देहसे तप्तलोहेपर जल डालनेकीसी गंध आवे, और अंगोंमें मानोंकिसीने अग्नि लगाय दीनी ऐसी वेदना होय, पित्तसे जो दाह होय उस्में पित्तज्वरकेसे लक्षण होते हैं उसपर पित्तज्वरकी चिकित्सा करनी चाहिये पित्तज्वरमें और पित्तके दाहमें इतना अन्तर है कि पित्तज्वरमें अग्नि और आमाशयका दुष्ट होना होय है और पित्तके दाहमें नहिं होय, और सब लक्षण होते हैं।

प्यासरोकनेके दाहके लक्षण

तृष्णानिरोधादब्धातौक्षीणेतेजःसमुद्धतम् । सबाह्याभ्यंतरं देहंप्रदहेन्मंदचेतसः । संशुष्कगलताल्वोष्ठोजिव्हांनिष्कृष्य वेपते ॥ ४ ॥

अर्थ-प्यासके रोकनेसे जलरूप धातु क्षीण होकर तेज कहिये पित्तकी गरमीको बढावे तब वह गरमी देहके वाहर और भीतर दाह करे, इस दाहसे रोगी बेसुध होय, और गला, तालू, होठ यह अत्यंत सूखें और जीभको बाहर काढदे, कांपे।

शस्त्रघातजदाहके लक्षण

असृजःपूर्णकोष्ठस्यदाहोऽन्यःस्यात्सुदुःसहः ॥ ५ ॥

अर्थ-शस्त्र कहिये तलवार आदिके लगनेसे प्रगटरुधिर उस रुधिरसे कोष्ठ कहिये हृदय भरजाय तब दाह असन्त दुःसह प्रगट होय।

धातुक्षयजन्यदाहके लक्षण

धातुक्षयोत्थोयोदाहस्तेनमूर्च्छातृषान्वितः ।
क्षामस्वरःक्रियाहीनःससीदेत्भृशपीडितः ॥ ६ ॥

अर्थ-धातुके क्षय होनेसे जो दाह होय उस्से रोगीको मूर्च्छा प्यास इनसे युक्त होय, स्वरभंग और चेष्टाहीन होय, और इस दाहसे पीडित होकर यदि चिकित्सा न करावे तौ वो रोगी मरणको प्राप्त होय।

क्षतजदाहके लक्षण

क्षतजोऽनश्नतश्चान्यःशोचतोवाप्यनेकधा ।
तेनांतर्दह्यतेऽत्यर्थंतृष्णामूर्च्छाप्रलापवान् ॥ ७ ॥

अर्थ-क्षत (घाव)के होनेसे जो दाह होय उससे आहार थोडा रहिजावे, और अनेकप्रकारकेशोक कर दाह होय, और इस दाहकरके अभ्यन्तर दाह होय, तथा प्यास, मूर्च्छा और प्रलाप (वकवाद) ये लक्षण होय ।

मर्माभिघातजदाहके लक्षण

मर्माभिघातजोऽप्यस्तिसोऽसाध्यःसप्तमोमतः ।

अर्थ-मर्मस्थान (हृदय शिर वस्ति)में चोट लगनेसे जो दाह होय सो सातवा असाध्य है । अर्थात् और जो छः दाह हैं सो साध्य हैं ।

सर्वएवचवर्ज्याःस्युःशीतगात्रस्यदेहिनः ॥ ८ ॥

अर्थ-सब दाहोंमें शीतल देहवाला रोगी साज्य है ।

इति दाहनिदानम् ।

अथ उन्मादनिदानम् ।

मदयंत्युद्धतादोषायस्मादुन्मार्गमाश्रिताः ।
मानसोऽयमतोव्याधिरुन्मादइतिकीर्त्यते ॥ १ ॥

अर्थ-दोष कहिये (वात पित्त कफ) वढकर अपने अपने मार्गको छोड अन्य मार्ग अर्थात् मनोवह धमनियोंमें प्राप्त होकर मनको उन्मत्त करे और यह व्याधि मानसी है अत एव इसको (उन्माद) ऐसे कहते है ।

एकैकशःसर्वशश्चदोषैरत्यर्थमूर्च्छितैः । मानसेनचदुःखेनसपंचविधउच्यते ॥ २ ॥ विषाद्भवतिषष्ठश्चयथास्वंतत्रभेषजं ।
सचाप्रवृद्धस्तरुणोमदसंज्ञांबिभर्तिच ॥ ३ ॥

अर्थ-अत्यन्त कुपितभये पृथक् पृथक् दोषोंसे ३ सन्निपात और मानसिक दुःखसे यह रोग पांचप्रकारका और विष खानेसे ६ छटा इनमे यथा दोषानुसार औषध देनी चाहिये, जवतक यह रोग वढे नहीं. और जवतक तरुण रहे तवतक इस रोगको मद ऐसे कहते हैं ।

उन्मादके सामान्य कारण और सम्प्राप्ति

विरुद्धदुष्टाऽशुचिभोजनानिप्रधर्षणंदेवगुरुद्विजानाम् । उ-
न्मादहेतुर्भयहर्षपूर्वोमनोभिघातोविषमाश्चचेष्टाः ॥ ४ ॥ तै-
रल्पसत्त्वस्यमलाःप्रदुष्टाबुद्धेर्निवासंहृदयंप्रदूष्य । स्रोतांस्य-
धिष्ठायमनोवहानिप्रमोहयंत्याशुनरस्यचेतः ॥ ५ ॥

अर्थ–विरुद्ध दुष्ट कहिये जहर मिला अन्न आदि, अशुचि चांडालादिसै स्पर्श करा ऐसा भोजन, देवता, गुरु, ब्राह्मण इन्का तिरस्कार करनेसें भय और हर्षके होनेसें मनको बिगडा सब चेष्टा विपरीत करे (अर्थात् टेढा तिरछा चले बलवानसे वैर करै बकनेलगे) इस श्लोकमें पूर्व शब्द करणका है और चकारसे काम क्रोध लोभादिकभी उन्माद रोगके कारण है यह जैज्जटका मत है ।

इनमें कहे जो कारणोंसे अल्प (थोडा) मल गुण पुरुषके वातादिक दोष कुपित होकर बुद्धिका निवासस्थान (रहनेका ठिकाना) कोन हृदयकहिये मन उसको बिगाड़ मनके वहनेवाली नसोंमें प्राप्त हो मनुष्यके अंतःकरणको मोहित करे ।

उन्मादका स्वरूप

धीविभ्रमःसत्वपरिप्लवश्चपर्याकुलादृष्टिरधीरताच ।
अबद्धवाक्त्वंहृदयंचशून्यंसामान्यमुन्मादगदस्यचिन्हम् ॥ ६ ॥

अर्थ–बुद्धीमें भ्रम, मनका चञ्चल होना, दृष्टिका सर्वत्र चलना, अधीरजपना, (डरपना) कुछका कुछ बोलना, हृदय शून्य होजाय, (अर्थात् विचार शक्तिका नाश होना) ये उन्माद रोगके सामान्य लक्षण हैं ।

विशेषलक्षण

रूक्षाल्पशीतान्नविरेकधातुक्षयोपवासैरनिलोतिवृद्धः । चि-
न्तादिदुष्टंहृदयंप्रदूष्यबुद्धिंस्मृतिंचापिनिहंतिशीघ्रं ॥ ७ ॥
अस्थानहासस्मितनृत्यगीतवागंगविक्षेपणरोदनानि । पारु-
ष्यकार्श्यारुणवर्णताचजीर्णेबलंचानिलजस्वरूपम् ॥ ८ ॥

अर्थ–रूखा, थोड़ा, और 'शीतल' ऐसा अन्न 'विरेक' इस शब्दसे इस जगह दस्त, और वमन जानना, धातुक्षय, और उपवास, इन कारणोंसें अत्यन्त बढ़ी जो वायु, सो चिन्ता शोकादिकरके युक्त होकर हृदय (मनको) अत्यंत दुष्ट कर, बुद्धि और स्मरण इनका शीघ्र नाश करै और हंसनेके कारण विना

हंसे, मंदमुसकानकरे, नाचे विना प्रसंगके गीत और बोलना करे, हाथोंको सर्वत्र चलावै, रोवै, और शरीर रूखा तथा कृश, और लाल होजाय, और आहारका परिपाक भयेपर ज्यादा जोर होय, यह वातज उन्मादके लक्षण हैं ।

पित्तजउन्मादके कारण और लक्षण

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैर्भोज्यैश्चितंपित्तमुदीर्णवेगम् । उ-
न्मादमत्युग्रमनात्मकस्यहृदिस्थितंपूर्ववदाशुकुर्यात् ॥ ९ ॥
अमर्षसंरंभविनग्नभावाःसंतर्जनाभिद्रवणोष्णरोषाः । प्रच्छा
यशीतान्नजलाभिलाषाःपीतास्यतापित्तकृतस्यलिंगम् ॥ १० ॥

अर्थ—अधकची, कडवी, खट्टी, दाह करनेवाली और गरम ऐसा भोजन करनेसे, संचित भया जो पित्त सो तीव्र वेग होकर अजितेंद्री पुरुषके हृदयमे प्रवेश कर पूर्ववत् अति उग्र उन्माद तत्काल उत्पन्न करे । इस उन्मादसे असहनशील, हाथपैरोंको पटकना, नग्न होजाय, डरपे, भाजने लगे, देह गरम होजाय, क्रोध करे, छायामें रहै, शीतल अन्न और शीतल जल इनकी इच्छा, पीला मुख होजाय, यह लक्षण पित्तज उन्मादके हैं ।

कफजउन्मादके कारण और लक्षण

सम्पूरणैर्मन्दविचेष्टितस्यसोष्माकफोमर्मणिसंप्रवृद्धः । बु-
द्धिंस्मृतिंचाप्युपहन्तिचित्तंप्रमोहयन्संजनयेद्विकारम् ॥११॥
वाक्चेष्टितंमन्दमरोचकश्चनारीविविक्तप्रियताऽतिनिद्रा । छ-
र्दिश्चलालाचबलंचभुंक्तेनखादिशौक्ल्यंचकफाधिकेस्यात् ॥ १२ ॥

अर्थ—मंद भूखमें पेटभर भोजन कर कुछ परिश्रम न करे, ऐसे पुरुषके पित्तयुक्त कफ हृदयमें अत्यन्त बढकर बुद्धि स्मरण और चित्त इनकी शक्तिका नाश करे, और मोहित कर उन्मादरूप विकारको उत्पन्न करे, उस विकारसे वाणीका व्यापार कहिये बोलना इत्यादि मन्द होय, अरुचि होय, स्त्री प्यारी लगे, एकांत वास करे, निद्रा अत्यंत आवै, वमन होय, मुखसे लार वहे, भोजन करे पिछाडी इस रोगका जोर हो । नख, आदिशब्दसे त्वचा, मूत्र, नेत्रादिक यह सफेद होय यह लक्षण कफके उन्मादके हैं ।

सन्निपातके उन्मादके लक्षण

यःसन्निपातप्रभवोऽतिघोरःसर्वैःसमस्तैरपिहेतुभिःस्यात् । स-

वाणिरूपाणिबिभर्त्तिताहृक्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्य ॥ १३ ॥

अर्थ—जो उन्माद वातादिक दोषकरके अथवा तीनों दोषोंके कारणकरके होय, वह सन्निपातजन्य उन्माद बहुत भयंकर होय है। उसमें सब दोषोंके लक्षण होते हैं। इसमें विरुद्ध औषधकी विधि वर्जित है। यह उन्माद वैद्योंकरके त्याज्य है कारण यहकि असाध्य है।

शोकज उन्मादके लक्षण

चौरैर्नरेन्द्रपुरुषैररिभिस्तथान्यैर्वित्रासितस्यधनबांधवसंक्षयाद्वा। गाढंक्षतेमनसिचप्रियया रिरंसोर्जायेतचोत्कटतरोमनसोविकारः ॥ १४ ॥ चित्रंब्रवीतिचमनोनुगतंविसंज्ञोगायत्यथोहसतिरोदितिचातिमूढः।

अर्थ—चोरौंने, राजके मनुष्योंने, अथवा शत्रुओंने, उसीप्रकार सिंह, व्याघ्र, हाथी आदिकिसीने त्रास दिया होय, अथवा धन, बंधूके नाश होनेसे, ऐसे पुरुषका अन्तःकरण असन्त दूखे, अथवा प्यारी स्त्रीसे संभोग करनेकी इच्छावाले पुरुषके मनमें भयंकर विकार उत्पन्न होय, वो पुरुष गुप्त बातकोभी कहने लगे, और अनेक प्रकारका बोले, विपरीत ज्ञान होय, वो गावे, हंसे, और रोवे, तथा मूर्ख हो जाय।

विषजन्य उन्मादके लक्षण

रक्तेक्षणोहतबलेन्द्रियभाःसुदीनःश्यावाननोविषकृतेनभवेद्विसंज्ञः ॥ १५ ॥

अर्थ—विषसे प्रगट उन्मादमें नेत्र लाल होय, बल इन्द्री और शरीरकी कान्ति नष्ट हो जाय, अति दीन हो जाय, उस्के मुखपर कालोंच आय जाय, और संज्ञा जाती रहै।

असाध्य लक्षण

अवाङ्मुखस्तून्मुखोवाक्षीणमांसबलोनरः।
जागरूकोह्यसन्देहमुन्मादेनविनश्यति ॥ १६ ॥

अर्थ—जिस्का मुख नीचेको होय अथवा ऊपरको होय, और जिसका मांस और बल क्षीण हो गया होय, तथा जिस्की निद्रा जाती रही हो, ऐसा मनुष्य निश्चय इस उन्मादकरके नाशको प्राप्त हो।

भूतज उन्मादके लक्षण

अमर्त्यवाग्विक्रमवीर्यचेष्टाज्ञानादिविज्ञानवलादिभिर्यः । उन्मादकालोनियतश्चयस्यभूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥ १७ ॥

अर्थ–वाणी, पराक्रम, शक्ति, देहका व्यापार, तत्त्वज्ञान, शिल्पादि ज्ञान, अथवा ज्ञान कहिये शास्त्रज्ञान और विज्ञान नाम तदर्थ निश्चय आदिशब्दसें स्मृत्यादिक ए जिस्की मनुष्यकीसी न होय, और जिस्का उन्मत्त होनेका काल निश्चय होय, ऐसे उन्मादको भूतोन्माद कहते हैं। भूतशब्दसे यहां आगे कहेंगे सो सब देवता जानने।

देवग्रहके लक्षण

सन्तुष्टःशुचिरतिदिव्यमाल्यगंधोनिस्तंद्रिस्त्ववितथसंस्कृतप्रभाषी । तेजस्वीस्थिरनयनोवरप्रदाताब्रह्मण्योभवतिनरःस देवजुष्टः ॥ १८ ॥

अर्थ–सदा संतोषयुक्त रहै, पवित्र रहै, देहमें दिव्यपुष्पके समान सुगंध, नेत्रोंके पलक लगे नहीं, सत्य और संस्कृतका बोलनेवाला हो, तेजस्वी, स्थिरदृष्टी, वरका देनेवाला, (तेरा कल्याण हो ऐसें वरदेय) ब्राह्मणसें प्रीति राखे, ऐसा मनुष्य (देवग्रह) पीडित जानना, देवशब्दसें गण मात्रिकादि ग्राह्य हैं सो (विदेह) ने कहावी है।

असुरपीडितके लक्षण

संस्वेदीद्विजगुरुदेवदोषवक्ताजिह्माक्षोविगतभयोविमार्गदृष्टिः । संतुष्टोनभवतिचान्नपानजातैर्दुष्टात्माभवतिसदेवशत्रुजुष्टः ॥ १९ ॥

अर्थ–पसीना युक्त देह, ब्राह्मण, गुरू, और देव, इन्में दोषारोपण करनेवाला, टेढी दृष्टिसे देखनेवाला, निर्भय, वेदविरुद्ध मार्गका चलनेवाला, और बहुत अन्न जलसेभी जिस्को संतोष न होय, और दुष्टबुद्धि, ऐसा मनुष्य (दैत्यग्रह) पीडित जानना।

---

१ क्रोधनस्तब्धनयनांगो लालाफेनाविलाननः । निद्रालुः कंपना मुक्तोगणमातृभिरर्दितः ॥१॥

गंधर्वग्रहके लक्षण

दुष्टात्मापुलिनवनांतरोपसेवीस्वाचारःप्रियपरिगीतगंधमाल्यः । नृत्यन्वैप्रहसतिचारुचाल्पशब्दंगंधर्वग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २० ॥

अर्थ–गंधर्व ग्रहसे पीड़ित मनुष्य प्रसन्नचित्त, पुलिन, और वारा बगीचामें रहनेवाला, अनिंदित आचारका करनेवाला, गान, सुगंध, और पुष्प, ये जिस्को प्यारे लगें वह पुरुष नाचे हंसे, सुन्दर बोले, थोड़ा बोले ।

यक्षग्रहके लक्षण

ताम्राक्षःप्रियतनुरक्तवस्त्रधारीगम्भीरोद्रुतगतिरल्पवाक्सहिष्णुः । तेजस्वीवदतिचकिंददामिकस्मैयोयक्षग्रहपरिपीडितो मनुष्यः ॥ २१ ॥

अर्थ–यक्षग्रहसे पीड़ित मनुष्यके नेत्र लाल हों, सुंदर बारीक ऐसे रक्त वस्त्रका धारण करनेवाला, गंभीर, बुद्धिवान जलदी चलने वाला, प्रमाणका बोलनेवाला, सहनशील, तेजस्वी, किसको क्या देऊं ऐसे बोलनेवाला ऐसा होय ।

पितृग्रहके लक्षण

प्रेतानांसदिशतिसंस्तरेषुपिंडान्भ्रान्तात्माजलमपिचापसव्यहस्तः । मांसेप्सुस्तिलगुडपायसाभिकामस्तद्भक्तोभवतिपितृग्रहाभिजुष्टः ॥ २२ ॥

अर्थ–कुशाके ऊपर प्रेतोंको (पितरोंको) पिंड देय, चित्तमें भ्रांति रहै, और उत्तरीय वस्त्र अपसव्यकरके तर्पणभी करे, मांस खानेकी इच्छा होय, तथा तिल, गुड, खीर इनपर मन चले (इस कहनेका प्रयोजन यह है कि जिसकी जिस पदार्थपर इच्छा होय उसको उसी पदार्थकी बली देनेसे उस ग्रहकी शांति होती है ऐसेही सर्वत्र जानना) ये डल्हनका मत है । और वह मनुष्य पितरोंकी भक्ति करे ये लक्षण पितृग्रहपीड़ित मनुष्यके है ।

सर्पग्रहयुक्तके लक्षण

यस्तूर्व्यांप्रसरतिसर्पवत्कदाचित्सृक्किण्यौविलिहतिजिव्हया तथैव । क्रोधालुर्मधुगुडदुग्धपायसेप्सुर्विज्ञेयोभवतिभुजंगमेनजुष्टः ॥ २३ ॥

अर्थ–जो मनुष्य सर्पके समान पृथ्वीसे लोटाकरे, अर्थात् छाती केवल चले, तथा सर्पके समान अपने ओष्ठप्रांत (होठोंको) चाटाकरे, सदा क्रोधी रहै, सहत, गुड़, दूध और खीरकी इच्छा रहै, वो सर्पग्रहग्रस्त जानना।

राक्षसग्रहपीड़ितके लक्षण

मांसासृग्विविधसुराविकारलिप्सुर्निर्लज्जोभृशमतिनिष्ठुरोऽति-
शूरः। क्रोधालुर्विपुलबलोनिशाविहारीशौचद्विट्भवतिचरा-
क्षसैर्गृहीतः ॥ २४ ॥

अर्थ–जो मनुष्य मांस, रुधिर, नानाप्रकारके मद्य पीनेकी इच्छा करे, और निर्लज्ज, अतिनिष्ठुर, अत्यन्त शूर, क्रोधी, बड़ाबली, रात्रिमें डोलनेवाला, अपवित्र, ऐसा होय वह (राक्षसकरके ग्रस्त जानना।

पिशाचजुष्टके लक्षण

उद्धस्तःकृशपरुषश्चिरप्रलापीदुर्गंधोभृशमशुचिस्तथाऽतिलोलः।
बव्हाशीविजनवनांतरोपसेवीव्याचेष्टन्भ्रमतिरुदन्पिशाच-
जुष्टः ॥ २५ ॥

अर्थ–जो अपने हाथ ऊपरको करे, (उद्धस्त्र, ऐसाभी पाठ है) उस जगह उद्धस्त्र नाम नंगा हो जाय, तेजरहित, बहुत देरपर्यंत बकनेवाला, जिस्के देहमें दुर्गंध आवै अपवित्रते, तथा अति चंचल कहिये सब अन्नपानमें इच्छा करनेवाला, खानेको मिलै तो बहुत भोजन करे, एकांत वनांतरोंमें रहनेवाला, विरुद्ध चेष्टा करनेवाला, रुदन करता, डोलनेवाला ऐसा मनुष्य पिशाचग्रस्त जानना। प्रसंगवससे ब्रह्मराक्षस और भूतोन्मादके लक्षण ग्रंथान्तरोंसे लिखते हैं।

देवविप्रगुरुद्वेषीवेदवेदांगविच्छविः।
आशुपीडाकरोऽहिंस्रोब्रह्मराक्षससेवितः ॥ २६ ॥

अर्थ–देव, ब्राह्मण, गुरूसे द्वेषकर्त्ता, वेद और वेदके अंग (शिक्षा, कल्प व्याकरणादि)का पढ़ा भया, शीघ्र पीडाका कर्त्ता, हिंसा करे नहीं, ये लक्षण ब्रह्मराक्षससेवी मनुष्यके हैं।

भूतोन्मादके लक्षण

महापराक्रमोयस्यदिव्यंज्ञानंचभाषते।
उन्मादकालोनैश्चित्योभूतोन्मादीसउच्यते ॥ २७ ॥

अर्थ-महापराक्रमी, जिसके श्रेष्ठ ज्ञानको कहे, और जो उन्माद कालका निश्चै न होय, उस्को भूतोन्मादी कहते हैं, अब कहते हैं कि देवादिक ग्रह इस मनुष्यको तीन कार्यके वास्ते ग्रहण करते हैं, हिंसा अर्थात् मारनेके निमित्त, और पूजाके निमित्त, तथा विहारके निमित्त, इसमें हिंसाके निमित्त ग्रस्त मनुष्य साध्य (अच्छा) नहीं होय, उसके लक्षण आगे कहते हैं।

स्थूलाक्षोद्रुतमटनःसफेनलेहीनिद्रालुःपततिचकंपतेचयोऽति। यश्चाद्रिद्विरदनगादिविच्युतःस्यात्सोऽसाध्योभवतितथात्रयोदशेऽब्दे ॥ २८ ॥

अर्थ-नेत्र भयानक होजाय, शीघ्र चले, मुखमें जो झाग हैं उन्को चाटनेवाला, और जिस्को निद्रा बहुत आवै, तथा गिरपडे, कांपे, और जो पर्वत, हाथी, अथवा नग नाम वृक्ष, आदिशब्दसे भीति, मन्दिर आदि जानने, इन्से गिरकर ग्रहग्रस्त होय, वो असाध्य है, तैसेही तेरवें वर्षमें सर्व देवादि उन्मादी असाध्य जानने, (विदेह)ने विशेष लक्षण कहे है सो ग्रन्थान्तरोंसे जानलेने।

देवादीनामावेशसमयः

देवग्रहाःपौर्णमास्यामसुराःसंध्ययोरपि। गन्धर्वाःप्रायशोऽष्टम्यांयक्षाश्चप्रतिपद्यथ ॥ २९ ॥ पितृग्रहास्तथादर्शेपंचम्यामपिचोरगाः। रक्षांसिरात्रौपैशाचाश्चतुर्दश्यांविशंतिहि ॥ ३० ॥

अर्थ-देवग्रह पूर्णमासीको प्रवेश करते हैं, असुरग्रह, सायंकालमैं, अपिशब्दसैं पूर्णमासीकोभी प्रवेश करते हैं, गंधर्वग्रह बहुधा अष्टमीको, प्रायशब्दसैं संध्याकोभी गंधर्व ग्रह प्रवेश करते हैं, यक्ष ग्रह पड़वाको, पितृग्रह अमावास्याको, सर्पग्रह पंचमीको, अपिशब्दसें अमावास्याकोवी प्रवेश करते हैं, राक्षस रात्रिमें, और पिशाच चतुर्दशीको, मनुष्यके देहमें प्रवेश करते हैं, तिथिकहनेका यह प्रयोजन है कि जिसजिस तिथीको जो जो ग्रह मनुष्यको ग्रस्त करे उसको उसी उसी तिथिमें शांतिके निमित्त बलिदानादिक कराने चाहियें। * शंका-क्योंजी जब ग्रहग्रस्त मनुष्योंको उन्माद होता है तौ वो ग्रह मनुष्यकी देहमैं प्रवेश करते क्यों नहीं दीखते हैं इसवास्ते कहते हैं।

दर्पणादीन्यथाछायाशीतोष्णंप्राणिनोयथा। स्वमणिंभास्क-

---

१ संध्यात्रिनाडीप्रमिताऽर्कबिंबादर्द्धोदितास्तादधऊर्ध्वमत्र। इति।

२ ग्रहा गृह्णन्ति ये येषु तेषां तेषु विशेषतः। दिनेषु बलिहोमादीन्प्रयुंजीत चिकित्सकः ॥१॥

रांशुश्चयथादेहंचदेहधृक् । विशंतिनचदृश्यंतेग्रहास्तद्वच्छरी-
रिणाम् ॥ ३१ ॥

अर्थ–जैसे दर्पणमें मनुष्यका प्रतिबिंब पड़े है, आदिशब्द इस जगह प्रकारवाची है, अर्थात् जल, तैल आदिमे जैसे छाया पड़ती है, और सरदी, गरमी जैसे मनुष्योंको लगती है, अथवा जैसे सूर्यकिरण सूर्यकान्त मणि (आतसीकाच)में प्रवेश करें हैं, अथवा जैसे जीव देहमें प्रवेश करे है, इसीप्रकार सब ग्रह मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करते हैं परंतु दीखते नहीं है, इस श्लोकके पोषक दृष्टांत जेज्जट आचारीने बहुत दीने हैं, परंतु हमने ग्रन्थवढ़नेके भयसैं नहिं लिखे।

इस उन्मादरोगमें सर्वत्र देवशब्दकरके देवतानकेसे आचरणवाले देवतानके अनुचर (दास) जानने चाहियें, क्योंकि देवतानको मनुष्यनके अपवित्र देहमें प्रवेश होना असंभव है सो (सुश्रुत)मे लिखाहै।

नतेमनुष्यैःसहसंविशन्तिनवामनुष्यान्क्वचिदाविशन्ति । ये
त्वाविशन्तीतिवदन्तिमोहात्तेभूतविद्याविषयादपोह्याः॥३२॥
तेषांग्रहाणांपरिचारिकायेकोटीसहस्रायुतपद्मसंख्याः । अ-
सृग्वसामांसभुजःसुभीमानिशाविहाराश्चतथाविशंति ॥ ३३ ॥

अर्थ–जो देवादिक मनुष्यके साथ मिलते नहीं हैं नवे मनुष्योंकी देहमें प्रवेश करते हैं, और जो वैद्य प्रवेश करते हैं ऐसे कहते हैं, वो अज्ञानसे कहते हैं, ऐसा वैद्य भूतविद्यावाला जानकर साज्य है। तौ कौन प्रवेश करते हैं इसवास्ते कहते हैं तेषामिति–अर्थात् उन देवताओंके परिचारक (नोकर) जो करोड़ों हजारों, पद्म संख्याक, रुधिर, वसा, मांसके भोजन करनेवाले, भयंकर, रात्रिमें विचरनेवाले हैं वो प्रवेश करते हैं।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरमाधवार्थबोधनीमाथुरीभाषाटीकाया उन्मादरोगः समाप्तः ॥

अपस्मारनिदानम् ।

प्रथम सुश्रुतोक्त इसरोगकी निरुक्ति लिखते हैं

स्मृतिभूतार्थविज्ञानमपस्तत्परिवर्जने ।
अपस्मारइतिप्रोक्तस्ततोऽयंव्याधिरंतकृत् ॥ १ ॥

अर्थ-स्मृतिशब्द प्राणियोंके अर्थज्ञानको कहते हैं, और अपशब्द उसका नाशक है, इसीसे स्मृति और अप इन दोनों शब्दोंसे अपस्मार यह शब्द सिद्ध हुआ इसी पूर्वोक्त हेतुके नाशसे यहरोग जलादिकके विषै प्रवेश होनेसे प्राणांतकारकहै।

अपस्मारस्य निदानपूर्विकां सम्प्राप्तिमाह

चिंताशोकादिभिर्दोषाःक्रुद्धाहृत्स्रोतसिस्थिताः।
कृत्वास्मृतेरपध्वंसमपस्मारंप्रकुर्वते ॥ २ ॥

अर्थ-चिंता, शोक, आदिशब्दसे क्रोध, लोभ, मोहादिसे कुपित भये जो दोष (वात, पित्त, कफ,) सो हृदयमें स्थित जो मनके वहनेवाली नाडी उनमें प्राप्त हो स्मरण (ज्ञान)का नाश कर अपस्माररोगको प्रगट करे है।

वाग्भटके मतसे निदान

मिथ्यायोगेन्द्रियार्थानांकर्मणामतिसेवनात् । विरुद्धमलिनांकर्मविहारकुपितैर्मलैः ॥ ३ ॥ वेगनिग्रहशीलानामहिताशुचिभोजनात्। रजस्तमोभिभूतानांगच्छतांवारजस्वलाम्। तथाकामभयोद्वेगक्रोधशोकादिभिर्भृशम्। चेतसोऽभिभवैःपुंसामपस्मारोभिजायते ॥ ४ ॥

अर्थ-इन्द्रीनके अर्थ कहिये विषय और कर्म, इनका मिथ्या योग, अतियोग और अयोगके सेवन करनेसे, तथा विरुद्ध और मलिन भोजन और विहारसे कुपित भये जो दोष उनसे तथा मूत्रमलादिवेगोंके धारण करनेवालोंके, अहित और अपवित्र भोजन करनेसे, रजोगुण, तमोगुणी, मनुष्योंके रजस्वला स्त्रीगमन करनेसे, तथा काम, भय, उद्वेग, क्रोध, शोक इन कारणोंसे; चित्त (मन)के विगडनेसे, मनुष्योंके अपस्माररोग प्रगट होय है। तहां श्रवण, स्पर्शन, दर्शन, रसन, घ्राण, ए इन्द्रीनके अर्थ हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध ए इन्द्रीनके विषय हैं। इनके अतिसेवनसे उदाहरण दिखाते हैं। जैसे पुरुषका इष्ट नाशादि सुनना, मिथ्या योग है। पटहादि वाजोंका सुनना अतियोग है। कुछ न सुनना अयोग है। ऐसेही अपवित्र आदिको छूना, मिथ्यायोग हैं। अति शीतल, अति गरम छूना योग, स्नान उवटना आदिका सेवन अतियोग है। किसीको न छूना अयोग है, छोटी वस्तुका देखना मिथ्यायोग है। वडी वस्तूका देखना अतियोग, और किसीको न देखना अयोग है, रसोंका अतिसेवन अतियोग है, थोडा सेवन मिथ्यायोग है, असेवन अयोग है। दुर्गंधका

सूंघना मिथ्यायोग है। अतितीक्ष्ण गंधका सूंघना अतियोग है, किसीको न सूंघना अयोग है। तहां कायिक, वाचिक, मानसिक तीन प्रकारका कर्म कहा है तहां कायिक कर्म जैसे कुसमयमें दंडकसरतका करना मिथ्यायोग, बहुत करना अतियोग, कुछ न करना अयोग है। खोटा और झूठ बोलना वाणीका मिथ्यायोग है, बहुत बोलना अतियोग, चुप होजाना अयोग है। मानसकर्म जैसे शोकादि चिंतवन मानसिक मिथ्यायोग है, अत्यंत चिंता करना अतियोग है। और किसीकी चिंता न करना अयोग है। इति आगे श्लोक सब माधवके हैं।

अपस्मारके सामान्यलक्षण

तमःप्रवेशःसंरंभोदोषोद्रेकहतस्मृतिः।
अपस्मारइतिज्ञेयोगदोघोरश्चतुर्विधः ॥ १ ॥

अर्थ–अन्धकारमें प्रवेश करनेके समान ज्ञानका नाश होना, नेत्र टेढे बांके फिरे दोषोंके बढनेसे ज्ञानका नष्ट होना, ये लक्षण जिस रोगमें होय ऐसा यह भयंकर (अपस्मार) रोग चार प्रकारका है इसको लौकिकमें मिरगी ऐसे कहतेहैं।

पूर्वरूप

हृत्कंपःशून्यतास्वेदोध्यानंमूर्च्छाप्रमूढता।
निद्रानाशश्चतस्मिंस्तुभविष्यतिभवंत्यथ ॥ २ ॥

अर्थ–जब अपस्मार होनेवाला होय है तब ये लक्षण होते हैं हृदय कांपै, और शून्य पडजाय, (कुछ सूझे नहीं) चिंता, मूर्च्छा, पसीने आवे, ध्यान लगजाय, मूर्च्छा कहिये मनका मोह, और प्रमूढता कहिये इन्द्रीका मोह, होय निद्रा जाती रहै।

वातज अपस्मारके लक्षण

कंपतेप्रदशेद्दंतान्फेनोद्वामीश्वसत्यपि।
परुषारुणकृष्णानिपश्येद्रूपाणिचानिलात् ॥ ३ ॥

अर्थ–वातके अपस्मारसे रोगी कांपे, दांतोंको चबावे, मुखसे झाग गेरे, और श्वास भरे, तथा कर्कश अरुणवर्ण और काला वर्ण मनुष्योंका दीखै अर्थात् कोई नीलवर्णका मनुष्य मेरे पास दौडा आता है। इसीप्रकार पित्तसे पीलेवर्णका पुरुष दौडा आता है। और कफमें सफेद रंगका पुरुष मेरे सामने दौडा आता है। ऐसे जानना।

पित्तकी मृगीके लक्षण

पीतफेनांगवक्राक्षःपीतासृग्रूपदर्शनः ।

सतृष्णोष्णाऽनलव्याप्तलोकदर्शीचपैत्तिकः ॥ ४ ॥

अर्थ-पित्तकी मिरगीवालेके झाग, देह, मुख और नेत्र ए पीले होते हैं। और वह पीले रुधिरके रंगकीसी सब वस्तु देखे, प्यासयुक्त और गरमीके साथ अग्निसे व्याप्त भया ऐसा सब जगतको देखे।

कफकी मृगीके लक्षण

शुक्लफेनांगवक्राक्षःशीतहृष्टांगजोगुरुः ।

पश्यञ्शुक्लानिरूपाणिमुच्यतेश्लैष्मिकश्चिरात् ॥ ५ ॥

अर्थ-कफकी मृगीवालेके झाग, अंग, मुख और नेत्र सपेद होय, देह शीतल होय, तथा देहके रोमांच खडे रहैं, भारी होय, और सब पदार्थ सपेद दीखैं यह अपस्मार (मिरगी)रोग देरमें छोडे। यासे यह सूचना करी कि वातपित्तकी मृगी जलदी रोगीको छोड़ देती है।

सन्निपातकी मृगीके लक्षण

सर्वैरेतैःसमस्तैश्चलिंगैर्ज्ञेयस्त्रिदोषजः ।

अपस्मारःसचासाध्योयःक्षीणस्याऽनवश्चयः ॥ ६ ॥

अर्थ-जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलतेहों वो त्रिदोषज अपस्मार जानना, यह असाध्य है। और जो क्षीण पुरुषके होय वोभी असाध्य है। तथा पुराना पड़गया होय वोभी अपस्मार (मिरगी)रोग असाध्य है।

मिरगीके असाध्यलक्षण

प्रतिस्फुरन्तंबहुशःक्षीणंप्रचलितभ्रुवम् ।

नेत्राभ्यांचविकुर्वाणमपस्मारोविनाशयेत् ॥ ७ ॥

अर्थ-वारंवार कंपयुक्त होय, क्षीण होगयाहो, भ्रकुटी (भौंह)का चलानेवाला और नेत्र टेढ़े वांके करनेवाला ऐसा अपस्मारी रोगी जीवे नहीं।

मिरगीरोगकी पाली

पक्षाद्वाद्वादशाहाद्वामासाद्वाकुपितामलाः ।

अपस्मारायकुर्वन्तिवेगंकिंचिदथोत्तरम् ॥ ८ ॥

अर्थ-कोपको प्राप्तभये जो दोष सो पंद्रवे दिन अथवा वारवे दिन अथवा

महीनाभरमें मिरगीरोग प्रगट करे, तिनमें पैत्तिक १५ दिन, वातिक, १२ दिन और श्लैष्मिक ३० दिनमें आती है। इस जगह बारवे दिनके पिछाडी पक्ष कहना ठीक था फिर पहिले पक्ष धरनेका यह प्रयोजन है कि अधिक कालकरकेही दोष वेग करते हैं यह कहा। किंचिदथोत्तरम्—इस पदसे यह सूचना करी है कि जिस जिस दोषका जो जो काल कहा है उस्से पहिलेवी दोषोंके तारतम्यसे मिरगीरोग होय है। ऐसे जानना। * शंका—वेग उत्पन्नकरके अपस्मारके प्रगट कर्त्ता दोष देहमें सदा रहते हैं, फिर वो सर्वकालमें वेग क्यौं नहीं करते द्वादशादि दिनमें क्यौं करते हैं? इस विषयमें दृष्टांतरूप समाधान कहते हैं।

देवेवर्षत्यपियथाभूमौवीजानिकानिचित्। शारदिप्रतिरोहन्तितथाव्याधिसमुच्छ्रयः॥ ९॥

अर्थ—जैसे चातुर्मासमें इन्द्र वर्षेवी है परन्तु कोई जव गेंहूं चना आदि वीज शरदऋतुमेंही ऊगते हैं तैसेही सर्व रोगके वीजरूप वातादिक दोष कदाचित् किसी अपस्मारादि व्याधिविशेषके निदानादिकका संगम होनेसे उस रोगको प्रगट करते है। अथवा इसको मुख्य प्रयोजन यह है कि वीजके अंकुर फूटनेमें तेज, वायु, पृथ्वी, जल ये सहायकवी हैं। परन्तु वे सब कालविशेषकी प्रतीक्षा (इच्छा) करते हैं। अंकुर आनेको कालही सहाय चाहिये अर्थात् जिसकालमें जिस अंकुरका वीज आता है वो उसीकालमें आवैगा बीचमें कभी नहीं आनेवाला यही न्याय चातुर्थिक ज्वरादिकोंमेंभी जानना।

अथ वातव्याधिनिदानम्।

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः। विषमादुपचाराच्चदोषासृक्स्रावणादपि॥ १॥ लंघनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टनैः। धातूनांसंक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात्॥ २॥ वेगसंधारणादामादभिघातादभोजनात्। मर्मवाधाद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानादिसेवनात्॥ ३॥ देहेस्रोतांसिरिक्तानिपूरयित्वाऽनिलोबली। करोतिविविधान्व्याधीन्सर्वांगैकांगसंश्रयान्॥ ४॥

अर्थ—रूखा, शीतल, थोडा और हलका ऐसे अन्न खानेसे, अति मैथुनके करनेसे, बहुत जागनेसे, विषम उपचार करनेसे दोष (कफ पित्त मल मूत्र इत्यादि) और रुधिर इनके निकलनेसे, अर्थात् वमन विरेचनसे । लंघन, अर्थात् अखाडे आदिमें कला खेलनेसे, नदी आदिमें तैरनेसे, बहुत चलनेसे, अति दंड-कसरत आदि श्रमके करनेसे, अत्यंत विरुद्धचेष्टा करनेसे, रस रुधिर आदि धातून्के क्षय होनेसे, चिन्ता शोक और रोगद्वारा कृश होनेसे मल मूत्रादिकोंके वेग रोकनेसे, आगेसे लकडी आदिकी चोट लगनेसे, उपवास (व्रत)के करनेते आदि ले सब मर्मस्थानोंमेंके लगनेसे, हाथी ऊंट घोडा इत्यादि जल्दी चलनेवाली सवारीपर बैठनेसे, कोपको प्राप्त भई जो बलवान् वायु सो देहमें खाली जो नस उनमें प्राप्त हो सर्वांग, अथवा एक अंगमें व्याप्त होनेवाली ऐसी अनेकप्रकारकी वातव्याधि उत्पन्न करे ।

पूर्वरूप

अव्यक्तंलक्षणंतेषांपूर्वरूपमितिस्मृतम् ।
आत्मरूपंतुतद्व्यक्तमपायोलघुतापुनः ॥ ५ ॥

अर्थ—उस वक्ष्यमाण वातव्याधिके जो प्रगट लक्षण उसको पूर्वरूप ऐसे कहते हैं । ज्वरादिकोंके सदृश विशिष्ट नहीं हैं । और जो रूप प्रगट होय अर्थात् दोषादि भेदकरके यथार्थ दीखे उसको उस व्याधिका लक्षण जानना । अपानवायुको चंचल होनेसे स्तंभ संकोच कंपादिकका कदाचित् अभाव होय है । और लघुता (शरीरकी उस वायुकरके धातुशोषण करनेसे) अथवा अपायलघुता कहिये सब वातविकारोंका अपाय कहिये अभाव होय और वातविकारोंकी लघुता कहिये अल्पत्वकरके जो स्थिति है सो निःशेष निवृत्ति नहीं होय । अब नानाप्रकारकी व्याधि करै है ये जो कहिआयेहैं उसको आगेके श्लोकमें कहते हैं ।

संकोचःपर्वणांस्तंभोभंगोऽस्थ्नांपर्वणामपि । लोमहर्षःप्रलापश्चपाणिपृष्ठशिरोग्रहः ॥ ६ ॥ खांज्यपांगुल्यकुब्जत्वंशोषोंऽगानामनिद्रता । गर्भशुक्ररजोनाशःस्यंदनंगात्रसुप्तता ॥७॥ शिरोनासाक्षिजत्रूणांग्रीवायाश्चापिहुंडनम् । भेदस्तोदोऽर्त्तिराक्षेपोमोहश्चायासएवच ॥ ८ ॥ एवंविधानिरूपाणिकरोतिकुपितोऽनिलः । हेतुस्थानविशेषाच्चभवेद्रोगविशेषकृत् ॥ ९ ॥

अर्थ-संधीन्का संकोच और स्तंभ, हड्डीन्का और संधीन्का फूटनेकीसी पीडा, रोमांच, वाह्यात् बकना, हाथ पैर और मुख इनका जकडजाना, खंजत्व, पांगुरा होना, कुबडापना, अंगोंका सूजना, निद्राका नाश, गर्भका न रहना, शुक्र और रज (स्त्रीका आर्त्तव) इन्का नाश, कंप, अंगोंमें शून्यता, मस्तक, नाक, मुख, जत्रु और नाड इनका भीतर जाना, अथवा टेढे होजाय, भेदसदृश पीडा, नोचनेकीसी पीडा, शूल, आक्षेपरोग जो आगे कहेंगे, मोह, श्रम, कुपित भई जो वायु याप्रकार लक्षण करे है। वो वायु हेतु और स्थान इन भेदसे विशिष्ट रोग उत्पन्न करनेवाली होती है। जैसे कफावृत होनेसे मन्यास्तंभ रोग करे यदि पक्काशयमें वात स्थित होय तौ आंतोंका गुंजना इत्यादि रोग करे है।

कोष्ठाश्रितवायुके कार्य

तत्रकोष्ठाश्रितेदुष्टेनिग्रहोमूत्रवर्चसोः।
वर्ध्मह्रद्रोगगुल्मार्शःपार्श्वशूलंचमारुते ॥ १० ॥

अर्थ-कोठेमें स्थित वायु दुष्ट होनेसे मलमूत्रका अवरोध होय, बदरोग, हृदयरोग, गोला, ववासीर, और पसवाडोंमें पीडा इतने रोग उत्पन्न करे।

सर्वांगकुपितवायुके कार्य

सर्वांगकुपितेवातेगात्रस्फुरणजृंभणम्।
वेदनाभिःपरीतस्यस्फुटंतीवास्यसंधयः ॥ ११ ॥

अर्थ-सब अंगकी वायु कुपित होनेसे अंगोंका फरकना जंभाई, और संधी वेदनायुक्त हो, फूटनेकीसी पीडा होय।

गुदामें स्थितवायुके कार्य

ग्रहोविण्मूत्रवातानांशूलाध्मानाश्मशर्कराः।
जंघोरुत्रिकहृत्पृष्ठरोगशोफोगुदेस्थिते ॥ १२ ॥

अर्थ-वायु गुदा[1]में स्थित होनेसे मलमूत्र और वायुका रुकना, शूल, अफरा, पथरी, जंघा ऊरू त्रिकस्थान हृदयपीठ इनमें पीडा, और सूजन ये रोग होते हैं।

आमाशयस्थितवायुके कार्य

रुक्पार्श्वोदरहृन्नाभेस्तृष्णोद्गारविषूचिकाः।

---

१ इस जगह गुदाशब्दकरके उत्तरगुदा अर्थात् पक्काशय जानना। गुदा नहीं जानना। क्योंकि गुदामे कहे तौ उस्को अश्मरी (पथरी) कर्तृत्व नही होसके।

कासःकंठास्यशोषश्चश्वासश्चामाशयेस्थिते ॥ १३ ॥

अर्थ–वायु आमाशयमें स्थित होनेसे पसवाड़ा उदर हृदय और नाभि इन्में पीडा होय, प्यास, डकार, और हैजा (मुख और गुदाके द्वारा अन्नकी प्रवृत्ति) खांसी, कंठ मुखका सूखना, श्वास ये लक्षण होते हैं।

पक्वाशयस्थवायुके कार्य

पक्वाशयस्थोऽत्रकूजंशूलाटोपौकरोतिच।

मूत्रकृच्छ्रपुरीषत्वमानाहंत्रिकवेदनाम् ॥ १४ ॥

अर्थ–वायु पक्वाशयमें होय तौ आंतोंका गूंजना, शूल, आटोप (गुडगुडाशब्द) मलमूत्र कष्टसे निकले, अफरा, त्रिकस्थानमें पीडा, ए लक्षणोंको करे।

इन्द्रीन्में स्थितवायुके कार्य

श्रोत्रादिष्विंद्रियवधंकुर्यात्क्रुद्धसमीरणः।

अर्थ–कानसेआदि जो और इन्द्री हैं उनमें कुपितवायु यदि स्थित होय तो इन्द्रीन्का नाश करे।

रसधातुगतवायूके लक्षण

त्वग्रूक्षास्फुटितासुप्ताकृशाकृष्णाचतुद्यते।

आतन्यतेसरागाचमर्मरुक्त्वग्गतेऽनिले ॥ १५ ॥

अर्थ–वायु त्वगत अर्थात् धातुरूप त्वचामें प्राप्त होनेसे त्वचा रूखी, और फटी, शून्य, कर्कश और काली होजाय, और उसमें चमका चलैं, तथा तन जाय, कुछ तावेके समान लाल रंग होजाय, और हृदयादि मर्मोंमें पीडा होय।

रक्तगतवायुके लक्षण

रुजस्तीव्राःससंतापावैवर्ण्यंकृशतारुचिः।

गात्रेचारूंषिभुक्तस्यस्तंभश्चासृग्गतेऽनिले ॥ १६ ॥

अर्थ–वायु रुधिरमिश्रित होनेसे सन्तापयुक्त तीव्रवेदना होय, देहका विवर्ण होय, कृशता, अरुचि और देहमें फोडा, तथा भोजन करनेके उपरांत देहका जिकड़जाना, ये लक्षण हैं।

मांसमेदोगतवायुके लक्षण

गुर्वंगन्तुद्यतेस्तब्धंदंडमुष्टिहतंयथा।

सरुक्श्रमितमत्यर्थंमांसमेदोगतेऽनिले ॥ १७ ॥

अर्थ–मांस और मेदमें वायुके पहुंचनेसे अंग भारी होजाय चोंटनेके समान पीडा होय, अथवा निश्चल होजाय, अथवा मुक्का मारनेकीसी तथा लकडी मारनेकीसी पीडा होय।

मज्जास्थिगतवायूके लक्षण

मेदोऽस्थिपर्वणांसन्धिशूलंमांसवलक्षयः।
अस्वप्नंसततारुक्‌चमज्जास्थिकुपितेऽनिले ॥ १८ ॥

अर्थ–मज्जा और हड्डी इन ठिकानेपर वायुका कोप होनेसे हड्डी फूटनी हो, संधिसंधिमें पीडा होय, मांस और वल ये क्षीण होजाय, निद्रा आवे नहीं, और निरन्तर पीडा होय। इसजगह सुश्रुतने कुछ विशेष लिखा है।

शुक्रगतवायूके लक्षण

क्षिप्रंमुंचतिवध्नातिशुक्रंगर्भमथापिवा।
विकृतिंजनयेच्चापिशुक्रस्थःकुपितोऽनिलः ॥ १९ ॥

अर्थ–शुक्रस्थानकी वायूका कोप होनेसे वो वायु शुक्रको जल्दी पतन करे। और बंधन करे, अथवा गर्भको जलदी छोडे, और बंधन करे, और गर्भका अथवा शुक्रका विकार प्रगट करे।

शिरागतवायूके लक्षण

कुर्याच्छिरागतःशूलंशिराकुंचनपूरणं।
सवाह्याभ्यन्तरायामंखल्लींकुब्जत्वमेवच ॥ २० ॥

अर्थ–वायू शिरा (नाडी)गत होनेसे शूल, नाडीका संकोच, और स्थूलत्व करे। और, बाह्यायाम आभ्यंतरायाम, खल्ली, और कुबडापना, इन रोगोंको उत्पन्न करे।

स्नायुगत और संधिगतवायूके लक्षण

सर्वांगैकांगरोगांश्चकुर्यात्स्नायुगतोऽनिलः।
हंतिसंधिगतःसंधीञ्छूलशोथौकरोतिच ॥ २१ ॥

अर्थ–वायू स्नायुगत होनेसे सर्वांग और एकांग रोगोंको करे, संधिगत होनेसे संधिका विश्लेप (जुदा जुदा होना) और संधिका जकडजाना तथा शूल और सूजन इन रोगोंको प्रगट करे।

पित्त और कफ इनसे आवृत्त हुई प्राणादिकवायूके आधेआधे श्लोकोंमें लक्षण कहते हैं

प्राणेपित्तावृतेछर्दिर्दाहश्चैवोपजायते । दौर्बल्यंसदनंतंद्रावैरस्यंचकफावृते ॥ २२ ॥ उदानेपित्तयुक्तेतुदाहोमूर्च्छाभ्रमक्लमः । अस्वेदहर्षौमन्दाग्निःशीततताचकफावृते ॥ २३ ॥ स्वेददाहौष्ण्यमूर्च्छाःस्युःसमानेपित्तसंयुते । कफेनसंगेविण्मूत्रेगात्रहर्षश्चजायते ॥ २४ ॥ अपानेपित्तयुक्तेतुदाहौष्ण्यंरक्तमूत्रता । अधःकायेगुरुत्वंचशीततताचकफावृते ॥ २५ ॥ व्यानेपित्तावृतेदाहोगात्रविक्षेपणंक्लमः । स्तंभनोदंडकश्चापि शोथशूलौकफावृते ॥ २६ ॥

अर्थ–प्राणवायु पित्तसंयुक्त होनेसे वमन, और दाह उत्पन्न होय । और कफसंयुक्त होनेसे दुर्वलपना, ग्लानि, तंद्रा और मुखमें विरसता ये होय । उदानवायु पित्तयुक्त होनेसे दाह, मूर्च्छा, भ्रम, अनायास, श्रम ए होय । और कफयुक्त होय तौ पसीना नहीं आवै, रोमांच, अग्नि मंद होय, और शीत लगे । समानवायु पितयुक्तहोनेसे पसीना, दाह, गरमी और मूर्च्छा ये होते हैं । पित्तकफयुक्तहोनेसे मलमूत्रका रुकना, और रोमांच होय । अपानवायु पित्तयुक्तहोनेसे कमरके नीचेके भागमें भारीपना, और सरदीका लगना, व्यानवायु पित्तयुक्तहोनेसे दाह, गात्रोंका विक्षेप अर्थात् इधरउधरको फेरना, और श्रम होय, कफयुक्तहोनेसे शरीर लकड़ीके समान स्तंभ होय, सूजन और शूल होय, इस जगह प्राणादि पंच वायूनके परस्पर मिलनेसे वीसप्रकारके आवर्ण चरकोक्त जानलेने और वाग्भटके मतसे आवर्ण वाईसप्रकारके हैं हमने ग्रंथके विस्तारभयसे छोड़दीने हैं ।

आक्षेपकके सामान्य लक्षण

यदातुधमनीःसर्वाःकुपितोऽभ्येतिमारुतः । तदाक्षिपत्याशुमुहुर्मुहुर्देहंमुहुश्चरः । मुहुर्मुहुस्तदाक्षेपादाक्षेपकइतिस्मृतः ॥ २७ ॥

अर्थ–जिसकालमें वायु कुपितहोकर सव धमनीनाड़ीन्मे जायकर प्राप्त होय, तव उसजगे वह वारंवार संचार करके देहको वारंवार आक्षिप्त करती है, अर्थात् हा-

थीपर बैठनेवाले पुरुषके समान सब देहको चलायमान करे उसदेहके वारंवार च-
लानेको आक्षेपक रोग कहते हैं ।

आक्षेपकके अपतंत्र और अपतानक ऐसे दोअवस्थाविशेषको कहते हैं

क्रुद्धःस्वैःकोपनैर्वायुःस्थानादूर्ध्वंप्रवर्त्तते । पीडयन्हृदयंगत्वा
शिरःशंखौचपीडयेत् ॥२८॥ धनुर्वन्नामयेद्गात्राण्याक्षिपेन्मोह-
येत्तथा। सकृच्छ्रादुच्छ्वसेच्चापिस्तब्धाक्षोऽथनिमीलकः ॥२९॥
कपोतइवकूजेच्चनिःसंज्ञःसोऽपतंत्रकः । दृष्टिंसंस्तभ्यसंज्ञांच
हत्वाकंठेनकूजति ॥ ३० ॥ हृदिमुक्तेनरःस्वास्थ्यंयातिमो-
हंवृतेपुनः । वायुनादारुणंप्राहुरेकेतमपतानकम् ॥ ३१ ॥

अर्थ-रूक्षादिस्वकारणोंमें कोपको प्राप्तभई जो वायु सो अपने स्वस्थानको छोड़ ऊपर जायकर प्राप्त हो, और हृदयमें जायकर पीड़ा करे, मस्तक और कनपटी इनमें पीड़ा करे, और देहको धनुषके समान नवाय देवे, और चलेतो मूर्च्छित करदे, वो रोगी बड़े कष्टसे श्वास लेय, नेत्र मिचजावें, अथवा टेढ़े हो-जाय, कबूतरके समान गूंजे, तथा वेहोस होय, इसरोगको अपतंत्रक कहते हैं। दृष्टीका स्तंभन होजाय, संज्ञा जाती रहै, गलेमें घुरघुर शब्द होय, वायु जब हृदयको छोडे तब रोगीको होश होय, और वायू हृदयको व्याप्त करै तब फेर मोह होजाय इस भयङ्कर रोगको कोई अपतानक ऐसे कहते हैं। अब कहते हैं कि दंडापतानक, अंतरायाम, वहिरायाम, और अभिघात इनभेदोंसे आक्षेपकरोग चार प्रकारका है। उनके लक्षण लिखते हैं ॥

दंडापतानकलक्षण

कफान्वितोभृशंवायुस्तास्वेवयदितिष्ठति ।
सदंडवत्स्तंभयतिकृच्छ्रोदंडापतानकः ॥ ३२ ॥

अर्थ-वायु अत्यंत कफयुक्त होकर सब धमनीनाड़ीन्में प्राप्त होय तब सब देहको दंड (लकड़ी)के समान तिरछा करदे यह दंडापतानक कष्टसाध्य है।
[अब अंतरायाम और वहिरायाम इनके साधारणरूपको कहते हैं।]

धनुस्तुल्यंनमेद्यस्तुसधनुःस्तंभसंज्ञितः ।

अर्थ-जो वायु, धनुषके समान शरीरको बाँका करदे, उसको धनुःस्तंभ संज्ञक कहते हैं ।

अंतरायामके लक्षण

अंगुलीगुल्फजठरहृद्वक्षोगलसंश्रितः । स्नायुप्रतानमनिलो यदाक्षिपतिवेगवान् ॥ ३३ ॥ विष्टब्धाक्षःस्तब्धहनुर्भग्नपार्श्वःकफंवमन् । अभ्यंतरंधनुरिवयदानमतिमानवः ॥ ३४ ॥ तदासोऽभ्यन्तरायामंकुरुतेमारुतोबली ॥ ३५ ॥

अर्थ—पैरकी उंगली, घोंटू, हृदय, पेट, उरःस्थल और गला इन ठिकानोंमें रहै जो वायू वो वेगवान् होकर जो वहा नसोंके जाल उसको सुखाय बाहर निकालदे, उस मनुष्यके नेत्र स्थिर होजाय, मेढो रहिजाय, पसवाडोंमें पीड़ा होय, मुखसे कफ गिरै और जिससमय मनुष्य धनुषके सदृश नीचेको नमजाय तब वह बली वायु (अंतरायाम) रोगको करै ।

बाह्यायामलक्षण

बाह्यःस्नायुप्रतानस्थोबाह्यायामंकरोतिच ।
तमसाध्यंबुधाःप्राहुर्वक्षःकटचूरुभंजनम् ॥ ३६ ॥

अर्थ—बाहरकी नसोंमें रहती जो वात सो, बाह्यायाम अर्थात् पीठको बाकी करदे उरःस्थल, कमर और जांघोंको मोर दे, ऐसे इस रोगको पंडित असाध्य कहते हैं ।

अब पूर्वोक्त आक्षेपकका पित्तकफका अनुबंध होय है उसको कहते हैं

कफपित्तान्वितोवायुर्वायुरेवचकेवलः ।
कुर्यादाक्षेपकंत्वन्यंचतुर्थमभिघातजम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—कफपित्तयुक्त वायु, अथवा केवल वायु, आक्षेपकरोगको करै, और दूसरा कहिये दंडापतानकादि तीनोंकी अपेक्षा चतुर्थ अभिघातज आक्षेपकरोगको करै। इसके लक्षण यदा तु धमनीः सर्वाः इत्यादि पूर्वोक्त सामान्यलक्षणोंसें जानने । इस श्लोकका गदाधरने ऐसा अर्थ करा है कि कफपित्तान्वित इत्यादि निमित्तभेदकरके चार प्रकारका आक्षेपकरोग प्रगट होय, सो ऐसें एक कफान्वित वायूसें, दूसरा पित्तान्वितवायूसें, तीसरा केवलवायूसें, और चौथा दंडादिक चोट लगनेसें कुपितवायूसे, इस पक्षमें गर्भपात और रुधिरका अतिश्राव जो होय है सो केवलवातजन्य जानना और उस ठिकाने वारंवार आक्षेपक ये होयहै इसका कारण यह है कि ये सब आक्षेपकका भेद है ।

असाध्यत्वके कहते हैं

गर्भपातनिमित्तश्चशोणितातिस्रवाच्चयः ।
अभिघातनिमित्तश्चनसिद्ध्यत्यपतानकः ॥ ३८ ॥

अर्थ–गर्भपातके होनेसे, अथवा अतिरक्तश्रावके होनेसे अथवा अभिघात कहिये दंडादिकोंकी चोटलगनेसे, जो प्रगट अपतानकरोग सो असाध्य है ।

पक्षाघातके लक्षण

गृहीत्वार्धंतनोर्वायुःशिरास्नायूर्विशोष्यच । पक्षमन्यतरंहन्ति संधिबंधान्विमोक्षयन् ॥ ३९ ॥ कृत्स्नोर्द्धकायस्तस्यस्याद‌कर्मण्योविचेतनः । एकांगरोगंतंकेचिदन्येपक्षवधंविदुः ॥४०॥

अर्थ–वायु आधे शरीरको पकड़ सब शरीरकी नसोंको सुखायकर दहने अंगको अर्धनारीश्वरके समान कार्य करनेको असामर्थ्य करदे, और संधिके बंधनोंको शिथिल करदे, पीछे उस रोगीके सब वा आधे अङ्ग हलें चलें नहीं, और उस्को थोडाभी देखनेका स्पर्शआदिका ज्ञान नहीं रहै इस्को एकांगरोग कहते हैं । दूसरे पक्षवध कहते हैं इसीको पक्षाघात कहते हैं ।

सर्वांगरोगके लक्षण

सर्वांगरोगंतंकेचित्सर्वकायाश्रितेऽनिले ।

अर्थ–तद्वत् कहिये शिरास्नायूर्विशोष्य इत्यादि सम्प्राप्तिलक्षण इससे जानने । सर्व शिरा (नाड़ी)में वायू प्राप्त होनेसे उसको सर्वांगरोग कोई कहते हैं । अब साध्यासाध्यके ज्ञानार्थ और दोषोंका सम्बन्ध कहते हैं ।

दाहसंतापमूर्च्छाःस्युर्वायौपित्तसमन्विते ॥ ४१ ॥ शैत्यशोथगुरुत्वानितस्मिन्नेवकफान्विते । शुद्धवातहतंपक्षंकृच्छ्रसाध्यतमंविदुः । साध्यमन्येनसंसृष्टमसाध्यंक्षयहेतुकम् । ॥ ४२ ॥ गर्भिणीसूतिकाबालवृद्धक्षीणेष्वसृक्स्रुतौ । पक्षाघातंपरिहरेद्वेदनारहितोयदि ॥ ४३ ॥

अर्थ–पक्षवधकी वायू, कफपित्तयुक्त होय तौ दाह, संताप और मूर्च्छा होय । और वही वायू कफयुक्त होय तौ शीत, सूजन, भारीपन ये लक्षण होय। और केवल वायूसे प्रगट पक्षाघात अत्यंत कष्टसाध्य होय है। और दोषोंसे संसृष्ट होनेसे साध्य होय है । क्षयसे प्रगट भया पक्षाघात असाध्य होय है । गर्भिणी, बाल-

क, वृद्ध और क्षीण इनके भया तथा रुधिरके श्रावसे प्रगट पक्षाघात पीड़ारहित होय तौ उसको वैद्य त्यागदे। अर्थात् असाध्य जानकर चिकित्सा न करे।

अर्दितरोगके लक्षण

उच्चैर्व्याहरतोऽत्यर्थंखादतःकठिनानिच। हसतोजृंभमाणस्य विषमाच्छयनासनात् ॥ ४४ ॥ शिरोनासौष्ठचुबुकललाटे क्षणसंधिगः। अर्दयत्यनिलोक्त्रमर्दितंजनयत्यतः॥ ४५॥ वक्रीभवतिवक्त्रार्धंग्रीवाचास्यात्प्रवर्त्तते। शिरश्चलतिवाक्स्तंभो नेत्रादीनांचवैकृतम्॥४६॥ ग्रीवाचुबुकदंतानांतस्मिन्पार्श्वेस-वेदना। तमर्दितमितिप्राहुर्व्याधिंव्याधिविशारदाः॥ ४७॥

अर्थ–ऊंचेस्वरसे वेदादिकका पाठ करनेसे, अथवा कठिणपदार्थ सुपारीआदिके खानेसे, बहुत हंसनेसे, बहुत जंभाईके लेनेसे, ऊंचेनीचेस्थानमें सोनेसे, विषमाशन (भोजन)के करनेसे, कोपको प्राप्त भई जो वायू मस्तक, नाक, होठ, ठोड़ी, ललाट और नेत्र इन्की सन्धीन्में प्राप्त हो मुखमें पीड़ा करे, अर्थात् (अर्दित) रोगको उत्पन्न करे उसपुरुषका मुख आधा टेढा होजाय, उसकी नाड मुडे नहीं, मस्तक हिला करे, अच्छीतरह वोल्यो जाय नहीं, नेत्र, भृकुटी, गाल इनकी विकृति कहिये पीडा, फरकना टेढा होना इत्यादि होय। और जिसतरफ अर्दित रोग होय उसतरफ नार, ठोड़ी और दांत इनमें पीडा होय। व्याधि जाननेमें जो कुशल वैद्य है वो इसव्याधिको अर्दितरोग ऐसे कहते हैं। * शंका– क्यौंजी अर्दित रोगमें और पक्षाघातमें क्या भेद है? * उत्तर–अर्दितसे गर्भेमेंभी पीडा होय है कभी नहीं होय है और पक्षाघातमें सदा पीडा होती है। अर्दितरोग चार प्रकारका है।

अर्दितरोगके असाध्य लक्षण

क्षीणस्याऽनिमिषाक्षस्यप्रसक्ताव्यक्तभाषिणः।
नसिद्ध्यत्यर्दितंगाढंत्रिवर्षंवेपनस्यच ॥ ४८ ॥

अर्थ– क्षीण पुरुषके, पलक नहीं लगें ऐसे पुरुषके, अत्यंत शुद्ध वोले नहीं

---

१ अथवा सब लक्षणयुक्त अर्दितरोग है उससे विपरीत अर्द्धांगवातके लक्षण जानने। परंतु संस्कृतमे मुखमात्रकोही अर्दितरोगमे लिखाहै। और अर्धशरीरको अर्धवातकरके लब्ध होनेसे नही लिखा सोई माधवने पाठ लिखाहै।

ऐसे पुरुषके, अर्दित रोगको प्रगटभये तीनवर्ष व्यतीत होगये हों, अथवा त्रिवर्ष कहिये मुख, नाक और नेत्र इनतीनोंका श्राव होय, ऐसा और कंपयुक्त पुरुषका अर्दितरोग साध्य नहीं होय।

अव आक्षेपकते लेकर अर्दितपर्यंत रोगोंका वेग कहतेहैं।

गतेवेगेभवेत्स्वास्थ्यंसर्वेष्वाक्षेपकादिषु ।

अर्थ– आक्षेपकादि सब वातरोगोंमें वेग शांत होनेसे स्वास्थ्य कहिये पीडा कम होय, जैसे मस्तकके ऊपरका भार (वोझा) उतारनेसे सुखकी प्राप्ति होती है।

हनुग्रहके लक्षण

जिव्हानिर्लेखनाच्छुष्कभक्षणादभिघाततः । कुपितोहनुमूलस्थःस्त्रंसयित्वाऽनिलोहनुम् ॥ ४९ ॥ करोतिविवृतास्यत्वमथवासंवृतास्यताम् । हनुग्रहःसतेनस्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् ॥ ५० ॥

अर्थ– जिव्हाके अतिघर्षण करनेसे, चना आदि सूखी वस्तूके खानेसे अथवा किसी प्रकार चोटके लगनेसे, हनुमूल (कपोल)के अर्थात् डाढ़की जड़में रहे जो वायू सो कुपित होकर हनुमूलको नीचेकर मुखको खुलाही राखदे अथवा मुखको बंद करदे, उससे हनुग्रहरोग कहते हैं। तब उस मनुष्यको खाना, वोलना, कठिनतासे होय।

मन्यास्तंभके लक्षण

दिवास्वप्नाशनस्नानविकृतोर्ध्वनिरीक्षणैः ।
मन्यास्तंभंप्रकुरुतेसएवश्लेष्मणायुतः ॥ ५१ ॥

अर्थ– दिनमें सोनेसे, अन्न, स्नान, ऊंचेको विकृतिपूर्वक देखनेसे इन कारणोंसे कोपको प्राप्त भई जो वात सो कफ युक्त होकर मन्या (नाडी) स्तंभन करे इसरोगको मन्यास्तंभन रोग कहते हैं।

जिव्हास्तंभके लक्षण

वाग्वाहिनीशिरासंस्थोजिव्हांस्तंभयतेऽनिलः ।
जिव्हास्तंभःसतेनान्नपानवाक्येष्वनीशता ॥ ५२ ॥

अर्थ–वायू वाणीके वहनेवाली नाडीन्में प्राप्त हो जिव्हाका स्तंभन करदे,

उस्को जिव्हास्तंभरोग कहते हैं । यह अन्नपानकी तथा बोलनेकी सामर्थ्यका नाश करे ।

शिराग्रहके लक्षण

रक्तमाश्रित्यपवनःकुर्यान्मूर्धधराःशिराः ।
रूक्षाःसवेदनाःकृष्णाःसोऽसाध्यःस्याच्छिराग्रहः ॥ ५३ ॥

अर्थ–वायु रुधिरका आश्रय कर मस्तकके धारण करनेवाली नाड़ीको रूखी पीडायुक्त और काली करदे यह शिराग्रहरोग असाध्य है । शिरोग्रह ऐसाभी पाठ है ।

गृध्रसीके लक्षण

स्फिक्पूर्वाकटिपृष्ठोरुजानुजंघापदंक्रमात् । गृध्रसीस्तंभरुक्तोदैर्गृह्णातिस्पंदतेमुहुः ॥ ५४ ॥ वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचकान्विता ॥ ५५ ॥

अर्थ–प्रथम स्फिक् कहिये कमरके नीचेका भाग जिस्को कूला कहते हैं उस्को स्तंभित करदे, पीछे क्रमसे कमर, पीठ, ऊरू, जानू, जंघा और पग इनको स्तंभित करदे अर्थात् ये रहिजाय, वेदना और तोद कहिये चोंटनेकीसी पीडा होय, और वारंवार कम्प होय, यह गृध्रसीरोग वादीसे होय है । और वातकफसे होय तौ इसमें तन्द्रा और भारीपना और अरुचि, ये विशेष होय । इसप्रकार गृध्रसीरोग दो प्रकारका है ।

विश्वाचीके लक्षण

तलंप्रत्यंगुलीनांयाःकंडरावाहुपृष्ठतः ।
बाव्होःकर्मक्षयकरीविश्वाचीचेहसोच्यते ॥ ५६ ॥

अर्थ–बाहुके पिछाडीसे लेकर हाथके ऊपरले भागपर्यंत प्रत्येक उंगलीके नीचे मोटी नस हैं उनको दुष्ट कर हाथसे लेना देना पसारना मुट्टी मारनी इत्यादिक कार्योंका नाश कर्त्ता जो रोग होय उसको विश्वाचीरोग कहते हैं ।

क्रोष्टुशीर्षके लक्षण

वातशोणितजःशोथोजानुमध्येमहारुजः ।
ज्ञेयःक्रोष्टुकशीर्षस्तुस्थूलःक्रोष्टुकशीर्षवत् ॥ ५७ ॥

अर्थ–वातरक्तसे जानु (घोंटू) इन दोनोंकी संधिमें अत्यंत पीडाकारक सूजन हो और स्यारके मस्तकसमान मोटी हो उनको क्रोष्टुशीर्ष ऐसे कहते हैं ।

खंज और पांगुरेके लक्षण

वायुःकट्याश्रितःसक्थःकंडरामाक्षिपेद्यदा ।
खंजस्तदाभवेज्जंतुःपंगुःसक्थ्नोर्द्वयोर्वधात् ॥ ५८ ॥

अर्थ–कमरमें रहे जो वात सो जंघाकी नसोंको ग्रहण कर एक पगको स्तंभित करदेय, उसको खोडोरोग कहते हैं। और दोनों जंघानकी नसोंको पकड दोनों पैरोंको स्तंभित करदे उसको पांगुलो कहते हैं।

कलायखंजके लक्षण

प्रकामंवेपतेयस्तुखंजन्निवचगच्छति ।
कलायखंजंतंविद्यान्मुक्तसंधिप्रबंधनम् ॥ ५९ ॥

अर्थ–जो पुरुष चलतेसमय थरथर कांपे, और खंज अर्थात् एक पैरसेही न मालूम होय, इसरोगमे संधिके बंधन सिथिल होते हैं इसरोगको कलायखंज कहते हैं।

वातकंटकके लक्षण

रुक्पादेविषमेन्यस्तेश्रमाद्वाजायतेयदा ।
वातेनगुल्फमाश्रित्यतमाहुर्वातकंटकम् ॥ ६० ॥

अर्थ–ऊंची नीची जगहमें पैर पडनेसे, अथवा श्रमके होनेसे, वायू कुपित टकनामें प्राप्त होकर पीडा करै तौ इस रोगको वातकंटक ऐसे कहते हैं।

पादहर्षके लक्षण

पादयोःकुरुतेहर्षंपित्तासृक्सहितोऽनिलः ।
विशेषतश्चक्रमतःपादहर्षंतमादिशेत् ॥ ६१ ॥

अर्थ–जिसके पैर हर्षयुक्त (कहिये झनझनाहट पीडायुक्त) होय और असंत सोय जावें, उसको पादहर्षरोग कहते हैं। यह कफवातके कोपसे होय है।

अंसशोष और अपबाहुकके लक्षण

अंसदेशेस्थितोवायुःशोषयेदंसबंधनम् ।
शिराश्चाकुंच्यतत्रस्थोजनयेदपबाहुकम् ॥ ६२ ॥

अर्थ–कंधामें रहे जो वायू सो कुपित होकर उसके बंधनको सुखायदे, तब

अंसशोषरोग प्रगट होय, और कंधामें रहै जो वायू सो नसोंको संकोचकरके अपबाहुकरोग प्रगट करे।

मूकादिक तीन रोगोंके लक्षण

आवृत्यवायुःसकफोधमनीःशब्दवाहिनीः ।
नरान्करोत्यक्रियकान्मूकमिम्मिणगद्गदान् ॥ ६३ ॥

अर्थ–कफयुक्त वायु, शब्दके वहनेवाली नाडीमें प्राप्त होकर मनुष्योंका वचन क्रियारहित मूक, मिम्मिण, और गद्गद, ऐसा करदे। मूक कहिये जिस्से बोला न जाय, मिम्मिण कहिये गिनगिनायकर नाकसे बोले, और गद्गद बोलतेसमय बीचके पद और व्यंजनोंको न बोले, और मंद बोले इन रोगोंके कारण सदृश होकर रोगोंके भिन्नभिन्न प्रकार होते हैं। वो दोषोंके उत्कर्षकरके अथवा प्रारब्धवशसे होते हैं ऐसा जानना।

तूनीरोगके लक्षण

अधोयावेदनायातिवर्चोमूत्राशयोत्थिता ।
भिन्दन्तीवगुदोपस्थंसातूनीनामनामतः ॥ ६४ ॥

अर्थ–पक्वाशय और मूत्राशयसे उठी जो पीडा सो नीचे जायकर प्राप्त हो, और गुदा तथा उपस्थ कहिये स्त्रीपुरुषोंके गुह्यस्थान इनमें भेद करे, अर्थात् पीडा करे उसको तूनीरोग कहते हैं।

प्रतूनीके लक्षण

गुदोपस्थोत्थिताचैवप्रतिलोमंप्रधावति ।
वेगैःपक्वाशयंयातिप्रतूनीचेहसोच्यते ॥ ६५ ॥

अर्थ–गुदा और उपस्थ इनसे उठी जो पीडा उलटी ऊपर जायकर प्राप्त हो और जोरसे पक्वाशयमें प्राप्त हो और तूनीके समान पीडा करे उसको प्रतूनी कहते हैं।

आध्मानरोगके लक्षण

साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरंभृशम् ।
आध्मानमितिजानीयाद्घोरंवातनिरोधजम् ॥ ६६ ॥

अर्थ–गुड़गुड़ शब्दयुक्त अत्यंत पीडायुक्त ऐसा उदर (पक्वाशय) अत्यंत फूले अर्थात् वादीसे भरकर चामकी-थैलीके समान होजाय इस भयंकर रोगको आध्मानरोग कहते हैं यह वातके रुकनेसे होय है।

प्रत्याध्मानके लक्षण

विमुक्तपार्श्वहृदयंतदेवामाशयोत्थितम् ।
प्रत्याध्मानंविजानीयात्कफव्याकुलतानिलम् ॥ ६७ ॥

अर्थ–और वही आध्मान रोग आमाशयमें उत्पन्न होय तौ उस्को प्रत्याध्मान कहते हैं इसमें पसवाड़े और हृदय इनमें पीड़ा नहीं होय, और वायु कफकरके व्याकुल हो ।

वातष्ठीलाके लक्षण

नाभेरधस्तात्संजातःसंचारीयदिवाऽचलः ।
अष्ठीलावद्घनोग्रंथिरूर्ध्वमायतउन्नतः ॥ ६८ ॥
वातष्ठीलांविजानीयाद्बहिर्मार्गावरोधिनीम् ।

अर्थ–नाभीके नीचे उत्पन्न भई और इधर उधर फिरे, अथवा अचल अष्ठीला (गोलपाषाण)के समान कठिन और ऊपरका भाग कुछ लंवा होय, और आडी कुछ उंची होय और वहिर्मार्ग कहिये अधोवायू मल मूत्र इनका अवरोध कहिये (रुकना) हो ऐसी गाँठको वातष्ठीला कहते हैं ।

प्रत्यष्ठीलाके लक्षण

एतामेवरुजायुक्तांवातविण्मूत्ररोधिनीं ॥ ६९ ॥
प्रत्यष्ठीलामितिवदेज्जठरेतिर्यगुत्थिताम् ।

अर्थ–वातष्ठीला अत्यंतपीड़ायुक्त वात मूत्र मलके रोधकरनेवाली और जो तिरछी प्रगट भई होय उस्को प्रत्यष्ठीला कहते हैं ।

मूत्रावरोधके लक्षण

मारुतेविगुणेवस्तौमूत्रंसम्यक्प्रवर्त्तते ॥ ७० ॥
विकाराविविधाश्चापिप्रतिलोमेभवंतिहि ।

अर्थ–वस्ती (मूत्रस्थान)में वायु अनुलोमगतिसे गमन करै, तौ मूत्र अच्छी रीतिसे उतरे ऐसे प्रतिलोमसे गमन करै तौ अनेकप्रकारके पथरी मूत्रकृच्छ्रादि विकार उत्पन्न होय ।

---

१ श्रमातुरेण पानीयं पीत्वा वेगविधारणम् । धाविते वा पिवेत्तोयं भुंजतो वा त्रिदाहि च ॥ तथा पयोम्बुपानाद्वा दुर्जरः पल्लेन वा । सा ष्ठीलानाम विख्याता गुर्वी कुक्षिश्रिनापि वा ॥ इति आत्रेयः ।

कंपवायुके लक्षण

सर्वांगकंपःशिरसोवायुर्वेपथुसंज्ञकः ॥ ७१ ॥

अर्थ–सब अंगोंको और मस्तकको जो कंपाये उस वायूको वेपथु (कंप)-वायूकहते हैं ।

खल्लीके लक्षण

खल्लीतुपादजंघोरुकरमूलावमोटिनी ।

अर्थ–और जो वायु पैर, जंघा, ऊरू और हाथके मूलमें कंपन करै उस्को खल्ली (मूलामना) रोग कहते है ।

ऊर्ध्ववातके लक्षण टीकाकारने लिखे हैं

अधःप्रतिहतोवायुःश्लेष्मणामारुतेनच ॥ ७२ ॥

करोत्युद्गारबाहुल्यमूर्ध्ववातंप्रचक्षते ।

अर्थ–कफवातकरके पीडित नीचेकी वायू डकार बहुत लावे उस वातको ऊर्ध्व कहते हैं, परंतु टोडरानंदने कुछ विलक्षण लिखा है ।

यथा

भुक्तेप्यभुक्तेसुप्तेवायस्योद्गारःप्रजायते ॥ ७३ ॥

सततंघोषवांश्चातिऊर्ध्ववातंतमादिशेत् ।

अर्थ–भोजन करनेके अथवा भोजनके पहिले अथवा सोनेके समय डकार निरन्तर शब्दवान् आवै उस्को ऊर्ध्ववात कहते हैं ।

प्रलापके लक्षण

स्वहेतुकुपिताद्वातादसंबद्धनिरर्थकम् ॥ ७४ ॥

वचनंयन्नरोब्रूतेसप्रलापःप्रकीर्त्तितः ।

अर्थ–अपने हेतुन्से कुपित भई जो वात सो असंबद्ध (अर्थरहित) वाणीं बोले, अर्थात् बकवाद करे अथवा बड़बड़ शब्द करे उसको प्रलाप कहते हैं ।

रसाज्ञानके लक्षण

भुंजानस्यनरस्यान्नंमधुरप्रभृतीन्रसान् ॥ ७५ ॥

रसज्ञायन्नजानातिरसाज्ञानंतदुच्यते ।

अर्थ–जो मनुष्य भोजन करे उसकी जीभको मधुर (मीठा) खट्टा इत्यादिक रसोंका ज्ञान न होय उस रोगको रसाज्ञान कहते है ।

अनुक्तवातरोगसंग्रहार्थ कहते हैं

स्थाननामानुरूपैश्चलिंगैःशेषान्विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥
सर्वेष्वेतेषुसंसर्गोपित्ताद्यैरुपलक्षयेत् ।

अर्थ—स्थान और नाम इनके अनुरूप कहिये तुल्य ऐसे लक्षणोंसें शेष वातव्याधि जाननी । स्थानानुरूप कहिये जैसे कुक्षिशूल, नखभेद इत्यादिक । नामानुरूप कहिये जैसे शूलके कहनेसे कीलनिखातवत् पीड़ा जाननी । उसी प्रकार तोदभेदादिककरकेभी पीड़ा विशेष जाननी चाहिये । और पित्त, कफ, रुधिर इनके संसर्गसे द्विदोषजव्याधि जाननी चाहिये ।

साध्यासाध्यविचार

हनुस्तंभार्दिताक्षेपपक्षाघातापतानकाः ॥ ७७ ॥
कालेनमहतावातायत्नात्सिध्यंतिवानवा ।
नवान्बलवतस्त्वेतान्साधयेन्निरुपद्रवान् ॥ ७८ ॥

अर्थ—हनुस्तंभ, अर्दित, आक्षेप, पक्षाघात, अपतानक ये वातव्याधि बहुत दिनमें बडे परिश्रमसे और यत्नसें साध्य होती हैं । अथवा कभी साध्य नहीं होय । परंतु बलवान् पुरुषके ये वातव्याधि नई प्रगट भई हो और उपद्रवरहित होय तौ उसकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

वातव्याधिके उपद्रव

विसर्पदाहरुक्संगमूर्च्छारुच्यग्निमार्दवैः ।
क्षीणमांसबलंवाताघ्नंतिपक्षवधादयः ॥ ७९ ॥

अर्थ—विसर्परोग, दाह, शूल, मलमूत्रका निरोध, मूर्च्छा, अरुचि, मंदाग्नि इन लक्षणयुक्त जो होय और बलक्षीण होगया होय ऐसे पुरुषोंको पक्षवधादिक विकार मारक अर्थात् प्राणके हरण कर्त्ता होते हैं ।

असाध्य लक्षण

शूनंसुप्तत्वचंभग्नंकंपाध्माननिपीडितम् ।
रुजार्तिमंतंचनरंवातव्याधिर्विनाशयेत् ॥ ८० ॥

अर्थ—सूजनवाला, जिसकी त्वचा सोइ गई होय, अर्थात् जिसको स्पर्श होनेका ज्ञान न होय, जिसकी हड्डी टूटगई होय, कंप और अफरा इनसें अत्यन्त पीडित होय, रुजा और आर्त्ति कहिये शूलयुक्त ऐसे मनुष्यको यह वातव्याधिरोग नाश करता है ।

अब पांचप्रकारकी प्रकृतिस्थ वायूके लक्षण और कार्य कहते हैं

अव्याहतगतिर्यस्यस्थानस्थःप्रकृतौस्थितः ।
वायुःस्यात्सोधिकंजीवेद्वीतरोगःसमाःशतम् ॥ ८१ ॥

अर्थ–जिस पुरुषकी वायु अव्याहतगति, और अपने आश्रयसे रहनेवाली, और प्रकृति स्थित कहिये न वृद्ध न क्षीण होय, वह पुरुष निरोगी होकर (अधिकं समाःशतं) कहिये एकसे वीसवर्ष और पांच दिन पर्यन्त जीवे ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधनीमाथुरीभाषाटीकायां वातव्याधिनिदानं समाप्तम् ।

वातरक्तनिदानम् ।

* शंका–क्योंजी सुश्रुतमें तो वातव्याधिअध्यायमेंहीं वातरक्त कहा है फिर माधवने पृथक् क्यों कहा ? * उत्तर–तुमनें कहा सो ठीक है परंतु क्रियाविशेषज्ञापनार्थ माधवने अलग लिखा है, और इसी रीतिसें चरकमेंभी वातव्याधिअध्यायके पीछे वातरक्ताध्याय कही है ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः । क्लिन्नशुष्कांबुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ १ ॥ कुलित्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरसुक्ततक्रसुरासवैः ॥ २ ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः । प्रायशःसुकुमाराणांमिथ्याहारविहारिणाम् ॥ ३ ॥ स्थूलानांसुखिनांचाथवातरक्तंप्रकुप्यति ।

अर्थ–नोंन, खटाई, कडवी, खारी, चिकना, गरम, कच्चा ऐसे भोजनसे सडे और सूखे ऐसे जलसंचारी जीवोंके और जलके समीप रहनेवाले जीवोंके मांससे, पिण्याक (खर) मूली, कुलत्थी, उडद, निष्पाव (सेम) शाक, (तरकारी) पलल, (तिलकी चटनी) ईख, दही, कांजी, सौवीर मद्य, सुक्त (सिरकाआदि) छाछ, दारू, आसव, (मद्यविशेष) विरुद्ध (जैसे दूध मछली) अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन), क्रोध, दिनमें निद्रा, रातमें जागना, इन कारणोंसें विशेषकरके सुकुमार पुरुषोंके और मिथ्या आहार विहार करनेवाले पु-

रुषोंके, और जो मोटा होय तथा सूखा होय, ऐसे मनुष्योंके वातरक्तरोग होय है।

वातरक्तकी सम्प्राप्ति

हस्त्यश्वोष्ट्रैर्गच्छतश्चाश्नतश्चविदाह्यन्नंसविदाहाशनस्य ॥४॥ कृत्स्नंरक्तंविदहत्याशुतच्चस्रस्तंदुष्टंपादयोश्चीयतेतु। तत्संपृक्तं वायुनादूषितेनतत्प्राबल्यादुच्यतेवातरक्तम् ॥ ५ ॥

अर्थ–हाथी, घोडा, ऊंट इनपर बैठकर जानेसे, (यह वायुके बढनेका और विशेषकरके रुधिरकें उतरनेका कारण है) विदाहकारी अन्नके खानेवाले पुरुषके (इसीसे दग्धरुधिरकी वृद्धि होती है) गरमागरम अन्नके खानेवाले ऐसे पुरुषके सब शरीरका रुधिर दुष्ट होकर पैरोंमें इकट्ठा होय, और वह दुष्ट वायुसे दूषित होकर मिले, इस रोगमें वायू प्रबल है इसीसे इस रोगको वातरक्त ऐसे कहते हैं।

पूर्वरूप

स्वेदोऽत्यर्थंनवाकार्ष्ण्यंस्पर्शाज्ञत्वंक्षतेऽतिरुक्। सन्धिशैथिल्यमालस्यंसदनंपिटिकोद्गमः ॥ ६ ॥ जानुजंघोरुकट्यंशहस्तपादांगसंधिषु। निस्तोदःस्फुरणंभेदोगुरुत्वंसुप्तिरेवच ॥७॥ कंडूःसंधिषुरुक्भूत्वाभूत्वानश्यतिचासकृत्। वैवर्ण्यंमंडलोत्पत्तिर्वातासृक्पूर्वलक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ–पसीना बहुत आवैं, अथवा नहीं आवे, शरीर काला होजाय, शरीरमें स्पर्शका ज्ञान जाता रहे, और थोडीसी चोट लगनेसे पीडा अधिक होय, संधि ढीली होजाय, आलस्य आवे, ग्लानि हो, शरीरमें फुन्सी उठें, घोंटू, जंघा, ऊरू, कमर, कंधा, हाथ, पैर, सन्धि और अंगोंमें सुईके चुभानेकीसी पीडा होय, स्फुरण (फरकना) तोडनेकीसी पीडा, भारीपना, बधिरता, ये लक्षण होते हैं। और संधिनमें खुजली चले, और शूल होकर वारंवार नाश होजाय, शरीरका विवर्ण होजाय, रुधिरके चकत्ता देहमें पडजाय, ये वातरक्तके पूर्वरूप होते हैं।

अब वातरक्तको अन्यदोषोंका संसर्ग होनेसे उसके लक्षण न्यारेन्यारे लिखते हैं।

वाताधिकेऽधिकंतत्रशूलस्फुरणतोदनम्। शोथश्चरौक्ष्यंकृष्णत्वंश्यावतावृद्धिहानयः ॥ ९ ॥ धमन्यंगुलिसंधीनांसंकोचो-

ऽगग्रहोऽतिरुक् । शीतद्वेषानुपशयस्तंभवेपथुसुप्तयः ॥१०॥

अर्थ-वाताधिक वातरक्तमें शूल, अंगोंका फरकना, चोटनेकीसी पीडा, ये अधिक होते हैं । सूजन, रूखापना, नीलापना, अथवा श्यामवर्णता, एवं वातरक्तके लक्षणोंकी वृद्धि होय, और क्षणभरमें ह्रास (कमहो) धमनी और अंगुलीनकी संधीनमें संकोच होय, शरीर जकडबंध होय, अत्यंत पीडा होय, सर्दी बुरी लगे और शीतके सेवन करनेसे दुःख होय, स्तंभ होय, कंप, और शून्यता होय ये लक्षण होते हैं ।

रक्ताधिकके लक्षण

रक्तेशोफोऽतिरुक्क्लेदस्ताम्रश्चिमचिमायते ।

स्निग्धरूक्षैःशमंनैतिकंडूक्लेदसमन्वितः ॥ ११ ॥

अर्थ-रक्ताधिक वातरक्तमें सूजन, अत्यन्त पीडा, और उसमेंसे तामेके रंगका क्लेद बहे, उस सूजनमें चिमचिम वेदना होय, स्निग्ध अथवा रूखे पदार्थसे शांति न होय, उस सूजनमें खुजली और पानी निकरे ।

पित्ताधिकके लक्षण

पित्तेविदाहःसंमोहःस्वेदोमूर्च्छामदःसतृट् ।

स्पर्शासहत्वंरुग्रागःशोफःपाकोभृशोष्णता ॥ १२ ॥

अर्थ-पित्ताधिक वातरक्तमें अत्यन्त दाह, इन्द्रीमनको मोह, पसीना, मूर्च्छा, मस्तपना, प्यास, स्पर्श बुरा मालूम हो, पीडा, लाल रंग, सूजन, छोटेछोटे पीरे फोडा, अत्यन्त गरमी यह लक्षण होते हैं ।

कफाधिकके लक्षण

कफेस्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः ।

कंडूर्मन्दाचरुग्द्वंद्वेसर्वलिङ्गंचशङ्करात् ॥ १३ ॥

अर्थ-कफाधिक वातरक्तमें स्तैमित्य (गीले कपडासें आच्छादितसमान) भारीपना, शून्यता, चिकनापना, शीतलता, खुजली और मन्द पीडा ये लक्षण होते हैं ।

दो दोषोंके वातरक्तमें दो दोषोंके लक्षण और तीनों दोषोंके वातरक्तमें तीन दोषोंके लक्षण होते हैं । पैरोंमें वातरक्त हुआ होय उसकी अपेक्षा करनेसे हाथोंमें होय है उसको कहै हैं ।

पादयोर्मूलमास्थाय्रकदाचिद्धस्तयोरपि ।
आखोर्विषमिवक्रुद्धंतद्देहमनुसर्पति ॥ १४ ॥

अर्थ-वो वातरक्त पैरोंके मूलमें होकर कदाचित् हाथोंमेंभी होय है। सो आखु (मूसे)के विषसदृश सर्वदेहमें मंदमंद फैल जाय, ये वातरक्त चरकने दोप्रकारका कहा है एक उत्तान, दूसरा गंभीर, त्वचा और मांस इनमें होय सो उत्तान और गंभीर, इसकी अपेक्षा भीतरी होय है ।

असाध्यलक्षण

आजानुस्फुटितंयच्चप्रभिन्नंप्रस्तुतंचयत् ।
उपद्रवैर्यच्चजुष्टंप्राणमांसक्षयादिभिः ॥ १५ ॥
वातरक्तमसाध्यंस्याद्याप्यंसंवत्सरोत्थितम् ।

अर्थ-आजानु (जंघाके नीचेके भाग)पर्यन्त गयाभया वातरक्त असाध्य है जिस्की त्वचा फटगई होय, चिरगया होय, और जो श्रावयुक्त होय ऐसा वातरक्त अमाण मांसक्षयादि उपद्रवयुक्त होय, आदिशब्दसे जो आगे (श्रम अरोचक श्वास) इत्यादिक कहेंगे वोभी लक्षण होय सोभी असाध्य है। वातरक्त प्रगट भये वर्षदिन व्यतीत होगयाहोय सो याप्य होय है, वर्षदिनके पहिले साध्य होय है, परन्तु उसमें स्फुटितादि लक्षण न होय तौ साध्य है ।

उपद्रव

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः ॥ १६ ॥ संमूर्च्छाऽमन्दरुक्तृष्णाज्वरमोहप्रवेपकाः । हिक्कापांगुल्यवीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः ॥ १७ ॥ अंगुलीवक्रतास्फोटदाहमर्मग्रहार्बुदाः । एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यंमोहेनैकेनचापियत् ॥ १८ ॥

अर्थ-निद्रानाश, अरुचि, श्वास, मांसका सडना, मस्तकका जकडना, मूंर्च्छा अत्यन्त पीडा, प्यास, ज्वर, मोह, कंप, हिचकी, पांगुरापना, विसर्परोग, पकना, नोचनेकीसी पीडा, भ्रम, अनायासश्रम, उंगली टेढी होजाय, फोडा, दाह, मर्मस्थानोंमें पीडा, अर्बुद (गांठ) हो इन उपद्रवयुक्त वातरक्तवाला रोगी असाध्य है। अथवा एक मोहयुक्तही होय तौभी असाध्य जानना ।

साध्यासाध्यविचार

अकृत्स्नोपद्रवंयाप्यंसाध्यंस्यान्निरुपद्रवम् । एकदोषानुगंसा-

ध्यंनवंयाप्यंद्विदोषजम् । त्रिदोषजमसाध्यंस्याद्यस्यचस्यु-
रुपद्रवाः ॥ १९ ॥

अर्थ–जिस वातरक्तमें सब उपद्रव होयं नहीं वो याप्य है, और निरुपद्रव साध्य है । और जो एक दोषका होय वो साध्य है । और द्विदोषज याप्य, और त्रिदोषज, तथा उपद्रवयुक्त होय तौ वातरक्त असाध्य है । यह श्लोक क्षेपक है माधवका नहीं हैं ।

इति वातरक्तम् ।

ऊरुस्तंभनिदानम् ।

शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैर्निषेवितैः । जीर्णाजीर्णातथा-
यासससंक्रोधस्वप्नजागरैः ॥ १ ॥ सश्लेष्ममेदःपवनःसामम-
त्यर्थसंचितम् । अभिभूयेतरंदोषमुरूचेत्प्रतिपद्यते ॥ २ ॥
सक्थ्यस्थीनिप्रपूर्यांतःश्लेष्मणास्तिमितेनच । तदास्तभ्ना-
तितेनोरूस्तब्धौशीतावचेतनौ ॥ ३ ॥ परकीयाविवगुरू
स्यातामतिभृशव्यथौ । ध्यानाङ्गमर्दस्तैमित्यतंद्राच्छर्द्यरुचि-
ज्वरैः ॥ ४ ॥ संयुतौपादसदनकृच्छ्रोद्धरणसुप्तिभिः । तमुरू
स्तंभमित्याहुराढ्यवातमथापरे ॥ ५ ॥

अर्थ–शीतल, गरम, पतले, शुष्क, भारी, चिकने, ऐसे परस्पर विरुद्ध भोजनसे, जीर्ण, अजीर्ण, उसीप्रकार दंडकसरतके करनेसें, चित्तके क्षोभसे, दिनमें सोनेसे, रात्रिमें जागना, इन कारणोंसे कफ मेदयुक्त असन्त संचित भया आमयुक्त वात इतर दोषोंको अर्थात् पित्तको आच्छादितकर ऊरूमें आयकर प्राप्त होय, और ऊरूके हाडोंको आर्द्रकफसे परिपूर्ण करे, तब उसके ऊरू स्तंभित हो (जकडजाय) और शीतल तथा निर्जीव होजाय । और दूसरे पुरुषके उरूके समान उछरके चलना इस विषयमें असमर्थ होय और भारी, अत्यन्त पीडायुक्त होय, चिंता, अंगोंका तोडना, आर्द्रता, (गीला) तन्द्रा, वमन, अरुचि, और ज्वरसहित मनुष्यके दोनों ऊरू जकडजाय, वडे कष्टसें चले, और शून्यता होय, इस रोगको उरूस्तंभ ऐसे कहते हैं और कोई आढयवात कहते हैं ।

पूर्वरूप

प्राग्रूपंतस्यनिद्राऽतिध्यानंस्तिमितताज्वरः ।
लोमहर्षोऽरुचिश्छर्दिर्जंघोर्वोःसदनंतथा ॥ ६ ॥

अर्थ–निद्रा बहुत आवै, असन्त चिंता, मंदता, ज्वर, रोमांच, अरुचि, वमन, जंघा और ऊरू इनमें पीडा होय, यह ऊरुस्तंभके पूर्वरूप होते हैं।

ऊरुस्तंभके लक्षण

वातशंकिभिरज्ञानात्तस्यस्यात्स्नेहनात्पुनः । पादयोःसदनं सुप्तिःकृच्छ्रादुद्धरणंतथा ॥ ७ ॥ जंघोरुग्लानिरत्यर्थंशश्वदा-नाहवेदना । पदंचव्यथतेऽत्यर्थंशीतस्पर्शंनवेत्तिच ॥ ८ ॥ संस्थानेपीडनेगत्यांचालनेचाप्यनीश्वरः । अन्यस्येवहिसंभग्नाऊरूपादौचमन्यते ॥ ९ ॥

अर्थ–पैरोंका सोना, संकोच होना, इत्यादिक वातरोगके समान चिन्ह मिलनेसे उस मनुष्यको वातरोगकी शंका होय। तब वो मनुष्य तैलादिक स्नेहन चिकित्सा करै, तौ उसके दूनारोग बढे, पैरोंमें पीडा होय, तथा पैर सोय जावें, बडे कष्टसे पैर उठाया और धराजाय, जंघा और ऊरू इन्में अधिक पीडा होय, और निरन्तर दाह तथा वेदना होय, पैरोंमें व्यथा होय, शीतल पदार्थका स्पर्श मालूम न होय, तथा पैरके उठानेमें रगडनेमें अथवा चलनेमें अथवा हलानेमें असमर्थ होय, पैर और ऊरू ये टूटेसे तथा अन्य मनुष्यकेसे मालूम हो, ये लक्षण ऊरूस्तंभके हैं। व्याधिके स्वभावसे यह ऊरूस्तंभ त्रिदोषका एकही है वातादि भेदोंसे अनेक प्रकारका नहीं हैं।

असाध्यलक्षण

यदादाहार्त्तितोदार्तोवेपनःपुरुषोभवेत् ।
ऊरूस्तंभस्तदाहन्यात्साधयेदन्यथानवम् ॥ १० ॥

अर्थ–जिस समय पुरुष दाह, शूल, और तोद (नोचनेकीसी पीडा) इनसे पीडित होकर कंपयुक्त होय। उससमय वो ऊरूस्तंभरोग उसका नाश करै है। और ये लक्षण न होय और रोग नया होय तौ ये रोग साध्य है।

इति ऊरूस्तंभनिदानम्।

आमवातनिदानम् ।



विरुद्धाहारचेष्टस्यमन्दाग्नेर्निश्चलस्यच । स्निग्धंभुक्तवतोह्यन्नं व्यायामंकुर्वतस्तथा ॥ १ ॥ वायुनाप्रेरितोह्यामःश्लेष्मस्थानंप्रधावति । तेनात्यर्थंविदग्धोऽसौधमनीःप्रतिपद्यते ॥ २ ॥ वातपित्तकफैर्भूयोदूषितःसोन्नजोरसः । स्रोतांस्यभिस्पंदयति नानावर्णोऽतिपिच्छिलः ॥ ३ ॥ युगपत्कुपितावेतौत्रिकसंधिप्रवेशकौ । स्तब्धंचकुरुतोगात्रमामवातःसउच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–विरुद्ध आहार (क्षीरमत्स्यादि) और विरुद्ध विहार करनेवाले मनुष्यके, मंदाग्निवालेके, जो दंडकसरत न करे और चिकना अन्न खायकर दंडकसरत करनेवाले, ऐसे पुरुषके आमवायूसे प्रेरित होकर कफके आमाशयादिस्थानके प्रति जायकर प्राप्त होय, और उस कफसें अत्यन्त दूषित होकर वही आम, धमनी नाडीन्में प्राप्तहोकर भीतर वो अन्नका रस (आम)वात और कफपित्तसें दूषित होकर नाडीन्के छिद्रोंमें भरजाय, वह अनेकप्रकारके रंगका अतिगाढा होय है पीछे ये वात कफ एकही कालमें कुपित होकर त्रिकसंधीन्में जायके प्रवेश करे, तब देह जकडीसी होजाय, इस रोगको आमवात्त ऐसे कहते हैं ।

आमवातके सामान्यलक्षण

अङ्गमर्दोऽरुचिस्तृष्णाआलस्यंगौरवंज्वरः ।
अपाकःशून्यताऽगानामामवातःसउच्यते ॥ ५ ॥

अर्थ–अंगोंका टूटना, अरुचि, प्यास, आलकस, भारीपना, ज्वर, अन्नका न पचना, और देहमें शून्यता होजाय, इस रोगको आमवात कहते हैं ।

अब असंत वढगया होय आमवात उसके लक्षण कहते हैं

सकष्टःसर्वरोगाणांयदाप्रकुपितोभवेत् । हस्तपादशिरोगुल्फत्रिकजानूरुसंधिषु ॥ ६ ॥ करोतिसरुजंशोथंयत्रदोषैःप्रपद्य-

१ अविपक्वरसं पृक्तं दुर्गंधं बहुपिच्छलं । सरणं सर्वगात्राणामाम इत्यभिधीयते ॥ अविपक्वरसं केचित्केचित्तं मलसञ्चयं । प्रथमं दोषदुष्टिं वा केचिदाम प्रचक्षते ॥

ते । सदेशोरुजतेऽत्यर्थंव्याविद्धइववृश्चिकैः ॥ ७ ॥ जनये-
त्सोऽग्निदौर्बल्यंप्रसेकारुचिगौरवं । उत्साहहानिर्वैरस्यंदाहंच
बहुमूत्रतां ॥ ८ ॥ कुक्षौकठिनतांशूलंतथानिद्राविपर्ययम् ।
तृट्छर्दिभ्रममूर्च्छाश्चहृद्ग्रहंविड्विबंधताम् ॥ ९ ॥ जाड्यां-
त्रकूजमानाहंकष्टांश्चान्यानुपद्रवान् ॥ १० ॥

अर्थ–यह आमवात जिससमय बढे उससमय सब रोगोंमें कष्टकर्त्ता होती है, अर्थात् सब रोगोंसे बढकर कष्टदायक है । हाथ, पैर, मस्तक, घोंटू, त्रिकस्थान, जानू, जंघा इनकी संन्धिन्में पीडायुक्त सूजन करे और जिसजिस ठिकाने आम जाय उसीउसी ठिकानें वीचूके डंक मारनेकीसी पीडा करे, यह रोग मंदाग्नि मुखसे पानीका गिरना, अरुचि, देह भारी, उत्साहका नाश, मुखमें विरसता, दाह, वहुत मूत्रका उतरना, कूखमें कठिनता, शूल, दिनमें निद्रा आवै, रातिमें जागे, प्यास, वमन, भ्रम, मूर्च्छा, हृदयमें दुःख, मलका अवरोध, जडता, आंतोंका गूंज-ना, अफरा तथा असंत उपद्रव कहिये वातव्याधिमें कहे कलाप खंजादिकोंको करे।

विशेषलक्षण

पित्तात्सदाहरागंचसशूलंपवनानुगम् ।
स्तैमित्यंगुरुकंडूचकफजुष्टंतमादिशेत् ॥ ११ ॥

अर्थ–पित्तसें जो आमवात होय उसमें दाह और लाल रंग होय है वादीके आमवातमें शूल होय है । कफसम्बन्धी आमवातमें देहमें आर्द्रता (गीला) और भारीपना तथा खुजली चले है ।

साध्यासाध्यविचार

एकदोषानुगःसाध्योद्विदोषोयाप्यउच्यते ।
सर्वदेहचरःशोथःसकृच्छ्रःसान्निपातिकः ॥ १२ ॥

अर्थ–एक दोषका आमवातरोग साध्य है, दो दोषोंका याप्य है, और सर्व-देहमें विचरनेवाली सूजन अथवा त्रिदोषसे प्रगट आमवातरोग कष्टसाध्य जानना।

इति आमवातनिदानम् ।

शूलनिदानम् ।

दोषैःपृथक्समस्तामद्वंद्वैःशूलोष्टधाभवेत् ।
सर्वेष्वेतेषुशूलेषुप्रायेणपवनःप्रभुः ॥ १ ॥

अर्थ-वात, पित्त, कफ इनसे तीनप्रकारका, एक सन्निपातसे, एक आमसे और तीन द्वंद्वज ऐसे सब मिलकर आठप्रकारका शूलरोग है। इन सब शूलोंमें वादीका शूल प्रबल है। ज्वरके समान शूलरोगकी प्रथम उत्पत्ति हारीतमें कही है सो इसप्रकार कामदेवके नाश करनेके अर्थ शिवने क्रोधकरके त्रिशूलको फेंका, उस त्रिशूलको अपने सन्मुख आताहुआ देख कामदेव भयभीत होकर विष्णुभगवान्के देहमें प्रवेश करगया। तदनंतर वो त्रिशूल विष्णुकी हुंकारसें मूर्छित होकर गिरा तो पृथ्वीमें शूल इस नामसे प्रसिद्ध भया, तबसे वो शूल पंचभूतात्मक देहधारी मनुष्योंको पीडा करने लगा। इसप्रकार इसकी उत्पत्ति है, शिवके त्रिशूलसे उत्पन्न भया तथा शूलके घावके समान पीडा करे है इसीसे इसको शूल ऐसे कहते हैं।

वातशूलके कारण और लक्षण

व्यायामयानादतिमैथुनाच्चप्रजागराच्छीतजलातिपानात् ।
कलायमुद्गाढकिकोद्रदोषादत्यर्थरूक्षाध्यशनाभिघातात् ॥२॥
कषायतिक्तादिविरूढकान्नविरुद्धवल्लूरकशुष्कशाकात् । विट्-
शुक्रमूत्रानिलवेगरोधाच्छोकोपवासादतिहास्यभाषात् ॥ ३ ॥
वायुःप्रवृद्धोजनयेद्धिशूलंहृत्पार्श्वपृष्ठत्रिकबस्तिदेशे । जीर्णे
प्रदोषेचघनागमेचशीतेचकोपंसमुपैतिगाढम् ॥ ४ ॥ मुहुर्मु-
हुश्चोपशमप्रकोपौविण्मूत्रसंस्तंभनतोदभेदैः । सस्वेदनाभ्यं-
जनमर्दनाद्यैःस्निग्धोष्णभोज्यैश्चशमंप्रयाति ॥ ५ ॥

अर्थ-दंडकसरत, बहुत चलना, अति मैथुन, अत्यंत जागना, बहुत शीतल

१ अनगताशापहरस्त्रिशूलं मुमोच कोपान्मकरध्वजश्च । तमापतंतं सहसा निरीक्ष्य भयार्दितो विष्णुतनुं प्रविष्टः ॥ स विष्णुहुंकारविमोहितात्मा पपात भूमौ प्रथितश्च शूलः । स पचभूतानुगतः शरीरं प्रदूषयत्यस्य हि पूर्वसृष्टिः ॥

जल पीना, कांगनी, मूंग, अरहर, कोदों असन्त रूखे पदार्थके सेवनसे, और अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन) लकडी आदिके लगनेसे, कषेली, कडवी भीजा अन्न जिस्मे अंकुर निकस आये हों, विरुद्ध क्षीर मछली आदि सूखा मांस सूखा शाक (कचरिया आदि) इन्के सेवन करनेसे, मल, मूत्र, शुक्र और अधोवायु इन्के वेगको रोकनेसे, शोकसे, उपवास (व्रत)के करनेसे, असन्त हंसनेसे, वहुत वोलनेसे, कोपको प्राप्त भई जो वात सो वढकर हृदय पसवाडा पीठ त्रिकस्थान मूत्रस्थानमें शूलको करे। और वो भोजन पचनेके पीछे प्रदोषकालमें, वर्षाकालमें, शीतकालमें इन दिनोंमें शूल असंत कोप करे। और वारंवार कोप होय, मलमूत्रका अवरोध, पीडा और भेद ये लक्षण वातशूलके हैं। तथा स्वेदन और अभ्यंजन तथा मर्दन इत्यादिकसे और चिकने गरम अन्नसे यह शूलशांति होय है।

पित्तशूलके कारण और लक्षण

क्षारातितीक्ष्णोष्णविदाहितैलनिष्पावपिण्याककुलित्थयूषैः।
कट्वम्लसौवीरसुराविकारैःक्रोधानलायासरविप्रतापैः ॥ ६ ॥
ग्राम्यातियोगादशनैर्विदग्धैःपित्तंप्रकुप्याशुकरोतिशूलं । तृ-
ण्मोहदाहार्तिकरंहिनाभ्यांसंस्वेदमूर्च्छाभ्रमशोषयुक्तं ॥ ७ ॥
मध्यंदिनेकुप्यतिचार्धरात्रेविदाहकालेजलदात्ययेच । शीते
तुशीतैःसमुपैतिशांतिंसुस्वादुशीतैरपिभोजनैश्च ॥ ८ ॥

अर्थ—यवक्षारआदि खार, मरिचआदि तीखी और गरम विदाहकारक बांस और करील आदि, तेल, सिंवी, खल, कुलथीके यूपसे, कडुवा, खट्टा, सौवीर (मद्यविशेष) सुराविकार (कांजी इत्यादिक) क्रोधसें, अग्निके समीप रहनेसे, परिश्रमसे, सूर्यकी तीव्र धूपमें डोलनेसे, अतिमैथुन करनेसे, विदाहकारक अन्न आदि इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर नाभिस्थानमें शूल उत्पन्न करे। वह शूल तृषा, मोह, दाह, पीडा इनको करे। और पसीना, मूर्च्छा, भ्रम, शोष इनको करे, दुपहरके समय, मध्यरात्रिमें, अन्नके विदाहकालमें, शरदकालमें, शूल अधिक होय। शीतकालमें शीतल पदार्थसे और असंत मधुर (मीठा) शीतल अन्नसे यह शूलशांति होय।

कफशूलके कारण और लक्षण

आनूपवारिजकिलाटपयोविकारैर्मांसेक्षुपिष्टकृशरातिलशष्कु-

लीभिः । अन्यैर्बलासजनकैरपिहेतुभिश्चश्लेष्माप्रकोपमुपग-
म्यकरोतिशूलम् ॥ ९ ॥ हृल्लासकासदनाऽरुचिसंप्रसेकै-
रामाशयेस्तिमितकोष्ठशिरोगुरुत्वैः । भुक्तेसदैवहिरुजंकुरु-
तेऽतिमात्रंसूर्योदयेचशिशिरेकुसुमागमेच ॥ १० ॥

अर्थ-जलके समीप रहनेवाले पक्षीन्का मांस, मछली आदिका मांस, दही, घृत, मक्खनआदि दूधके विकार, मांस, ईखका रस, पिसा अन्न, खिचडी, तिल, पूरीकचौडी आदि और कफकारक पदार्थ खानेसे कफ कुपित होकर आमाशयमें शूलरोगको प्रगट करे उसमें सूखी रद, खांसी, ग्लानि, अरुचि, मुखसे लार गिरे, बद्धकोष्ठता, मस्तक भारी हो, ए लक्षण होय। भोजन करतेसमय पीडा होय, सूर्योदयके समय, शिशिरऋतुमें, और वसंतकालमें, शूल बहुत होय।

आमशूलके लक्षण

आटोपहृल्लासवमीगुरुत्वस्तैमित्यमानाहकफप्रसेकैः ।
कफस्यलिङ्गेनसमानलिङ्गमामोद्भवंशूलमुदाहरन्ति ॥ ११ ॥

अर्थ-पेटमें गुडगुडाहट होय, उबाकि ओंका आना, रद, देह भारी, मंदता, अफरा, मुखसे कफका स्राव, इन लक्षणोंसें तथा कफशूललक्षणोंके समान ऐसे शूलको आमशूल कहते हैं।

द्वंद्वजशूलोंके लक्षण

बस्तौहृत्कंठपार्श्वेषुसशूलःकफवातिकः । कुक्षौहृन्नाभिपा-
र्श्वेषुसशूलःकफपैत्तिकः ॥ १२ ॥ दाहज्वरकरोघोरोविज्ञेयो
वातपैत्तिकः । एकदोषोत्थितःसाध्यःकृच्छ्रसाध्योद्विदोषजः
॥ १३ ॥ सर्वदोषोत्थितोघोरस्त्वसाध्योभूर्युपद्रवः ।

अर्थ-वस्ति (मूत्रस्थान) हृदय, कंठ, पसवाडे, इन ठिकाने शूल होय वो (कफवातिक) जानना, कूखमें हृदय नाभि और पसवाडे इनमें कफपित्तका शूल होय है, दाह ज्वर करनेवाला ऐसा भयङ्कर शूल होय वो वातपित्तका जानना, एक दोषका शूलरोग साध्य है, दो दोषका कृच्छ्रसाध्य और तीनों दोषोंका भयंकर और बहुत उपद्रवयुक्त होय वो शूल असाध्य जानना।

ग्रन्थांतरोक्तशूलके स्थान

वातात्मकंबस्तिगतंवदंतिपितात्मकञ्चापिवदन्तिनाभ्याम् ।

हृत्पार्श्वकुक्षौकफसन्निविष्टंसर्वेषुदेशेषुचसन्निपातात् ॥ १ ॥

शूलके उपद्रव

वेदनाचतृषामूर्च्छाआनाहोगौरवारुची ।
कासश्वासौचहिक्काचशूलस्योपद्रवाःस्मृताः ॥ २ ॥

परिणामशूलनिदान

स्वैर्निदानैःप्रकुपितोवायुःसन्निहितस्तथा । कफपित्तेसमावृत्यशूलकारीभवेद्बली ॥ १४ ॥ भुक्तेजीर्यतियच्छूलंतदेवपरिणामजम् । तस्यलक्षणमप्येतत्समासेनाभिधीयते ॥१५॥

अर्थ–अपने रौक्षादि कारणोंसे वायु कुपित होकर कफपित्तके समीप जाय उसको आवृत कर बली होकर शूलको उत्पन्न करै, आहार पचनेके समय जो शूल होय उसको परिणामशूल कहते हैं। उसके लक्षण संक्षेपसे कहता हूं।

वातिकपरिणामशूलके लक्षण

आध्मानाटोपविण्मूत्रनिबंधारतिवेपनैः ।
स्निग्धोष्णोपशमप्रायंवातिकंतद्वदेद्भिषक् ॥ १६ ॥

अर्थ–पेटका फूलना, तथा पेटमें गुडगुडशब्द, मलमूत्रका अवरोध, अरति (मनका न लगना), कंप, यह लक्षण हों। और चिकना, गरम, पदार्थसे शांति होय ऐसे शूलको वातिक कहते हैं।

पैत्तिकपरिणामशूलके लक्षण

तृष्णादाहारतिस्वेदकट्वम्ललवणोत्तरम् ।
शूलंशीतशमप्रायंपैत्तिकंलक्षयेद्बुधः ॥ १७ ॥

अर्थ–प्यास, दाह, चित्तका न लगना, पसीना, यह लक्षण होय। तीखा, खट्टा, नोनका, ऐसे पदार्थ खानेसे बढनेवाला और शीतपदार्थके सेवनसे शांति होय ऐसा शूल पित्तका जानना।

श्लैष्मिकपरिणामशूलके लक्षण

छर्दिहृल्लाससंमोहंस्वल्परुग्दीर्घसंतति ।
कटुतिक्तोपशांतंचतच्चज्ञेयंकफात्मकम् ॥ १८ ॥

अर्थ–वमन, ओकारी, और संमोह, (इन्द्री और मनको मोह) ये लक्षण

जिसमें बहुत होय, पीडा थोडी होय, शूल बहुत दिन रहै, कडुवे और तीखे पदार्थसे शांति होय उस शूलको कफात्मक जानना ।

द्विदोषज और त्रिदोषजके लक्षण

संसृष्टलक्षणंयच्चद्विदोषंपरिकल्पयेत् ।
त्रिदोषजमसाध्यंतुक्षीणमांसबलानलम् ॥ १९ ॥

अर्थ-जिसमें दो दोषोंके लक्षण मिलेहों उसको द्वंद्वज कहते हैं, और तीन दोषोंके लक्षणोंसे त्रिदोषज जानना, मांस बल और अग्नि ए जिस्के क्षीण होगयेहो ऐसा शूलरोग असाध्य जानना ।

अन्नके उपद्रवसे प्रगटशूलके लक्षण

जीर्णेजीर्यत्यजीर्णेवायच्छूलमुपजायते । पथ्यापथ्यप्रयोगेण
भोजनाभोजनेनच । नशमंयातिनियमात्सोऽन्नद्रवउदाहृतः २०

अर्थ-अन्न पचगया होय अथवा पचरहा हो अथवा अजीर्ण हो अर्थात् सर्वदा जो शूल प्रगट होय, वो पथ्यापथ्यके योगसे अथवा भोजन करनेसे किंवा न भोजन करनेसे नियमसें शांति नहीं होय, उस्को अन्नद्रवशूल कहते हैं, यह शूल त्रिदोषविकृतिसे एकप्रकारका है । परन्तु असाध्य नहीं है क्योंकि इसकी चिकित्सा कही है ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरविरचितमाधवार्थबोधिनीभाषाटीकायां परिणामशूलनिदान समाप्तम् ।

उदावर्तनिदानम् ।

उदावर्तके कारण

वातविण्मूत्रजृंभास्रक्षवोद्गारवमींद्रियैः ।
क्षुत्तृष्णोच्छ्वासनिद्राणांधृत्योदावर्त्तसंभवः ॥ १ ॥

अर्थ-अधोवायु, विष्ठा, मूत्र, जंभाई, अश्रुपात, छींक, डकार, वमन, शुक्र, भूख, प्यास, श्वास और निद्रा इन तेरह वेगोंके रोकनेसे उदावर्त्तरोग उत्पन्न होय है, तेरहके नियमके करनेसे यह प्रयोजन है कि क्रोध, लोभ, मन इत्यादि वेगोंके धारण करनेसे रोग उत्पन्न नहीं होय । क्योंकि इनके रोकनेमे तो स्वस्थ-

ता प्राप्त होती है। सब उदावर्त्तोंमें मुख्य कारण वायु है। उदावर्त्तकी निरुक्ति इसप्रकार है। (उद्धूतेन वेगविधारणेन आवृत्तस्य वायोरावर्त्तनमुदावर्त्तः।)

तेरह उदावर्त्तोंके लक्षण क्रमसे कहते हैं

वातमूत्रपुरीषाणांसंगाध्मानंक्लमोरुजः।
जठरेवातजाश्चान्येरोगाःस्युर्वातनिग्रहात् ॥ २ ॥

अर्थ--अधोवायुके रोकनेसे अधोवायु, मल, मूत्र ये बन्द होजाय, पेट फूल- जावे, अनायास श्रम और पेटमें वादीसे पीडा होय, तथा और वातकृत (तोद शूलादि पीडा) होय।

आटोपशूलौपरिकर्त्तिकाचसंगःपुरीषस्यतथोर्ध्ववातः।
पुरीषमास्यादथवानिरेतिपुरीषवेगेऽभिहतेनरस्य ॥ ३ ॥

अर्थ--मलके वेग रोकनेसे पेटमें गुडगुडाहट होय, शूल होय, गुदामें कतरने- कीसी पीडा होय, मल उतरे नहीं, डकार आवै, अथवा मल मुखके द्वारा निकले।

वस्तिमेहनयोःशूलंमूत्रकृच्छ्रंशिरोरुजा।
विनामोवंक्षणानाहःस्याल्लिंगंमूत्रनिग्रहे ॥ ४ ॥

अर्थ--मूत्रके वेग रोकनेसे वस्ति (मूत्राशय) और शिश्न इन्द्री इनमें पीडा होय, मूत्र कष्टसे उतरे, मस्तकमें पीडा, पीडासे शरीर सीधा होय नहीं, पेटमें अफरा होय।

मन्यागलस्तंभशिरोविकाराजृंभोपरोधात्पवनात्मकाःस्युः।
तथाक्षिनासावदनामयाश्चभवंतितीव्राःसहकर्णरोगैः ॥ ५ ॥

अर्थ--जंभाई आती हुईके रोकनेसे मन्या कहिये नाडके पीछेकी नस और गला इन्का और वातजन्य विकार मस्तकमें होय, उसी प्रकार नेत्ररोग, नासा- रोग, मुखरोग और कर्णरोग ये तीव्र होय हैं।

आनन्दजंवाप्यथशोकजंवानेत्रोदकंप्राप्तममुंचतोहि।
शिरोगुरुत्वंनयनामयाश्चभवंतितीव्राःसहपीनसेन ॥ ६ ॥

अर्थ--आनंदसे अथवा शोकसे प्रगट अश्रुपातोंको जो मनुष्य नहीं त्याग करे, उसके इतने रोग प्रगट होंय मस्तक भारी रहै, नेत्ररोग, और पीनस ये प्रबल हों।

मन्यास्तंभशिरःशूलमर्दितार्धावभेदकौ ॥
इन्द्रियाणांचदौर्बल्यंक्षवथोःस्याद्विधारणात् ॥ ७ ॥

अर्थ-मन्या (कहिये नाड़के पिछाड़ीकी नस) उसका स्तंभ कहिये जकड़ जाना, शिरमें शूलका चलना, आधा मुख टेढा होजाय, अर्धांगवात, और सब इन्द्री दुर्बल होजाय इतने रोग आती हुई छींक रोकनेसे होते हैं ॥

कंठास्यपूर्णत्वमतीवतोदःकूजश्चवायोरथवाऽप्रवृत्तिः ।
उद्गारवेगेऽभिहतेभवंतिघोराविकाराःपवनप्रसूताः ॥ ८ ॥

अर्थ-आती हुई डकारके वेग रोकनेसे वातजन्य इतने रोग होते हैं। कंठ और मुख भारीसा मालूम होय; अत्यंत नोचनेकीसी पीड़ा होय, अव्यक्तभाषण, (अर्थात् जो समझमें न आवे)।

अधोवायूकी अप्रवृत्ति

कंडूकोठारुचिव्यंगोशोफपांड्वामयज्वराः ।
कुष्ठहृल्लासवीसर्पाश्छर्दिनिग्रहजागदाः ॥ ९ ॥

अर्थ-जो मनुष्य आती हुई वमनके वेगको रोके उसके अङ्गोंमें खुजली चले, देहमें चकत्ता होजाय, अरुचि, मुखपर झाँईसी पड़े, सूजन, पांडुरोग, ज्वर, कुष्ठ, लालीरह, विसर्परोग, ये होय ॥

मूत्राशयेवैगुदमुष्कयोश्चशोथोरुजामूत्रविनिग्रहश्च ।
शुक्राश्मरीतत्स्रवणंभवेच्चतेतेविकाराभिहतेचशुक्रे ॥ १० ॥

अर्थ-मैथुन करतेसमय वीर्य निकलतेको जो मनुष्य रोके अथवा और प्रकारसें शुक्रके वेगको रोके उसके मूत्राशयमें सूजन होय, तथा गुदामें और अंडकोशोंमें पीड़ा होय, मूत्र बड़े कष्टसे उतरे, शुक्राश्मरी (पथरीके निदानमें आगे कहेंगे) सो होय, शुक्रका स्राव होय, ऐसे अनेकप्रकारके रोग होय ।

तन्द्रांगमर्दावरुचिःश्रमश्चक्षुधाभिघातात्कृशताचदृष्टेः ।

अर्थ-भूखके रोकनेसे तन्द्रा, अंगोंका टूटना, अरुचि, श्रम और दृष्टीका मन्द होना, ये रोग प्रगट होय । चकारसे कृशता, और दुर्बलता होय, ये अन्यग्रन्थसे जानना ।

कंठास्यशोषःश्रवणावरोधस्तृषाभिघाताद्धृदयव्यथावै ॥ ११ ॥

अर्थ-प्यासके रोकनेसे कंठ और मुखका सूखना, कानोंसे मन्द सुनना, और हृदयमें पीड़ा ये लक्षण हौंय ।

श्रांतस्यनिःश्वासविनिग्रहेणहृद्रोगमोहावथवापिगुल्मः ।

अर्थ–जो मनुष्य हारगया हो-और वो श्वासको रोके उसके हृदयरोग, मोह और वायगोला इतने रोग होय।

जृंभांगमर्दाक्षिशिरोतिजाड्यंनिद्राभिघातादथवापितंद्रा ॥१२॥

अर्थ–आती हुई निद्राके रोकनेसे जंभाई, अंगोंका टूटना, नेत्र और मस्तकका अत्यंत जड़ता होना, और तन्द्रा होय। अब कहते हैं कि वेग रोकनेसे प्रगट रोगोंको कहिके अब रूक्षादिकारणोंसे कुपितवायूसे उत्पन्न होनेवाले उदावर्त्तरोगोंको कहते हैं।

वायुःकोष्ठानुगोरूक्षकषायकटुतिक्तकैः। भोजनैःकुपितःसद्य उदावर्त्तंकरोतिच ॥ १३ ॥ वातमूत्रपुरीषाश्रुकफमेदोवहानिवै। स्रोतांस्युदावर्तयतिपुरीषंचातिवर्त्तयेत् ॥ १४ ॥ ततोहृद्बस्तिशूलार्त्तोहृल्लासारतिपीडितः। वातमूत्रपुरीषाणिकृच्छ्रेणलभतेनरः ॥ १५ ॥ श्वासकासप्रतिश्यायदाहमोहतृषाज्वरान्। वमिहिक्काशिरोरोगमनःश्रवणविभ्रमान् ॥ १६ ॥ बहूनन्यांश्चलभतेविकारान्वातकोपजान् ॥ १७ ॥

अर्थ–रूखा, कषेला, तीखा और कडुवा ऐसे भोजन करनेसे कोष्ठगतवायु, मलमूत्र, अश्रुपात, कफ और मेद इनके वहनेवाली नाडीन्के मार्गको रोकदे और मलको सुखाय दे तब रोगी हृदय मूत्रस्थानमें शूलके होनेसे वेकल हो, सूखीरद्द, अस्वस्थपना इनसे पीड़ित होय, मलमूत्र और वात यह कष्टसे उतरे, और स्वाँस, खाँसी, पीनस, दाह, मोह, प्यास, ज्वर, वमन, हिचकी, मस्तकरोग, मनकी भ्रांति, मन्दसुने तथा वातकोपसे औरभी बहुतसे विकार होंय।

आनाहरोगनिदान

आमंशकृद्वानिचितंक्रमेणभूयोविबद्धंविगुणानिलेन। प्रवर्त्तमानंनयथास्वमेनंविकारमानाहमुदाहरंति ॥ १ ॥ तस्मिन्भवत्यामसमुद्भवेतुतृष्णाप्रतिश्यायशिरोविदाहाः। आमाशयेशूलमथोगुरुत्वंहृत्स्तंभउद्गारविघातनंच ॥ २ ॥ स्तंभः कटीपृष्ठपुरीषमूत्रेशूलेऽथमूर्च्छाशकृतश्चछर्दिः। श्वासश्चपक्वाशयजेभवंतितथाऽलसोक्तानिचलक्षणानि ॥ ३ ॥

अर्थ–आम अथवा पुरीष क्रमसें संचित हो विगुण वायुसें वारंवार विवद्ध होकर अपने मार्गसे अच्छी रीतिसे प्रवृत्त होय नहीं, इस विकारको आनाह कहते हैं। आमसे प्रगट आनाहरोगमें प्यास, पीनस, मस्तकमें दाह आमाशयमें शूल, देहमें भारीपना, हृदयका जकड्जाना, शूल, मूर्च्छा, डकार, कमर, पीठ, मल, मूत्र इनका रुकना, शूल, मूर्च्छा और विष्ठा मिली हुई रद्द और श्वास, यह लक्षण होय। पक्वाशयमें आनाहरोग होनेसे आलसरोगोक्त लक्षण (आध्मानवातरोधादिक) होते हैं।

असाध्यलक्षण

तृष्णार्दितंपरिक्लिष्टंक्षीणंशूलैरुपद्रुतम्।
शकृद्वमंतंमतिमानुदावर्त्तिनमुत्सृजेत् ॥ ४ ॥

अर्थ–प्याससे पीड़ित, क्लेशयुक्त, क्षीण, शूलसे पीड़ित, और मलकी रद्द करनेवाला, ऐसे उदावर्त्त रोगीको वैद्य त्याग दे।

इति उदावर्त्तनिदानम्।

अथ गुल्मनिदानम्।

दुष्टावातादयोऽत्यर्थंमिथ्याहारविहारतः। कुर्वन्तिपञ्चधागुल्मंकोष्ठांतर्ग्रंथिरूपिणम् ॥ १ ॥ तस्यपञ्चविधंस्थानंपार्श्वहृन्नाभिवस्तयः।

अर्थ–मिथ्या आहार और मिथ्या विहार करनेसे अत्यन्त दुष्ट भये वातादि दोष कोष्ठ (पेट)में ग्रंथिरूप (गांठ) पांचप्रकारका गुल्मरोग उत्पन्न करे हैं। उस गुल्मरोगके पांच स्थान हैं दोनों पसवाड़े, हृदय नाभि और वस्ति।

गुल्मके सामान्यरूप

हृन्नाभ्योरन्तरेग्रन्थिःसंचारीयदिवाऽचलः।
वृत्तश्चयोपचयवान्सगुल्मइतिकीर्त्तितः ॥ २ ॥

अर्थ–हृदय और नाभि तथा वस्ती (मूत्रस्थान) इनमें चलायमान अथवा निश्चल गोल कभी घटे कभी वढे ऐसी ग्रन्थि (गांठ) होय उसको गुल्म गोलाका रोग कहते हैं। इस श्लोकमें नाभिशब्दसे वस्तीका ग्रहण कराहै।

सम्प्राप्ति

सव्यस्तैर्जायतेदोषैःसमस्तैरपिचोच्छ्रितैः ।

पुरुषाणांतथास्त्रीणांज्ञेयोरक्तेनचापरः ॥ ३ ॥

अर्थ–कुपित भये दोषोंसे पृथक् २ और सब दोष मिलकर एक, ये चार प्रकारके गुल्म पुरुषोंके होते हैं। और स्त्रीनके रक्त (रज)के दोषसे एक प्रकारका गुल्म होय है, परंतु प्रथम जो लिख आये हैं कि गुल्मरोग पांचप्रकारका है सो इसका निश्चे नहीं है; क्योंकि रक्तगुल्म स्त्रीनके होय है। पुरुषोंके नहीं हो, धातुरूप रक्तजगुल्म जो है सो स्त्री पुरुष दोनोंके होय है, यह क्षीरपाणीका मत है। पांच प्रकारका गुल्म है इसपर बहुत शास्त्रार्थ और मतमतांतर है, जिन्को देखनेकी इच्छा हो सो मधुकोश और आतंकदर्पण टीकामें देखलेवें।

पूर्वरूप

उद्गारबाहुल्यपुरीषबंधतृप्त्यक्षमत्वांत्रनिकूजनानि ।

आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिरासन्नगुल्मस्यवदन्तिचिह्नम् ॥ ४ ॥

अर्थ–डकार बहुत आवें, मलका अवरोध होय, अन्नमें अरुचि होय, सामर्थ्यका नाश होना, आंत बोले, पेटमें पीड़ा होय, और अफरा होय, तथा पेटका जकड़जाना, मंदाग्नि होना यह लक्षण होय तो जानना कि गुल्म (गोला) रोग शीघ्र प्रगट होना चाहता है।

गुल्मके साधारणलक्षण

अरुचिःकृच्छ्रविण्मूत्रंवातेनांत्रविकूजनम् ।

आनाहश्चोर्ध्ववातत्वंसर्वगुल्मेपुलक्षयेत् ॥ ५ ॥

अर्थ–अरुचि मलमूत्र कष्टसे उतरें, बादीसे आंत बोले, पेट फूलआवे, ऊर्ध्ववात होय, यह लक्षण सब गुल्मोंमें होय हैं। सब गुल्मरोगमें वात कारण है सो (चरक) और (सुश्रुत)मेंभी लिखा है।

वातगुल्मके कारण और लक्षण

रूक्षान्नपानंविषमातिमात्रंविचेष्टनंवेगाविनिग्रहश्च । शोका-

---

१ गुल्मिनामनिलशान्तिरुपायैः सर्वशोविधिवदाचरणीया । मारुतेऽत्र विजितेऽन्यमुदीर्णं दोषमल्पमपि कर्मनिहन्यात् ॥ इति ॥

२ कुपिताऽनिलमूलत्वात्संचितत्वान्मलस्य च । तुल्यवद्वाविशालत्वाद्गुल्म इत्यभिधीयते । इति ॥

भिघातोऽतिमलक्षयश्चनिरन्नताचानिलगुल्महेतुः ॥ ६ ॥ यः स्थानसंस्थानरुजाविकल्पंविड्वातसङ्गंगलवक्त्रशोषं । श्यावारुणत्वंशिशिरज्वरश्चहृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजश्च ॥ ७ ॥ करोतिजीर्णेऽप्यधिकश्चकोपंभुक्तेमृदुत्वंसमुपैतिपश्चात् । वातात्सगुल्मोनचतत्ररूक्षकषायतिक्तकटुचोपशेते ॥ ८ ॥

अर्थ—रूखा, विषम और अतिमात्र ऐसे अन्नपान सेवन करनेसे, बलवान् पुरुषसे लढना, मलमूत्र आदि वेगोंके धारण करनेसे, शोक और अभिघात (लकडी आदिकी चोट) विरेचन आदिसे, मलका क्षय करना, उपवास ये सब वातगुल्मके कारण हैं ।

जो गुल्म कभी नाभि, कभी बस्ती, कभी पसवाडेमें चलाजाय, तथा कभी लंबा कभी मोटा गोल अथवा छोटा होय, तथा उसमें पीडा कभी थोडी कभी बहुत होय, तोदभेद (सुईचुभानेकीसी पीडा) होय, अथवा अनेक प्रकारकी पीडा होय, मलकी और अधोवायूकी अच्छी रीतिसे प्रवृत्ति होय नहीं, गला और मुख सूखे, शरीरका वर्ण नीला अथवा लाल होय, शीतज्वर, हृदय, कूख, पसवाडे, कंधा और मस्तक इनमें पीडा होय, और गोला जीर्ण होनेपर अधिक कोप करे, और, भोजन करनेके पिछाडी नरम होजाय, वह गोला वादीसे प्रगट होय है । उसमै रूखा कसेला कडुवा तीखा पदार्थ खानेसे सुख नहीं होय ।

पित्तगुल्मके कारण

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षंक्रोधातिमद्यार्कहुताशसेवा । आमाभिघातोरुधिरश्चदुष्टंपैत्तस्यगुल्मस्यनिमित्तमुक्तम् ॥९॥ ज्वरःपिपासावदनाङ्गरागःशूलंमहज्जीर्यतिभोजनेच । स्वेदोविदाहोव्रणवच्चगुल्मःस्पर्शासहःपैत्तिकगुल्मरूपम् ॥ १० ॥

अर्थ—कटु, खट्टा, तीक्ष्ण रस, दाहकारक, (वंशकरीलादिक) रूखा, ऐसे भोजन करनेसे, क्रोधसे, अति मद्यपान, सूर्यकी धूपमें डोलनेसे, अग्निके समीप रहनेसे, विदग्ध अजीर्णसे दुष्ट भया रस उससे, अभिघात कहिये लकडीआदि लगनेसे, रुधिरका बिगडना, ये पित्तगुल्मके कारण कहे हैं । ज्वर, प्यास, मुख और अंगोंमें लालपना, अन्न पचनेके समय असन्त शूल होय, पसीना आवै, जलन होय, कोडाके समान स्पर्श सहा न जाय, ये पित्तगुल्मके लक्षण हैं ।

कफके और सन्निपातके गुल्मके कारण और लक्षण

शीतंगुरुस्निग्धमचेष्टनञ्चसंपूरणंप्रस्वपनंदिवाच । गुल्मस्य हेतुःकफसंभवस्यसर्वस्तुदुष्टोनिचयात्मकस्य ॥ ११ ॥ स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसादहृल्लासकासारुचिगौरवाणि । शैत्यं रुगल्पाकठिनोन्नतत्वंगुल्मस्यरूपाणिकफात्मकस्य ॥ १२ ॥

अर्थ–शीतल, भारी, चिकने, ऐसे पदार्थके सेवनसे तृप्तिकी अपेक्षा अधिक भोजन करना, दिनमें सोना, ये कफोत्पन्नगुल्म होनेका कारण हैं। और जो वातजादि तीनों गुल्मोंके कारण कहे हैं, वो सब सन्निपातगुल्मके कारण जानने। देहका गीलापना, शीतज्वर, शरीरकी ग्लानि, सूखी रद्द, (उबाकी) खांसी, अरुचि, भारीपना, शीतका लगना, थोडी पीडा होय, गुल्म (गोला) कठिन होय, और ऊंचा होय, इतने ये सब कफात्मकगुल्मके लक्षण है।

द्वंद्वजगुल्मके लक्षण

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्यगुल्मेसंसर्गजेदोषबलाबलञ्च । व्यामिश्रलिङ्गानपरांश्चगुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥१३॥

अर्थ–द्वंद्वज गुल्ममें कारण, लक्षण और दोषोंका बलाबल जानकर चिकित्सा करनेके वास्ते, मिश्र लक्षणके और तीन गुल्म समझने चाहिये, अर्थात् एक दोष बलवान् होय तौ चिकित्सा करनी चाहिये, और द्विदोष बलवान् वा त्रिदोष बलवान् होय तौ चिकित्सा न करे।

सन्निपातगुल्मके लक्षण

महारुजंदाहपरीतमश्मवद्घनोन्नतंशीघ्रविदाहदारुणम् । मनःशरीराग्निबलापहारिणंत्रिदोषजंगुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥१४॥

अर्थ–भारी पीडा करनेवाला, दाहकरके व्याप्त, पत्थरके समान कठिन, तथा ऊंचा, और शीघ्र दाहकरके भयंकर, मन, शरीर, अग्नि और बल इनका नाश करनेवाला, (अर्थात् मनको विकल करनेवाला, शरीरको कृश करनेवाला और विवर्ण करनेवाला, अग्निवैषम्यादिकारक, असामर्थ्य करनेवाला) ऐसा त्रिदोषज गुल्म असाध्य जानना।

रक्तगुल्मके लक्षण

नवप्रसूताऽहितभोजनायायाचामगर्भंविसृजेदृतौवा । वायु-

हिंतस्याःपरिगृह्यरक्तङ्करोतिगुल्मंसरुजंसदाहम् ॥ १५ ॥
पैत्तस्यलिङ्गेनसमानलिङ्गंविशेषणश्चाप्यपरंनिबोध । यः
स्पंदतेपिंडितएवनाङ्गैश्चिरात्सशूलःसमगर्भलिङ्गः ॥ १६ ॥
सरौधिरःस्त्रीभवएवगुल्मोमासेव्यतीतेदशमेचिकित्स्यः ।

अर्थ—नई प्रसूत भई स्त्रीके अपथ्य सेवन करनेसे, अथवा अपक गर्भपात होनेसे, अथवा ऋतुकालकू समय अपथ्य भोजन करनेसे, वायु कुपित होकर उस स्त्रीके रुधिर (जो ऋतुसमय निकले उसको) लेकर गुल्म करे। वो गुल्म पीडायुक्त व दाहयुक्त होय है, और पित्तगुल्मके जो लक्षण कहे हैं वो सब इसमें होय, और इसमें दूसरे विशेष लक्षण होते हैं उन्को कहता हूं सुनों। यह गुल्म बहुत देरमें गोल गोल हिले, अवयव कहिये हाथ पैरके साथ नांहिं हिले, शूलयुक्त होय, गर्भके समान सब लक्षण मिलें, (अर्थात् मुखसे पानी छूटे, मुख पीला पड़जाय, स्तनका अग्रभाग काला होजाय, और दोहदादि लक्षण सब मिलें, ये सब लक्षण व्याधिके प्रभावसें होते हैं। जैसे खई रोगवालेको स्त्रीरमणकी इच्छा, और काले नख ताल्वादिक होते हैं) यह रक्तजगुल्म स्त्रियोंके होय है, दश महीना व्यतीत होजाय तब इस रक्तगुल्मकी चिकित्सा करनी चाहिये। कोई कहते हैं कि यह गर्भ है, अथवा रक्तगुल्म है, यह शंका जानकर माधवाचार्यने (दश महिना व्यतीत होनेपर) ऐसा कहा है। कारण इसका यह है कि नवमा और दशमा महीना यह प्रसूत होनेका समय है * शंका—क्योंजी (यः स्पंदते पिंडित एव नांगैः) इत्यादिक विशेषणोंसें स्पष्ट प्रतीति होयहै क्योंकि गर्भ तो निरंतर प्रत्येक अवयवके साथ शूलरहित फडकता है, और रक्तगुल्मके इससे विपरीत लक्षण हैं, फिर दश महीना व्यतीत होनेपर चिकित्सा करना चाहिये ये क्यों कहा? * उत्तर—इसका कारण इसप्रकार है कि इस रोगमें जब तो दश महीना व्यतीत होजाय जब चिकित्सा करै तौ सुखसाध्य होय है, कुछ प्रसवके नियमसे नहीं कहा क्योंकि प्रसव ग्यारह बारह महीनामेंभी होय है सो (चरक)मेभी लिखा है " तं स्त्री प्रसूते सुचिरेण गर्भ स्पष्टो यदा वर्षगणैरपि स्यात् " जैसे जीर्णज्वर होनेपर दूध पीना, और दस्तका लेना हितकारक होय है। इसीसे ग्रन्थान्तरोंमेंभी लिखा है " रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् " इस रक्तगुल्मको दसमहीना व्यतीत होनेपर पुरानापना होय है । और जेज्जटनेभी कहा है कि दसमहीनाके पहले मर्दनादि क्रिया करनेसैं गर्भाशयको विकार होय है क्यौंकि रुधिर उस ठिकानेपर जमा होय है, और ग्यारै महीनेंमें गुल्मका गो-

ला वहुत अच्छा जमजाता है, इसीसे ग्यारवे महीनें स्नेहादिककरके सव शरीर मृदु (नरम) करनेसे भेदनक्रिया करै तो गर्भाशय भलेप्रकार अच्छा रहै, अव कहते हैं कि वहुत दिनका गुल्मरोग ऐसी अवस्था होनेपर असाध्य होजाय है उसको कहते हैं ।

संचितःक्रमशोगुल्मोमहावास्तुपरिग्रहः । कृतमूलःशिरान-द्धोयदाकूर्मइवोन्नतः॥१७॥ दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासच्छर्द्यर-तिज्वरैः । तृष्णातंद्राप्रतिश्यायैर्युज्यतेनससिध्यति ॥ १८ ॥

अर्थ–क्रमक्रमसे वढा गुल्म जव सव उदर (पेट)में फैलजाय, और धातूनमें उसका मूल जाय पहुंचे, तथा उसपर नाडीन्का जाल लिपटजाय, और कछुवाकी पीठके समान गुल्म ऊंचा होय, तव इस रोगीके निःसत्त्वपना, अरुचि, सूखी रद्द, खांसी, वमन, अरति और ज्वर तथा प्यास, तन्द्रा और पीनस, यह लक्षण होय, ऐसा रोगी असाध्य है ।

असाध्यलक्षण

गृहीत्वासज्वरःश्वासश्छर्द्यतीसारपीडिते । हृन्नाभिहस्तपादे-षुशोथःक्षिपतिगुल्मिनम् ॥ १९ ॥ श्वासःशूलंपिपासान्नवि-द्वेषोग्रन्थिमूढता । जायतेदुर्बलत्वञ्चगुल्मिनांमरणायवै ॥२०॥

अर्थ–वमन और अतिसार इनसे पीड़ित ऐसा गुल्मरोगीका हृदय, नाभी हाथ, पैर इन ठिकाने सूजन होय । और ज्वर, दमा जिसके होय, ऐसे लक्षण होनेसे रोगी वचे नहीं ।

श्वास, शूल, प्यास, अन्नमें अरुचि, और गुल्मकी गांठका एकाएकी नष्टसा होजाना और दुर्वलता, ये लक्षण होनेसे जानना कि गुल्मरोगवालेकी मृत्यु समीप है * शंका–क्योंजी अंतर्विद्रधि और गुल्मरोग इनमें क्या भेद है इन दोनोंके स्थान और स्वरूप तो एकसे है फेर भेद क्या है? * उत्तर–तुमने कहा सो ठीक है अन्तर्विद्रधि पचता है और गुल्म नहीं पचे है इसका कारण यह है कि गुल्म तौ निराश्रय है सो (सुश्रुतने) कहाभी है ।

ननिबंधोस्तिगुल्मस्यविद्रधिःसनिबंधनः । गुल्मास्तिष्ठति दोषेस्वेविद्रधिर्मांसशोणिते। विद्रधिःपच्यतेतस्माद्गुल्मश्चापि नपच्यते ॥ २१ ॥

अर्थ-गुल्मका निर्बंध नहीं है, और विद्रधिका निर्बंध है, गुल्म अपने दोषोंमें रहता है, और विद्रधिका ठिकाना मांस रुधिरमें है, इसीसे विद्रधिका पाक होय है, और गुल्मका पाक नहीं होय, गुल्म मुट्ठीके समान बड़ा है। और विद्रधि इससे कुछ ज्यादा बड़ा होय है।

इति गुल्मनिदानम्।

अथ हृद्रोगनिदानम्।

अत्युष्णगुर्वम्लकषायतिक्तैःश्रमाभिघाताध्यशनप्रसंगैः।
संचिन्तनैर्वेगविधारणैश्चहृदामयःपंचविधःप्रदिष्टः॥ १॥

अर्थ-अति गरम, अति भारी, अति खट्टा, अति कषेला, अति कडुवा ऐसे पदार्थ सेवन करनेसे। श्रम, (धनुषआदिका खेंचना), अभिघात (हृदयमें चोट लगना) और भोजनके ऊपर भोजन नित्य करनेसे, सचिंतन (राजाके भयसे चिंता) मलमूत्र आदि वेगोंके रोकनेसे, वातादिकके क्षय और सन्निपातकरके तथा क्रिमिसे हृदयका रोग होय है वो पांच प्रकारका है।

उसकी संप्राप्ति और सामान्य लक्षण

दूषयित्वारसंदोषाविगुणाहृदयंगताः॥
हृदिबाधांप्रकुर्वन्तिहृद्रोगंतंप्रचक्षते॥ २॥

अर्थ-कुपित भये दोष रसको (हृदयमें जो रहता है) दुष्टकरके हृदयमें अनेक प्रकारकी पीड़ा करे उसको हृदयरोग कहते है।

वातहृद्रोगके लक्षण

आयम्यतेमारुतजेहृदयंतुद्यतेतथा।
निर्मथ्यतेदीर्यतेचस्फोट्यतेपाट्यतेपिच॥ ३॥

अर्थ-वातज हृदयरोगमें हृदय ईंचासरीखा, सुईसे चोंटनेसरीखा, फोरनेसरीखा, दो टुकड़ा करनेके समान, मथनेके समान, कुहाड़ीसे फारनेके समान पीड़ा करै है।

पित्तके हृद्रोगके लक्षण

तृष्णोष्णदाहमोहाःस्युःपैत्तिकेहृदयक्लमः।
धूमायनंचमूर्च्छाचस्वेदःशोषोमुखस्यच॥ ४॥

अर्थ-पित्तके हृदयरोगमें प्यास, किंचित् दाह, मोह और हृदयकी ग्लानि, धूआं निकलतासा मालूम होय, मूर्च्छा, पसीना और मुखका सूखना यह लक्षण होय हैं।

कफके हृदयरोगके लक्षण

गौरवंकफसंस्त्रावोऽरुचिःस्तंभोऽग्निमार्दवं ।
माधुर्यमपिचास्यस्यबलासावर्ततेहृदि ॥ ५ ॥

अर्थ-कफसे हृदय व्याप्त होनेसे भारीपना, कफका गिरना, अरुचि, हृदय जकडजाय, मन्दाग्नि, मुखमें मिठास ये लक्षण होते हैं।

त्रिदोषजके लक्षण

विद्यात्त्रिदोषंत्वपिसर्वलिङ्गम् ।

अर्थ-जिसमें सब लक्षण मिलते होय वो त्रिदोषका हृद्रोग जानना, इसमें कुछभी अपथ्य होनेसे गांठ उत्पन्न होती है, उस गांठसे कृमि पैदा होय है, ऐसे चरकमें कहा है।

कृमिज हृद्रोगके लक्षण

तीव्रार्तितोदंकृमिजंसकण्डूः ॥ उत्क्लेदःष्ठीवनंतोदःशूलंहृल्लासकस्तमः । अरुचिःश्यावनेत्रत्वंशोपश्चकृमिजेभवेत् ॥ ६ ॥

अर्थ-तीव्र पीडाकरके, तथा नोचनेकीसी पीडाकरके, तथा खुजलीकरके युक्त ऐसा हृद्रोग कृमिजन्य जानना । उत्क्लेद (ओकारी आनेके समान मालूम हो) थूकना, तोद (सुई चुभानेकीसी पीडा), शूल, हृल्लास, अंधेरा आवे, अरुचि, नेत्र काले पडजाय और मुखशोप यह लक्षण कृमिज हृदयरोगमें होते हैं। जेज्जटका यह मत है कि (उत्क्लेदसे लेकर तमपर्यंत) त्रिदोपके लक्षण कहे हैं जैसे तोद, शूल ये वादीसे होय । उत्क्लेद, हृल्लास और ष्ठीवन ये कफसे । और तम यह पित्तसे लक्षण होते हैं । और अरुचिसे लेकर शोपपर्यन्त कृमिज हृद्रोगके लक्षण जानने, इस विपयमें प्रत्येक आचार्योके भिन्नभिन्न मत हैं।

सर्वोके उपद्रव

क्लोमःसादोभ्रमःशोपोज्ञेयास्तेपामुपद्रवाः ।
कृमिजेकृमिजातीनांश्लैष्मिकाणांचयेमताः ॥ ७ ॥

---

१ त्रिदोपजे तु हृद्रोगे यो दुरात्मा निषेवते । तिलक्षीरगुडादींश्च ग्रन्थिस्तस्योपजायते ॥ मर्मैकदेशे संक्लेदं रसश्चाप्युपगच्छति । संक्लेदात्कृमयश्चास्य भवंत्युपहतात्मनः ॥

अर्थ-क्लोम कहिये पिपासा (प्यास) स्थान उसमें ग्लानि होय, भ्रम, शोष, ये सब उन हृद्रोगोंके उपद्रव जानने। और कफकी कृमिरोगके जो उपद्रव पिछाडी कहिआयेहैं सोई कृमिज हृद्रोगके लक्षण होतेहैं । तथा 'हृल्लासमास्यस्रवणमविपाकमरोचकम्' इत्यादि ।

इति हृद्रोगनिदानम् ।

अथ मूत्रकृच्छ्रनिदानम् ।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसंगनित्यद्रुतपृष्ठयानात् ।
आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणिनृणामिहाष्टौ १

अर्थ-व्यायाम (दंडकसरत आदि) तीक्ष्णौषध (राई आदि) रूखा पदार्थ, और नित्यप्रति मद्यपान करना, और निरंतर घोडेपर चढनेसे, और जलसमीप रहनेवाले पक्षी (हंस, सारस, चकवा, आदि) का मांस खानेसे, और मछली, भोजनके ऊपर भोजन करनेसे, और कचे पदार्थ इत्यादिकोंके खानेसे मनुष्योंके आठ प्रकारका मूत्रकृच्छ्ररोग होय है। पृथक् दोषोंसे ३, सन्निपातसे १, चोट लगनेका १, मल रोकनेका १, वीर्य रोकनेका १, और पथरीका १, यह सब मिलकरके आठ ८ भये ।

संप्राप्ति

पृथङ्मलाःस्वैःकुपितानिदानैःसर्वेऽथवाकोपमुपेत्यबस्तौ ।
मूत्रस्यमार्गंपरिपीडयंतियदातदामूत्रयतीहकृच्छ्रात् ॥ २ ॥

अर्थ-अपने कारणसे कुपित भये जो वातादिक दोष, अथवा सब दोष बस्तीमें कुपित होकर मूत्रके मार्गको पीडित करें, तब मनुष्यके बडे कष्टसे मूत्र उतरे ।

पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

पीतंसरक्तंसरुजंसदाहंकृच्छ्रंमुहुर्मूत्रयतीहपित्तात् ।

अर्थ-पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रसे पीला, कुछ लाल, पीडायुक्त, अग्निके समान, वारंवार कष्टसे मूत्र उतरे ।

वातिकमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

तीव्रार्तिरुग्वंक्षणबस्तिमेढ्रेस्वल्पंमुहुर्मूत्रयतीहवातात् ॥ ३ ॥

अर्थ-वातके मूत्रकृच्छ्रसे वंक्षण (जांघ और ऊरू इन्की संधि) मूत्राशय और इन्द्री इनमें पीडा होय और मूत्र वारंवार थोडा थोडा उतरे।

कफमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

वस्तेःसलिंगस्यगुरुत्वशोथौमूत्रंसपिच्छंकफमूत्रकृच्छ्रे ।

अर्थ-कफके मूत्रकृच्छ्रमें लिंग और मूत्राशय भारी हो, तथा सूजन होय और मूत्र चिकना होय।

सन्निपातमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपाताद्भवन्तितत्कृच्छ्रतमंतुकृच्छ्रं ॥ ४ ॥

अर्थ-सन्निपातसे सर्व लक्षण होतेहैं यह मूत्रकृच्छ्र कष्टसाध्य है।

शल्यजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

मूत्रवाहिषुशल्येनक्षतेष्वभिहतेषुच । मूत्रकृच्छ्रंतदाघाताज्जा-
यतेभृशदारुणम् । वातकृच्छ्रेणतुल्यानितस्यलिंगानिलक्ष-
येत् ॥ ५ ॥

अर्थ-मूत्र वहनेवाले स्रोत (मार्ग) शल्य (तीर आदि)से विंधजाय, अथवा पीडित होय तौ उस घातसे भयंकर मूत्रकृच्छ्र होयहै इसके लक्षण वातमूत्रकृच्छ्रके समान होय।

मलके मूत्रकृच्छ्रके लक्षण

शकृतस्तुप्रतीघाताद्वायुर्विगुणतांगतः ।
आध्मानंवातसंगंचमूत्रसंगंकरोतिच ॥ ६ ॥

अर्थ-मलके (विष्टाके) अवरोध होनेसें वायु विगुण (उलटा) होकर अफरा, वात, शूल और मूत्र नाश करे; तव मूत्रकृच्छ्र प्रगट होय।

अश्मरीजन्यमूत्रकृच्छ्र

अश्मरीहेतुतत्पूर्वंमूत्रकृच्छ्रमुदाहरेत् ॥ ७ ॥

अर्थ-पथरीके योगसे जो मूत्रकृच्छ्र होय उसको पथरीका मूत्रकृच्छ्र कहते हैं।

शुक्रजमूत्रकृच्छ्रके लक्षण

शुक्रेदोषैरुपहतेमूत्रमार्गेविधारिते ।
सशुक्रंमूत्रयेत्कृच्छ्राद्बस्तिमेहनशूलवान् ॥ ८ ॥

अर्थ-दोषोंके योगसे शुक्र (वीर्य) दुष्ट होकर मूत्रमार्गमें गमन करे, तव उस

भई जो वायु सो वस्ती (मूत्राशय)में प्राप्त हो पीडा करे, और मूत्रसे मिलकर मूत्रके वेगको विगुण (उलटा)करके वहां आप कुण्डलके आकार (गोलाकार) मूत्राशयमें विचरे तव मनुष्य उस वातसे पीडित हो मूत्रको वारंवार थोडाथोडा पीडाके साथ त्याग करे इस दारुण व्याधिको वातकुण्डलिकारोग कहते हैं ।

अष्ठीलाके लक्षण

आध्मापयन्बस्तिगुदंरुध्वावायुश्चलोन्नतां ।
कुर्यात्तीव्रार्तिमष्ठीलांमूत्रमार्गावरोधिनीम् ॥ ४ ॥

अर्थ–वस्ती (मूत्राशय) और गुदा इनमें यह वायू अफरा करे, तथा गुदाकी वायूको रोककर चञ्चल और उन्नत (ऊंची) ऐसी अष्ठीला (पत्थरकी पिण्डीके सदृश)को प्रगट करे, यह मूत्रके मार्गको रोकनेवाली और भयंकर पीडा करनेवाली है ।

वातवस्तीके लक्षण

वेगंविधारयेद्यस्तुमूत्रस्याकुशलोनरः । निरुणद्धिमुखंतस्य बस्तेर्बस्तिगतोऽनिलः ॥ २ ॥ मूत्रसंगोभवेत्तेनबस्तिकुक्षिनिपीडितः । वातबस्तिःसविज्ञेयोव्याधिःकृच्छ्रप्रसाधनः ॥ ६ ॥

अर्थ–जो मनुष्य अड (जिद)से मूत्र वाधाको रोके उसके वस्ती (मूत्राशय)-का वायू वस्तीके मुखको वन्द करदे तव उसका मूत्र वंद होजाय, और वो वायू वस्तीमें और कूखमें पीडा करे उस व्याधीको वातवस्ती ऐसे कहते हैं । यह वडे कष्टसे साध्य होय ।

मूत्रातीतके लक्षण

चिरंधारयतोमूत्रंत्वरयानप्रवर्तते ।
मेहमानस्यमन्दंवामूत्रातीतःसउच्यते ॥ ७ ॥

अर्थ–मूत्रको वहुत देर रोकनेसे पीछे वो जल्दी नहीं उतरे और मूततेसमय धीरे धीरे उतरे इस रोगको मूत्रातीत कहते हैं ।

मूत्रजठरके लक्षण

मूत्रस्यवेगेऽभिहतेतदुदावर्त्तहेतुकः । अपानःकुपितोवायुरुदरंपूरयेद्भृशम् ॥ ८ ॥ नाभेरधस्तादाध्मानंजनयेत्तीव्रवेदनाम् । तन्मूत्रजठरंविद्यादधोवस्तिनिरोधजम् ॥ ९ ॥

अर्थ-मूत्रके वेग रोकनेसे मूत्रवेगधारणजनित, और उदावर्त्तका कारणभूत, ऐसा अपानवायु कुपित होयकर पेट बहुत फूलजाय और नाभिके नीचे तीव्र वेदनासंयुक्त अफरा करे, अधोवस्तीका रोध करनेवाला ऐसे इस रोगको मूत्रजठर ऐसे कहते हैं ।

मूत्रोत्संगके लक्षण

बस्तौवाप्यथवानालेमणौवायस्यदेहिनः । मूत्रंप्रवृत्तंसज्जेत सरक्तंवाप्रवाहतः ॥ १० ॥ स्रवच्छनैरल्पमल्पंसरुजंवाथ नीरुजम् । विगुणानिलजोव्याधिःसमूत्रोत्संगसंज्ञितः ॥११॥

अर्थ-प्रवृत्त भया मूत्र, वस्तीमें अथवा शिश्नमें (लिंगमें) अथवा शिश्नके अग्रभागमें अटक जाय, और बलसे मूत्रको करैवी तौ वादीसे वस्तीको फाडकर जो मूत्र निकले वो मंद मंद थोडा थोडा पीडाके साथ अथवा पीडारहित रुधिरसहित निकले ऐसी विगुण वायूसे उत्पन्न हुई इस व्याधिको मूत्रोत्संग कहते हैं ।

मूत्रक्षयके लक्षण

रूक्षस्यक्लांतदेहस्यबस्तिस्थौपित्तमारुतौ ।
मूत्रक्षयंसरुग्दाहंजनयेतांतदाह्वयम् ॥ १२ ॥

अर्थ-रूखाभया अथवा श्रांत (थकगया) देह जिसका ऐसे पुरुषके वस्ती (मूत्राशयमें) रहे जो पित्त और वायू सो मूत्रका क्षय करे और पीडा तथा दाह होता है उसको मूत्रक्षय ऐसे कहते हैं ।

मूत्रग्रन्थिके लक्षण

अन्तर्बस्तिमुखेवृत्तःस्थिरोऽल्पःसहसाभवेत् ।
अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिःसउच्यते ॥ १३ ॥

अर्थ-वस्तीके मुखमें गोल स्थिर छोटीसी गांठ अकस्मात् होय, उसमें पथरीके समान पीडा होय इस रोगको मूत्रग्रन्थि ऐसे कहते हैं ।

मूत्रशुक्रके लक्षण

मूत्रितस्यस्त्रियंयातोवायुनाशुक्रमुद्धतम् । स्थानाच्च्युतंमूत्रयतःप्राक्पश्चाद्वाप्रवर्तते ॥ १४ ॥ भस्मोदकप्रतीकाशंमूत्रशुक्रंतदुच्यते ।

अर्थ-मूत्रवाधाको रोकके जो मनुष्य स्त्रीसङ्ग करे उसके वायू शुक्रको उडाय

स्थानसे भ्रष्ट करे, तव मूतनेके पहिले अथवा मूतनेके पीछे शुक्र गिरे, और उसका वर्ण राखमिला पानीके समान होय, उसको मूत्रशुक्र ऐसे कहते हैं।

उष्णवातका लक्षण

व्यायामाध्वातपैःपित्तंबस्तिंप्राप्यानिलायुतं ॥ १५ ॥ बस्तिंमेढ्रंगुदंचैवप्रदहेत्स्रावयेदधः । मूत्रंहारिद्रमथवासरक्तंरक्तमेवच ॥ १६ ॥ कृच्छ्रात्पुनःपुनर्जंतोरुष्णवातंवदंतितम् ।

अर्थ–व्यायाम (दंडकसरत) अति मार्गका चलना और धूपमें डोलना इन कारणोंसें कुपित भया जो पित्त सो बस्तीमें प्राप्त हो वायुसे मिल बस्ति अंडकोश और गुदा इन्में दाह करे और हलदीके समान अथवा कुछ रक्तसे युक्त वा लाल ऐसा मूत्रका स्राव वारंवार कष्टसे होय, उसको उष्णवात रोग कहते हैं।

मूत्रसादके लक्षण

पित्तंकफोवाद्वौवापिसंहन्येतेऽनिलेनचेत् । कृच्छ्रान्मूत्रंतदा पीतंरक्तंश्वेतंघनंसृजेत् । सदाहंरोचनाशंखचूर्णवर्णंभवेत्तुतत् ॥ १८ ॥ शुष्कंसमस्तवर्णंवामूत्रसादंवदंतितम् ।

अर्थ–पित्त अथवा कफ वा दोनों वायुकरके विगडे हुए होंय तब मनुष्य पीला लाल, सफेद, गाढा ऐसा कष्टसे मूते और मूतनेके समय दाह होय और जब वो मूत्र पृथ्वीमें सूखजाय तब गोरोचन, शंखका चूर्ण ऐसा वर्ण होय, अथवा सर्व वर्णका होय इस रोगको मूत्रसाद कहेहैं।

विड्विघातके लक्षण

रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्तंशकृद्यदा ॥ १९ ॥ मूत्रस्रोतोऽनुपद्येतविड्विसृष्टंतदानरः । विड्गंधंमूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातंविनिर्दिशेत् ॥ २० ॥

अर्थ–रूक्ष और दुर्बल पुरुषके शकृत् (मल) जब वायूकरके प्रेरित उदावर्तको प्राप्त हो तब वह मल मूत्रके मार्गमें आवे उस समय मनुष्य मूतने लगे तौ वडे कष्टसे मूत्र उतरे, और उसके मूत्रमें विष्ठाकीभी दुर्गंध आवे, उस्को विड्विघात कहते हैं।

बस्तिकुंडलरोगके लक्षण

द्रुताध्वलंघनायासैरभिघातात्प्रपीडनात् । स्वस्थानाद्बस्ति-

रुद्धृत्तःस्थूलस्तिष्ठतिगर्भवत् ॥ २१ ॥ शूलस्पन्दनदाहार्तो
बिन्दुंबिन्दुंस्रवत्यपि। पीडितस्तुसृजेद्धारांसंरंभोद्वेष्टनार्त्तिमा-
न् ॥ २२ ॥ बस्तिकुंडलमाहुस्तंघोरंशस्त्रविषोपमम् । पव-
नप्रबलंप्रायोदुर्निवारमबुद्धिभिः ॥ २३ ॥

अर्थ—जल्दी जल्दी चलनेसे, लंघन करनेसे, परिश्रमसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे, पीडासे वस्ती अपने स्थानको छोड ऊपर जाय मोटी होकर गर्भके समान कठिन रहै, उस्से शूल, कम्प और दाह ये होय । मूतकी एक एक बून्द गिरे, यदि वस्ती जोरसे पीडित होय तौ वडी धार पडे, वस्तीमें सूजन होय, पेटमें पीडा होय इस रोगको वस्तीकुण्डल ऐसे कहते हैं । यह शस्त्रके समान जल्दी प्राणनाशक, और विषके समान कालांतरमें प्राणका नाश कर्त्ता भयंकर है । इसमें प्रायः वायु प्रवल है, मन्दबुद्धिवाले वैद्योंसे इसका निवारण (चिकित्सा) करना कठिन हैं । इसको अन्य दोषोंका सम्वन्ध होनेसे जो लक्षण होते हैं उन्को कहताहूं ।

तस्मिन्पित्तान्वितेदाहःशूलंमूत्रविवर्णता। श्लेष्मणागौरवंशो-
थःस्निग्धंमूत्रंघनंसितम् ॥ २४ ॥ श्लेष्मरुद्धबिलोबस्तिःपि-
त्तोदीर्णोनसिद्ध्यति । अविभ्रांतबिलःसाध्योनचयःकुण्डली-
कृतः । स्याद्बस्तौकुंडलीभूतेतृण्मोहःश्वासएवच ॥ २५ ॥

अर्थ—वही वस्तिकुंडल पित्तयुक्त होनेसे दाह और मूत्रका बुरा रंग होय, और कफयुक्त होनेसे जडल, सूजन, मूत्र चिकना, गाढा, सफेद ऐसा होय ।

साध्यासाध्यलक्षण

कफकरके जिसका मुख वन्द होय ऐसा और पित्तकरके व्याप्त भई ऐसी वस्ती साध्य नहीं होय, और जिस वस्तीका मुख खुला होय तथा जो कुण्डलीकृत होय नहीं सो साध्य है ।

कुण्डलीभूतके लक्षण

वस्ती कुण्डलीभूत होनेसे प्यास, दाह और श्वास यह लक्षण होय ।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितभावार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां मूत्राघातनिदानं समा०

अथ अश्मरीरोगनिदानम् ।

वातपित्तकफैस्तिस्रश्चतुर्थीशुक्रजाऽपरा ।
प्रायःश्लेष्माश्रयाःसर्वाअश्मर्यःस्युर्यमोपमाः ॥ १ ॥

अर्थ–वात, पित्त, कफ, इनसे ३ चौथी शुक्रसे, अश्मरीरोग (पथरी) होत है ये पथरी विशेषकरके कफाश्रित है, 'यमोपमा' कहिये अच्छी चिकित्सा न होय तौ यह अवश्य प्राणनाशक है ।

सम्प्राप्तिमाह

विशोषयेद्वस्तिगतंसशुक्रंमूत्रंसपित्तंपवनःकफंवा । यदायदाश्मर्युपजायतेचक्रमेणपित्तेष्विवरोचनागोः ॥ २ ॥

अर्थ–जिन मनुष्योंको वायु वस्तीमें प्राप्त होय, शुक्रयुक्त अथवा पित्तयुक्त मूत्र अथवा कफको सुखावै तब उस स्थानमें पथरी प्रगट होतीहै । जैसे गऊके पित्तमें गोरोचन जमे हैं, उसी प्रकार वस्तीमें वीर्यसे पथरी होय है ।

पूर्वरूप

नैकदोषाश्रयाःसर्वाअश्मर्याःपूर्वलक्षणम् । वस्त्याध्मानंतदासन्नदेशेषुपरितोऽतिरुक् ॥ ३ ॥ मूत्रेवस्तसगंधत्वंमूत्रकृच्छ्रंज्वरोऽरुचिः ।

अर्थ–सब अश्मरी (पथरी) एक दोषके आश्रय नहीं है अर्थात् अनेक दोषाश्रित हैं वस्तीका फूलना, वस्तीके आसपास अत्यंत पीडा होनी, मूत्रमें बकराके पेशावकीसी दुर्गंध आवे, मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, अरुचि, ये पथरीके पूर्वरूप जानने ।

पथरीके सामान्य लक्षण

सामान्यलिंगंरुङ्नाभिसेवनीवस्तिमूर्धसु ॥ ४ ॥ विशीर्णधारंमूत्रंस्यात्तयामार्गनिरोधने । तद्व्यपायात्सुखंमेहेदच्छंगोमेदकोपमम् ॥ ५ ॥ तत्संक्षोभात्क्षतेसास्रमायासाच्चातिरुग्भवेत् ।

अर्थ–नाभि सेवनी (अंडकोशके समीपका भाग) और वस्तीका अग्रभाग इनमें शूल होय, पथरीके योगसे मूत्रमार्ग रुकनेसे मूत्रकी धार फटी निकले, पथरी

मूत्रमार्गके पाससे हटजाय तौ मूत्र अच्छी रीतिसे उतरे, और स्वच्छ गोमेदमणीके समान होय, अश्मरी (पथरी)के योगसे वस्तीमें घाव होनेसे रुधिर मिला मूत्र उतरे, और मूतते समय जोर करनेसे वडा क्लेश और पीड़ा होय ए सामान्य लक्षण जानना।

वातकी पथरीके लक्षण

तत्रवाताद्भृशंव्यार्तोदन्तान्खादतिवेपते । मथ्नातिमेहनंनाभिंपीडयंत्यनिशंक्कणन् ॥ ६ ॥ सानिलंमुंचतिशकृन्मुहुर्मेहतिबिन्दुशः । श्यावारूक्षाश्मरीचास्यस्याच्चिताकंटकैरिव ॥ ७ ॥

अर्थ–वायुकी पथरीसे रोगी अत्यंत पीडा करके व्याप्त होय, दांतोंको चवावे, कांपे, लिंगको हाथसे रगडै नाभिको रगडे, और रातदिन दुःखसे रोवै, और मूत्र आनेके समय पीड़ा होनेके कारण अधोवायूको परित्याग करे, मूत्र वारंवार टपक टपक गिरे, उसकी पथरीका रंग नीला और रूखा होय उसके ऊपर कांटे होय।

पित्तकी पथरीके लक्षण

पित्तेनदह्यतेबस्तिःपच्यमानइवोष्मवान् ।
भल्लातकास्थिसंस्थानारक्तापीतासिताऽश्मरी ॥ ८ ॥

अर्थ–पित्तकी पथरीसे रोगीके वस्तीमें दाह होय, और खारसै जैसा दाह होय ऐसी वेदना होय, वस्तीके ऊपर हाथ धरनेसे गरम मालूम होय, और भिलाएकी मींगीके समान होय, लाल, पीली, काली होय।

कफकी पथरीके लक्षण

बस्तिर्निस्तुद्यतइवश्लेष्मणाशीतलोगुरुः ।
अश्मरीमहतीश्लक्ष्णामधुवर्णाथवासिता ॥ ९ ॥

अर्थ–कफकी पथरीसे वस्तीमें नोचनेकीसी पीडा होय, शीतलपना होय, और पथरी वडी मुर्गीके अंडेसमान, स्वच्छ और मद्य (दारू)के रंगकीसी अर्थात् कुछ पीरीसी होय, यह कफकी पथरी वहुधा वालकोंके होतीहै सो कहैहैं।

एताभवंतिबालानामेषामेवचभूयसा ।
आश्रयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणेसुखाः ॥ १० ॥

अर्थ–पूर्वोक्त त्रिदोषजा अश्मरी (पथरी) विशेपकरके वालकोंके होयहै,

कारण उनका भारी मीठा शीतल चिकना आहार है, और उनकी वस्ती छोटी तथा पुष्टता थोडी होय है इसीसे वैद्योंको उसका चीरना फाडना काटना निकालना कठिन नहीं होय सो (सुश्रुत)नेभी कहा है ।

शुक्राश्मरीके लक्षण

शुक्राश्मरीतुमहतांजायतेशुक्रधारणात् ॥ स्थानाच्च्युतममुक्तंहिमुष्कयोरन्तरेऽनिलः ॥ ११ ॥ शोषयत्युपसंहृत्यशुक्रंतच्छुष्कमश्मरी ॥ बस्तिरुक्कृच्छ्रमूत्रत्वंमुष्कश्वयथुकारिणी ॥ १२ ॥ तस्यामुत्पन्नमात्रायांशुक्रमेतिविलीयते । पीडितेत्ववकाशेस्मिन्नश्मर्यैवचशर्करा ॥ १३ ॥

अर्थ—शुक्राश्मरी यह शुक्र (वीर्य)के रोकनेसे बडे मनुष्योंकोही यह पथरी होती है । मैथुन करनेके समय अपने स्थानसे चलायमान होगया हो वीर्य उस समय मैथुन न करे तव शुक्र (वीर्य) वाहर नहीं निकले, भीतरही रहै तव वायु उस शुक्रको उठाकर सुखा देता है । उसीको शुक्रजाश्मरी कहते हैं । इसकरिके अंडकोषोमें सूजन वस्तिमें पीडा और मूत्रकृच्छ्रता होती है । शुक्राश्मरीकी आदिमें लिंग और अंडकोष पेडू इनमें पीडा होती है वीर्यके नाश होनेके कारण पथरीकी नाई शर्करा उत्पन्न होती है ।

पथरीशर्कराके उपद्रव

अणुशोवायुनाभिन्नासातस्मिन्ननुलोमगे । निरेतिसहमूत्रेणप्रतिलोमेविवर्ध्यते ॥ १४ ॥ मूत्रस्रोतःप्रवृत्तासासक्ताकुर्यादुपद्रवान् । दौर्बल्यंसदनंकार्श्यंकुक्षिशूलमथारुचिम् । पांडुत्वमुष्णवातञ्चतृष्णांहृत्पीडनंवमिम् ॥ १५ ॥

अर्थ—वायू वस्तीमें अनुलोमगतिसे प्रवेश होय तौ वह शर्करा वायुकरके छोटे छोटे इकट्ठी होकर मूत्रके साथ वाहर निकले, और यदि वायू प्रतिलोम होय तौ मूत्रमार्गको रोक दे, यदि मूत्रमार्गमें प्राप्त होय तौ मूत्रके वहनेवाले छिद्रोंको रोक दे फिर इतने उपद्रवोंको प्रगट करे । दुर्बलता, ग्लानि, कृशता, कूखमें शूल, अरुचि, पाण्डुरोग, उष्णवात, प्यास, हृदयमें पीडा, वमन ये सव उपद्रव होय ।

असाध्यलक्षण

प्रशूननाभिवृषणंवद्धमूत्रंरुजान्वितम् ।

अश्मरीक्षपयत्याशुशर्करासिकतान्विता ॥ १६ ॥

अर्थ–जिसकी नाभि और वृषण सूजजाय, मूत्र उतरे नहीं, पीडा होय, ऐसे पुरुषके शर्करा और सिकतायुक्त पथरी प्राणनाश करै।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायांअश्मरीनिदानंसमाप्तम्

माधवनिदानका उत्तरभाग।

प्रमेहनिदान

आस्यासुखंस्वप्नसुखंदधीनिग्राम्योदकानूपरसाःपयांसि।
नवान्नपानंगुडवैकृतंचप्रमेहहेतुःकफकृच्चसर्वं ॥ १ ॥

अर्थ–बैठनेके सुखसे निद्राके सुखसैं अथवा स्वप्नसुख कहिये स्वप्नमें स्त्रीप्रसंग आदि सुखसैं दही ग्रामके संचारी जीव भेड बकरी आदि जलके संचारी जीव मच्छी कछुआ आदि अनूप (जलसमीप)के रहनेवाले जीव हंस चकवा आदि ऐसे प्राणीन्के मांसरस दूध नया अन्न और नया जल तथा शर्करा आदि गुडके पदार्थ अथवा गुडके विकार ए और जितने कफकारक पदार्थ हैं सो सब प्रमेह होनेके कारण हैं।

कफपित्तवातप्रमेहोंकी क्रमसैं संप्राप्ति

मेदश्चमांसंचशरीरजंचक्लेदंकफोबस्तिगतःप्रदूष्य। करोतिमे-
हान्समुदीर्णमुष्णैस्तानेवपित्तंपरिदूष्यचापि ॥ २ ॥ क्षीणे-
षुदोषेष्ववकृष्यधातून्संदूष्यमेहान्कुरुतेऽनिलश्च। साध्याः
कफोत्थादशपित्तजाःषट्याप्यानसाध्याःपवनाच्चतुष्काः ॥३॥
समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्चयथाक्रमंते।

अर्थ–बस्ति (मूत्रस्थान)गत कफ—मेदमांस और शरीरके क्लेदको बिगाड कर प्रमेहको उत्पन्न करैहै उसी प्रकार गरम पदार्थसें पित्त कुपित होकर पूर्वोक्त मेद मांसको बिगाडकर प्रमेहको उत्पन्न करे और वायु यह दोष क्षीण होनेसैं धातू (कहिये वसामज्जादिक)को ईंचकर (वस्तीके मुखपर लायकर) प्रमेहको प्रगट करै कफसे प्रगट दस प्रमेह साध्य हैं कारण इस्का यह है कि कफदोष और मेदः-प्रभृति दूष्य इनपर कटुतिक्तादि क्रिया समान है इस रोगमें रोगकाही प्रभाव ऐसा

है कि इस्में तुल्यदूष्यको साध्यत्व कहाहै और प्रमेहके विना और रोगोंको अतुल्य (असमान) दूष्यत्व साध्यका हेतु होयहै पित्तकी छः प्रमेह विषम चिकित्सा करनेसे याप्य होयहैं अर्थात् पित्त हरण करनेवाले जे शीत मधुर आदि द्रव्य वो मेदको बढानेवालेहैं और मेद हरणकर्त्ता उष्णकटुकादि द्रव्य वो पित्तकर्त्ता हैं ऐसे क्रिया विषम है वादीसैं प्रगट चार प्रमेह मज्जादिगंभीर धातूके आकर्षण करनेसै असन्त पीडा कर्त्ता है और इन्की विषमही क्रिया है इसीसै ए चार असाध्य हैं।

प्रमेहका दोषदूष्यसंग्रह

कफःसपित्तंपवनश्चदोषामेदोस्रशुक्रांबुवसालसीकाः।
मज्जारसौजःपिशितंचदूष्याःप्रमेहिणांविंशतिरेवमेहाः ॥ ४ ॥

अर्थ–कफ पित्त और वादी ए दोष और मेद रुधिर शुक्र जल मांस स्नेह (चर्वी) लसिका (मांसकाजल) मज्जारस ओज और मांस ए दूष्य जानने इन दोष और दूष्य दोनोंसै बीस प्रकारके प्रमेह होतेहैं।

पूर्वरूप

दन्तादीनांमलाढ्यत्वंप्राग्रूपंपाणिपादयोः ॥ ५ ॥
दाहश्चिक्कणतादेहेतृट्श्वासश्चोपजायते।

अर्थ–दांतोंमें आदिशब्दसै जिव्हा तालू आदिका ग्रहण है इन्में मैल बहुत रहै हाथ पैरमें दाह अंगका चिकनापना प्यास श्वास चकारसै केशों(बारों)का आपसमें लिपट जाना और नखोंका बढना जानना ए प्रमेहके पूर्वरूप होतेहैं।

सामान्यलक्षण

सामान्यंलक्षणंतेषांप्रभूताविलमूत्रता ॥ ६ ॥

अर्थ–बहुत और गाढा मूत्र उतरे ए प्रमेहके सामान्य लक्षण हैं।

प्रमेहके कारण

दोषदूष्याविशेषेपितत्संयोगविशेषतः।
मूत्रवर्णादिभेदेनभेदोमेहेषुकल्प्यते ॥ ७ ॥

अर्थ–दोष और दूष्य इन्के भेद न होनेसे परंतु दोष और दूष्य इन्के संयोग भेदसे मूत्र वर्णादि भेद करके प्रमेहमें भेद होयहै दस छः चार इत्यादिक दोष (वात पित्त कफ) दूष्य (मांस मेदा मज्जादि) जैसे सफेद पीला काला तामेके रंगका और श्याम इन पांच रंगोंके संयोग करनेसें पिंगल पाटलादि अनेक वर्ण भेद होतेहैं इसी प्रकार दोषादिकोंके संयोगसैं नाना प्रकारके प्रमेह होतेहैं संयोग

भेदकी कैसै प्रतीतहो ऐसे कोई पूछे तो उस्के वास्ते कहतेहैं मूत्रके वर्णादि भेदसैं समान कारणोंके भेद कल्पना करने चाहियें जैसे घट (घडा) बनानेके समय मृत्तिकादि कारण सामग्रीमें भेद नहीं है परन्तु कुम्भकारादि (कुह्मारआदि) संयोग भेद कर्के घडा सरवा मटकना आदि अनेक जातिभेद होजाते हैं।

कफकी १० प्रमेहके लक्षण

अच्छंबहुसितंशीतंनिर्गंधमुदकोपमम् । मेहत्युदकमेहेनकिंचिदाविलपिच्छिलम् ॥ ८ ॥ इक्षोरसमिवात्यर्थमधुरंचेक्षुमेहतः । सांद्रीभवेत्पर्युषितंसान्द्रमेहेनमेहति ॥ ९ ॥ सुरामेहीसुरातुल्यमुपर्यच्छमधोघनम् । संहृष्टरोमापिष्टेनपिष्टवद्बहुलंसितं ॥ १० ॥ शुक्राभंशुक्रमिश्रंवाशुक्रमेहीप्रमेहति । मूत्राणून्सिकतामेहीसिकतारूपिणोमलान् ॥ ११ ॥ शीतमेहीसुबहुशोमधुरंभृशशीतलम् । शनैःशनैःशनैर्मेहीमन्दंमन्दंप्रमेहति ॥ १२ ॥ लालातंतुयुतंमूत्रंलालामेहेनपिच्छिलम् ।

अर्थ– १ उदकप्रमेहकर्के–स्वच्छ बहुत सपेद शीतल गंधरहित पानीके समान कुछ गाढा, और चिकना मूते है।

२ इक्षुप्रमेहसै–ईखके रससमान अत्यंत मीठा ऐसा मूत्र होय।

३ सांद्रप्रमेहसै–रात्रमें पात्रमें धरनेसै जैसा होवै ऐसा मूत्र होय।

४ सुराप्रमेहसै–दारूके समान ऊपर निर्मल और नीचे गाढा ऐसा मूते।

५ पिष्टप्रमेहसै–पिसे चामलोंके पानीसमान सपेद और बहुत मूते तथा मूतते समय रोमांच होय।

६ शुक्रप्रमेहसै–शुक्र (वीर्य)के समान अथवा शुक्रमिला मूत्र होय।

७ सिकतामेहसै–मूत्रके कण और वालू रेतके समान मलके रवागिरें।

८ शीतमेहसै–मधुर तथा अत्यंत शीतल ऐसा वारंवार बहुत मूते।

९ शनैर्मेहसै–धीरे धीरे और मंद मंद मूते।

१० लालाप्रमेहसै–लारके समान तारयुक्त और चिकना मूत्र होयहै।

पित्तकी ६ प्रमेहके लक्षण

गंधवर्णरसस्पर्शैःक्षारेणक्षारतोयवत् ॥ १३ ॥ नीलमेहेन नीलाभंकालमेहीमषीनिभं । हारिद्रमेहीकटुकंहरिद्रासन्नि-

भंदहत् ॥ १४ ॥ विस्त्रमांजिष्ठमेहेनमंजिष्ठासलिलोपमम् ।
विस्त्रमुष्णंसलवणंरक्ताभंरक्तमेहतः ॥ १५ ॥

अर्थ– ११ क्षारप्रमेहसै–खारीजलके समान गंध वर्ण रस और स्पर्श ऐसा मूत्र होता है ।

१२ नीलप्रमेहसै–नीले रंगका अर्थात् पपैया पक्षीके पंखके सदृश मूते ।
१३ कालप्रमेहसै–स्याईके समान काला मूते ।
१४ हारिद्रप्रमेहसै–तीक्ष्ण हलदीके समान और दाहयुक्त मूते ।
१५ मांजिष्ठप्रमेहसै–आम दुर्गंध और मजीठके समान मूते ।
१६ रक्तप्रमेहसै–दुर्गंधयुक्त गरम खारी और रुधिरके समान लाल मूत्र करै ।

वातकी ४ प्रमेहको लक्षण

वसामेहीवसामिश्रंवसाभंमूत्रयेन्मुहुः । मज्जाभंमज्जमिश्रं वामज्जमेहीमुहुर्मुहुः ॥ १६ ॥ कषायमधुरंरूक्षंक्षौद्रमेहंवदे- द्बुधः । हस्तीमत्तइवाजस्त्रंमूत्रंवेगविवर्जितम् । सालसीकं- विबद्धंचहस्तिमेहीप्रमेहति ॥ १७ ॥

अर्थ– १७ वसाप्रमेही–वसा (चर्वी)युक्त अथवा वसाके समान मूते ।

१८ मज्जाप्रमेही–मज्जाके समान अथवा मज्जामिला वारंवार मूते ।
१९ क्षौद्रप्रमेही–कषेला मीठा और चिकना ऐसा मूते ।
२० हस्तिप्रमेही–मस्त हाथीके समान निरंतर वेगरहित जिसमें तार निकले और ठहर ठहरके मूते ।

कफप्रमेहके उपद्रव

अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्ज्वरःकासःसपीनसः ।
उपद्रवाःप्रजायन्तेमेहानांकफजन्मनाम् ॥ १८ ॥

अर्थ–अन्नका परिपाक न होय अरुचि वमन ज्वर खांसी पीनस ए कफप्रमेहके उपद्रव हैं ।

पित्तप्रमेहके उपद्रव

वस्तिमेहनयोःशूलंमुष्कावदरणंज्वरः ।
दाहस्तृष्णाम्लिकामूर्च्छाविड्भेदःपित्तजन्मनां ॥ १९ ॥

अर्थ–वस्ती और लिंग इन्में पीडा होय अंडकोशोंका पककरफटना ज्वर प्यास खट्टीडकार मूर्च्छा और पतला दस्त होय ये पित्तप्रमेहके उपद्रव हैं।

वातप्रमेहके उपद्रव

वातजानामुदावर्तकंठहृद्ग्रहलोलताः ।
शूलमुन्निद्रताशोषःकासःश्वासश्चजायते ॥ २० ॥

अर्थ–उदावर्त्त गला हृदय इन्का रुकना लोलता (सर्वरस भक्षणेच्छा) शूल निद्रानाश शोष सूखी खांसी श्वास ए वातप्रमेहके उपद्रव हैं।

प्रमेहके असाध्य लक्षण

यथोक्तोपद्रवाविष्टमतिप्रस्रुतमेवच ।
पिडिकापीडितंगाढंप्रमेहोहन्तिमानवम् ॥ २१ ॥

अर्थ–ऊपर कहिआए जो अविपाकादि उपद्रव वो सब होंय जिस्के मूत्रका श्राव बहुत हुआ होय शराविकाआदि जो पिडिका आगे कहेंगे वो होय रोग अंगमें प्रवेश होगया हो ऐसे लक्षण होनेसे वो प्रमेह मनुष्यको मारडाले ।

दूसरे असाध्य लक्षण

जातःप्रमेहीमधुमेहिनायोनसाध्यरोगःसहिबीजदोषात् ।

अर्थ–मधुमेही पुरुपसे उत्पन्न भया जो प्रमेहवान् पुरुपका रोग बीजदोषके कारणसे साध्य नहीं होय इस जगे मधुमेहशब्दसे साधारण प्रमेह जानना इस जगेबी मधुकोशटीकावालेंने मधुमेहशब्दपैं बहुतसा शास्त्रार्थ लिखा है ।

कुलपरंपरागत अन्य विकारोंको असाध्यत्व कहते.

येचापिकेचित्कुलजाविकाराभवन्तितांश्चप्रवदन्त्यसाध्यान् २२

अर्थ–जो कोई कुष्ठादिक कुलपरंपरागत विकार हैं वो सब असाध्य हैं अब कहते हैं कि सर्व प्रमेहोंकी उपेक्षा करनेसे मधुमेहत्वको प्राप्त होते हैं इस्को कहते हैं।

सर्व प्रमेहकी अपेक्षा करनेसे मधुमेह होयहै

सर्वएवप्रमेहास्तुकालेनाप्रतिकारिणः ।
मधुमेहत्वमायांतितदाऽसाध्याभवंतिहि ॥ २३ ॥

अर्थ–सब प्रमेह औषधके विना कालकरके मधुमेहको प्राप्त होते हैं तब वो असाध्य होजाते हैं ।

धातुक्षय और आवरण इन्सै कुपित भयी वायूको मधुमेहका संभव होयहै

मधुमेहेमधुसमंजायतेसकिलद्विधा ।

क्रुद्धेधातुक्षयाद्वायौदोषावृतपथेऽथवा ॥ २४ ॥

अर्थ–मधुमेहमें मूत्र मधु (सहत)के समान होय है सो दो प्रकारका है एक तो धातुक्षय होनेसै वायू कुपित होकर होय और दूसरा दोषोंकर्के पवनका मार्ग आवृत (ढकने) कर्के होय है ।

आवर्णके लक्षण

आवृतोदोषलिंगानिसोऽनिमित्तंप्रदर्शयन् ।

क्षीणःक्षणात्पुनःपूर्णोभजतेकृच्छ्रसाध्यताम् ॥ २५ ॥

अर्थ–आवृत वायूसै प्रगट मधुमेह जिस पित्तादिदोषकर्के आच्छादित होय उसके लक्षण अकस्मात दीखें क्षणभरमें क्षीण होय क्षणमें पूर्ण होय वो कष्टसाध्य जानना ।

मधुमेहशब्दकी प्रवृत्ति विषय निमित्त

मधुरंयच्चमेहेषुप्रायोमध्विवमेहति ।

सर्वेऽपिमधुमेहाख्यांमाधुर्याच्चतनोरतः ॥ २६ ॥

अर्थ–प्रमेहोमें रोगी प्रायशः मधु (सहत)के समान मीठा मूते औ और सब शरीरको मीठा करदे इसीसें सर्व प्रमेहको मधुप्रमेहसंज्ञा दीनी है और अमृतसागरमें जो छः प्रमेह आत्रेयके मतसे लिखीहै वो प्रमाणरहित है और प्रसिद्धमेंभी प्रमेह वीस प्रकारके हैं इसीसे हमने छोडदीने हैं ।

इति दत्तरामकृतमाधवभावार्थबोधिनीभाषामाथुरीटीकायां प्रमेहनिदानं समाप्तम् ।

प्रमेहपिटिकानिदानम् ।



शराविकाकच्छपिकाजालनीविनताऽलजी । मसूरिकासर्षपिकापुत्रिणीसविदारिका ॥ १ ॥ विद्रधिश्चेतिपिडिकाःप्रमेहोपेक्षयादश । संधिमर्मसुजायन्तेमांसलेषुचधामसु ॥ २ ॥

अर्थ–प्रमेहकी उपेक्षा करनेसें शराविकादि दशपिटिका संधिमर्म और मांसल ठिकानेमें होतीहै ।

सबके लक्षण

अंतोन्नताचतद्रूपानिम्नमध्याशराविका । सदाहाकूर्मसंस्था-
नाज्ञेयाकच्छपिकाबुधैः ॥ ३ ॥ जालनीतीव्रदाहातुमांसजा-
लसमावृता । अवगाढरुजोत्क्लेदापृष्ठेवाप्युदरेऽपिवा ॥ ४ ॥
महतीपिटिकानीलासाबुधैर्विनतास्मृता । रक्तासितास्फो-
टवतीदारुणात्वलजीभवेत् ॥ ५ ॥ मसूरदलसंस्थानाविज्ञे-
यातुमसूरिका । गौरसर्षपसंस्थानातत्प्रमाणाचसर्षपी ॥ ६ ॥
महत्यल्पचिताज्ञेयापिडिकाचापिपुत्रिणी । विदारीकंदवद्वृ-
त्ताकठिनाचविदारिका ॥ ७ ॥ विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ताज्ञेयाविद्र-
धिकातुसा ।

अर्थ– १ शराविका–ये पिटिका ऊपरके भागमें ऊंची और मध्यमें बैठीसी होय जैसा मट्टीका शराव होय है ऐसी होयहै ।

२ कच्छपिका–ये कछुवाके पीठके समान कुछ दाहयुक्त ऐसी होय है ।

३ जालनी–ये तीव्र दाहकर्के संयुत और मांसके जालसें व्याप्त होय है ।

४ विनता–ये फुन्शी पीठमें अथवा पेटमें होयहै इसकी पीडा बहुत होय, ठंडी-होय तथा बडी और नीले रंगकी होय है ।

५ अलजी–लाल काली बारीक फोडान्कर्के व्याप्त भयंकर होय है ।

६ मसूरिका–मसूरकी दालके समान बडी होय है ।

७ सर्षपिका–सपेद सरसोंके समान बडी होय है ।

८ पुत्रिणी–ये बीचमें एक बडी फुंसी होय उसके चारों ओर छोटी छोटी फुंसी और होय उसको पुत्रिणी कहते हैं ।

९ विदारिका–ये विदारीकंदके समान गोल और करडी होय है ।

१० विद्रधिका–ये विद्रधिके लक्षणकर्के युक्त होय है भोज और सुश्रुतके मतसें नो पीडिका हैं और चरकके मतसें सातही हैं ।

ये पिटिका कैसे उत्पन्न होती हैं

येयन्मयाःस्मृतामेहास्तेषामेतास्तुतन्मयाः ॥ ८ ॥ विनाप्र-
मेहमप्येताजायन्तेदुष्टमेदसः । तावच्चैतानलक्ष्यन्तेयावद्वा-
स्तुपरिग्रहः ॥ ९ ॥

अर्थ–जो प्रमेह जिस दोषकर्के उल्वण होयहै तिसकर्के तिसी दोषके उल्वणकर्के पिटिका होयहै ए पिटिका प्रमेहके विना दुष्टमेदके होनेसे प्रगट होतीहै जबतक इन्की गांठ नहीं बधे तबतक नहीं दीखे (येयन्मयाः स्मृतामेहाः) इस पदके ऊपर मधुकोशवालेने शास्त्रार्थ लिखा है ग्रन्थ बढनेके भयसे हमने नहीं लिखा।

असाध्यपिटिकालक्षण

गुदेहृदिशिरस्यंसेपृष्ठेमर्मसुचोत्थिताः।
सोपद्रवादुर्बलाग्नेःपिडिकाःपरिवर्जयेत् ॥ १० ॥

अर्थ–गुदामें हृदयमें शिरमें कंधामें पीठमें और मर्मस्थानमें उठी पिटिका और उपद्रव युक्त हो तथा दुर्बलाग्नि पुरुषकी पिटिका साज्य है पिटिकाके उपद्रव चरकने कहे हैं सो या प्रकार (तृट्कासमांससंकोचमोहहिक्कामदज्वराः। विसर्पमर्मसंरोधाःपिटिकानामुपद्रवाः) इसका अर्थ सुगम है इसीसे नहीं लिखा * शंका * क्योंजी स्त्रीन्के प्रमेह क्यों नहीं होय * उत्तर * इस्का कारण और ग्रन्थोंमें इस प्रकार लिखा है (रजःप्रसेकान्नारीणांमासिमासिविशुद्ध्यति। कृत्स्नंशरीरंदोषाश्चनप्रमेहंत्यतःस्त्रियः।

अर्थ–स्त्रीन्के महीनाके महीना रज बहाकरै है इसीसें सर्व देह और दोष शुद्ध होतेहैं इसीसे स्त्रीन्के प्रमेह नहीं होय और स्त्रीन्के प्रमेह होना कहीं नहीं देखा येवी एक बलवान् कारण है और सोमादिक रोग होते हैं कदाचित कोई कहै कि और रोगका होना असंभव है तो ये केवल झगडेका स्थान है इस्का किसीने यथार्थ निर्णय नहीं करा प्रमेहनिवृत्तिके लक्षण सुश्रुतमें कहे हैं यथा प्रमेहिणोयदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम्। विशदंकटुतिक्तंचतदारोग्यंप्रचक्षते।

इति प्रमेह मधुमेह पिटिकानिदानम्।

मेदोनिदानम्।



कारण और सम्प्राप्ति

अव्यायामदिवास्वप्नश्लेष्मलाहारसेविनः। मधुरोऽन्नरसःप्रायःस्नेहान्मेदोविवर्द्धते ॥ १ ॥ मेदसावृत्तमार्गत्वात्पुष्यंत्यन्येनधातवः। मेदस्तुचीयतेयस्मादशक्तःसर्वकर्मसु ॥ २ ॥

अर्थ–दंड कसरतके न करनेसे दिनमें सोनेसे और कफकारी पदार्थके सेवन

करनेसे ऐसी रीतिसै वर्त्तनेवाले पुरुषका अन्नरस केवल मधुर कहिये आमरूप हो स्नेहकर्के मेदको वढावे मेदकर्के मार्ग वंद होनेसें अन्य धातु हाड मज्जा वीर्य आदि पुष्ट होंय नहीं और मेद वढे तव वह पुरुष सर्व कर्म करनेको अशक्त होय।

मेदस्वी पुरुषके लक्षण

क्षुद्रश्वासतृषामोहस्वप्नक्रथनसादनैः। युक्तःक्षुत्स्वेददौर्गंध्यै-रल्पप्राणोल्पमैथुनः॥ ३ ॥ मेदस्तुसर्वभूतानामुदरेष्वस्थि-षुस्थितम्। अतएवोदरेवृद्धिःप्रायोमेदस्विनोभवेत्॥ ४ ॥

अर्थ–क्षुद्र श्वासः रूक्षायासोद्भव इत्यादिक पिछाडी कहि आये सो तृषा मोह निद्रा अकस्मात् श्वासका रोग अंगग्लानि भूख पसीना और दुर्गंधि इन लक्षणकर्के वह पुरुष युक्त होय उस्की शक्ति घटजाय और मैथुन करनेमें उत्साह न होय मेद यह सब प्राणीमात्रोंके उदर और हड्डीनमें रहै है इसीसै मेदवाले पुरुषका पेट बढा करता है।

मेदस्वीकी अवस्थाविशेष

मेदसावृतमार्गत्वाद्वायुःकोष्ठेविशेषतः। चरन्संधुक्षयत्यग्नि-माहारंशोषयत्यपि॥ ५ ॥ तस्मात्सशीघ्रंजरयत्याहारंचा-पिकांक्षति। विकारांश्चाश्नुतेघोरान्कांश्चित्कालव्यतिक्रमात् ॥ ६ ॥ एतावुपद्रवकरौविशेषादग्निमारुतौ। एतौहिदहतः स्थूलंवनंदावानलोयथा॥ ७ ॥

अर्थ–मेदसैं मार्ग रुकजानेसैं कोठेमें पवनका संचार विशेष होय तव अग्निको यह पवन वढावै भोजन करै आहारको तुरन्त शोषण करे तव वह आहार शीघ्र पचकर फेर जमनेकी इच्छाको प्रगट करै और भोजन करनेमें कालका व्यतिक्रम होनेसें भयंकर वातके रोग उत्पन्न होंय यह अग्नि और वायू वडा उपद्रव करैहैं जैसे दावानल (अग्नि) वनको जरावै है उसी प्रकार ये दोनो उस स्थूल (मोटे) पुरुषको जराति है।

असंत मेद वढनेका परिणाम

मेदस्यतीवसंवृद्धेसहसैवानिलादयः।
विकारान्दारुणान्कृत्वानाशयंत्याशुजीवितम्॥ ८ ॥

अर्थ–मेद असन्त वढनेसै वायूआदि ए अकस्मात् भयंकर (प्रमेह पिटिका ज्वर भगंदर विद्रधि वातरोग इत्यादि) उत्पन्न करके शीघ्रही जीवका नाश करै।

स्थूललक्षण

मेदोमांसातिवृद्धत्वाच्चलस्फिगुदरस्तनः ।
अयथोपचयोत्साहोनरोऽतिस्थूलउच्यते ॥ ९ ॥

अर्थ–मेद और मांस ए अत्यन्त बढनेसे जिस पुरुषके कूले पेट और स्तन ए थल थल हलें और उस्के शरीरकी स्थूलता बढी होय अर्थात् जैसी चाहिये तैसी न होय तथा उत्साह (हुशयारी) न रहै ऐसे मनुष्यको अति स्थूल कहते हैं ।

इति माधवभावार्थबोधिनीमाथुरीटीकायां मेदोनिदानम् ।

कार्श्यनिदानम् ।

प्रसंगवशसैं कार्श्य (क्षीण) रोगका निदान ग्रन्थान्तरसै लिखते हैं

वातोरूक्षान्नपानानिलंघनंप्रमिताशनं । क्रियातियोगःशोकश्चवेगनिद्राविनिग्रहः ॥ १ ॥ नित्यंरोगोरतिर्नित्यंव्यायामोभोजनाल्पता । भीतिर्धनादिचिंताचकार्श्यकारणमीरितं ॥ २ ॥ क्रोधोतिमैथुनंचैवशुक्रव्याधिस्तथैवच । कार्श्यस्यहेतवःप्रोक्ताःसमस्तैरपितांत्रिकैः ॥ ३ ॥

अर्थ–कुपित वायू रूखा अन्न (चना कांगुनी सागखिआदि) रूक्षपान (औंटाया जलआदि) लंघन थोडा भोजन क्रियातियोग कहिये वमन विरेचनका बहुत होना शोक बंधुवियोगादिक मूत्र मल आदि वेगोंका रोकना निद्राका रोकना नित्यही रोगी रहना सर्वदा अरति होना व्यायाम (दंड कसरत और मार्गका चलना आदि श्रम) अति भय धन आदिकी चिन्ता क्रोध अति मैथुन शुक्रव्याधि (प्रमेहरोगादिक) ए सर्व कार्श्य (क्षीण) होनेके कारण वैद्य कहते हैं ।

कृशमनुष्यके लक्षण

शुष्कस्फिगुदरग्रीवाधमनीजालसन्ततिः ।
अस्थिशेषोतिकृशतःस्थूलपर्वनरोमतः ॥ ४ ॥

अर्थ–जिस्के कूले पेट गरदन और धमनी कहिये नाडीन्का जाल ए सब सूख जाय तथा हड्डी सूख जाय और पर्व कहिये जोड मोटे होंय वह पुरुष कृश (लटा) कहाता है ।

अतिकृशको वर्जनीय वस्तू

व्यायाममतिसौहित्यंक्षुत्पिपासामहौषधं ।
नकृशःसहतेतद्वदतिशीतोष्णमैथुनम् ॥ ५ ॥

अर्थ–व्यायाम (दंडकसरत)का करना अति सौहित्य (अच्छी बात) भूख प्यास उत्कट औषध तथा शीतलता गरमी और मैथुन इन्को कृश मनुष्य नहीं सहिसके है इसीसे इनको त्याग दे ।

अतिकृशके जे रोग होते हैं उन्को कहते हैं

मोहःकासःक्षयःश्वासगुल्मार्शांस्युदराणिच ।
भृशंकृशंप्रधावंतिरोगाश्चग्रहणीमुखाः ॥ ६ ॥

अर्थ–जो मनुष्य ज्वरादि रोगसैं कृश होय अथवा वातरूक्षान्नपानादिकसैं कृश होय और वो कुपथ्य करे तौ इतने रोग होंय जो विदाही और अभिष्यंदी वस्तु खाइ तौ प्लीह (तापतिल्ली) होय और खटाई खाय तौ खांसी होय और अति मैथुन करै तौ खईका रोग होय और व्यायाम शीतल भोजनपानादिक करै तौ श्वासरोग होय जो रूखा अन्नपान कडुवा खट्टा भक्षण और शीतल भारी चिकना आदिका सेवन करे तौ गुल्म (गोला) होय और अर्श (ववासीर)कारक पदार्थ सेवनसैं ववासीर होय इसी प्रकार उदररोग संग्रहणी आदि रोग होते हैं अब कहते हैं कि कोई कृशभी वलवान होय है इसमें क्या हेतु है ।

आधानसमयेयस्यशुक्रभागोधिकोभवेत् ।
मेदोभागस्तुहीनःस्यात्सकृशोऽपिमहाबलः ॥ ७ ॥

अर्थ–गर्भ रहनेके समय शुक्रका भाग अधिक होय और मेदका भाग थोडा होय तौ मेद थोडे होनेसैं तो कृश होय और शुक्राधिक्य होनेसै वलवान होय ।

कस्यचित्स्थूलस्यापितादृक्वलं न दृश्यते तत्र हेतुमाह

मेदसोंशोधिकोयस्यशुक्रभागोल्पकोभवेत् ।
सस्निग्धोपिसुपुष्टोपिवलहीनोविलोक्यते ॥ ८ ॥

अर्थ–गर्भ रहते समय मेदका भाग अधिक होय और शुक्रका भाग थोडा होय तो वह पुष्टभी है परंतु वलहीन होय है ।

दृष्टान्त

यथापिपीलिकास्वल्पायथाचवरटीवलात् ।

स्वतश्चतुर्गुणंभारंनीत्वागच्छतिसन्मुखं ॥ ९ ॥

अर्थ–जैसे पिपीलिका (चैंटी) आप अतिकृश है और खानेकी वस्तु दाल चांवल आदि भारीवी है परंतु उनको खींचकर विलमें लेजातीहै और वरटी (पीली मांखी) झींगर आदि आपसे चौगुने भारीवी है परन्तु खींचकर अपने स्थानमें लेजाती है इसी प्रकार वलवान् पुरुष जानना ।

असाध्यकार्श्यमाह

स्वभावात्कृशकायोयःस्वभावादल्पपावकः ।
स्वभावादबलोयश्चतस्यनास्तिचिकित्सितं ॥ १० ॥

अर्थ–जिसका स्वतः स्वभावसैं कृश शरीर है और जिस्की स्वभावसैं मंदाग्नि है और जो स्वभावसैं वलहीन है उस्की चिकित्सा नहीं है ।

इति कार्श्यरोगनिदानम् ।

उदररोगनिदानम् ।

अग्निका दुष्टहोना यही उदररोगका विशेषकर्के कारण है

रोगाःसर्वेऽपिमन्देऽग्नौसुतरामुदराणिच ।
अजीर्णान्मलिनैश्चान्नैर्जायन्तेमलसंचयात् ॥ १ ॥

अर्थ–अग्नि मन्द होनेसें सव रोग होतेहैं और उदर तो विशेषकर्के होयहै कारण यह है कि अग्निमांद्य यह त्रिदोषजनक है और अजीर्णसैं मलिन अन्नसें (विरुद्ध अध्यशनादिक) और मल (दोष तथा पुरीषादिक) इन्के संचयसें उदररोग होयहै । इस जगे उदरशब्दकरके उदरस्थित रोग जानने सो ग्रंथान्तरमें लिखा है ।

उदरकी सम्प्राप्ति

रुध्वास्वेदाम्बुवाहीनिदोषाःस्त्रोतांसिसंचिताः ।
प्राणाग्न्यपानान्संदूष्यजनयंत्युदरंनृणाम् ॥ २ ॥

---

१ तेषामग्निबलेहीनेकुप्यतिपवनादयः ॥ इति ।

२ तात्स्थ्यतद्धर्मनाभ्याचतत्तन्मगीपनयापिचनत्साहचर्याच्छब्दानांवृत्तिरेषाचतुर्विधेति ।

३ अतिसंचितदोषाणांपापकर्म्मचकुर्वतां । उदराण्युपजायंतेमंदाग्नीनांविशेषतः । स्वेदवहानां मेदोमूलं लोमकूपश्च ।

४ उदकवहाना स्रोतसां तालुमूलं क्लोम च ।

अर्थ-वातादिदोष स्वेद (पसीना) वहनेवाली और जलको वहनेवाली नाडीन्के मार्गको रुद्ध (रोक)कर और वे दोष बढकर प्राणवायू अग्नि और अपानवायू इन्को अत्यन्त दुष्टकर मनुष्योंके उदररोग उत्पन्न करैंहै ॥ उदररोगका पूर्वरूप ॥ सुश्रुतमें लिखाहै-तत्पूर्वरूपंबलवर्णकांक्षावलीविनाशोजठरेतुराज्यः । जीर्णापरिज्ञानविदाहवत्योवस्तौरुजःपादगतश्चशोथः ।

उदरके सामान्यरूप

आध्मानंगमनेऽशक्तिर्दौर्बल्यंदुर्बलाग्निता । शोथःसदनमंगानांसंगोवातपुरीषयोः ॥ ३ ॥ दाहस्तंद्राचसर्वेषुजठरेषुभवंतिहि ।

अर्थ-अफरा चलनेकी शक्तीका नाश दुर्वलता मंदाग्नि सूजन अंगग्लानि वायूका तथा मलका रुकना दाह तन्द्रा ए लक्षण सब उदरमें होतेहैं ।

उदररोगसंख्या

पृथग्दोषैःसमस्तैश्चप्लीहबद्धक्षतोदकैः ॥ ४ ॥
संभवंत्युदराण्यष्टौतेषांलिंगंपृथक्शृणु ।

अर्थ-पृथक् दोषोंसैं (अर्थात् वात पित्त कफ) सन्निपातसैं (सन्निपातोदर) प्लीहोदर १ बद्धोदर १ क्षतोदर १ और जलोदर १ सबमिलायकर ८ भये उन्के लक्षण पृथक् पृथक् कहतेहैं ।

तिनमें वातोदरके लक्षण

तत्रवातोदरेशोथःपाणिपन्नाभिकुक्षिषु ॥ ५ ॥ कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् । शुष्ककासोऽगमर्दोऽधोगुरुतामलसंग्रहः ॥ ६ ॥ श्यावारुणत्वगादित्वमकस्माद्वृद्धिन्हासवत् ॥ सतोदभेदमुदरंतनुकृष्णाशिराततम् ॥ ७ ॥ आध्मातहतिवच्छब्दमाहतंप्रकरोतिच । वायुश्चात्रसरुक्शब्दोविचरेत्सर्वतोगतिः ॥ ८ ॥

अर्थ-वातोदरमें हाथ पैर नाभि और कूख इन्में सूजन होय संधीन्का टूटना तथा कूख पसवाडे पेट कमर पीठ इन्में पीडा सूखी खांसी अंगोंका टूटना कमरसैं नीचे भागमें भारीपना मलका संग्रह होना त्वचा नख नेत्रादिकका काला लाल होना पेट अकस्मात (निमित्तके विना) बडा होजाय छोटा होजाय सुई चुभाने-

कीसी तथा नोचनेकीसी पीडा होय, पेटमें चारोंतरफ वारीक कालीशिरा (नाडीन्)सैं व्याप्त होय चुकटी मारनेसैं फूली पखालके समान शब्द होय इस उदरमें वायू चारोंतरफ डोलकर शूल करे तथा गूंजे ।

पित्तोदरके लक्षण

पित्तोदरेज्वरोमूर्च्छादाहस्तृट्कटुकास्यता । भ्रमोतिसारःपीतत्वंत्वगादावुदरंहरित् ॥ ९ ॥ पीतताम्रशिरानद्धंसस्वेदंसोष्मदह्यते । धूमायतेमृदुस्पर्शंक्षिप्रपाकंप्रदूयते ॥ १० ॥

अर्थ–पित्तके उदररोगमें ज्वर मूर्च्छा दाह प्यास मुखमें कडुआसा भ्रम अतिसार त्वगादिक (नख नेत्र) इन्में पीलापना पेट हरा होय पीली तामेके रंगकी नाडीन्सैं उदर व्याप्त हो पसीना आवै, गरमीसैं सब देहमें दाह होय आंतोंसैं धूंआंसा निकलता दीखै हाथके स्पर्श करनेसे नरम मालूम हो शीघ्र पाक होय अर्थात् जलोदरत्वको प्राप्त होय और उस्में घोर पीडा होय ।

कफोदरके लक्षण

श्लेष्मोदरेऽगसदनंस्वापःश्वयथुगौरवम् । निद्रोत्क्लेशोऽरुचिः श्वासःकासःशुक्लत्वगादिता ॥ ११ ॥ उदरंस्तिमितंस्निग्धंशुक्लराजीततंमहत् । चिराभिवृद्धिकठिनशीतस्पर्शंगुरुस्थिरम् १२

अर्थ–कफके उदररोगमें हाथ पैर आदि अंगोंमें शून्यता हो और जिकडजाय सूजन होय, अंग भारी होजाय, निद्रा आवै, वमन होयगी ऐसा मालूम होय, अरुचि होय, खांस, खांसी होय, त्वचा नख नेत्रादिक सपेद हों, पेट निश्चल चिकना सपेद नाडीन्सें व्याप्तहो, इस्की वृद्धी वहुत कालमें होय, पेट करडा और शीतल मालूम होय, तथा भारी और स्थिर होय ।

सन्निपातोदरके लक्षण

स्त्रियोऽन्नपानंनखरोममूत्रविडार्तवैर्युक्तमसाधुवृत्ताः । यस्मै प्रयच्छंत्यरयोगरांश्चदुष्टांवुदूषीविषसेवनाद्वा ॥१३॥ तेनाशुरक्तंकुपिताश्चदोषाःकुर्युःसुघोरंजठरंत्रिलिंगं । तच्छीतवातेभृशदुर्दिनेवाविशेषतःकुप्यतिदह्यतेच ॥१४॥ सचातुरो मूर्च्छति हिप्रसक्तंपांडुःकृशःशुष्यतिसेवयाच । दूष्योदरंकीर्तितमेतदेव

अर्थ–खोटे आचरणवाली स्त्री जिस पुरुषको नख केश (वार) मल मूत्र आर्त्तव (रजोदर्शका रुधिर) मिला अन्नपान देय, अथवा जिसका शत्रु विष देवे, अथवा दुष्टांबु (जहरमिला मछली तिनका पत्ता आदि औटा हुआ ऐसा जल) और दूषीविष[1], (मन्दविष) इन्के सेवन करनेसें रुधिर और वातादिक दोष शीघ्र कुपित होकर असन्त भयंकर त्रिदोषात्मक उदररोग उत्पन्न करैहैं; वे शीतकालमें, अथवा शीतल पवन चले उस समय, अथवा जिस दिन वर्षाका झड लगै उस दिन विशेषकरके कोपको प्राप्त हो, और दाह होय [इसका कारण ये है कि उस समय दूषीविषका कोप होयहै] वो रोगी निरन्तर विषके संयोगसैं मूर्च्छित होय, देहका पीला वर्ण तथा कृश होय, और परिश्रम करनेसें शोष होय, तो इस्को दूष्योदर[2] ऐसे कहतेहैं ।

प्लीहोदरके लक्षण

प्लीहोदरंकीर्तयतोनिबोध ॥ १५ ॥ विदाह्यभिष्यंदिरतस्यजंतोःप्रदुष्टमत्यर्थमसृक्कफश्च । प्लीहाभिवृद्धिंकुरुतःप्रवृद्धौप्लीहोत्थमेतज्जठरंवदन्ति ॥ १६ ॥ तद्वामपार्श्वेपरिवृद्धिमेतिविशेषतः सीदतिचातुरोऽत्र । मन्दज्वराग्निःकफपित्तलिंगैरुपद्रुतःक्षीणबलोऽतिपांडुः ॥ १७ ॥

अर्थ–अब प्लीहोदरके लक्षण कहताहूं तूं सुन । विदाही (वंशकरीरादि) अर्थात् दाह करनेवाली और अभिष्यंदी (दध्यादि) अर्थात् स्रोत (छिद्रोंरोकनेवाली) ऐसे अन्न निरंतर सेवन करनेवाले पुरुषके असंत दुष्ट भए जे रुधिर और कफ बढकर प्लीह (तापतिल्ली)को बढावै इस उदरको प्लीहोत्थ उदर कहतेहै, ये बाँईतरफ बढताहै इस अवस्थामें रोगी बहुत दुःख पाताहै, देहमें मंदज्वर होय, मंदाग्नि होय, तथा कफपित्तोदरके लक्षण इसमें मिलतेहौं, बलक्षीण होय, असंत पीला वर्ण होय ।

यकृद्दाल्युदरके लक्षण

सव्यान्यपार्श्वेयकृतिप्रदुष्टेज्ञेयंयकृद्दाल्युदरंतदेव ॥ १८ ॥

---

१ यदुक्तम् जीर्णं विषघ्नौषधिभिर्हतं वा दावाग्निना वाऽऽतपशोषित वा । स्वभावतो वा गुणविप्रहीनं विषं हि दूषीविषतामुपैति इति ।

२ एतदेव सन्निपातोदर दूष्योदरं कीर्तितं न पुनरधिक इत्यर्थः । रक्तं दूष्य दूषयित्वा भवतीति दूष्योदर किं वा परस्परं दूषयंतीति दोषा एव दूष्यास्तैः कृतमुदरं दूष्योदरम् ।

३ यकृद्दालयति दोषैर्भेदयतीति यकृद्दाल्युदरम् ।

अर्थ—दहने तरफ जो यकृत् कहिये कलेजाहै वो दुष्ट कहिये रोगयुक्त होनेसें प्लीहोदरके समान उदर होय उस्को यकृद्दाल्युदर कहतेहैं । दोषोंकर्के यकृत्का भेद होय है इसीसें यकृद्दालि उदर कहतेहैं ।

इसमें दोषोंका संबंध कहतेहै

उदावर्त्तरुजानाहैर्मोहतृड्दहनज्वरैः ।
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विद्यात्तत्रमलान्क्रमात् ॥ १९ ॥

अर्थ—उदावर्त्त, शूल, अफरा इन्सैं वायु, मोह, प्यास, ज्वर इन्से पित्त और भारीपना अरुचि कठिनता इन्सैं कफ ऐसे क्रमपूर्वक दोषोंका संबंध जानना ।

बद्धगुदोदरके लक्षण

यस्यांत्रमन्नैरुपलेपिभिर्वाबालाश्मभिर्वापिहितंयथावत् । सं-
चीयतेतस्यमलःसदोषःशनैःशनैःसंकरवच्चनाड्याम् ॥ २० ॥
निरुध्यतेतस्यगुदेपुरीषंनिरेतिकृच्छ्रादतिचाल्पमल्पम् । हृ-
न्नाभिमध्येपरिवृद्धिमेतितस्योदरंबद्धगुदंवदन्ति ॥ २१ ॥

अर्थ—जिस पुरुषकी आंत उपलेपे कहिये गाढे अन्नकर्के (शाकादिक) अथवा बाल तथा बारीक पत्थरके टुकडेकर्के बद्ध होजाय, उस पुरुषका दोषयुक्त मल धीरे धीरे आंतडीके नलीमें होकर जैसे बुहारीसें झारा तृण धूर आदि क्रमसे बढे है, उसी प्रकार बढे, और वह मल बडे कष्टसे गुदाद्वारा थोडा थोडा निकलें, जब मलका निकलना बंद होजाय तब मल दोषोंकर्के गुदासें ऊपर आवै इसीसें उदर बढे है, अर्थात् हृदय और नाभिके मध्य अन्नपाकस्थानकी वृद्धी होय इ-सीसैं इस उदरको बद्धगुदोदर कहतेहैं । अथवा गुदाके ऊपर आंतोंको बद्ध होनेसें बंद्धगुद कहतेहैं यह (चरक)का मत है ।

क्षतोदरके लक्षण

शल्यंतथान्नोपहितंयदंत्रंभुक्तंभिनत्त्यागतमन्यथावा । तस्मा-
त्स्रुतोऽत्रात्सलिलप्रकाशःस्रावःस्रवेद्वैगुदतस्तुभूयः ॥ २२ ॥
नाभेरधश्चोदरमेतिवृद्धिंनिस्तुद्यतेदाल्यतिचातिमात्रम् । ए-
तत्परिस्राव्युदरंप्रदिष्टं

अर्थ—कांटा धूल आदि अन्नके साथ मिलकर पेटमें चलाजाय अर्थात् पकाशयमें विलोम (टेढा तिरछा) चलाजाय तब आंतोंको काटे और सीधा जाय तो नहीं

काटे अथवा जंभाई अति अशन करनेसें अर्थात् रोकनेसें आंत फटजाय सो (चरकमें) लिखाभीहै उन फटे आंतोंसें गलित पानीके समान स्राव पुनः गुदाके मार्ग होकर झरै, नाभिके नीचेका भाग बढे, नोचनेकीसी तथा भेद (चीरने)-कीसी पीडासें असन्त व्यथित होय, इस क्षतोदरको ग्रन्थांतरमें परिस्राावि उदर कहतेहैं और इसीको छिद्रोदर कहतेहैं यह गयदासका मत है।

जलोदरकी उत्पत्तिसह लक्षण

दकोदरंकीर्तयतोनिबोध ॥ २३ ॥ यःस्नेहपीतोप्यनुवासि-
तोवावांतोविरिक्तोऽप्यथवानिरूढः । पिबेज्जलंशीतलमाशु
तस्यस्रोतांसिदूष्यन्तिहितद्वहानि ॥ २४ ॥ स्नेहोपलिप्तेष्व-
थवापितेषुदकोदरंपूर्ववदभ्युपैति । स्निग्धंमहत्तत्परिवृद्धना-
भिसमाततंपूर्णमिवांबुनाच ॥ २५ ॥ यथादृतिःक्षुभ्यतिकं-
पतेचशब्दायतेचापिदकोदरंतत् ।

अर्थ—अब जलोदर कैसे होय है उसको कहते हैं जिसने स्नेह (घृततैलादि) पान करा होय, अथवा अनुवासनवस्तिकरी हो, वमन करा हो, अथवा दस्त करे हो, अथवा निरूह बस्तिकरी होय, ऐसा पुरुष शीतल जल पीवै तब उसकी जल वहनेवाली नसोंके मार्ग तत्काल दुष्ट होय है, वे उदक वहनेवाले स्रोत-(मार्ग) स्नेहसें उपलिप्त (चीकने) होनेसें पूर्ववत् (अर्थात् अन्नरस उपस्नेह-न्याय करके अर्थात् इन्को बाहर लायकर उदरको उत्पन्न करे) जलोदर होय है उसमें चिकनापन दीखै, ऊंचा होय, नाभिके पास बहुत ऊंचा होय, चारों ओर तनासा मालूम होय, पानीकी पोट भरीसी होय, जैसी पानीसे भरी पखालमें जल हले है उसी प्रकार हले—गुड़ गुड शब्द करे, कांपे, इन्को—जलोदर अर्थात् जलंधर कहते हैं।

साध्यासाध्यविचार।

जन्मनैवोदरंसर्वंप्रायःकृच्छ्रतमंविदुः ॥ २६ ॥
बलिनस्तदजातांबुयत्नसाध्यंनवोत्थितम् ।

अर्थ—सर्व प्रकारके उदर जन्मसेंही प्राय अत्यन्त कष्टसाध्य होते हैं, बलवान् पुरुषके नवीन प्रगट भया हो और उसमें पानी नहीं प्रगट भया हो ऐसा बडे यत्नसे साध्य होय, पानी नही प्रगट भया हो ऐसे उदरके लक्षण चरकमें कहे हैं।

१ शर्करातृणलोष्टास्थिकंटकैरन्नसंयुतैः। भिद्येतान्त्रं यदा भुक्तैर्जृंभवात्यशनेन वा इति।

अशोथमरुणाभासंसशब्दंनातिभारिकम् ॥ २७ ॥ सदागु-
डगुडायंतंशिराजालगवाक्षितम् । नाभिंविष्टभ्यपायौतुवेगं
कृत्वाप्रणश्यति ॥२८॥हृद्वंक्षणकटीनाभिगुदंप्रत्येकशूलिनः ।
कर्कशंसृजतोपानंनातिमन्देचपावके ॥ २९ ॥ लोलस्याचि-
रमेवास्येमूत्रेऽल्पेसंहतेविशि । अजातोदकमित्येतैर्युक्तंवि-
ज्ञायलक्षणैः ॥ ३० ॥

जातोदकके लक्षणभी चरकमें, इस प्रकार कहे हैं सो लिखते हैं
यथा

पयःपूर्णाद्दृतिरिवक्षोभेशब्दकरंमृदु । अप्रव्यक्तशिरंशूनं नि-
तान्तमुदरंमहत् ॥ ३१ ॥ आलस्यमास्यवैरस्यंमूत्रंबहुशकृ-
त्स्रुतं । जातोदकस्यलिंगंस्यान्मंदोऽग्निःपांडुतापिच ॥ ३२ ॥

इति

पक्षाद्बद्धगुदंतूर्ध्वंसर्वंजातोदकंतथा ।
प्रायोभवत्यभावायछिद्रांत्रंचोदरंनृणाम् ॥ ३३ ॥

अर्थ–बद्धगुदोदर १९ दिवसके पिछाडी असाध्य होय है, उसी प्रकार सब प्रकारके उदक (पानी) उत्पन्न होनेसें नाशकारक होय है, और छिद्रांत्रोदर ए प्रायः नाशक होय है । कदाचित् शल्य अथवा शस्त्रचिकित्सा जैसी होनी चाहिये ऐसी होय तो उदक (पानी) प्रगट भया उदररोग छिद्रांत्र अथवा बद्धगुद साध्य होय है, ये प्रायः इस पदसें सूचना करी ।

असाध्यलक्षण

शूनाक्षंकुटिलोपस्थमुपक्लिन्नतनुचत्वम् ।
बलशोणितमांसाग्निपरिक्षीणंचवर्जयेत् ॥ ३४ ॥

अर्थ–जिस उदररोगीके नेत्रोंपर सूजन होय, लिंग टेढा होगया हो, पेटकी त्वचा गीली तथा पतली हो गयी होय, बल, रुधिर, मांस और अग्नि ए जिस्के क्षीण होगये हो, ऐसा रोगी त्याज्य है ।

दूसरे असाध्य लक्षण

पार्श्वभंगान्नविद्वेषशोथातीसारपीडितम् ।

विरिक्तंचाप्युदरिणंपूर्यमाणंविवर्जयेत् ॥ ३५ ॥

इति उदरनिदान

अर्थ-पार्श्वभंग (पसरियामें पीडा) अन्नमें अरुचि, शोथ, अतिसार, इन्सें पीडित, और दस्त करानेसें जिस्का पेट फेर पानीसें भरजाय; ऐसा उदर-रोगीको वैद्य त्याग देय.

इति श्रीदत्तरामकृतमाथुरीटीकायां उदररोगनिदानं समाप्तम् ।

शोथरोगनिदानम् ।

शोथकी संप्राप्ति

रक्तपित्तकफान्वायुर्दुष्टोदुष्टान्बहिःशिराः ।
नीत्वारुद्धगतिस्तैर्हिकुर्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् ।
सोत्सेधंसंहतंशोथंतमाहुर्निचयादतः ॥ १ ॥

अर्थ-कुपित भई वायू स्वकारणसें दुष्ट भये रक्तपित्तकफको बाह्य शिरा (बाहरकी नाडीन्में प्राप्त हो) तब उन्की गति बंद करे इसीसें वह पवन त्वचा और मांस इन्के आश्रयसें सूजन उत्पन्न करे, वह सूजन ऊंची और कठिन होय, इस्को रक्तसहित त्रिदोषोंका संबंध है, अर्थात् सन्निपातात्मक ऐसे कहते हैं । त्वङ्मांससंश्रयम् इस पदसें व्रणशोथ जो शोथका भेद है सो दिखाया, क्योंकि-व्रणका संभव आठ व्रणवस्तुन्में होनेसें सो कहाभी है (त्वङ्मांस- शिरास्नायु अस्थिसन्धि कोष्ठे मर्माणि इति अष्टौ व्रणवस्तूनि भवंति) इति ॥

सर्वैहेतुविशेषैस्तुरूपभेदान्नवात्मकम् ।
दोषैःपृथग्द्वयैःसर्वैरभिघाताद्विषादपि ॥ २ ॥

अर्थ-वो सूजन कारणभेदसें कार्यभेद होकर ९ नौ प्रकारकी होय हैं । यथा-अलग अलग दोषोंसें ३ द्वंद्वज ३ सन्निपातज १ अभिघातज १ और विषसें १ ऐसे सब मिलकर नौ प्रकारका शोथरोग भया ।

निदान

शुद्धामयाभक्तकृशाबलानांक्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा । द-
ध्याममृच्छाकविरोधिपिष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणंच ॥ ३ ॥ अ-

शोस्यचेष्टावपुषोह्यशुद्धिर्मर्माभिघातोविषमाप्रसूतिः । मि-
थ्योपचारःप्रतिकर्मणांचनिजस्यहेतुःश्वयथोःप्रदिष्टः ॥ ४ ॥

अर्थ–वमनआदि ज्वरादिक अभोजन (विगुणभोजन इन्सें जो कृश और व-लहीन मनुष्योंके क्षारादिकका सेवन सूजनेका कारण होयहै तहां नोन, खटाई, तीखी, उष्ण, भारी वस्तूमें दही, अपक्व, मट्टी, निषिद्धसाग, विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादिक) संयोगजविषसें दूषित भया अन्नके सेवन करनेसे, ववासीर, दंडकसरतके न करनेसें, शोधनके योग्य दोषोंके न शोधनेसें हृदयादि मर्मोके दोष जन्मउपघातसें, कच्चा गर्भपात होना विषमप्रसूति, वमनादि पंचकर्मोका मिथ्यायोग ये सर्व दोषज सूजनका कारण कहेहैं ।

पूर्वरूप

तत्पूर्वरूपंक्षवथुःशिरायामोऽङ्गगौरवम् ॥ ५ ॥

अर्थ–संताप, नसोंकी तननेके समान पीडा, देह भारी ए लक्षण सूजन होनेवाले पुरुषके होतेहैं ।

सामान्यलक्षण

सगौरवंस्यादनवस्थितत्वंसोत्सेधमूष्माचशिरातनुत्वम् ।
सलोमहर्षश्चविवर्णताचसामान्यलिंगंश्वयथोःप्रदिष्टम् ॥ ६ ॥

अर्थ–अंग भारी हो, चित्तमें स्वस्थता न होना, ऊंची सूजन, और दाह, नस पतली होजाय, रोमांच, और देहका रंग बदल जाय, ये सूजनके सामान्य लक्षण हैं ।

वातजशोथके लक्षण

चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोऽसितःससुप्तिहर्षार्तियुतोऽनिमित्ततः ।
प्रशाम्यतिप्रोन्नमतिप्रपीडितोदिवाबलीस्याच्छ्वयथुःसमीरणात् ७

अर्थ–वादीसे सूजन चंचल, त्वचा पतली होजाय, कठोर हो, लाल, काली तथा त्वचा शून्य पडजाय, भिन्न भिन्न वेदना हो, अथवा रोमांच और पीडा हो, कदाचित् निमित्तके विना शांति होजाय उस सूजनके दाबनेसें तत्क्षण ऊपरको उठ आवै, दिनमें जोर बहुत करे ।

पित्तजशोथके लक्षण

मृदुःसगंधोऽसितपीतरागवान्भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः ।
यउष्यतेस्पर्शरुगक्षिरागकृत्सपित्तशोथोभृशदाहपाकवान् ॥८॥

अर्थ—पित्तकी सूजन नरम, कुछ दुर्गंधयुक्त, काली, पीली, और लाल होय, उसके होनेसे भ्रम, ज्वर, पसीना, प्यास और मस्तपना ए लक्षण होय दाह होय हाथ लगानेसैं दूखै, इसीसै नेत्र लाल हो, उसमें अत्यन्त दाह तथा पाक होय।

कफजशोथके लक्षण

गुरुःस्थिरःपांडुररोचकान्वितःप्रसेकनिद्रावमिवन्हिमांद्यकृत्।
सकृच्छ्रजन्मप्रशमोनिपीडितोनचोन्नमेद्रात्रिबलीकफात्मकः९

अर्थ—कफकी सूजन भारी, स्थिर, पीली होय है इसके योगसै अन्नद्वेष, लारका गिरना, निद्रा, वमन, मन्दाग्नि ए लक्षण होय तथा इस सूजनकी उत्पत्ति और नाश बहुतकालमें होय, इसको दबानेसै ऊपरको नहीं उठे, रात्रिमें इस्की प्रबलता हो।

द्वंद्वज और संनिपातज शोथके लक्षण

निदानाकृतिसंसर्गाच्छ्वयथुःस्याद्विदोषजः।
सर्वाकृतिःसन्निपाताच्छोथोव्यामिश्रलक्षणः॥ १०॥

अर्थ—दो दोषोंके लक्षण और कारण एकत्र मिलनेसें द्वंद्वजशोथ जाननी और सन्निपातसैं सूजन होय उसमें वातादिक तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं।

अभिघातजशोथके लक्षण

अभिघातेनशस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः। हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥ ११ ॥ रसःशूकैश्चसंस्पर्शाच्छ्वयथुः स्याद्विसर्पवान्। भृशोष्मालोहिताभासःप्रायशःपित्तलक्षणः१२

अर्थ—काष्ठादिककी चोट लगनेसै, शस्त्रादिकसै छेदन होनेसैं, पत्थर आदिसैं फूटनेसैं, अथवा घावके होनेसैं आदिशब्दसै लकडीआदि प्रहारसै शीतल पवन लगनेसैं, समुद्रकी पवन लगनेसैं, भिलायेके तेल लगजानेसैं, और केंचकी फलीके स्पर्श होनेसैं, जो सूजन होय सो चारों तरफ फैल जाय, उसमें अत्यन्त दाह होय, उस्का रंग लाल होय और विशेषकर्के इस्सें पित्तके लक्षण होते हैं।

विषजशोथके लक्षण

विषजःसविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात्। दंष्ट्रादंतनखाघातादविषप्राणिनामपि ॥ १३ ॥ विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्र-

संकरात् । विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात् ॥ १४ ॥
मृदुश्चलोवलंबीचशीघ्रोदाहरुजाकरः ।

अर्थ–विषवाले प्राणियोंके अंगपर चलनेसैं, अथवा मूतनेसैं अथवा निर्विष (विषरहित मनुष्यादिक) प्राणीन्के डाढ दांत नख लगनेसै, अथवा सविष प्राणीनका विष्ठा मूत्र शुक्र इनसैं भरा, अथवा मलिन वस्त्र अंगमें लगनेसैं, अथवा विषवृक्षकी हवाके लगनेसैं, अथवा संयोगजविषका अंगमें लगनेसैं, जो सूजन उत्पन्न होय सो विषज कहलातीहै वो सूजन नरम, चंचल, भीतर प्रवेश करनेवाली, जल्दी प्रगट होनेवाली, दाह और पीडा करनेवाली होयहै ।

जिस जिस ठिकाने दोष सूजन उत्पन्न करें उनको कहते हैं

दोषाःश्वयथुमूर्ध्वंहिकुर्वंत्यामाशयस्थिताः ॥ १५ ॥ पक्वाशयस्थामध्येतुवर्चःस्थानगतास्त्वधः । कृत्स्नदेहमनुप्राप्ताःकुर्युःसर्वरसंतथा ॥ १६ ॥

अर्थ–आमाशय स्थितदोष ऊपर (उरःस्थानादिकोंमें) सूजनको करे, पक्वाशयमें स्थितदोष मध्य (कहिये उर और पक्वाशय) इन दोनोंके वीचमें सूजन करे, मलस्थानगतदोष नीचेके स्थान (पैरआदि)में सूजन करै, और सर्व देहमें दोष स्थित होनेसैं सब देहमें सूजनको करते हैं ।

सूजनके कृच्छ्रादिभेद

योमध्यदेशेश्वयथुःसकष्टःसर्वगश्चयः ।
अधोऽगेऽरिष्टभूतःस्याद्यश्चोर्ध्वंपरिसर्पति ॥ १७ ॥

अर्थ–जो सूजन मध्यदेहमें तथा सब देहमें होय सो कष्टसाध्य है, और सूजन नीचेके अंगमें प्रगट हो ऊपरको चढे वो असाध्य है ।

असाध्य लक्षण

श्वासःपिपासाछर्दिश्चदौर्बल्यंज्वरएवच ।
यस्यचान्नेरुचिर्नास्तिशोथिनंपरिवर्जयेत् ॥ १८ ॥

अर्थ–स्वास, प्यास, वमन, दुर्बलता, ज्वर, ए लक्षण होंय; और जिसकी अन्नमें अरुचि होय, ऐसे सूजनवाले रोगीको वैद्य त्याग दे ।

अनन्योपद्रवकृतःशोथःपादसमुत्थितः । पुरुषंहंतिनारींतुमु-

खजोगुह्यजोद्वयम् ॥ १९ ॥-नवोऽनुपद्रवःशोथःसाध्योऽसाध्यःपुरेरितः ।

इति शोथनिदानम्

अर्थ–अन्यरोगोंके उपद्रवसें प्रगट न भयी हो ऐसी सूजन पहिले पैरोंमें उत्पन्न हो फिर मुखआदि ऊपरके स्थानोंमें प्राप्त होय, [उस्को उलटी सूजन कहते हैं] वह पुरुषका नाश करे,- और जो प्रथम मुखपर होयकर पीछें पैरोंपे उतरे वो सूजन स्त्रीन्को घातक है, और जो प्रथम गुदामें उत्पन्न होकर सब देहमें व्याप्त हो वो स्त्रीपुरुष दोनोंकी नाशक हैं ।

नवीन और उपद्रवरहित जो सूजन होय वह साध्य है और " अधोंगेरिष्ट संभूत " इत्यादि श्लोकमें कही हुई सूजन असाध्य है ।

शोथके उपद्रव

छर्दिस्तृष्णारुचिःश्वासोज्वरोऽतीसारएवच ।
सप्तकोयंसदौर्बल्यःशोथोपद्रवसंग्रहः ॥ २० ॥

अर्थ–छर्दि, प्यास, अरुचि, श्वास, ज्वर, अतिसार, दुर्बलता ए सात सूजनके उपद्रव हैं यह चरकमें लिखा है ।

इति माधुरीटीकाया शोथरोगनिदानम् ।

अंडवृद्धिनिदान।

सम्प्राप्ति

क्रुद्धोऽनूर्ध्वगतिर्वायुःशोथशूलकरश्चरन् । मुष्कौवंक्षणतःप्राप्यफलकेशाभिवाहिनीः । प्रपीड्यधमनीर्वृद्धिंकरोतिफलकोशयोः ॥ १ ॥

अर्थ–कुपित भई अधोगमनशील (नीचे विचरनेवाली) तथा सूजन और शूल उत्पन्न करनेवाली वायु कूखमें संचार करती हुई अंडकोश और वंक्षण (अंडकोश और जंघाकी संधि)सें अंडमें आयकर अंडकी वृद्धि और कोश इन्के वहनेवाली धमनी(नाडी)न्को दुष्टकर अंडकी (दोनों अंडकी अथवा एक औरके अंडकी) वृद्धि करै है ।

विषे प्राप्त होय, तथा जिस्में वातके लक्षण कहे वो सब मिलते होंय, वो अंडवृद्धि असाध्य है वर्ध्म अर्थात् वदरोगका निदान ग्रन्थान्तरमें लिखा है यथा।

वर्ध्मरोगनिदान

अत्यभिष्यंदिगुर्वामसेवनान्निचयंगतः ॥ ११ ॥ करोतिग्र-न्थिवच्छोफंदोषोवंक्षणसन्धिषु । ज्वरशूलांगदाहांत्यंतंवर्ध्म-मितिनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥ यस्यपूर्वंफिरंगाख्योरोगोभूत्वाप्र-शाम्यति । तस्यजंतोर्वर्ध्मरोगमित्युक्तःसुश्रुतादिभिः ॥१३॥ तथोष्णवातजुष्टस्यमेढ्रव्रणयुतस्यच । तस्यपुंसोवर्ध्मरोगंप्र-वदन्तिभिषग्वराः ॥ १४ ॥

अर्थ—अभिष्यंदि वस्तुके खानेसें, भारी अन्नके खानेसें, कच्चे अन्नके खानेसें, वृद्धिको प्राप्त भए दोष अथवा अत्यभिष्यंदिगुर्वाम इस जगे अत्यभिष्यंदि-गुर्वन्नशुष्कपूज्यामिषाशनात् ऐसाबी पाठ है अर्थात् अभिष्यंदि भारी अन्नके खानेसै, तथा सूखा और पूज्य कहिये गौ आदिके मांस खानेसें, दोष (वात पित्त कफ) कुपित होकर वंक्षणकी सन्धिमें अर्थात् वस्तिस्थानके समीप जिन्को नरे कहतेहैं उन्में सूजनको प्रगट करें, उस सूजनके होनेसें ज्वर होय, तथा सूजनमें पीडा होय, अंगोंमें अत्यंत दाह होय, जिस मनुष्यके पहिले फिरंग (शुजाक)का रोग होकर शांति होगया होय, उस्के यह वदका रोग होय है, अथवा गरमीवाले पुरुषके लिंगमें व्रण (घाव) होय उस्के यह वदरोग होय है।

इति अंडवृद्धिनिदानं समाप्तम्।

गलगंडनिदान।

निबद्धःश्वयथुर्यस्यमुष्कवल्लंबतेगले ।
महान्वायदिवाह्रस्वोगलगंडंतमादिशेत् ॥ १ ॥

अर्थ—जिस्के गलेमें अनुबंधयुक्त बडी अथवा छोटी अंडकोशके समान सूजन होकर लटके उस्को गलगंड कहते हैं।

गलगंडकी संप्राप्ति

वातःकफश्चापिगलेप्रदुष्टौमन्यांसमाश्रित्यतथैवमेदः ।

कुर्वन्तिगंडंक्रमशस्त्रिलिंगैःसमन्वितंतंगलगंडमाहुः ॥ २ ॥

अर्थ-गलेमें दुष्टभये वात कफ और उसी प्रकार मेद गलेकी दोनों मन्यानाडीका आश्रय लेकर क्रमसैं आपआपने लक्षणसंयुक्त गंड (गोला) उत्पन्न करे है उस्को गलगंडरोग कहते हैं। ये रोग वात कफ और मेद इन कारणोंसै तीन प्रकारका है ये रोग अपनेही स्वभावसैं पैत्तिक नही होय है, जैसें चातुर्थिकज्वर अपने प्रभावसैं जंघामें कफका और मस्तकमें वातका प्रथम आताहै इस्मेंभी पित्तका नहीहोय है, उसी प्रकार इस रोगमेंभी जानौ।

वातिकगलगंडके लक्षण

तोदान्वितःकृष्णशिरावनद्धःशावोऽरुणोवापवनात्मकस्तु ।

पारुष्ययुक्तश्चिरवृद्धिपाकोयदृच्छयापाकमियात्कदाचित् ॥ ३ ॥

वैरस्यमास्यस्यचतस्यजन्तोर्भवेत्तथातालुगलप्रशोषः ।

अर्थ-वातकी गलगंड, कालीनसोंसैं व्याप्त होय, और उस्में सुईके चुभानेकीसी पीडा होय, उस्का रंग काला और लाल होय, तथा कठोर होय, वहुतकालमें वढे, तथा पके नहीं, और जो पके तो कदाचित् यदृच्छापूर्वक पके, उसरोगीके मुखमें विरसता होय, तथा तालु व गलेमें शोष होय।

कफजगलगंडके लक्षण

स्थिरःसवर्णोगुरुरुग्रकंडूःशीतोमहांश्चापिकफात्मकस्तु ॥ ४ ॥

चिराभिवृद्धिंभजतेचिराद्वाप्रपच्यतेमन्दरुजःकदाचित् । मा-

धुर्यमास्यस्यचतस्यजंतोर्भवेत्तथातालुगलप्रलेपः ॥ ५ ॥

अर्थ-कफकी गलगंड स्थिर, त्वचाके रंगके समान वर्ण होय, भारी हो, खुजलि वहुत चले, शीतल और वडी होय है, वह वहुतदिनमें वढे, और वहुत कालमें पकै, पीडा थोडी होय, मुखमें मिठास होय, तथा गलेमें और तालुएमें कफ लिहसासा होय।

मेदजगलगंडके लक्षण

स्निग्धोगुरुःपांडुरनिष्टगंधोमेदोभवःस्वल्परुजोऽतिकंडूः । प्रलं-

बतेऽलाबुवदल्पमूलोदेहानुरूपक्षयवृद्धियुक्तः ॥ ६ ॥ स्नि-

ग्धास्यतातस्यभवेच्चजंतोर्गलेऽनुशब्दंकुरुतेचनित्यम् ।

अर्थ-मेदसैं प्रगट गलगंड चिकना होय, भारी, पीलावर्ण, दुर्गंधयुक्त मंद

पीडा करनेवाला, और असन्त खुजली चले, वो तुंवीफलके समान लंबा होय, उसकी जड छोटी होय, और देहानुरूप क्षय और वृद्धि इन्सैं युक्त होय, अर्थात् देहके क्षीण होनेसे क्षीण होजाय, देहके वढनेसैं वढजाय, उस्का मुख तेल लगा होय ऐसा चिकना होय और वोलतेसमय गलेसैं दोशब्द निकलें।

असाध्यलक्षण

कृच्छ्राच्छ्वसन्तंमृदुसर्वगात्रंसंवत्सरातीतमरोचकार्तं ॥ ७ ॥
क्षीणंचवैद्योगलगंडजुष्टंभिन्नस्वरंचापिविवर्जयेत्तु ॥ ८ ॥

अर्थ–वडे कष्टसैं श्वास लेनेवाला, नरम शरीरवाला, जिस्के गलगंड होकर वर्षदिन व्यतीत होगया हो, अरुचिसैं पीडित क्षीण होगया होय, और स्वरभेद-युक्त ऐसा गलगंडपीडित मनुष्यको वैद्य त्याग दे।

इति गलगंडनिदानम्।

गंडमालानिदान।

कर्कंधुकोलामलकप्रमाणैःकक्षांसमन्यागलवंक्षणेषु।
मेदःकफाभ्यांचिरमंदपाकैःस्याद्गंडमालाबहुभिस्तुगंडैः ॥ १ ॥

अर्थ–मेद और कफ इन्सैं प्रगट भया कूख, कंधा, नाडके पिछाडी मन्या नाडीमें, गलेमें, और वंक्षण (जांनुमेढ्रसंधि) इन ठिकाने छोटे वेरके वरावर, वडेवेरके समान, आमलेके समान, ऐसी अनेकप्रकारकी गंड होती है वे वहुत दिनमें होले ही लेपके उन्को गंडमाला कहते हैं।

अपचीके लक्षण

तेग्रंथयःकेचिदवाप्तपाकाःस्रवन्तिनश्यंतिभवन्तिचान्ये।
कालानुबंधंचिरमादधातिसैवापचीतिप्रवदंतिकेचित् ॥ २ ॥

अर्थ–अव गंडमालाका भेद अपचीहै उसको कहतेहैं पूर्वोक्त गंडमालाकी गांठ पके नही अथवा पाक होनेसैं स्रवे कोई नष्ट होजाय दूसरी नवीन उठे ऐसी पीडा वहुत दिन रहै उस्को कोई अपच्ची ऐसैं कहते हैं।

असाध्य और साध्य लक्षण

साध्यास्मृतापीनसपार्श्वशूलकासज्वर-
च्छर्दियुतानसाध्या ॥ इत्यपचीनिदानम् ॥

अर्थ-पूर्वोक्त अपची रोग साध्य हैं। और उसमें पीनस होय, पसवाडोंमें शूल, खांसी, ज्वर, वमन, ए होंय तो वो अपची असाध्य है।

इति अपचीनिदानम्।

ग्रंथिनिदानम्।



वातादयोमांसमसृक्प्रदुष्टाःसंदूष्यमेदश्चतथाशिराश्च।
वृत्तोन्नतंविग्रथितंतुशोथंकुर्वन्त्यतोग्रंथिरितिप्रदिष्टः॥ १॥

अर्थ-अत्यन्त दुष्ट भए वातादि दोष, मांस, रुधिर, और मेद, उसी प्रकार शिरा (नस) इन्को दुष्ट कर (इस जगे दुष्टिका अर्थ वृद्धि करना चाहिये क्षयरूप न करना चाहिये कारण इस्का यह है कि क्षीण विकारोंकी सामर्थ्य रोग करनेकी नहीं होती है) गोल, उंची, गांठके समान, अथवा कठिन सूजनको उत्पन्न करे उस्को ग्रंथि (गांठ) ऐसे कहते हैं।

वातजग्रंथिके लक्षणम्

आयम्यतेवृश्चतितुद्यतेचप्रत्यस्यतेमथ्यतिभिद्यतेच।
कृष्णोगुरुर्बस्तिरिवाततश्चभिन्नःस्रवेच्चानिलजोऽस्रमच्छम्॥ २॥

अर्थ-वादीकी गांठ तनेके समान करडी मालूम हो, छीलनेके समान मालूम हो, सुई चुभनेकीसी पीडा होय, मानो गिरा चाहती है, मथनेकी पीडा होय, फोरनेकीसी पीडा होय, काला वर्ण हो, नरम हो, बस्तिके चोडी होय, और उसके समान चोडी होय, और उसके फूटनेसै स्वच्छ रुधिर निकले।

पित्तकी ग्रंथिके लक्षण

दंदह्यतेधूम्यतिचूष्यतेचपापच्यतेप्रज्वलतीवचापि।
रक्तःसपीतोऽप्यथवापिपित्ताद्भिन्नःस्रवेदुष्टमतीवचास्रम्॥ ३॥

अर्थ-पित्तकी गांठ आगसै भरेके समान अत्यन्त दाहकरे, आंतोंसे धूंआ निकलतासा मालूम हो, चुष्यते कहिये मानों सिंगील गायके कोई चूसे है, खार लगानेके सदृश पका मालूम होय, अग्निके समान जलीसी मालूम होय, उस गांठका रंग लाल, अथवा किंचित् पीला होय। और फूटनेसें उसमेंसे दुष्ट रुधिर बहुत निकले।

कफकी ग्रंथिके लक्षण

शीतोविवर्णोऽल्परुजोतिकंडूःपाषाणवत्सन्नहनोपपन्नः।
चिराभिवृद्धिश्चकफप्रकोपाद्भिन्नःस्रवेच्छुक्लघनंचपूयम् ॥ ४ ॥

अर्थ–कफकी ग्रंथि (गांठ) शीतल, प्रकृतिसमान वर्ण, (कोई किंचित् विवर्ण हो ऐसे कहते हैं) थोडी पीडा हो, अत्यन्त खुजली चले, पत्थरके समान कठिन वडी होय, और चिरकालमें वढनेवाली होय फूटनेसैं उस्मैंसे सपेद गाढी राध निकले।

मेदजग्रंथिके लक्षण

शरीरवृद्धिक्षयवृद्धिहानिःस्निग्धोमहान्कंडुयुतोऽरुजश्च ।
मेदःकृतोगच्छतिचात्रभिन्नेपिण्याकसर्पिःप्रतिमंतुमेदः ॥ ५ ॥

अर्थ–मेदकी ग्रंथि शरीरके वढनेसैं वढे, और शरीरके क्षीण होनेसैं क्षीण हो-जाय, चिकनी, वडी, खुजलीयुक्त, पीडारहित होय है। और जब वो फूटजाय तव उस्मेंसैं तिलकल्कके समान अथवा घृतके समान मेदा निकले।

शिराजग्रंथिके लक्षण

व्यायामजातैरबलस्यतैस्तैराक्षिप्यवायुस्तुशिराप्रतानम् ।
संकुच्यसंपीड्यविशोष्यचापिग्रंथिंकरोत्युन्नतमाशुवृत्तम् ॥ ६ ॥

अर्थ–निर्वल पुरुष शरीरको परिश्रमकारक कर्म करे तव वायू कुपित होकर शिराके जालको संकुचित कर एकत्र कर और सुखाय कर ऊंची गांठको शीघ्र प्रगट करे है।

साध्यासाध्य लक्षण

ग्रंथिःशिराजःसचकृच्छ्रसाध्योभवेद्यदिस्यात्सरुजश्चलश्च ।
अरुक्सएवाप्यचलोमहांश्चमर्मोत्थितश्चापिविवर्जनीयः ॥ ७ ॥

इति ग्रंथिनिदानम्

अर्थ–वह शिरा (कहिये नसकी) गांठ कृच्छ्रसाध्य है, यदि वो पीडायुक्त, तथा चंचल होय तो वह गांठ साध्य है। और पीडारहित तथा निश्चल वडी और मर्म-स्थानमें प्रगट भई होय तो वह असाध्य है, उस्को वैद्य त्याग दे।

इति ग्रंथिनिदान समाप्तम्।

अर्बुदनिदानम् ।

संप्राप्ति

गात्रप्रदेशेक्वचिदेवदोषाःसंमूर्च्छितामांसमसृक्प्रदूष्य । वृत्तं स्थिरंमंदरुजंमहान्तमनल्पमूलंचिरवृद्धिपाकम् ॥ १ ॥ कुर्वंतिमांसोच्छ्र्यमत्यगाधंतदर्बुदंशास्त्रविदोवदन्ति ।

अर्थ—शरीरके किसीभागमें दुष्ट भये जो दोष सो मांस रुधिरको दुष्टकर गोल, स्थिर, मंद पीडायुक्त, यह ग्रंथिरोगसे बडी होय है, बडी जिस्की जड होय, बहु कालमें बढनेवाली, तथा पकनेवाली, ऐसी मांसकी गांठ उठे उस्को वैद्य अर्बुद ऐसे कहते हैं।

वातेनपित्तेनकफेनचापिरक्तेनमांसेनचमेदसाच ॥ २ ॥
तज्जायतेतस्यचलक्षणानिग्रंथेःसमानानिसदाभवंति ।

अर्थ—वह अर्बुदरोग वादीसैं, कफसैं, पित्तसैं, रुधिरसैं, मांससैं, और मेदसैं, ऐसे छःप्रकारका है। उस्के लक्षण सर्वदा ग्रंथिके सदृश होते हैं।

रक्तार्बुदके लक्षण

दोषःप्रदुष्टोरुधिरंशिरासुसंकुच्यसंपीड्यंततोऽस्यपाकम् ॥३॥ सास्रावमुन्नह्यतिमांसपिंडंमांसांकुरैराचितमाशुवृद्धम् । करोत्यजस्रंरुधिरप्रवृद्धिमसाध्यतेतद्रुधिरात्मकन्तु ॥ ४ ॥ रक्तक्षयोपद्रवपीडितत्वात्पांडुर्भवेत्सोर्बुदपीडितस्तु ।

अर्थ—दुष्टभए दोष, नसोंमें रहे जो रुधिर उस्को संकोच कर तथा पीडित कर मांसके गोलाको प्रगट करे, वो यत्किंचित् पकनेवाला, तथा कुछ स्राव युक्त हो, और मांसांकुरसैं व्याप्त और शीघ्र बढनेवाला ऐसा होय है, उस्मैंसैं रुधिर बहाकरै यह रक्तार्बुद असाध्य है वो रक्तार्बुद पीडित रोगी रक्तक्षयके उपद्रवोंकरकें पीडित होनेसै उस्का वर्ण पीला होजाय, ए रक्तार्बुदके लक्षण हैं।

मांसजार्बुदकी संप्राप्ति

मुष्टिप्रहारादिभिरर्दितेंऽगेमांसंप्रदुष्टंजनयेद्धिशोथं ॥ ५ ॥ अवेदनंस्निग्धमनन्यवर्णमपाकमश्मोपममप्रचाल्यम् । प्रदुष्ट-

मांसस्यनरस्यगाढमेतद्भवेन्मांसपरायणस्य ॥ ६ ॥ मांसा-
र्बुदंत्वेतदसाध्यमुक्तं ।

अर्थ–मुक्काआदिके लगनेसें अंगम पीडा होय, उस पीडासें दुष्ट भया मांस सो सूजन उत्पन्न करे, उस सूजनमें पीडा नहीं होय, और वो चिकनी, देहके वर्ण होय, पके नहीं, पत्थरके समान कठिन हले नहीं, ऐसी होय है। जिस मनुष्यका मांस विगडजाय अथवा जो नित्य मांसको खाया करे उस्के यह अर्बुदरोग होय है यह मांसार्बुद असाध्य कहा है कोई मांसार्बुदका भेद रसोली कहते है।

साध्यमें असाध्य प्रकार

साध्येष्वपीमानितुवर्जयेच्च। संप्रस्तुतंमर्मणियच्चजा-
तंस्रोतःसुवायच्चभवेदचाल्यम् ॥ ७ ॥

अर्थ–साध्यमेंभी यह आगेका अर्बुदरोग वर्जित है, स्राव (झरे) और मर्मस्थानमें प्रगट भया हो, अथवा नासाआदि स्रोत (मार्ग)में प्रगट भई हो, और जो स्थिर होय, वो असाध्य है।

अध्यर्बुदके लक्षण

यज्जायतेऽन्यत्खलुपूर्वजातेज्ञेयंतदध्यर्बुदमर्बुदज्ञैः।

अर्थ–पहिले जिस ठिकानेपर अर्बुद भया होय, उसी ठिकानेपर दूसरा अर्बुद प्रगट होय, उस्को अध्यर्बुद कहते हैं।

द्विरर्बुदके लक्षण

यद्वंद्वजातंयुगपत्क्रमाद्वाद्विरर्बुदंतच्चभवेदसाध्यम् ॥ ८ ॥

अर्थ–एक कालमें दो अर्बुद, अथवा एकके पिछाडी दूसरा अर्बुद क्रमसें प्रगट होय, उस्को द्विरर्बुद कहते हैं ये असाध्य है।

अर्बुद न पकनेका कारण

नपाकमायांतिकफाधिकाद्वामेदोबहुत्वाच्चविशेषतस्तु।
दोषस्थिरत्वाद्ग्रथनाच्चतेषांसर्वार्बुदान्येवनिसर्गतस्तु ॥ ९ ॥

इति गलगंड गंडमाला अपची ग्रन्थि अर्बुद निदानम्

अर्थ–कफ अधिक होनेसें, अथवा विशेषकर्के मेद अधिक होनेसें, तथा दोषोंके स्थिर होनेसें, अथवा दोषोंके ग्रंथिरूप होनेसें, सर्व प्रकारकी अर्बुद स्वभावसेंही पके नहीं है।

इति गलगंड गंडमाला अपची ग्रंथी अर्बुद निदानं समाप्तम्।

श्लीपदनिदानम् ।

संप्राप्ति-

यःसज्वरोवंक्षणजोभृशार्त्तिःशोथोनृणांपादगतःक्रमेण ।
तत्श्लीपदंस्यात्करकर्णनेत्रशिश्नौष्ठनासास्वपिकेचिदाहुः ॥ १ ॥

अर्थ-जो सूजन प्रथम वंक्षण (रागों)में उत्पन्न होकर धीरे धीरे पैरोंमें आवे, और उस्के साथ ज्वरभी होय तो इस रोगको श्लीपद कहतेहैं यह श्लीपद हाथ, कान, नेत्र, शिश्न, होठ, नाक, इन्मेंभी होतीहै ऐसें कोई कहते हैं।

वातज श्लीपद

वातजंकृष्णरूक्षंचस्फुटितंतीव्रवेदनम् ।
अनिमित्तरुजंतस्यवहुशोज्वरएवच ॥ २ ॥

अर्थ-वातकी श्लीपद काली, रूखी, फटी, और जिस्में तीव्र पीडा होय, विनाकारणके दूखे, और उस्में ज्वर वहुत होय ।

पित्तज श्लीपद

पित्तजंपीतसंकाशंदाहज्वरयुतंमृदु ।

अर्थ-पित्तकी श्लीपद पीले रंगकी दाह और ज्वरयुक्त होय, तथा नरम होय ।

श्लैष्मिक श्लीपद

श्लैष्मिकंस्निग्धवर्णंचश्वेतंपांडुगुरुस्थिरम् ॥ ३ ॥

अर्थ-कफकी श्लीपदका वर्ण चिकना, सपेद, पीला, भारी, और कठिन होय है ।

असाध्यलक्षण

वल्मीकमिवसंजातंकंटकैरुपचीयते ।
अब्दात्मकंमहत्तच्चवर्जनीयंविशेषतः ॥ ४ ॥

अर्थ-सर्पकी वांवीके समान वढीभई और जिस्के ऊपर कांटे होंय, ऐसी एक वर्षकी होगईहो, और वडी होय, उस्को वैद्य त्याग दे ।

श्लीपदमें कफको प्राधान्य अव्यभिचारकर्के है उस्को कहते हैं ।

त्रीण्यप्येतानिजानीयाच्छ्लीपदानिकफोच्छ्रयात् ।

गुरुत्वंचमहत्त्वंचयस्मान्नास्तिविनाकफात् ॥ ५ ॥

अर्थ–ए जो पूर्वोक्त तीनों श्लीपदोंमें कफकी आधिक्यता है, कारण इस्का यह है कि, भारी और महत्त्व ए दोनों कफके विना नहीं होते।

श्लीपद कौनसे देशमें उत्पन्न होय है उस्को कहते हैं।

पुराणोदकभूयिष्ठाःसर्वर्तुषुचशीतलाः ।
येदेशास्तेषुजायन्तेश्लीपदानिविशेषतः ॥ ६ ॥

अर्थ–वर्षाऋतुमें पानी अधिक वर्षे परंतु पृथ्वीके नीचे होनेसैं सूखे नहीं इसीसैं पुराने पानीका संचय (इकट्ठा) होय, और-सर्व ऋतुमें सरदी रहा करै ऐसे जे अनूप (पूरब) आदि देश उन्में यह श्लीपदरोग विशेषकरकें होय है। जांगल देशोंमें अग्निका अधिक अंश होय है यासैं उनदेशोंमें जलको पुराणत्व नहीं होय है, और अनूप देशमें गरमी मंद पडनेसैं उष्ण ऋतुमेंभी शीतलता होय है, हाथ कान आदिमें श्लीपद रोगकी शंका होनेसैं दोषोंके कोपद्वारा ज्वरकरकें श्लीपदको जान ले।

असाध्य लक्षण

यच्छ्लेष्मणाहारविहारजातंपुंसःप्रकृत्याचकफात्मकस्य ।
सास्रावमत्युन्नतसर्वलिंगंसकंडुरंश्लेष्मयुतंविवर्ज्यम् ॥ ७ ॥

इतिश्लीपदनिदानम्

अर्थ–जो श्लीपदकफकारक आहार विहारसैं प्रगटभया, तथा कफप्रकृतिवाले पुरुषके कफसैं प्रगटभया होय, तथा स्रावयुक्त तथा जिस दोषसैं प्रगटभया होय, उस दोषके लक्षण उस्मैं वढगएहोय, और जिसमें खुजली वहुत होय, और कफयुक्त होय, सो श्लीपदरोगी वैद्यकर्के त्याज्य है।

इति श्लीपदनिदानं समाप्तम्।

विद्रधिनिदानम् ।

त्वग्रक्तमांसमेदांसिप्रदूष्यास्थिसमाश्रिताः । दोषाःशोथंशनैर्घोरंजनयंत्युच्छ्रिताभृशम् ॥ १ ॥ महाशूलंरुजावंतंवृत्तंवाप्यथवायतम् । सविद्रधिरितिख्यातोविज्ञेयःषड्विधश्चसः॥२॥

पृथग्दोषैःसमस्तैश्चक्षतेनाप्यसृजातथा । षण्णामपिहितेषां तुलक्षणंसंप्रचक्षते ॥ ३ ॥

अर्थ–अत्यंतवढे तथा अस्थि (हड्डी)का आश्रय करके रहनेवाले वातादि दोष त्वचा, रुधिर, मांस, और मेद, इन्को दुष्टकर धीरेधीरे भयंकर शोथ उत्पन्न करें, उस्की जड हड्डीपर्यंत पहुंच जाय, उत्पत्तिकालमें अत्यन्त पीडाकारक तथा गोल अथवा लंबा जो शोथ (सूजन) होय, उस्को विद्रधि कहतेहैं पृथक् दोषोसैं ३, सन्निपातसैं १, क्षत (घाव)सैं १, और रुधिरसैं १, मिलकर छ प्रकारकी विद्रधि होयहै उनछःहों विद्रधिके लक्षण कहते हैं ।

वातजविद्रधिके लक्षण

कृष्णोऽरुणोवाविषमोभृशमत्यर्थवेदनः ।
चित्रोत्थानप्रपाकश्चविद्रधिर्वातसंभवः ॥ ४ ॥

अर्थ–जो विद्रधि काली लाल विषम कहिये कदाचित् छोटी कदाचित् मोटीहो, अत्यन्त वेदनायुक्त और उस्का प्रगट होना तथा पाक ये नानाप्रकारका होय, उस्को वातविद्रधि कहते हैं ।

पित्तकी विद्रधिके लक्षण

पक्वोदुंबरसंकाशःश्यावोवाज्वरदाहवान् ।
क्षिप्रोत्थानप्रपाकश्चविद्रधिःपित्तसंभवः ॥ ५ ॥

अर्थ–पित्तकी विद्रधि पके गुलरके समान होय, अथवा कालावर्ण होय, ज्वर, दाह, करनेवाली, उस्का प्रगट और पाक शीघ्र होय ।

कफकी विद्रधिके लक्षण

शरावसदृशःपांडुःशीतःस्निग्धोऽल्पवेदनः ।
चिरोत्थानप्रपाकश्चविद्रधिःकफसंभवः ॥ ६ ॥

अर्थ–कफकी विद्रधि शराव (मट्टीके शराव) सदृश वडी होय, पीलावर्ण, शीतल, चिकनी, अल्पपीडा, होय उस्का उत्पत्ति और पाक देरमें होयहै ।

पकनेके अनन्तर उन्का स्राव

तनुपीतसिताश्चैषामास्रावाःक्रमशःस्मृताः ।

अर्थ–ये तीनप्रकार विद्रधि पकनेके अनन्तर होतेहै इन्सैं वातादिकोंके क्रमसैं पतला, पीला, और सपेद राध निकले ।

सन्निपातकी विद्रधिके लक्षण

नानावर्णरुजास्रावोघंटालोविषमोमहान् ॥ ७ ॥
विषमंपच्यतेचापिविद्रधिःसान्निपातिकः ।

अर्थ–सन्निपातकी विद्रधिमें अनेकप्रकारकी पीडा, (जैसे तोद, दाह, खुजली, पीडा,) तथा अनेकप्रकारका स्राव (जैसे पतला, पीला, सपेद, स्राव होय) घंटाल कहिये नीचे स्थूल होय, और ऊपर पतरीहो, अर्थात् अग्रभाग अति ऊंचा होय, छोटी वडी कदाचित् पके कदाचित् नहीं पके ऐसी होय ।

आगंतुजविद्रधिकी संप्राप्ति

तैस्तैर्भावैरभिहतेक्षतेवाऽपथ्यकारिणः ॥ ८ ॥ क्षतोष्मावा-
युविसृतः सरक्तंपित्तमीरयेत् । ज्वरस्तृष्णाचदाहश्चजायन्ते
तस्यदेहिनः ॥ ९ ॥ आगंतुविद्रधिर्ज्ञेयःपित्तविद्रधिलक्षणः ।

अर्थ–तिनतिन भाव कहिये लकडी पत्थर डेला आदिका अभिघात (चोट-लगना पिचजाना इत्यादि) होनेसें, अथवा तलवार, तीर, बरछी, इत्यादिक लगनेसें घाव होजानेसें, अपथ्य करनेवाले पुरुषके कुपित वायूकर्के विसृत (फैला) क्षतोष्मा (घावकी गरमी) और रुधिरसहित पित्तको कोप करै उस पुरुषके ज्वर, प्यास, और दाह होय । और उस्में पित्तकी विद्रधिके लक्षण मिलते होय, इस्को आगंतुज विद्रधि जाननी ।

रक्तजविद्रधिके लक्षण

कृष्णस्फोटावृतःश्यावस्तीव्रदाहरुजाकरः ।
पित्तविद्रधिलिंगस्तुरक्तविद्रधिरुच्यते ॥ १० ॥

अर्थ–कालेफोडेनसें व्याप्त, श्यामवर्ण, दाह, पीडा, और ज्वर, ए उस्में तीव्र होंय, तथा पित्तकी विद्रधिके लक्षणकर्के युक्त होय, उस्को रक्त विद्रधि जानना ।

अंतर्विद्रधिके लक्षण

पृथक्संभूयवादोपाःकुपितागुल्मरूपिणम् ।
वल्मीकवत्समुन्नद्धमंतःकुर्वंतिविद्रधिम् ॥ ११ ॥

अर्थ–कुपितभये पृथक् पृथक् अथवा मिलेभए दोष शरीरमें गोलाके और बांबीके समान वढी ऐसी विद्रधि उत्पन्न करैहैं ।

विद्रधिके स्थान

गुदेबस्तिमुखेनाभ्यांकुक्षौवंक्षणयोस्तथा । वृक्कयोःप्लीन्हियकृतिहृदयेक्लोम्निचाप्यथ ॥ १२ ॥ एषामुक्तानिलिंगानिबाह्यविद्रधिलक्षणैः । गुदेवातनिरोधस्तुबस्तौकृच्छ्राल्पमूत्रता॥१३॥ नाभ्यांहिक्कातथाऽऽटोपःकुक्षौमारुतकोपनम् । कटिपृष्ठग्रहस्तीव्रोवंक्षणोत्थेचविद्रधौ ॥ १४ ॥ वृक्कयोःपार्श्वसंकोचः प्लीन्ह्युच्छ्वासावरोधनम् । सर्वांगप्रग्रहस्तीव्रोहृदिकंपश्चजायते ॥ १५ ॥ श्वासोयकृतिहिक्काचक्लोम्निपेपीयतेपयः ।

अर्थ-गुदा, बस्ती, मुख, नाभी, कूख, वंक्षण, वृक्क, (कूखपिंडी प्लीह) यकृत् (कलेजा) हृदय, क्लोम (प्यासका स्थान) इन ठिकानेपर विद्रधि होयहै, इन्के लक्षण बाह्य विद्रधिके समान जानने ।

गुदामें-विद्रधि होनेसें अधोवायूको रोध होय ।

बस्तीमें-अर्थात् मूत्राशयमें होनेसें कठिनतासे थोडा २ मूते ।

नाभिमें-होनेसें हिचकी तथा पीडापूर्वक क्षोभ होय ।

कूखमें-होनेसें पवनका कोप होय ।

वंक्षण-में-होनेसें कमर और पीठका बलपूर्वक जिकडजाना होय ।

कूखके पिंडमें-होनेसें पसवाडोंके संकोच होय ।

प्लीहमें-होनेसें श्वास रुकजाय ।

हृदयमें-होनेसें सब अंग जिकडजाय और कंप होय ।

कलेजेमें-होनेसें श्वास और हिचकी होय ।

क्लोममें-अर्थात् पिपासास्थानमें विद्रधि होनेसें वारंवार पानी पीनेकी इच्छा होयहै ।

स्रावनिर्गम

नाभेरुपरिजाःपक्वायांत्यूर्ध्वमितरेत्वधः ॥ १६ ॥
अधःस्रुतेषुजीवेत्तुस्रुतेषूर्ध्वंनजीवति ।

अर्थ-नाभिके ऊपर जो विद्रधि होय उन्के पकनेसें जो स्राव कहिये राध आदिका वहना होय वो मुखके रास्ते होय हैं, और नाभिके नीचे होनेसें जो स्राव होय वो गुदाके मार्गसे होय है, और नाभिके समीप होनेवाली विद्रधिन्का स्राव

दोनो मार्गसैं होय, जिन्का स्राव नीचेके मार्ग हो वो रोगी जीवे, और ऊपरके मार्ग जिस्का स्राव होय वो रोगी वचे नहीं।

विद्रधिमें साध्यासाध्य

हृन्नाभिबस्तिवर्ज्यायेतेपुभिन्नेषुबाह्यतः ॥ १७ ॥ जीवेत्कदाचित्पुरुषोनेतरेषुकथंचन । साध्याविद्रधयःपंचविवर्ज्यः सान्निपातिकः । आमपक्वविदग्धत्वंतेषांशोथवदादिशेत् ॥१८॥

अर्थ–हृदय नाभि और वस्ती इन ठिकानेको छोडकर प्रगट जो विद्रधि (अर्थात् प्लीह क्लोम इत्यादि ठिकाने) वाहर फूटनेसैं कदाचित् पुरुष वचजाय, और ठिकानेपर फूटनेसैं नहीं वचे।

पहिली पांच विद्रधि साध्य हैं, सन्निपातकी विद्रधि असाध्य है, इन विद्रधीनको आम, पक्क, और विदग्ध, ए तीन अवस्था शोथ रोगके समान जाननी चाहियें।

असाध्यलक्षण

आध्मातंबद्धनिष्यंदंछर्दिहिक्कातृषान्वितम् ।
रुजाश्वाससमायुक्तंविद्रधिर्नाशयेन्नरम् ॥ १९ ॥

अर्थ–अफरायुक्त, मूत्ररुक् गया होय, हिचकी, वमन, और प्यास इन्सैं पीडित, शूल श्वास इन्कर्के युक्त, ऐसे मनुष्यके विद्रधि रोग असाध्य होय है।

इति माधवभावार्थदीपिकाटीकाया विद्रधिनिदानं समाप्तम् ।

व्रणनिदानम् ।

एकदेशोत्थितःशोथोव्रणानांपूर्वलक्षणम् । षड्विधःस्यात्पृथक् सर्वरक्तागंतुनिमित्तजः ॥ १ ॥ शोथाःषडेतेविज्ञेयाःप्रागुक्तैः शोथलक्षणैः । विशेषःकथ्यतेतेषांपक्वापक्वविनिश्चये ॥ २ ॥

अर्थ–एक ठिकानेपर सूजन उत्पन्न होनेसैं जानेकी इस्के व्रण (फोडा) होयगा सो व्रणरोग पृथक् दोषोंसैं ३, सन्निपातसैं १, रुधिरसैं १, और आगंतुज १, ऐसे मिलकर छः प्रकारका है इन छहौं व्रणोंमें जो प्रथम सूजन होय उन्के लक्षण शोथरोग लक्षणके समान जानने, इन्में पक्क (पकना) अपक्व (न पकने)के विषयमें जो विशेपता है उस्को इस जगे कहते हैं।

व्रणपाक

विषमंपच्यतेवातात्पित्तोत्थश्चाचिरंचिरम् ।
कफजःपित्तवच्छोफोरक्तागंतुसमुद्भवः ॥ ३ ॥

अर्थ–वादीसें विषम पाक होय अर्थात् कहीं पके कहीं नहीं पके पित्तसे बहुत जल्दी पके कफका फोडा देरमें पके और रुधिरका, तथा आगंतुज फोडेका पकना पित्तके समान अर्थात् जल्दी पके हैं ।

कच्चेफोडेके लक्षण

मंदोष्मताऽल्पशोथत्वंकाठिन्यंत्वक्सवर्णता ।
मंदवेदनताचैवशोथानामामलक्षणम् ॥ ४ ॥

अर्थ–सूजन हाथके छूनेसें थोडी गरमलगे, थोडी सूजनहोय, फोडेका स्थान कर्रा होय, तथा देहके रंग समान उसका रंग होय, और उसमें पीडा मंद होय, ये कची सूजनके लक्षण हैं ।

पच्यमानव्रणके लक्षण

दह्यतेदहनेनेवक्षारेणेवचपच्यते । पिपीलिकागणेनेवदश्य-
तेछिद्यतेतथा ॥ ५ ॥ भिद्यतेचैवशस्त्रेणदंडेनेवचताड्यते ।
पीड्यतेपाणिनेवांतः सूचीभिरिवतुद्यते ॥ ६ ॥ शोषश्चो-
षोविवर्णःस्यादंगुल्येवावपाट्यते । आसनेशयनेस्थानेशां-
तिंवृश्चिकविद्धवत् ॥ ७ ॥ नगच्छेदाततःशोथोभवेदाध्मा-
तबस्तिवत् । ज्वरस्तृष्णाऽरुचिश्चैवपच्यमानस्यलक्षणम् ॥ ८ ॥

अर्थ–जिस समय व्रणपकनेको होय उस समय ए लक्षण होते हैं, अग्निसें भरासा फोडेका स्थान मालूम हो, खार लगानेकासा चिन मिनावै, चैंटी काटने कीसी पीडा होय, वो दोटूक करनेके समान तथा शस्त्रसें फारनेके समान दंड आदिके मारनेके समान, तथा हाथसें मीडनेके समान, तथा भीतरी सुईसें छेदनेके समान पीडा होय और उसमें अत्यंत दाह होय, अग्निसें सेकनेके समान उसमें वेदना होय, उस फोडेका रंग बदल जाय, उंगलीके लगानेसै उखारने कीसी पीडा होय, बैठनेमें सोनेमें खडे रहनेसे वीछू काटनेकीसी घोर पीडा होय, वो पीडा कभी शांति नहीं होय, वो सूजन फूली हुई बस्ती (मूत्रस्थान) के सदृश तनीसी होय, उसमें ज्वर प्यास और अरुचि ए लक्षण होते हैं ।

पक्वव्रणके लक्षण

वेदनोपशमःशोथोलोहितोऽल्पोनचोन्नतः । प्रादुर्भावोवली- नांचतोदःकंडूर्मुहुर्मुहुः ॥ ९ ॥ उपद्रवाणांप्रशमोनिम्नता स्फुटनंत्वचः । बस्ताविवांबुसंचारःस्याच्छोथेंऽगुलिपीडिते ॥ १० ॥ पूयस्यपीडयत्येकमंतमंतेचपीडिते । भक्ताकां- क्षाभवेच्चैवशोथानांपक्वलक्षणम् ॥ ११ ॥

अर्थ– व्रणपकनेसैं पीडा शांति होजाय, उस्की सूजन तामेंके रंगकी होय, और थोडी होय, ऊंची न होय, उसमें शुजलट पडे, सुई चुभानेकीसी पीडा होय, वारंवार खुजली चले, पित्तदाहादि उपद्रवोंकी शांति हो खुजानेसैं उस- जगै गढेला हो जाय, त्वचा फट जाय, सूजन हाथके दवानेसैं जैसे वस्तीके नीचेका पानी इधर उधर होय, उसी प्रकार राध इधर उधर होय, अन्नमें इच्छा हो ।

एकदोषसैं सूजन उत्पन्न होय उसमें पकनेके समय तीनों दोषोंका संबंध होय है

नर्तेऽनिलाद्रुग्नविनानपित्तंपाकःकफंवापिविनानपूयः ।
तस्माद्धिसर्वेपरिपाककालेपचन्तिशोथास्त्रिभिरेवदोषैः ॥ १२ ॥

अर्थ– वादीके विना पीडा नहीं होय, पित्तके विना दाह नहीं होय, और कफके विना राध नहीं होय, अर्थात् पकनेके समय तीनों दोषोंके मिलनेसैं सब प्रकारकी सूजन पकती है । रक्तपाकलक्षण ग्रन्थांतरोंमें कहे हैं यथा–कफजे- षुचशोथेषुगंभीरंपाकमेत्यसृक् । पक्वंस्निग्धंततःस्पष्टंयत्रस्यात्क्लिन्न- शोफता । त्वक्सावर्ण्यंरुजोल्पत्वंघनस्पर्शित्वमश्मवत् । रक्तपाक- मितिब्रूयात्तंप्राज्ञोमुक्तसंशयः ॥ इस्का अर्थ सुगम है ।

राधननिकालनेसैं जो परिणाम होय है उसको दृष्टांत देकर कहते हैं

कक्षंसमासाद्ययथैववन्हिर्वाय्वीरितःसंदहतिप्रसह्य ।
तथैवपूयोप्यविनिःसृतोहिमांसंशिराःस्नायुचखादतीह ॥ १३ ॥

अर्थ– फूंसके गंजमें लगी हुई आग पवनकी सहायता पाकर जैसे वो फूंसको जलाकर खाक करदे उसी प्रकार व्रणमेंसैं राध न निकालनेसैं वो राध मांस शिरा और स्नायु इन्को खाय लेती है ।

आमादि लक्षण ज्ञानसै वैद्यके गुणदोष दिखाते हैं

आमंविदह्यमानंचसम्यक्पक्वंचलक्षणैः ।

जानीयात्सभवेद्वैद्यःशेषास्तस्करवृत्तयः ॥ १४ ॥

अर्थ–आंम (कचा) पच्यमान और जो अच्छी रीतिसै पकगया हो, ऐसे व्रणके लक्षण जो वैद्य जाने हैं. उसीको वैद्य जानना चाहिये, वाकीके सव चोर हैं।

अपकका छेदन और पकेकी उपेक्षा करनेमें दोष.

यश्छिनत्त्याममज्ञानाद्यश्चपक्वमुपेक्षते ।

श्वपचाविवमंतव्यौतावनिश्चितकारिणौ ॥ १५ ॥

अर्थ–जो अज्ञानसै कचे फोडेको पका समझकर फोडे ओर जो पके फोडेको कचा समझकर चीरे नहीं, ये दोनों अविचारवान् वैद्य चांडालके समान जानने ।

इति व्रणशोथनिदानम् ।

व्रणनिदान

द्विधाव्रणःपरिज्ञेयःशारीरागन्तुभेदतः ।

दोषैराद्यस्तयोरन्यःशस्त्रादिक्षतसंभवः ॥ १ ॥

अर्थ–शरीर और आगतुक इन भेदोंसे व्रण दो प्रकारका है, पहिला शारीर दोषोंके कोपसे होय है, और दूसरा शस्त्रादिककर्के घावके होनेसै होय है ।

वातिकव्रण

स्तब्धःकठिनसंस्पर्शोमन्दस्रावोमहारुजः ।

तुद्यतेस्फुरतिश्यावोव्रणोमारुतसंभवः ॥ २ ॥

अर्थ–वादीसैं प्रगट व्रणमें जिकडना, तथा हाथके छूनेसे कठिन मालूम होय, उस्मैंसे थोडा स्राव होय, तथा पीडा वहुत होय तथा सुईके चुभानेकीसी पीडा होय, और उस्का रंग काला होय ।

पित्तव्रणके लक्षण

तृष्णामोहज्वरक्लेददाहदुष्ट्यवदारणैः ।

व्रणंपित्तकृतंविद्याद्गंधैःस्रावैश्चपूतिकैः ॥ ३ ॥

अर्थ–प्यास, मोह, ज्वर, क्लेद, दाह, सडना, चिरासा होय, वांस आवै, स्राव होय, ए पित्तव्रणके लक्षण हैं ।

कफव्रणके लक्षण

बहुपिच्छोगुरुःस्निग्धःस्तिमितोमन्दवेदनः ।
पांडुवर्णोऽल्पसंक्लेदीचिरपाकीकफोद्भवः ॥ ४ ॥

अर्थ–कफका स्राव अत्यंत गाढा, भारी, चिकना, निश्चल, मन्द पीडा, पीला रंग, थोडा स्रावनेवाला, और बहुत कालमें पके ।

रक्तजद्वंद्वजव्रण

रक्तोरक्तस्रुतीरक्ताद्द्वित्रिजःस्यात्तदन्वयैः ॥ ५ ॥

अर्थ–जो रक्तके कोपसे व्रण होय वो रक्तवर्ण, उसमेंसे रुधिर स्रवे, एक दोष और रुधिरके संबंधसें जो होय वो द्वंद्व अथवा दो दोष तथा रुधिर इन्के मिलनेसे संनिपातका व्रण जानना ।

सुखव्रणके लक्षण

त्वङ्मांसजःसुखेदेशेतरुणस्यानुपद्रुतः ।
धीमतोऽभिनवःकालेसुखसाध्यःसुखव्रणः ॥ ६ ॥

अर्थ–जो व्रण त्वचा और मांस तथा मर्मरहित स्थानमें उपद्रव रहित होय और जो तरुण तथा ज्ञानी पुरुषके हेमंतशशिरकालमें प्रगट होय, उस्को सुखव्रण कहते है वो सुखसाध्य है ।

कृच्छ्रसाध्य और असाध्य लक्षण

गुणैरन्यतमैर्हीनस्ततःकृच्छ्रोव्रणःस्मृतः ।
सर्वैर्विहीनोविज्ञेयःसोऽसाध्योनिरुपक्रमः ॥ ७ ॥

अर्थ–जो पूर्वश्लोकमें लक्षण कह आये उन्मेंसें कुछ लक्षण थोडे होनेसें व्रण कृच्छ्रसाध्य होय है और गुणरहित होय वो असाध्य है उसकी चिकित्सा न करनी चाहिये ।

दुष्टव्रणकेलक्षण

पूतिपूयातिदुष्टासृक्स्राव्युत्संगीचिरस्थितिः ।
दुष्टव्रणोऽतिगंधादिःशुद्धलिंगविपर्ययः ॥ ८ ॥

अर्थ–जिस्मेंसें दुर्गंधयुक्त राध और सडा भया रुधिर वहे जो ऊपर ऊंचा तथा भीतरसै पोलाहो, बहुत दिन रहनेवाला होय, उस्को दुष्टव्रण कहते हैं वो शुद्धलिंगके विपरीत होय है ।

शुद्धव्रणके लक्षण

जिव्हातलाभोऽतिमृदुःश्लक्ष्णःस्निग्धोऽल्पवेदनः ।
सुव्यवस्थोनिरास्रावःशुद्धोव्रणइतिस्मृतः ॥ ९ ॥

अर्थ-जो व्रण जीभके नीचे भागके समान अत्यंत नरम होय, स्वच्छ, चिकना, थोडी पीडायुत, भले प्रकारका कहिये ऊंचा आदि जो दुष्ट व्रणादिकमें लक्षण कहे वो न होंय, दोष रक्तादिस्रावरहित होय उस्को शुद्ध व्रण जानना ।

भरनेवाले व्रणके लक्षण

कपोतवर्णप्रतिमायस्यांताःक्लेदवर्जिताः ।
स्थिराश्चपिटिकावंतोरोहतीतितमादिशेत् ॥ १० ॥

अर्थ-जिस्का घाव कबूतरके रंग सदृश होय, और जिस्मैं क्लेद न वहता होय और घाव स्थिर हो, जिस्में फुंसीसी मालूम हों, उस्को वैद्य जानेकी यह व्रण (घाव) भरनेवाला है ।

जो व्रणभरगयाहो उस्के लक्षण

रूढवर्त्मानमग्रंथिमशूनमरुजंव्रणम् ।
त्वक्सवर्णसमतलंसम्यग्रूढंतमादिशेत् ॥ ११ ॥

अर्थ-जिस्का मार्ग भरगया होय, गांठ बंधी होय, सूजन और पीडा जिस्में होय नहीं, त्वचाके समान वर्ण होगयाहो, घावका गढेला भरकर बराबर होगया हो, वो व्रण उत्तम भरा जानना ।

व्याधि विशेषकर्के व्रण कृच्छ्रसाध्य होयहैं सो कहते हैं

कुष्ठिनांविषजुष्टानांशोषिणांमधुमेहिनाम् ।
व्रणाःकृच्छ्रेणसिद्ध्यंतियेषांचापिव्रणेव्रणाः ॥ १२ ॥

अर्थ-कोढीपुरुष, विषवाला पुरुष, खईरोगवाला पुरुष, मधुमेही पुरुष, ऐसेन्का व्रण वडे कष्टसै साध्य होय है और जिस्के पहेले व्रणमें व्रण प्रगट होय, उस्के ये व्रण कष्टसाध्य होय है ।

साध्यासाध्य लक्षण

वसांमेदोऽथमज्जानंमस्तुलुंगंचयःस्रवेत् ।
आगन्तुजोव्रणःसिद्ध्येन्नसिद्ध्येद्दोपसंभवः ॥ १३ ॥

अर्थ--जिस व्रणमेंसे चर्वी, मेद, मज्जा, और वस्तिस्नेह, ए वहै वो व्रण आगंतुज होय तो साध्य है. और दोपकृत होय तौ साध्य नहीं होय।

असाध्यव्रणके लक्षण

मद्यागुर्वाज्यसुमनःपद्मचन्दनचम्पकैः।

सुगंधादिव्यगंधाश्चसुमूर्पूर्णाव्रणाःस्मृताः ॥ १४ ॥

अर्थ-मद्य, अगर, घृत, फूल, कमल, चन्दन, और चंपाके फूलके समान अथवा चमत्कारी पारिजाति आदि फूल कीसी गंध जिस व्रणमें से आवै, वो व्रण मरनेवाले रोगीके जानना।

दूसरे असाध्य लक्षण

येचमर्मस्वसंभूताभवंत्यत्यर्थवेदनाः । दह्यन्तेचान्तरत्यर्थं बहिःशीताश्चयेव्रणाः ॥ १५ ॥ दह्यन्तेबहिरत्यर्थंभवंत्यंतश्च शीतलाः। प्राणमांसक्षयश्वासकासारोचकपीडिताः ॥ १६॥ प्रवृद्धपूयरुधिराव्रणायेषांचमर्मसु। क्रियाभिःसम्यगारब्धान सिध्यन्तिचयेव्रणाः ॥१७॥ वर्जयेदेवतान्वैद्यःसंरक्षन्नात्मनोयशः

अर्थ-जे व्रण मर्मस्थानमें प्रगट भए हों, और उन्में असंत पीडा होय. वे, तथा जिस जिस व्रणके भीतर दाह होय, और वाहर शीतल होय, वे अथवा वाहर दाह होय और भीतर शीतलता होय. वे, तथा जिन्में वल, मांस इन्का क्षय होय, श्वास, खांसी, अरुचि, इन्सें असंत पीडित होय, ऐसे अथवा जे व्रण मर्मस्थानमें प्रगट भए हों, उन्मेंसे राध, रुधिर, वहुत वहे, वे, अथवा जिन व्रणोंकी अच्छी चिकित्सा करनेसैं भी अच्छे न होय, ऐसे व्रणोंको अपने यशकी रक्षा करनेवाला वैद्य साग दे।

व्रणरोगमें अपथ्य

व्रणेश्वयथुरायासात्सचरागश्चजागरात्।

तौचरुक्चदिवास्वापात्ताश्चमृत्युश्चमैथुनात् ॥ १८ ॥

अर्थ--परिश्रम करनेसैं व्रणमें सूजन होती है, और जागनेसै ललाँही होती है और दिनमें सोनेसें सूजनपर लाली आयकर पीडा होती है और मैथुन करनेसैं सूजन लाली पीडा होकर मृत्यु होय।

इति श्रीमाधवभावार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायांशारीरव्रणनिदानं समाप्तम्।

आगंतुव्रणनिदान ।



नानाधारामुखैःशस्त्रैर्नानास्थाननिपातितैः ।
भवंतिनानाकृतयोव्रणास्तांस्तान्निबोधमे ॥ १ ॥

अर्थ– अनेक प्रकारकी धारवाले तथा मुखवाले शस्त्र अनेक ठिकानेपर लगनेसैं, अनेक प्रकारकी आकृति(स्वरूप)के व्रण होते हैं उन्को कहता हूं ।

संख्यासंप्राप्ति

छिन्नंभिन्नंतथाविद्धंक्षतंपिच्चितमेवच ।
घृष्टमाहुस्तथाषष्ठंतेषांवक्ष्यामिलक्षणम् ॥ २ ॥

अर्थ– छिन्न, भिन्न, विद्ध, क्षत, पिच्चित, और छठा घृष्ट, ऐसे आगंतु व्रण छः प्रकारके होते हैं उनके लक्षण कहता हूं ।

छिन्नके लक्षण

तिर्यक्छिन्नऋजुर्वापियोव्रणस्त्वायतोभवेत् ।
गात्रस्यपातनंतद्धिच्छिन्नमित्यभिधीयते ॥ ३ ॥

अर्थ–जो व्रण तिरच्छा, सरल, (सीधा) अथवा लंबा होय, उस्को छिन्नव्रण कहते है ।

भिन्नके लक्षण

शक्तिकुंतेषुखड्गाग्रविषाणैराशयोहतः ।
यत्किंचित्स्रवतेतद्धिभिन्नलक्षणमुच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–बर्च्छी, भाला, बाण, तरवारके अग्रभाग विषाण (दांत सींग) इनसैं आशय (कोष्ठ)को वेधकर थोडासा रुधिर श्रवे (निकले) उस्को भिन्न कहते हैं ।

कोष्ठके लक्षण

स्थानान्यामाग्निपक्वानांमूत्रस्यरुधिरस्यच ।
हृदुंडुकःफुप्फुसश्चकोष्ठइत्यभिधीयते ॥ ५ ॥

अर्थ–आमाशय, अग्न्याशय, पक्वाशय, मूत्राशय, रक्ताशय, कलेजा, प्लीह, हृदय, मलाशय और फुप्फुस इन स्थानोंकी कोष्ठसंज्ञा है ।

इन भेदोंके लक्षण

तस्मिन्भिन्नेरक्तपूर्णेज्वरोदाहश्चजायते । मूत्रमार्गगुदास्ये-भ्योरक्तंघ्राणाच्चगच्छति ॥ ६ ॥ मूर्च्छाश्वासतृषाध्मानमभ-क्तच्छन्दएवच । विण्मूत्रवातसंगश्चस्वेदास्त्रावोऽक्षिरक्तता ॥ ७ ॥ लोहगंधित्वमास्यस्यगात्रदौर्गंध्यमेवच । हृच्छूलं पार्श्वयोश्चापिविशेषंचात्रमेशृणु ॥ ८ ॥

अर्थ–वो कोष्ठ भिन्न होकर रुधिरसें भरजावे तब ज्वर दाह होय है, मूत्रमार्ग, गुदा, मुख और नाक इन्मेंसें रुधिर वहै, मूर्च्छा, श्वास, प्यास, पेटका फूलना, अन्नमें अरुचि, मलमूत्र, अधोवायु इन्का अवरोध, पसीना वहुत आवे, नेत्रमें लाली, मुखमें लोहेकीसी वास आवे, अंगोंमें दुर्गंधि, हृदय और पसवाडोंमें शूल ये लक्षण होते हैं इन्से जो विशेष लक्षण हैं उन्को मोसे सुन।

आमाशयस्थितरक्तके लक्षण

आमाशयस्थेरुधिरेरुधिरंच्छर्दयत्यपि ।
आध्मानमतिमात्रंचशूलंचभृशदारुणम् ॥ ९ ॥

अर्थ–आमाशयमें रुधिरका संचय होनेसें रुधिरकी वमन, पेट वहुत फूले और अत्यंत भयंकर शूल होय।

पक्काशयस्थके लक्षण

पक्काशयगतेचापिरुजागौरवमेवच ।
अधःकायेविशेषेणशीतताचभवेदिह ॥ १० ॥

अर्थ–पक्काशयमें रुधिरका संचय होनेसें शूल, देहमें भारीपना, और क-मरसें लेकर नीचेके भागमे शीतलता होय है।

विद्धव्रणके लक्षण

सूक्ष्मास्यशल्याभिहतंयदंगंत्वाशयंविना ।
उत्तुंडितंनिर्गतंवातद्विद्धमितिनिर्दिशेत् ॥ ११ ॥

अर्थ–वारीक अग्रभागवाले (सुई आदि) शस्त्रसें आशय विना जे अंग हैं उन्में वेध होनेसें तुंडित (कहिये उन्मेसें वो शस्त्र न निकला होय) निर्गत कहिये (शल्य निकल गया हो) उस्को विद्धव्रण कहते हैं।

क्षतके लक्षण

नातिच्छिन्नंनातिभिन्नमुभयोर्लक्षणान्वितम् ।
विषमंव्रणमंगेषुतत्क्षतंत्वभिनिर्दिशेत् ॥ १२ ॥

अर्थ–जिस्में अंग अतिच्छिन्न, तथा अतिभिन्न न भया हो, और दोनोंके लक्षण मिलते हों, तथा व्रण तिरछा वाँका होय, उस्को क्षतव्रण कहते हैं ।

पिच्चितके लक्षण

प्रहारपीडनाभ्यांतुयदंगंपृथुतांगतम् ।
सास्थितत्पिच्चितंविद्यान्मज्जारक्तपरिप्लुतम् ॥ १३ ॥

अर्थ–जो अंग हाडसहित प्रहार कहिये मुद्गर आदिकी चोट अथवा दबना-किवार आदिसैं इन्के योगसैं पिच जाय, तथा मज्जा रुधिरकर्के युक्त होय, (घाव न होय) उस्को पिच्चितव्रण कहते हैं ।

घृष्टके लक्षण

घर्षणादभिघाताद्वायदंगंविगतत्वचम् ।
ऊषास्रावान्वितंतद्धिघृष्टमित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥

अर्थ–कठिन वस्त्र आदिको घर्षण (घिसने)सैं, चोटके लगनेसैं, जिस अंगको ऊपरकी त्वचा जाती रहै, तथा आगके समान गरम रुधिर चुचाय, उस्को घृष्ट ऐसे कहते हैं ।

सशल्यव्रणके लक्षण

श्यावंसशोथंपिटिकान्वितंचमुहुर्मुहुःशोणितवाहिनंच ।
मृदून्नतंबुद्बुदतुल्यमांसंव्रणंसशल्यंसरुजंवदंति ॥ १५ ॥

अर्थ–जो व्रण नीला, सूजनयुक्त, मरोरीनसैं व्याप्त होय और वारवार उन्मेंसैं रुधिर वहै और नरम होकर ऊपर बबूलेके समान उठा भया जिस्का मांस होय, उस व्रणको सशल्य है ऐसे जानना चाहिये ।

कोष्ठभेदलक्षण

त्वचोऽतीत्यशिरादीनिभित्त्वावापरिहृत्यवा ।
कोष्ठेप्रतिष्ठितंशल्यंकुर्यादुक्तानुपद्रवान् ॥ १६ ॥

अर्थ–त्वचाकी संधी कहिये शिरा, मांस, नस, हड्डी इन्की सन्धीको वेधकर, अथवा सिरा आदिको छोड जो शल्य कोष्ठमें रहे है, उस्सैं आगे कहे भए लक्षण होते हैं ।

असाध्यकोष्ठभेद

तत्रांतर्लोहितंपांडुशीतपादकराननम् ।
शीतोच्छ्वासंरक्तनेत्रमानद्धंपरिवर्जयेत् ॥ १७ ॥

अर्थ—जिस्का रुधिर आंतोंमें संचित होय, (अर्थात् बाहर नही वहे) और जो पीला वर्ण जिस्के हाथ पैर शीतल होय, और जो शीतल श्वासको छोडे, जिस्के लाल नेत्र होंय, तथा अनाह कहिये (पेट फूलना) ऐसे रोगीको वैद्य त्याग देय ।

मांस शिरा स्नायु अस्थि और संधि इन्मर्मोंमें चोट लगनेके सामान्यलक्षण

भ्रमःप्रलापःपतनंप्रमोहोविचेष्टनंग्लानिरथोष्णताच । स्र-
स्तांगतामूर्च्छनमूर्ध्ववातस्तीव्रारुजोवातकृताश्वतास्ताः॥१८॥
मांसोदकाभंरुधिरंचगच्छेत्सर्वेंद्रियार्थोपरमस्तथैव । दशा-
र्द्धसंख्येष्वथविक्षतेषुसामान्यतोमर्मसुलिंगमुक्तम् ॥ १९ ॥

अर्थ—भ्रम, अनर्थभाषण, गिरना, इन्द्री और मन इन्को मोह, हाथ पैरका फैलाना, ग्लानि, उष्णता, अंगोंमें शिथिलता, मूर्च्छा, श्वासका चढना, वातजन्य तीव्र पीडा, मांसका धोया हुआ पानी ऐसा रुधिर वहे, सर्व इन्द्री विकल होंय, (अर्थात् सब इन्द्रीन्का व्यापार बंद होजाय) ये लक्षण मांस आदि पांच मर्मविद्ध होनेसैं होते हैं ।

मर्मरहितशिराविद्धके लक्षण

सुरेन्द्रगोपप्रतिमंप्रभूतंरक्तंस्रवेत्तत्क्षणजश्चवायुः ।
करोतिरोगान्विविधान्यथोक्ताञ्छिरासुविद्धास्वथवाक्षतासु॥२०॥

अर्थ—शिरा कहिये (नाडी) विधजाय, अथवा शिरामें घाव होजाय, उस्मेसैं इन्द्रगोप (वीरबहुट्टी)कीडाके समान लाल तथा पुष्कल रुधिर स्रवे, तथा रक्तक्षय होनेसैं वायू कुपित होकर अनेक प्रकारके (आक्षेपकादि) रोग उत्पन्न करे हैं ।

स्नायुविद्धके लक्षण

कौब्ज्यंशरीरावयवावसादःक्रियास्वशक्तिस्तुमुलारुजश्च ।
चिराद्व्रणोरोहतियस्यचापितंस्नायुविद्धंपुरुषंव्यवस्येत् ॥ २१ ॥

अर्थ-कुवडापना, शरीरमें ग्लानि, काम करनेसें असामर्थपना, वहुत पीडा और जिस्का व्रण वहुत दिनमें भरे, उस्की स्नायु विद्ध भई ऐसे जाने।

संधिविद्धके लक्षण

शोथाभिवृद्धिस्तुमुलारुजश्चवलक्षयःपर्वसुभेदशोथौ।
क्षतेषुसंधिष्वचलाचलेषुस्यात्सर्वकर्मोपरमश्चलिंगम्॥ २२ ॥

अर्थ-चल अथवा अचल संधीका वेध होनेसें सूजन वढे, पीडा वहुत होय, शक्तिका नाश होय, संधिमें भेदके समान पीडा होय, सूजन होय, कुछ कार्य करे परंतु उसमें उपराम होय।

हड्डी विधगईहो उस्के लक्षण

घोरारुजोयस्यनिशादिनेषुसर्वास्ववस्थासुचनैतिशांतिम्।
भिषग्विपश्चिद्विदितार्थसूत्रस्तमस्थिविद्धंपुरुषंव्यवस्येत्॥ २३॥

अर्थ-जिसपुरुषके रातदिन घोर पीडा होय, जाग्रतादि तीनों अवस्थामें शांति होय नहीं, उस्के अस्थि (हड्डी) विधी है ऐसें श्रेष्ठ वैद्य जाने।

मर्मरहितशिरादिकोंके विद्धलक्षणकहनेकरके शिरादिमर्म-
विद्धलक्षणोंका हवाल देते हैं

यथास्वमेतानिविभावयेत्तुलिंगानिमर्मस्वभिताडितेषु।

अर्थ-मर्मके ठिकाने चोटके लगनेसें ये पूर्वोक्त लक्षण जानने चाहिये तुशब्दसें लक्षण और सामान्यलक्षण होते हैं ऐसे जानना।

मांसमर्मके लक्षण नहीं कहे उन्को कहते हैं

पांडुर्विवर्णःस्पृशितंनवेत्तियोमांसमर्मस्वभिताडितःस्यात्॥२४॥

अर्थ-जो पुरुष मांसमर्मके ठिकाने विद्ध होता है, उस्का पीला वर्ण देहका विवर्ण होय और स्पर्शका ज्ञान न होय।

सर्व व्रणके उपद्रव

विसर्पःपक्षघातश्चशिरास्तम्भोपतानकः। मोहोन्मादव्रणरुजाज्वरस्तृष्णाहनुग्रहः ॥ २५ ॥ कासश्छर्दिरतीसारोहिक्का
श्वासःसवेपथुः। षोडशोपद्रवाःप्रोक्ताव्रणानांव्रणचिन्तकैः॥२६॥

अर्थ-विसर्प, पक्षाघात, शिरास्तंभ, अपतानक, मोह, उन्माद, ज्वर, व्रणकी

पीडा, प्यास, हनुग्रह, खांसी, वमन, अतिसार, हिचकी, श्वास और कंप-ये व्रणरोगके सोलह उपद्रव व्रणरोगके जाननेवालोंने कहे हैं ।

इति श्रीमाधवार्थदीपिकायां सद्योव्रणनिदानम् ।

भग्ननिदान ।

भग्न दोप्रकारका है एक सव्रण और दूसरा व्रणरहित
इन्मेंसें व्रणको कहकर व्रणरहितको कहते हैं

भग्नंसमासाद्द्विविधंहुताशकांडेचसंधौचहितत्रसंधौ ।

अर्थ-हे अग्निवेश कांडभंग, और संधिभंग मिलकर संक्षेपसें भग्नरोग दो प्रकारका है ।

संधिभंगके लक्षण

उत्पिष्टविश्लिष्टविवर्त्तितंचतिर्यक्वविक्षिप्तमधश्चषोढा ॥ १ ॥

अर्थ-तहां संधिस्थानका भग्नरोग छः प्रकार है उन्के नाम कहते हैं। उत्पिष्ट, विश्लिष्ट, विवर्तित, तिर्यक्, विक्षिप्त, और अधःक्षिप्त, भग्ननाम टूटनेका है ।

संधिभंगके सामान्यलक्षण

प्रसारणाकुंचनवर्तनोग्रारुक्स्पर्शाविद्वेषणमेतदुक्तम् ।
सामान्यतःसन्धिगतस्यलिंगं

अर्थ-फैलातेसमय, सकोरनेके समय, नीचे करनेसें घोर पीडा होय और स्पर्श सहा न जाय, ये संधिभग्नके सामान्य लक्षण हैं ।

उत्पिष्टसन्धेःश्वयथुःसमन्तात् । विशेषतोरात्रिभवारुजाच

अर्थ-उत्पिष्टमें संधिके चारों ओर सूजन होय, और रात्रिमें पीडा बहुत होय, संधीके हाड दोनों आपसमें घिसे उस्को (उत्पिष्ट ऐसे कहते हैं)।

विश्लिष्टजंतौचरुजाचनित्यम् ॥ २ ॥

अर्थ-विश्लिष्ट संधिन्में सूजन और रात्रिमें पीडा ए होकर सर्व कालमें अत्यन्त पीडा होय और उत्पिष्टकी अपेक्षा इतने लक्षण (विश्लिष्टमें) विशेष होते हैं अर्थात् संधि शिथिल मात्र होय इस्में हाडके हटनेसें वीचमें गलेटा होजाय ।

विवर्तितेपार्श्वरुजश्चतीव्राः

अर्थ-विवर्तित संधिमें दोनों तरफके हाड संधीसे पलटजाय तब असंत पीडा इस संधिमें हाड दोनों तरफ फिरा करै।

तिर्यग्गतेतीव्ररुजोभवन्ति

अर्थ-हड्डीके तिरछे हटनेसै पीडा बहुत हो और एक हड्डी संधिस्थान छोडकर टेढी होजाय।

क्षिप्तेऽतिशूलंविषमारुगस्थ्नो।

अर्थ-संधिहड्डी एक ऊपरको हटजाय तो असन्त पीडा होय, और हाडोंमें कमजास्ती पीडा होय, इस जगे एक हड्डीकी क्रियासै, अथवा दोनों हड्डीकी क्रिया-करकें, दोनों हाड परस्पर समीपसे दूर होजाय हैं।

क्षिप्तेत्वधोरुग्विघटश्चसंधेः।

अर्थ-संधिकी हड्डी एक नीचेको हटजाय तो पीडा होय और संधीकी विरुद्ध चेष्टा होय इस्में संधीके हाड परस्पर दूर होय परंतु किंचित् नीचेको गमन करे।

अब कांडभग्नको कहते हैं

कांडेत्वतःकर्कटकाश्वकर्णविचूर्णितंपिच्चितमस्थिछल्लिका।
कांडेषुभग्नंत्वतिपातितंचमज्जागतंचस्फुटितंचवक्रं ॥ ४ ॥
छिन्नंद्विधाद्वादशधापिकांडे।

अर्थ-कांडभग्न बारह प्रकारका है १ कर्कटक, २ अश्वकर्ण, ३ विचूर्णित, ४ पिच्चित, ५ अस्थिछल्लिका, ६ कांडभग्न, ७ अतिपातित, ८ मज्जागत, ९ स्फुटित, १० वक्र और दोप्रकारके छिन्न।

१ कर्कटक-अर्थात् हाड दोनों औरसे दवकर वीचमें ऊंचासा होय।
२ अश्वकर्ण-घोडाके कानके समान जो हाड होजाय।
३ विचूर्णित-चुरकट होगया हो वो शब्दसें अथवा स्पर्शसें जाना जाय।
४ पिच्चित-पिचा भया हाड।
५ अस्थिछल्लिका-हाडका कोई भाग छिलकाके समान उखडकर रहे हैं सो।
६ कांडभग्न-हड्डीका कांड टूटना।
७ अतिपात-सब हाड टूटे सो।
८ मज्जागत-हड्डीके अवयव मज्जामें प्रवेशकर मज्जाको वाहर निकाले।
९ स्फुटित-जिस हड्डीके बहुत टुकडा हो जाय।
१० वक्र-हड्डी तिरछी होजाय वोभी भग्नमें गिनी जाती है।

११ छिन्न–२ वारीक वारीक वहुतसे टुकडा होजाय सो और दूसरा एक-और-से टूटकर दूसरी तरफ निकले है ।

कांडभग्नके सामान्यलक्षण

स्रस्तांगताशोथरुजातिवृद्धिः । संपीड्यमानेभवतीहशब्दः स्पर्शासहस्यंदनतोदशूलाः ॥ ५ ॥ सर्वास्ववस्थासुनशर्मलाभोभग्नस्यकांडेखलुचिन्हमेतत् ॥ ६ ॥

अर्थ–अंगोंमें शिथिलता, सूजन, घोर पीडा, जिसस्थानकी हड्डी टूटी होय उस जगे पीडाके साथ शब्द होय, हाथके लगानेसे सहा न जाय, हड्डी फडके, सुई छेदनेकीसी पीडा होय, और शूल होय, कभी चैन न पडै, कांड इस शब्द-सै नलक, कपाल, वलय, तरुण, और रूचक, इन पांच प्रकारकी हड्डीन्का संग्रह होय है कांडभग्नके १२ बारें भेदोंसे अधिक भेद होते हैं उन्को कहते हैं ।

भग्नंतुकांडेबहुधाप्रयातिसमासतोनामभिरेवतुल्यम् ।

अर्थ–कांडोंमें अनेक प्रकारके भंग होते हैं, सो जिसजिस ठिकाने जैसी आकृतीका होय, उस्का उसी प्रकारका नाम कहना चाहिये ।

कष्टसाध्य

अल्पाशिनोनात्मवतोजन्तोर्वातात्मकस्यच ।
उपद्रवैर्वाजुष्टस्यभग्नंकृच्छ्रेणसिध्यति ॥ ७ ॥

अर्थ–थोडा खानेवाला, और जिस्की इन्द्री स्वाधीन न होय, वातप्रकृतिवालेकी, ज्वरादि उपद्रव संयुक्त, ऐसे पुरुषकी हड्डी टूटनेसे वडे कष्टसै साध्य होय है ।

असाध्यलक्षण

भिन्नंकपालंकट्यांतुसंधिमुक्तंतथाच्युतम् ।
जघनंप्रतिपिष्टंचवर्जयेत्तुविचक्षणः ॥ ८ ॥

अर्थ–कमरकी कपाल[1] हड्डी टूटगई हो, अथवा संधिके पासकी हड्डी हटगई हो अथवा स्थानसैं छूटगई हो, और जंघाकी हड्डीका चूर हो गया हो, ऐसे रोगीको वैद्य साग दे ।

तथा असाध्यलक्षण

असंश्लिष्टकपालंचललाटेचूर्णितंचयत् ।

---

१ सुश्रुते–जानुनितंबांसगण्डतालुशंखवंक्षणशिरःसुकपालानिति.

भग्नंस्तनान्तरेपृष्ठेशंखेमूर्ध्निचवर्जयेत् ॥ ९ ॥

अर्थ–ललाटकी हड्डीके टुकडा टुकडा हो, परस्पर दूर होजाय, जुडनेके कामके न रहें, अथवा स्तनके बीचकी अथवा पीठकी अथवा शंख (कनपटी)की हड्डी .स्तककी हड्डी टूट गईहो उस्को वैद्य त्याग देय।

सावधानता न करनेसें असाध्यता दिखाते हैं

सम्यक्संधितमप्यस्तिदुर्निक्षेपनिबंधनात् ।
संक्षोभाद्वापियद्गच्छेद्विक्रियांतच्चवर्जयेत् ॥ १० ॥

अर्थ–हड्डी भलेप्रकार जुडवी गईहो उस्को अच्छी रीतिसै न राखै, अथवा अच्छी रीतिसे बांधे नहीं, अथवा उसमें किसीका धक्का लगनेसे फेर जैसेका तैसा हो जाता है और यह साध्य नहीं होय इस्को वैद्य त्याग दे।

अस्थिविशेषकर्के भग्नविशेष कहते हैं

तरुणास्थीनिनम्यन्तेभिद्यंतेनलकानिच ।
कपालानिविभज्यंतेस्फुटंतिरुचकानिच ॥ ११ ॥

अर्थ–तरुण हड्डी नव जातीहै, याटेढी होजाय, नलका हड्डी चिर जाती है, कपालास्थी फूटकर टूक टूक होजाय, रुचकास्थी (दंतादिक) हड्डी टुकडा होकर गिरपरे।

इति भग्ननिदानं समाप्तम् ।

नाडीव्रणनिदानसंप्राप्ति ।

यःशोथमाममतिपक्कमुपेक्षतेऽज्ञोयोवाव्रणंप्रचुरपूयमसाधुवृत्तः । अभ्यन्तरंप्रविशतिप्रविदार्यतस्यस्थानानिपूर्वविहितानिततःसपूयः ॥ १ ॥ तस्यातिमात्रगमनाद्गतिरिष्यतेतुनाडीवयद्वहतितेनमतातुनाडी ।

अर्थ–जो मूर्ख मनुष्य पकेहुए फोडेको कच्चा समझकर उपेक्षा करे, किंवा बहुत राध पडे फोडेकी उपेक्षा करदे, तब वो वढीहुई राध पूर्वोक्त त्वक्मांसादिक स्थानमें जायकर उन्को भेद कर वो बहुत भीतरी पहुंचजाय, तब एक मार्ग कर उस्मे वह राध नाडीके समान वहे, इसीसे इस्को नाडीव्रण (नासूर) कहते हैं।

संख्याकपसंप्राप्ति

दोषैस्त्रिभिर्भवतिसापृथगेकशश्चसंमूर्छितैरपिचशल्यनिमित्त-
तोऽन्या ॥ २ ॥

अर्थ–पृथक् पृथक् दोषोंसें ३ सन्निपातसें १ और शल्यसें १ ऐसे नाडीव्रण पांच प्रकारका हैं।

वातनाडीव्रणके लक्षण

तत्रानिलात्परुषसूक्ष्ममुखीसशूलाफेनानुविद्धमधिकंस्त्रव-
तिक्षपासु ।

अर्थ–वादीसे नाडीव्रणका मुख रूखा, तथा छोटा होय, और शूल होय, उसमेंसे फेनयुक्त स्राव होय, रात्रमें अधिक स्रवे।

पित्तके नाडीव्रणके लक्षण

पित्तात्तुतृट्ज्वरकरीपरिदाहयुक्तापीतंस्त्रवत्यधिकमुष्णमहःसु
चापि ॥ ३ ॥

अर्थ–पित्तके नाडीव्रणमें प्यास, ज्वर और दाह होय, उसमैंसे पीले रंगका, और बहुत गरम राध स्रवे, और दिनमें स्राव अधिक होय।

कफजनाडीव्रणके लक्षण

ज्ञेयाकफाद्बहुघनार्जुनपिच्छिलास्त्रास्तब्धासकंडुररुजारजनी-
प्रवृद्धा ।

अर्थ–कफज नाडीव्रणमें सफेद, गाढी, चिकनी राध निकले खुजली चले, रात्रमें स्राव बहुत होय।

संनिपातजनाडीव्रणके लक्षण

दाहज्वरश्वसनमूर्च्छनवक्त्रशोषायस्यांभवन्तिविहितानिचल-
क्षणानि ॥ ४ ॥ तामादिशेत्पवनपित्तकफप्रकोपात्घोरा-
मसुक्षयकरीमिवकालरात्रिम् ।

अर्थ–जिस नाडीव्रणमें दाह, ज्वर, श्वास, मूर्च्छा, मुखका सूखना, और पूर्वोक्त लक्षण होंय, उसको त्रिदोपकोपजन्य नाडीव्रण जानना यह भयंकर प्राणनाश करनेवाली कालरात्रीके समान जाननी।

शल्यजनाडी

नष्टंकथंचिदनुमार्गमुदीरितेषुस्थानेषुशल्यमचिरेणगतिंकरोति ॥ ५ ॥ साफेनिलंमथितमुष्णमसृग्विमिश्रंस्रावंकरोति सहसासरुजंचनित्यम् ।

अर्थ–किसीप्रकारसे शल्य (कंटकादि) उक्त स्थानमें पहुंचकर टूट जाय, तो नाडीव्रणके उत्पन्न करै उस नाडीव्रणमेंसें झाग मिला तथा रुधिरयुक्त मथेके समान गरम नित्य राध वहै, तथा पीडा होय ।

साध्यासाध्य लक्षण

नाडीत्रिदोषप्रभवानसिद्ध्येच्छेषाश्चतस्रःखलुयत्नसाध्याः ॥ ६ ॥

अर्थ–त्रिदोषजन्य नाडीव्रण साध्य नहीं होय, बाकीके चार नाडीव्रण यत्न करनेसें साध्य होते हैं ।

इति श्रीमाधवभावार्थदीपिकाया नाडीव्रणरोगनिदानम् ।

भगंदरनिदानम् ।

गुदस्यद्व्यंगुलेक्षेत्रेपार्श्वतःपिटिकार्तिकृत् ।
भिन्नोभगन्दरोज्ञेयःसचपंचविधोमतः ॥ १ ॥

अर्थ–गुदाके समीप दो अंगुल ऊंची पिछाडी एक पिटिका (फूंसी) होय, उसमें बहुत पीडा होय, और वह पिटिका फूटजाय उसको भगंदररोग कहते हैं (सुश्रुतने) इसकी निरुक्ति इस प्रकार करी है । यथा गुदभगवस्तिदारणात् भगंदर इति भगशब्द इस जगे गुदावाचक है सो (भोजने) कहावी है (भगं परिसमंताच्च गुदबस्तिस्तथैव च । भगवद्दारयेद्यस्मात्तस्मात् ज्ञेयो भगंदरः) इति यह भगंदररोग पांच प्रकारका है यह संख्या कहना केवल रक्तज द्वंद्वज भगंदर संभावनानिवारणार्थ जानना इस्के पूर्वरूप ग्रंथान्तरोंसें लिखते हैं ।

पूर्वरूप

कटीकपालनिस्तोददाहकंडूरुजादयः ।
भवन्तिपूर्वरूपाणिभविष्यतिभगंदरे ॥ २ ॥

अर्थ–कमरमें कपालास्थीमें सुईसी चुभे, दाह होय, खुजली चले, पीडा होय,

ये लक्षण जब भगंदर होनहार होय है तब होते हैं इस जगेबी कपालास्थी पूर्वोक्त जाननी, अर्थात् जो नाडीव्रणमें कहि आये हैं ।

शतपोनकके लक्षण

कषायरूक्षैरतिकोपितोऽनिलस्त्वपानदेशेपिडिकांकरोतिया ।
उपेक्षणात्पाकमुपैतिदारुणंरुजाचभिन्नारुणफेनवाहिनी ॥ ३ ॥
तत्रागमोमूत्रपुरीपरेतसांव्रणैरनेकैःशतपोनकंवदेत् ।

अर्थ–कपेले और रुखे पदार्थ खानेसें वायु अत्यंत कुपित होकर गुदास्थानमें जो पिटिका (फुंसी) प्रगट करे, उनकी उपेक्षा करनेमें वे फुंसी पके और फूट जाय तब पीडा होय, तथा लाल झाग मिली राध बहे, तथा उसमें अनेक छिद्र हो जाय, उन छिद्रोंमें होकर मूत्र, मल, और रेत (शुक्र) बहे, चालनी-केसै अनेक छिद्र होय इसी कारण इस रोगको शतपोनक ऐसे कहते हैं शत-पोनक नाम संस्कृतमें चलनीका है ।

उष्ट्रशिरोधरके लक्षण

प्रकोपणैःपित्तमतिप्रकोपितंकरोतिरक्तांपिडिकांगुदाश्रिताम् ।
तदाशुपाकाहिमपूयवाहिनींभगंदरंतूष्ट्रशिरोधरंवदेत् ॥ ४ ॥

अर्थ–पित्तकारक पदार्थ खानेसें कुपित भया जो पित्त सो गुदामें लाल रं-गकी पिटिका उत्पन्न करें, वो शीघ्र पककर उनमेंसें गरम राध बहे, ये पिटिका (फुंसी) ऊंटकी नाडके समान होय इसीसें इसको उष्ट्रशिरोधर नाम कहते है ।

परिस्रावी भगंदरके लक्षण

कंडूयनोघनस्रावीकठिनोमन्दवेदनः ।
श्वेतावभासःकफजःपरिस्रावीभगंदरः ॥ ५ ॥

अर्थ–कफसें प्रगट भया भगंदर उसमें खुजली चले, तथा उसमेंसे गाढी राध बहे, तथा वो पिटिका कठिन होय, उसमें पीडा थोडी होय, उन्का वर्ण सुपेद होय, उसको परिस्रावी भगंदर कहते है ।

शंबूकावर्त्तके लक्षण

बहुवर्णरुजास्रावाःपिडिकागोस्तनोपमाः ।
शंबूकावर्तवन्नाडीशंबूकावर्त्तकोमतः ॥ ६ ॥

अर्थ–जिस्में गौके थनके समान अनेक पिडका होंय, उन्का रंग, पीडा और स्राव, अनेक प्रकारका होय, और व्रण शंखके आँटेके समान, गोल होय, इस्को शंबूकावर्त्त कहते हैं।

उन्मार्गिभगंदरके लक्षण

क्षताद्गतिःपायुगताविवर्धतेह्युपेक्षणात्स्युःकृमयोविदार्यते ।
प्रकुर्वतेमार्गमनेकधामुखैर्व्रणैस्तदुन्मार्गिभगंदरंवदेत् ॥ ७ ॥

अर्थ–गुदामें कांटे आदिके लगनेसें क्षत (घाव) हो जाय, उस घावकी उपेक्षा करनेसें उस्में कृमि पडजाय, वो कृमि उस क्षतको विदारण करैं, ऐसे वो घाव गुदापर्यंत बढकर पहुंचे तथा कृमि उस्में अनेक मुख करलेवें, इस्को उन्मार्गि भगंदर कहते हैं।

साध्यासाध्य लक्षण

घोराःसाधयितुंदुःखाःसर्वएवभगंदराः ।
तेष्वसाध्यस्त्रिदोषोत्थःक्षतजश्चविशेषतः ॥ ८ ॥

अर्थ–सब भगंदर दुःसाध्य हैं तिन्मेंभी त्रिदोषका भगंदर असाध्य है, और क्षतज विशेषकर्के असाध्य है।

असाध्यके लक्षण

वातमूत्रपुरीषाणिकृमयःशुक्रमेवच ।
भगंदरात्प्रस्रवन्तिनाशयन्तिततमातुरम् ॥ ९ ॥

अर्थ–जिस भगंदरमेंसें अधोवायु, मूत्र, विष्ठा, कृमि, और वीज, वहे उस रोगीका नाश होय।

इति भगंदरनिदानं समाप्तम्।

उपदंशनिदानम्।

कारण

हस्ताभिघातान्नखदन्तघातादधावनाद्गत्यातिसेवनाद्वा ।
योनिप्रदोषाच्चभवंतिशिश्नेपंचोपदंशाविविधोपचारैः ॥ १ ॥

अर्थ–हाथकी चोट लगनेसें, नख दांतके लगनेसें, अच्छी रीतिसें न धोनेसें,

असन्त स्त्रीसंगके करनेसैं, अथवा योनिके दोषसैं, (अर्थात् दीर्घ करे वाल जिस्के ऊपर होंय) अथवा खारी गरम जलके धोनेसैं, ब्रह्मचर्यवाली स्त्रीसे गमन करनेसैं, इत्यादि कारणोंसैं, लिंगमें उपदंश (गर्मीका रोग) होय है वो पांच प्रकारका है।

वातोपदंशके लक्षण

सतोदभेदस्फुरणैःसकृष्णैःस्फोटैर्व्यवस्येत्पवनोपदंशम् ।

अर्थ—लिंगेन्द्रीके ऊपर काले फोडा उठें, उन्में चोटनेकीसी पीडा होय, तोडनेकीसी पीडा होय, और स्फुरण ए लक्षण वातोपदंशके जानने।

पित्तोपदंश व रक्तोपदंशके लक्षण

पीतैर्बहुक्लेदयुतैःसदाहैःपित्तेनरक्तात्पिशितावभासैः ॥ २ ॥

अर्थ—पित्तके उपदंशकर्के पीले रंगके फोडे होते हैं उन्मेसैं पानी बहुत बहै, दाह होय, रुधिरके उपदंशसैं मांसके समान लाल रंगके फोडा होंय।

कफोपदंशके लक्षण

सकंडुरैःशोथयुतैर्महद्भिःशुक्लैर्घनस्रावयुतैःकफेन।

अर्थ—कफके उपदंशकर्के सपेद मोठे फोडा होय, उन्में खुजली चले, सूजन होय, और गाढी राध बहै।

सन्निपातोपदंशके लक्षण

नानाविधस्रावरुजोपपन्नमसाध्यमाहुस्त्रिमलोपदंशम् ॥ ३ ॥

अर्थ—जिस उपदंशमें अनेक प्रकारका स्राव होय, पीडा होय, यह त्रिदोषज उपदंश असाध्य है।

असाध्य लक्षण

विशीर्णमांसंकृमिभिःप्रजग्धंमुष्कावशेषंपरिवर्जयेत्तु ।

अर्थ—जिस उपदंश कर्के लिंगका मांस गल गया हो, और कृमि लिंगको खाय जावै, केवल अंडकोश मात्र रहिजाय, उस्को वैद्य त्याग दे।

असाध्य लक्षण

संजातमात्रेणकरोतिमूढःक्रियांनरोयोविषयेप्रसक्तः । काले-
नशोथकृमिदाहपाकैर्विशीर्णशिश्नोम्रियतेसतेन ॥ ४ ॥

अर्थ—उपदंशके होतेही जो मूर्ख मनुष्य विषयमें आसक्त होकर इस्का उ-

पचार नहीं करे, उस्का लिंग थोडे दिनमें सूजन और कीडे पडे और उस्में दाह और पाकवी होय, पीछे वो गलजाय ऐसा रोगी मर जाय।

लिंगवर्त्तिके लक्षण

अंकुरैरिवसंघातैरुपर्युपरिसंस्थितैः । क्रमेणजायतेवर्त्तिस्ताम्रचूडशिखोपमा ॥ ५॥ कोशस्याभ्यन्तरेसंधौसर्वसंधिगतापिवा । लिंगवर्त्तिरितिख्यातालिंगार्शइतिचापरे ॥ ६ ॥ कुलत्थाकृतयःकेचित्केचित्पद्मदलोपमाः । मेढ्रसंधौनृणांकेचित्केचित्सर्वाश्रयाःस्मृताः ॥ ७ ॥ रुजादाहार्त्तिबहुलास्तृष्णातोदसमन्विताः । स्त्रीणांपुंसांचजायंतेह्युपदंशाःसुदारुणाः ॥ ८ ॥

अर्थ—मुरगाकी चोटीके समान लिंगके ऊपर मांसके अंकुर एकके ऊपर एक प्रगट होय कोशकी भीतरकी मणिमें अथवा सर्व संधीन्में तो इस रोगको लिंगवर्त्ति ऐसे कहते हैं और कोई लिंगार्श कहते हैं यह त्रिदोषजन्य है इस्मे मांसके अंकुर कुल्थीके समान, और कोई पद्मदलके समान, किसीके अंडकोशकी संधीमें किसीके सर्व आशयमें होते हैं पीडा, दाह, बहुत होय, प्यास नोचनेकीसी पीडा होय, स्त्री और पुरुषोंके यह उपदंश घोर पीडाकारक होते इस्में (कुलित्थाकृतयः) यहांसें लेकर (स्त्रीणांपूंसांचजायन्ते) यहांतक पाठ क्षेपक है माधवका नहीं और स्त्रीन्केभी गरमीका रोग होय है, यह मत सुश्रुतका है परन्तु यह आर्ष पाठ नही है।

इति उपदंशनिदान समाप्तम्।

फिरंगरोगनिदानम्।

उपदंशरोगकाही भेद फिरंगरोग है उस्को ग्रन्थान्तरसें लिखते हैं

फिरंगशब्दकी निरुक्ति

फिरंगसंज्ञकेदेशेबाहुल्येनैपयद्भवेत्।
तस्मात्फिरंगइत्युक्तोव्याधिर्व्याधिविशारदैः ॥ १ ॥

अर्थ—फिरंगीन्के देशमें यह रोग बहुधाकरके होय है, इसीसें वैद्य इस्को फिरंगरोग कहते हैं।

विप्रकृष्टनिदानम्

गंधरोगफिरंगोयंजायतेदेहिनांध्रुवम् । फिरंगिणोतिसंसर्गात् फिरंगिण्याप्रसंगतः । भवेत्तंलक्षयेत्तेषांलक्षणैर्भिषजांवरः ॥ २ ॥

अर्थ—गंधरोग यह फिरंगरोग है सो मनुष्योंके अंग्रेजोंके संसर्गसैं, अथवा फिरंगिणी (मेंम)के प्रसंग करनेसैं होय है, इस्को इस्के जो आगें लक्षण कहेंगे उन्से जाने ।

रूपमाह

फिरंगस्त्रिविधोज्ञेयोबाह्यआभ्यन्तरस्तथा ।
बहिरन्तर्भवश्चापितेषांलिंगानिचब्रुवे ॥ ३ ॥

अर्थ—फिरंग रोग तीन प्रकारका १ बाहर होय, २ भीतर होय है, और तीसरा बाहर भीतर दोनों स्थानमें होय है उन्के लक्षण कहता हूं ।

तत्रबाह्यःफिरंगःस्याद्विस्फोटसदृशाल्परुक् ।
स्फुटितोव्रणवद्वेद्यःसुखसाध्योपिसस्मृतः ॥ ४ ॥

अर्थ—तहां बाहरका फिरंग रोग फोडाके समान थोडी पीडा कर्त्ता होय है, और फोडेके समानही फूटे है यह सुखसाध्य है ।

संधिष्वाभ्यन्तरःसस्यादुभयोर्लक्षणैर्युतः ।
कष्टदोऽतिचिरस्थायीकष्टसाध्यतमश्चसः ॥ ५ ॥

अर्थ—और जो फिरंग सन्धिन्के भीतर होय, अथवा दोनो बाहर और भीतरकी फिरंगके लक्षण मिलते होंय, वो अतिकष्ट देनेवाली वहुत कालतक रहनेवाली कष्टसाध्य है ।

फिरंगरोगके उपद्रव

कार्श्यंबलक्षयोनासाभंगोवन्हेश्चमंदता ।
अस्थिशोषोऽस्थिवक्रत्वंफिरंगोपद्रवाअमी ॥ ६ ॥

अर्थ—देह कृश होजाय, बलनाश होजाय, नाक बैठ जाय, अग्नि मंद होजाय, हड्डी सूखे, तथा हड्डी टेढी होजाय, ए फिरंगके उपद्रव हैं ।

साध्यासाध्य कष्टसाध्य

बहिर्भवोभवेत्साध्योनूतनोनिरुपद्रवः । आभ्यन्तरस्तुकष्टे-

नसाध्यःस्यादयमामयः ॥ १५ ॥ बहिरंतर्भवोजीर्णःक्षी-
णस्योपद्रवैर्युतः । बोध्योव्याधिरसाध्योयमित्यूचुर्मुनयःपुरा१६

अर्थ-जो फिरंग बाहर होय, नया, और उपद्रव रहित होय, वो साध्य है और भीतर होय वो कष्टसाध्य है और जो बाहर भीतर दोनों ठिकानेपर होय, तथा पुराना पडगया, और उपद्रवयुक्त होय, वो फिरंग रोग असाध्य है फिरंग यह रोग वातका भेद जानना चाहिये यह सुजाक नामसैं प्रसिद्ध है ।

इति फिरंगरोगनिदानं समाप्तम् ।

शूकदोषनिदान ।

अक्रमाच्छेफसोवृद्धिंयोऽभिवांच्छतिमूढधीः ।
व्याधयस्तस्यजायन्तेदशचाष्टौचशूकजाः ॥ १ ॥

अर्थ-जो मंदबुद्धिवाला पुरुष शास्त्रोक्तक्रमके विना लिंगको मोटा करा चाहे, वो विपक्रमिका लिंगके ऊपर लेपादिक करे (अथवा जलयोग वात्स्यायन ऋषिके कहे उनका साधन करे) उसके १८ प्रकारके शूकजरोग होंय हैं ।

सर्षपिकाके लक्षण

गौरसर्षपसंस्थानाशूकदुर्भग्नहेतुका ।
पिटिकाश्लेष्मवाताभ्यांज्ञेयासर्षपिकाचसा ॥ २ ॥

अर्थ-दुष्टजल जंतूका दुष्टरीतिसे लेप करनेसै, कफवात कुपित होकर सपेद सरसौंके समान जो पिटिका (फुंसी) होय उस्को सर्षपिका कहते हैं ।

अष्ठीलाके लक्षण

कठिनाविषमैर्भुग्नैर्वायुनाष्ठीलिकाभवेत् ।

अर्थ-अप्रसक्त शूकोंके लेपसै वायू कुपित होकर करडी निहाईके समान पिडिका होय और विषम कहै कोई छोटी और कोई वडी और भुग्न कहे टेढे ऐसे शूक कहिये मांसांकुरन्सैं व्याप्त होय इस्को अष्ठीला कहे हैं ।

ग्रथितके लक्षण

शूकैर्यत्पूरितंशश्वद्ग्रथितंनामतत्कफात् ॥ ३ ॥

अर्थ–निरंतर शूकलेप करनेसैं लिंगेन्द्रीके ऊपर गाँठ पैदा होय, उस्को ग्रथित कहते हैं।

कुंभिकाके लक्षण

कुंभिकारक्तपित्तोत्थाजांबवास्थिनिभाऽशुभा।

अर्थ–रक्तपित्तसैं जामनकी गुठलीके समान काले रंगकी पिटिका होय, उस्को कुंभिका ऐसे कहते हैं।

अलजीके लक्षण

तुल्यजांत्वलजींविद्याद्यथाप्रोक्तंविचक्षणैः ॥ ४ ॥

अर्थ–यह पिटिका प्रमेह पिटिकामैं जो अलजी नाम पिटिका कह आये हैं उस्के समान लाल काले फोडान्सैं व्याप्त होय, तथा उस्के लक्षण पूर्वोक्त पिटिकाकेसे होंय हैं।

मृदितके लक्षण

मृदितंपीडितंयत्तुसंरब्धंवातकोपतः।

अर्थ–शूक पीडा होनेके अनंतर लिंगको हाथोंसैं मीडनेसैं, अथवा दावनेसैं वायूके कोपसैं लिंग सूज जाय।

संमूढपिटिकाके लक्षण

पाणिभ्यांभृशसंमूढेसंमूढप्पिटिकाभवेत् ॥ ५ ॥

अर्थ–लेप करनेके अनंतर जव लिंगमें खुजली चलै तव उस्को दोनों हाथोंसैं खूव खुजावै, तव एक मूढ (विनामुखकी) पिटिका होय उस्को संमूढपिटिका कहते हैं।

अवमंथके लक्षण

दीर्घाबह्वयश्चपिटिकादीर्यन्तेमध्यतस्तुयाः।
सोऽवमंथःकफासृग्भ्यांवेदनारोमहर्षकृत् ॥ ६ ॥

अर्थ–कफरक्तसैं लंबी और अनेक तथा वीच वीचमें फूटी भई ऐसी जो पिटिका लिंगमें होय, उन्के होनेसैं रोमांच और पीडा होय इस रोगको अवमंथ ऐसे कहते हैं।

पुष्करिकाके लक्षण

पित्तशोणितसंभूतापिटिकापिडिकाचिता।
पद्मकर्णिकसंस्थानाज्ञेयापुष्करिकाचसा ॥ ७ ॥

अर्थ-पित्तरक्तसै उत्पन्न भई पिटिका उस्के चारोंतरफ अनेक छोटी छोटी फुंसी होंय, और वो कमलकी भीतरकी केसरके समान सब फुंसी होंय, उस्को पुष्करिका ऐसे कहते हैं।

स्पर्शहानिके लक्षण

स्पर्शहानिंतुजनयेच्छोणितंशूकदूषितम् ।

अर्थ-शूकका लेप करनेसैं रुधिर दूषित होकर त्वचाका स्पर्शज्ञानको नष्ट करै।

उत्तमाके लक्षण

मुद्गमाषोद्गमारक्तारक्तपित्तोद्भवाश्चयाः ॥ ८ ॥
व्याधिरेषोत्तमानामशूकाजीर्णनिमित्तजः ।

अर्थ-शूकका वारंवार लेप करनेसैं रक्तपित्त कुपित होकर मूंग उरदके समान लाल फुंसी लिंगेन्द्रीपैं होंय उस्को उत्तमा कहते हैं यह अजीर्णके कारण होती हैं।

शतपोनकके लक्षण

छिद्रैरणुमुखैर्लिंगंचितंयस्यसमंततः ॥ ९ ॥
वातशोणितजोव्याधिर्विज्ञेयःशतपोनकः ।

अर्थ-जिस पुरुषके लिंगमें अनेक वारीक छिद्र होजाय, यह व्याधि वातशोणितसैं प्रगट इस्को शतपोनक कहते हैं।

त्वक्पाकके लक्षण

वातपित्तकृतोयस्तुत्वक्पाकोज्वरदाहवान् ॥ १० ॥

अर्थ-वातपित्तसैं लिंगकी त्वचा पक जाय, और उस्मैं ज्वर दाह होय है।

शोणितार्बुदके लक्षण

कृष्णैःस्फोटैःसरक्ताभिःपिटिकाभिर्निपीडितम् ।
यस्यवास्तुरुजाचोग्राज्ञेयंतच्छोणितार्बुदम् ॥ ११ ॥

अर्थ-जिस पुरुषकी लिंगेन्द्रीके ऊपर काले लाल फोडा उत्पन्न होंय, तथा उन्में पीडा होय, उस्को शोणितार्बुद कहते हैं।

मांसार्बुदके लक्षण

मांसदोषेणजानीयादर्बुदंमांससंभवम्

अर्थ-मांस दुष्ट होनेसैं मांसार्बुद प्रगट होय है।

मांसपाकके लक्षण

शीर्यन्तेयस्यमांसानियस्यसर्वाश्ववेदनाः ॥ १२ ॥
विद्यात्तंमांसपाकंतुसर्वदोषकृतंभिषक् ।

अर्थ–जिसकी इन्द्रीका मांस गलजाय, और अनेक प्रकारकी पीडा होंय, (यह व्याधि त्रिदोषज है) इस व्याधीको मांसपाक कहते हैं ।

विद्रधिके लक्षण

विद्रधिंसन्निपातेनयथोक्तमभिनिर्दिशेत् ॥ १३ ॥

अर्थ–विद्रधि निदानमें जो सन्निपातविद्रधिके लक्षण कहे हैं वोही यहां विद्रधिशूकके लक्षण जानने ।

तिलकालकके लक्षण

कृष्णानिचित्राण्यथवाशूकानिसविषाणितु । पातितानिपचंत्याशुमेढ्रंनिरवशेषतः ॥ १४ ॥ कालानिभूत्वामांसानिशीर्यंतेयस्यदेहिनः । सन्निपातसमुत्थांस्तुतान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ १५ ॥

अर्थ–काले अथवा चित्रविचित्र रंगकेसे विष शूकोंके लेप करनेसे तत्काल सर्व लिंग पकजाय, तथा सब मांस तिलके सदृश काला होकर गलजाय, इस त्रिदोषोत्पन्न व्याधीको तिलकालक ऐसे कहते हैं ।

असाध्यशूकदोषके लक्षण

तत्रमांसार्बुदंयच्चमांसपाकश्चयःस्मृतः ।
विद्रधिश्चनसिद्ध्यंतियेचस्युस्तिलकालकाः ॥ १६ ॥

अर्थ–तिस शूकदोषमें मांसार्बुद, मांसपाक, विद्रधि और तिलकालक ये चार असाध्य हैं ।

इति श्रीमाधवभावार्थदीपिकायां माथुरीभाषाटीकायां शूकदोषनिदानम् ।

कुष्ठनिदान ।

विरोधीन्यन्नपानानिद्रवास्निग्धगुरूणिच । भजतामागतांच्छ-

दिवेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥ १ ॥ व्यायाममतिसंतापमति-
भुक्त्वानिषेविणाम् । शीतोष्णलंघनाहारान्क्रमंमुक्त्वानि-
षेविणाम् ॥ २ ॥ घर्मश्रमभयार्त्तानांद्रुतंशीतांबुसेविनाम् ।
अजीर्णाध्यशनानांचपंचकर्मापचारिणाम् ॥ ३ ॥ नवान्नद-
धिमत्स्यादिलवणाम्लनिषेविणाम् । माषमूलकपिष्टान्नति-
लक्षीरगुडाशिनाम् ॥ ४ ॥ व्यवायंचाप्यजीर्णेऽन्नेनिद्रांच
भजतांदिवा । विप्रान्गुरून्धर्षयतांपापंकर्मचकुर्वताम् ॥ ५ ॥
वातादयस्त्रयोदुष्टास्त्वग्रक्तंमांसमंबुच । दूषयंतिसकुष्ठानांस-
प्तकोद्रव्यसंग्रहः ॥६॥ अतःकुष्ठानिजायंतेसप्तचैकादशैवच ।

अर्थ–विरोधी कहिये क्षीरमत्स्यादि, पतले, स्नेहयुक्त, भारी ऐसे अन्नपानके सेवन करनेसै, रद्दके वेगको रोकनेसै, और अन्य वेग कहिये मलमूत्रादिवेगोंके रोकनेसैं, भोजनकरके अत्यंत व्यायाम (दंडकसरत) अथवा अतिसंताप (सूर्यका ताप) सहनेसैं, शीत, गरमी, लंघन और आहार इन्के सेवन उक्तक्रम छोडकर सेवन करनेसैं, पसीना, श्रम और भय इन्सैं पीडित होय, और उसी समय शीतल जल पीवे इस कारणसैं, अजीर्ण अन्न भक्षण करनेसैं, तथा भोजनके ऊपर भोजन करनेसैं, वमन, विरेचन, निरूहन, अनुवासन, नस्यकर्म इन पंचकर्मकेकरते समय अपथ्य करनेसैं, नया अन्न, दही, मछली, खारी, खट्टा, पदार्थके सेवन करनेसैं, उडद, मूरी, मिष्टान्न, (लड्डु, खजला, फेनी आदि) तिल, दूध, गुड इन्के खानेसैं, अन्नके पचेविना स्त्रीसंग करनेसैं, तथा दिनमें सोनेसैं, ब्राह्मण, गुरू इनका तिरस्कार करनेसैं, पापकर्मके आचरण करनेसै, ऐसे पुरुषोंके वातादिक तीनों दोष, त्वचा, रुधिर, मांस, और जल इन्को दुष्ट कर कुष्ठरोग (कोढ) उत्पन्न करै, कुष्ठ होनेके वातादि तीनों दोष, और त्वचादि दूष्य, ये सात पदार्थ अवश्य कारणभूत हैं इनसैही अठारे प्रकारके कुष्ठ होते हैं तिन्में सात महाकुष्ठ, और ग्यारे क्षुद्र कुष्ठ हैं ।

कुष्ठोंको त्रिदोषजत्वभी होनेसे दोषाधिक्यसै वो सातप्रकारके है सो कहते हैं ।

कुष्ठानिसप्तधादोषैःपृथग्द्वंद्वैःसमागतैः ॥ ७ ॥
सर्वेष्वपित्रिदोषेषुव्यपदेशोऽधिकोमतः ।

अर्थ–पृथक् पृथक् दोषोंकरके ३, द्वंद्वज ३, और सन्निपातसे १ सब मिलकर

सात कुष्ठ भए सब कुष्ठ त्रिदोष होनेपरभी जो दोष अधिक होय उसीसैं व्यवहार करना चाहिये, अर्थात् जिस दोषके लक्षण मिलैं उस्को उसी दोषका कुष्ठ जानना जैसे 'वातेन कुष्ठं कापालं' अर्थात् वाताधिक्य होनेसें कापाल कुष्ठ होय है।

कुष्ठके पूर्वरूप

अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णता ॥ ८॥ दाहःकंडूस्त्वचिस्वापस्तोदःकोष्ठोन्नतिःक्रमः । व्रणानामधिकंशूलंशीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः ॥ ९ ॥ रूढानामपिरूक्षत्वंनिमित्तेऽल्पेपिकोपनम् । रोमहर्षोऽसृजःकार्ष्ण्यंकुष्ठलक्षणमग्रजम् ॥ १० ॥

अर्थ-जिस ठिकाने कुष्ठ होनहार होय उस जगे हाथोंसैं चिकना मालूम होय, अथवा खरदरा मालूम होय, उस ठिकाने पसीना आवै अथवा नहीं आवै, तथा उस ठिकानेका वर्ण पलट जाय, दाह होय, खुजली चले, त्वचाको स्पर्श मालूम न होय, नोचनेकीसी पीडा होय, विपैलमाखीके काटनेके सदृश चकत्ता उठे, परिश्रम करेविना देहमें श्रम होय, व्रणमें पीडा अधिक होय, उनफोडोंकी उत्पत्ति शीघ्रहोकर वहुत दिवसपर्यंत रहै, जब फोडा भरनेको होय, तब रूखे रहैं उन्का थोडे निमित्त होनेसैं कोप होय, रोमांच होय, और रुधिर काला पड जाय, ए कुष्ठहोनेके पूर्वरूप होते हैं।

सप्तमहाकुष्ठोंके लक्षण

कृष्णारुणकपालाभंयद्रूक्षंपरुषंतनु ।
कापालंतोदबहुलंतत्कुष्ठंविषमंस्मृतम् ॥ ११ ॥

अर्थ-कापालकुष्ठ जो काले, तथा लाल, खीपडाके सदृश, रूखे, कठोर, पतले, ऐसे त्वचावाले तथा नोचनेकीसी पीडायुक्त होय, वे दुश्चिकित्स्य हैं अर्थात् वे चिकित्साकरनेमें कठिन है। इसको कपालकुष्ठ कहते हैं।

औदुंबरकुष्ठके लक्षण

रुग्दाहरागकंडूभिःपरीतंलोमपिंजरम् ।
उदुंबरफलाभासंकुष्ठमौदुंबरंवदेत् ॥ १२ ॥

अर्थ-औदुंबरकुष्ठ यह शूल, दाह, लाल और खुजली इन्सैं व्याप्त होय, इसमें बाल कपिल वर्णके होय, तथा ये गूलरफलके समान होय है।

मंडलकुष्ठके लक्षण

श्वेतरक्तंस्थिरस्त्यानंस्निग्धमुत्सन्नमंडलम् ।
कृच्छ्रमन्येनसंयुक्तंकुष्ठंमंडलमुच्यते ॥ १३ ॥

अर्थ-मंडलकुष्ठ सपेद, लाल, कठिन, गीला, चिकना, जिस्का आकार मंडलके सदृश होय तथा एक दूसरेसै मिला होय, ऐसा यह मंडलकुष्ठ कष्टसाध्य है ।

ऋष्यजिह्वकुष्ठलक्षण

कर्कशंरक्तपर्यंतमन्तःश्यावंसवेदनम् ।
यदृक्षजिह्वासंस्थानमृक्षजिह्वंतदुच्यते ॥ १४ ॥

अर्थ-ऋष्यजिह्वकुष्ठ कठोर, अंतविषे लाल होय, बीचमें काला होय, पीडा करे, तथा रीछकी जीभके समान होय है ।

पुंडरीककुष्ठके लक्षण

सश्वेतंरक्तपर्यंतंपुंडरीकदलोपमम् ।
सोत्सेधंचसरागंचपुंडरीकंप्रचक्षते ॥ १५ ॥

अर्थ-पुंडरीककुष्ठ जो कुष्ठ पुंडरीक (कमल) पत्रके समान सपेद होय, और उस्के अंतभाग लाल होय, यत्किंचित् ऊंचा निकल आवै, और मध्यमें थोडा लाल होय है ।

सिध्मकुष्ठके लक्षण

श्वेतंताम्रंचतनुयद्रजोघृष्टंविमुंचति ।
प्रायेणोरसितत्सिध्ममलाबुकुसुमोपमम् ॥ १६ ॥

अर्थ-सिध्मलक्षण सपेद, लाल, पतला, खुजानेसें भूसीसी उडे, यह विशेषकरके छातीमें होय है और घीयाके फूलके आकार होय ।

काकणकुष्ठके लक्षण

यत्काकणंतिकावर्णसपाकंतीव्रवेदनम् ।
त्रिदोषलिंगंतत्कुष्ठंकाकणंनैवसिध्यति ॥ १७ ॥

अर्थ-काकणकुष्ठ जो चिरमिठिके समान लाल, अर्थात् बीचमें काला होय, और ओरपास लाल होय, अथवा बीचमें लाल होय, और ओरपास काला होय, किंचित् पका, तीव्रपीडायुक्त, जिसें तीनों दोषोंके लक्षण मिलते हों, यह कुष्ठ अच्छा नहीं होय ।

ग्यारैक्षुद्रकुष्ठोंके लक्षण

अस्वेदनंमहावास्तुयन्मत्स्यशकलोपमम् ।
तदेककुष्ठंचर्माख्यंबहलंहस्तिचर्मवत् ॥ १८ ॥

अर्थ–चर्मकुष्ठ पसीनारहित, मोठी जगे व्यापनेवाला, मछलीकी त्वचासमान अर्थात् अभ्रकके पत्रसमान गोल गोल होय, और जिस्का चर्म हाथीके चर्मसमान मोठा और कठोर होय, उस्को चर्मकुष्ठ कहते हैं ।

किटिभकुष्ठके लक्षण

श्यावंकिणखरस्पर्शंपरुषंकिटिभंस्मृतम् ।

अर्थ–किटिभकुष्ठ नीलवर्ण, व्रणकी चटकेसमान कठोर स्पर्श माल्म होय और परुष कहिये रूक्ष होय ।

वैपादिककुष्ठके लक्षण

वैपादिकंपाणिपादस्फोटनंतीव्रवेदनम् ॥ १९ ॥

अर्थ–वैपादिक जिस्में हाथकी हतेली और पैरके तरवा फटजाय, और पीडा बहुत होय, इस विपादिकाको बिवाई नहीं जानना क्योंकि बिवाई केवल पैरमेंही होती है, और बिवाईको शास्त्रमें पाददारी कहते हैं, और विपादिकामें हाथ पैरोंमें फुंसी श्यामरंगकी होंय हैं, और वे फुंसी चुचाती है, तथा खुजाती है, इसीसे पाददारी भिन्न, और विपादिका भिन्न है ।

अलसकुष्ठके लक्षण

कंडूमद्भिःसरागैश्चगंडैरलसकंचितम् ।

अर्थ–अलसकुष्ठ इस कुष्ठमें पीडा बहुत होय, और जिस्में पिडका पित्तीके समान बहुत होय, और लाल होय, इस्में बहुतसे मूर्ख वैद्य पित्तीकी शंका करते हैं ।

दद्रूमंडलकुष्ठके लक्षण

सकंडूरागपिटिकंदद्रूमंडलमुद्गतम् ॥ २० ॥

अर्थ–दद्रूमंडलकुष्ठ इसमें खुजली होय, लाल होय, और फोडा होय, और ये ऊंचे उठ आवै, मंडलके आकार गोल उत्पन्न होंय, इसीसै इस्को दद्रूमंडल कहते हैं ।

चर्मदलकुष्ठके लक्षण

रक्तंसशूलंकंडूमत्स्फोटंयद्दलयत्यपि ।

तच्चर्मदलमाख्यातमस्पर्शासहमुच्यते ॥ २१ ॥

अर्थ-चर्मदलकुष्ठ यह लाल हो, शूलयुक्त, खुजलीयुक्त, फोडान्सैं व्याप्त-होकर फूट जाय, इस्मैं हाथ लगानेसे सहा न जाय, इस्मैं त्वचा फटजाय।

पामाकुष्ठके लक्षण

सूक्ष्माबह्व्यःपीडकाःस्राववत्यःपामेत्युक्ताःकंडुमत्यःसदाहाः।

अर्थ-पामाकुष्ठ जो पिटिक छोटी और बहुत होय, उन्मेंसे स्राव होय, तथा खुजली चले और दाह होय इस कुष्ठको पामा (खाज) कहते हैं।

कच्छुकुष्ठके लक्षण

सैवस्फोटैस्तीव्रदाहैरुपेताज्ञेयापाण्योःकच्छुरुग्रास्फिजोश्च॥२२॥

अर्थ-कच्छुकुष्ठ वोही पामा मोठे फोडान्करके तथा तीव्रदाहयुक्त होय, और हांथोंमें होय, उस्को कच्छू कहते हैं। उग्रा यह कमरमें होय है।

विस्फोटककुष्ठके लक्षण

स्फोटाःश्यावारुणाभासाविस्फोटाःस्युस्तनुत्वचः।

अर्थ-विस्फोटक जो फोडा काले वा लाल रंगके होंय और जिन्की त्वचा पतली होय, उस्को विस्फोटक कहते हैं।

शतारुकुष्ठके लक्षण

रक्तंश्यावंसदाहार्तिंशतारुस्याद्बहुव्रणम् ॥ २३ ॥

अर्थ-शतारु जो लाल होय, श्याम होय, जलन-होय, शूल हो, तथा जिस्में अनेक फोडा होंय, उस्को शतारुकुष्ठ कहते हैं।

विचर्चिकाके लक्षण

सकंडूःपिटिकाश्यावाबहुस्रावाविचर्चिका।

अर्थ-विचर्चिका खुजली युक्त, काले रंगकी जो फुंसी (माताके समान) होय, तथा उन्मेंसे स्राव बहुत होय, उस्को विचर्चिका कहते हैं।

चर्म कुष्ठसैं लेकर विचर्चिका कुष्ठ पर्यन्त १२ कुष्ठ होते हैं और पीछे क्षुद्र कुष्ठ ११ कहे हैं ऐसी कोई शंका करै उस्के निमित्त कहते हैं विचर्चिका पैरोंमें होकर फूटकर अर्थात् विपादिका होय हैं ऐसे कहनेसें संख्या नहीं बढे इस विषयमें (भोजका) यह मत हैं।

वातजादिकुष्ठोंके लक्षण

खरंश्यावारुणंरूक्षंवातात्कुष्ठंसवेदनम् ॥ २४ ॥

पित्तात्प्रकुपितंदाहरागस्रावान्वितंस्मृतम् ।
कफात्क्लेदिघनंस्निग्धंसकंडूशैत्यगौरवम् ॥ २५ ॥
द्विलिंगंद्वंद्वजंकुष्ठंत्रिलिंगंसान्निपातिकम् ।

अर्थ–वायूके योगसे कुष्ठ खरदरा, कालेरंगका, अथवा लालवर्ण, रूखा, और पीडायुक्त, ऐसा होय है ।

पित्तके योगसे कुपित कुष्ठमें दाह, लाली, और स्रावयुक्त होय है ।

कफके योगसे क्लेदयुक्त, सघन, चिकना, खुजलीयुक्त, शीतल, और भारी ऐसा होय है ।

द्वंद्वज कुष्ठमें दो दोषोंके लक्षण होते हैं ।

सान्निपातिक कुष्ठमें तीन दोषोंके लक्षण होते हैं ।

रसादिसप्तधातुगतकुष्ठोंके क्रमसैं लक्षण

त्वक्स्थेवैवर्ण्यमंगेषुकुष्ठेरौक्ष्यंचजायते ॥ २६ ॥
त्वक्स्वापोरोमहर्षश्चस्वेदस्यातिप्रवर्तनम् ।

अर्थ–रसधातुगत कुष्ठ होनेसें अंगका वर्ण पलटजाय है, अंग रूखा होय, त्वचा शून्य होय, रोमांच हों, और पसीना बहुत आवै ।

रक्तगतकुष्ठके लक्षण

कंडूर्विपूयकश्चैवकुष्ठेशोणितसंश्रये ॥ २७ ॥

अर्थ–कुष्ठरक्त गतहोनेसैं खुजली, और राध बहुत होय ।

मांसगतकुष्ठके लक्षण

बाहुल्यंवक्त्रशोषश्चकार्कश्यंपिडिकोद्गमः ।
तोदःस्फोटस्थिरत्वंचकुष्ठेमांससमाश्रिते ॥ २८ ॥

अर्थ–मांसगतकुष्ठ होनेसें मुख बहुत सूखे, अंगमें कर्कशपना होय, देहमें फुंसी पैदा होंय, सुई नोचनेकीसी पीडा होय, फोडा होय, वे बहुत दिन रहैं ।

मेदोगतकुष्ठके लक्षण

कौण्यंगतिक्षयोंऽगानांसंभेदःक्षतसर्पणम् ।
मेदःस्थानगतेलिंगंप्रागुक्तानितथैवच ॥ २९ ॥

अर्थ–कौण्य कहै हाथ गिरपडे, चलनेकी शक्ति मारी जाय, हड फूटन होय, घाव फैल जाय, और पूर्वोक्त लक्षण (रसरक्त मांसगत कुष्टके लक्षण) होंय ।

अस्थिमज्जागतकुष्ठके लक्षण

नासाभंगोऽक्षिरागश्चक्षतेषुकृमिसंभवः ।
स्वरोपघातश्चभवेदस्थिमज्जासमाश्रिते ॥ ३० ॥

अर्थ—अस्थि (हड्डी) और मज्जागतकुष्ठ होनेसे नाक गिरपरे, नेत्र लाल होंय, घावमें कीडा पड जांय, स्वर बैठ जाय, ए लक्षण होंय ।

शुक्रार्त्तवगतकुष्ठके लक्षण

दंपत्योःकुष्ठबाहुल्याद्दुष्टशोणितशुक्रयोः ।
यदपत्यंतयोर्जातंज्ञेयंतदपिकुष्ठितम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—जिस स्त्री पुरुषोंके रुधिर शुक्र कुष्ठाधिक्यसैं दुष्ट होय, उस दुष्ट वीर्य और रजसैं प्रगट भई जो संतान सोभी कोढी होती है इस जगे दुष्ट भए शुक्र और आर्त्तव सर्वथा वीजत्व नष्ट न होनेसे संतानके करनेवाले होते हैं, और जीव संक्रमण कालमें कदाचित् वीज दुष्ट होय तो, विपके कीडाके न्याय करके संतान प्रगट होती है, अर्थात् जैसे विप प्राणीनके प्राणका नाश करै परंतु उसमेंभी विपका कीडा प्रगट होता है, और वो उससे नहीं मरता है यह वाग्भट्टका मत है ।

साध्यादिभेद

साध्यंत्वग्रक्तमांसस्थंवातश्लेष्माधिकंचयत् । मेदसिद्वंद्वजं याप्यंवर्ज्यमज्जास्थिसंश्रितम् ॥ ३२ ॥ कृमिहृल्लासमन्दाग्निसंयुक्तंयत्रिदोषजम् । प्रभिन्नंप्रसृतांगंचरक्तनेत्रंहतस्वरम् ॥ ३३ ॥ पंचकर्मगुणातीतंकुष्ठंहंतीहकुष्ठिनम् ।

अर्थ—रस रुधिर मांस इन धातून्के पर्यन्त गए जे कुष्ठ, वो साध्य होते हैं तथा जिस कुष्ठमें वायु और कफ प्रधान होंय वोभी साध्य है और मेदोधातुगत कुष्ठ तथा द्वंद्वजकुष्ठ याप्य जानना मज्जा अस्थि इन दोनों धातुमें कुष्ठ पहुंच गयाहो, तथा जो शुक्र गतहो वो कुष्ठ असाध्य है तथा जिस कुष्ठमें कृमि, वमन, मन्दाग्नि, इनकर्के युक्त होय तथा त्रिदोषज होय, वो असाध्य है जो कुष्ठ फूटकर वहने लगे, तथा जिस कुष्ठसैं रोगीके नेत्र लाल होंय, अथवा स्वर बैठ गया होय, और वमन विरेचनादि पंचकर्मके गुण जिस पुरुषके होंय नहीं, ऐसा रोगी मरजाय ।

कुष्ठमें प्रधानदोषके लक्षण

वातेनकुष्ठंकापालंपित्तेनौदुंबरंकफात् ॥ ३४ ॥ मंडलाख्यं

विचर्चीचऋष्याख्यंवातपित्तजम् । चर्मैककुष्ठंकिटिभंसिध्मा-
लसविपादिकाः ॥ ३५ ॥ वातश्लेष्मोद्भवाःश्लेष्मपित्ताद्दद्रु-
शतारुषी । पुंडरीकंसविस्फोटंपामाचर्मदलंतथा ॥ ३६ ॥
सर्वैःस्यात्काकणंपूर्वंत्रिकंदद्रुःसकाकणा । पुंडरीकर्ष्यजिव्हे
चमहाकुष्ठानिसप्ततु ॥ ३७ ॥

अर्थ–वादीसे कपाल कुष्ठ, पित्तसे औदुंबर, कफसे मंडल, और विचर्चिका, वातपित्तसै, ऋष्यजिव्ह वात कफसे, चर्म कुष्ठ, किटिभ, सिध्म, आलस, और विपादिका, कफपित्तसे, दद्रु शतारु, पुंडरीक, विस्फोटक, पामा चर्मदल, त्रिदोषसे काकणकुष्ठ होय है पहिले तीन (कपाल, उदुंबर, और मंडल) दद्रु, काकण, पुंडरीक, और ऋष्यजिव्ह, ए सात महाकुष्ठ जानने ।

किलासनिदान

कुष्ठैकसंभवंश्वित्रंकिलासंचारुणंभवेत् ।
निर्दिष्टमपरिस्त्रावित्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥ ३८ ॥

अर्थ–कुष्ठ होनेके जो कारण (विरुद्धभोजन पापकर्मादि) कहेहैं उन्हीं कारणसैं श्वित्र (सपेद कोढ) और किलास (लाल कोढ) ये होते हैं इन्में स्राव नहीं होय, तथा ये तीन धातूनका आश्रय करके रहते हैं, (अर्थात् तीन दोष और रुधिर मांस तथा मेद) इन्का आश्रय करके रहेहैं ।

वातादिभेदसैं उनके लक्षण

वाताद्रूक्षारुणंपित्तात्ताम्रंकमलपत्रवत् । सदाहंरोमविध्वंसि
कफाच्छ्वेतंघनंगुरु ॥ ३९ ॥ सकंडुरंक्रमाद्रक्तमांसमेदस्सुचा-
दिशेत् । वर्णेनैवेदृगुभयंकृच्छ्रंतच्चोत्तरोत्तरम् ॥ ४० ॥

अर्थ–वादीसे रूक्ष और लाल होय, पित्तसैं लाल कमलपत्रके समान लाल होय, और उसमें दाह होय, उस्के ऊपरके वाल गिरपडे कफके योगसैं वो कोढ सपेद, गाढा, और भारी उस्में खुजली चले इसी क्रमसैं रुधिर मांस और मेदकाभी ठिकाना जानना अर्थात् दोप रक्ताश्रित होनेसैं लाल, मांसाश्रित होनेसैं तामेके रंग, और मेदाश्रित होनेसैं सपेद किलास होय है ।

श्वित्रके साध्यासाध्य लक्षण

अशुक्लरोमाबहलमसंश्लिष्टमथोनवम् ।

अनग्निदग्धजंसाध्यंश्वित्रंवर्ज्यमतोऽन्यथा ॥ ४१ ॥

अर्थ–जिस श्वित्र कोढके ऊपरके वाल सपेद न भएहों, तथा जे पतले होकर आपसमें मिले नहीं, तथा नवीन हों तथा अग्निदग्ध न होय, वो श्वित्रकोढ साध्य जानना, यासै विपरीत असाध्य जानना।

किलासके असाध्य लक्षण

गुह्यपाणितलोष्ठेषुजातमप्यचिरंतनम्।
वर्जनीयंविशेषेणकिलासंसिद्धिमिच्छता ॥ ४२ ॥

अर्थ–गुदास्थानमें, हातोंमें, पैरोंके तलवाओंमें, होठोंमें, प्रगट भया किलास कुष्ठ, थोडे दिनका होय, तोभी यश मिलनेकी इच्छावाला वैद्य छोड दे।

सांसर्गिकरोग

प्रसंगाद्गात्रसंस्पर्शान्निश्वासात्सहभोजनात्। सहशय्यासना-च्चापिवस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥ ४३ ॥ कुष्ठंज्वरश्चशोषश्चनेत्रा-भिष्यन्दएवच। औपसर्गिकरोगाश्चसंक्रामन्तिनरान्नरम् ॥ ४४ ॥

अर्थ–मैथुनादि प्रसंगसैं, अथवा शरीके स्पर्शसै, श्वासके लगनेसैं, साथ वैठकर एक पात्रमें भोजन करनेसैं, एक साथ एक सैया (पलंग)पर सोनेसैं, तथा एक साथ मिलकर वैठनेसे, पास रहनेसे, धारण करे वस्त्रको धारण करनेसे, सूंघे पुष्पको सूंघनेसैं, अथवा पहरी हुई मालाको धारण करनेसै, लगाये हुए चंदनमेंसें लगानेसैं, कोढ, ज्वर, धातुशोष, (अर्थात् खईका रोग) नेत्ररोग, (आंख दूखना) और औपसर्गिक रोग कहिये शीतलादिक, और भूतोपसर्गादिक, ये संक्रामिक रोग, एक पुरुषसैं उडकर दूसरे मनुष्यके होजाते है इसीसे पूर्वोक्त रोगियो प्रसंगादिक न करै।

यथा

म्रियतेयदिकुष्ठेनपुनर्जातस्यतद्भवेत्।
नातोनिंद्यतरोरोगोयथाकुष्ठंप्रकीर्तितम् ॥ ४५ ॥

अर्थ–कुष्ठरोगी मरेतौ फेर उस्के दूसरे जन्ममें यह दुष्ट रोग होय है इसीसैं इस कुष्ठ रोगके समान और दूसरा निंद्य रोग नहीं हैं कुष्ठरोगकी निरुक्ति 'कुत्सितं तिष्ठतीति कुष्ठं'। कुष्ठं भेषजरोगयोरिति हैमः।

इति श्रीपण्डितदत्तराममाथुरप्रणीतमाधवभावार्थदीपिका माथुरीभाषाटीकायां कुष्ठरोगनिदानं समाप्तिमगमत्।

शीतपित्तनिदानसंप्राप्ति ।



शीतमारुतसंस्पर्शात्प्रदुष्टौकफमारुतौ ।
पित्तेनसहसंभूयबहिरंतर्विसर्पतः ॥ १ ॥

अर्थ—शीतलपवनके लगनेसे कफ वायू दुष्ट होकर पित्तसे मिल भीतर (रक्तादिकोंमें) और बाहर त्वचामें विचरे ।

पूर्वरूप

पिपासारुचिहृल्लासमोहसादांगगौरवम् ।
रक्तलोचनतातेषांपूर्वरूपस्यलक्षणम् ॥ २ ॥

अर्थ—प्यास, अरुचि, मुखमेंसे पाणी गिरना, अंगगलने, और भारीहोना, नेत्रमें लाली, ये पूर्वरूप शीतपित्तके जानने ।

उदर्दके लक्षण

वरटीदष्टसंस्थानःशोथःसंजायतेबहिः । सकंडूस्तोदबहुल-
श्छर्दिज्वरविदाहवान् ॥ ३ ॥ उदर्दमितितंविद्याच्छीतपित्त-
मथापरे ।

अर्थ—वरटी (ततैया)के काटनेके समान त्वचाके ऊपर चकत्ता होजाय, उन्में खुजली चले, और सूई चुभाने कीसी पीडा होय, इस्के संयोगसैं वमन, संताप, और दाह होंय, इसरोगको उदर्द कहते हैं कोई इस्को शीतपित्त कहते हैं इस्को लौकिकमें पित्ती कहते हैं इस्में खुजली होय है, सो कफसैं जानना, चोंटनी वादीसैं होय है और ओकारी संताप और दाह ए पित्तसैं होते हैं ऐसे जानना ।

वाताधिकंशीतपित्तमुदर्दस्तुकफाधिकः ॥ ४ ॥

अर्थ—शीतपित्तमें वात प्रधान, तथा उदर्द कफप्रधान जानना ।

उदर्दका दूसरा धर्म

सोत्संगैश्चसरागैश्चकंडूमद्भिश्चमंडलैः ।
शैशिरःकफजोव्याधिरुदर्दःपरिकीर्त्तितः ॥ ५ ॥

अर्थ—सरदीसै कफका कोप होकर अंगके ऊपर लाल लाल चकत्ता उठे,

उन्में खुजली बहुत चलै, और वे मंडलके आकार गोल हों, बीचमें कुछ नीचे और पास ऊंचे होंय, इस रोगको उदर्द कहते हैं।

कोठके लक्षण

असम्यग्वमनोदीर्णपित्तश्लेष्मान्ननिग्रहैः। मंडलानिसकंडू-निरागवंतिबहूनिच ॥ ६ ॥ उत्कोठःसानुबंधश्चकोठइत्य-भिधीयते।

अर्थ-वमनकारक औषध सेवन करनेसैं, अच्छी रीतिसै वमन न होनेसैं, पित्त और कफ कुपित होनेसै अथवा स्वतः वमनके वेग आये भयेको रोकनेसे, देहके ऊपर लाल और बहुत चकत्ता उठें, उन्में खुजली चले, इस रोगको उत्कोठ कहते हैं और यह वारंवार होय, और जो क्षणभरमें उत्पन्न होकर नाश होजाय उस्को कोठ कहते हैं।

इति माधवभाषाटीकायां शीतपित्तउदर्दकोठनिदानं समाप्तम्।

अम्लपित्तनिदानम्।

निदानपूर्वक अम्लपित्तका स्वरूप

विरुद्धदुष्टाम्लविदाहिपित्तप्रकोपिपानान्नभुजोविदग्धम्।
पित्तंस्वहेतूपचितंपुरायत्तदम्लपित्तंप्रवदंतिसंतः ॥ १ ॥

अर्थ-विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) और दुष्टान्न, खट्टा, दाहकारक, पित्त बढाने-वाला, ऐसा अन्नपानके सेवन करनेसें वर्षादि ऋतुमें जलौषधिगत विदाहादि स्वकारणसैं संचितभया पित्त दुष्ट होय उस्को अम्लपित्त कहते हैं।

अम्लपित्तके लक्षण

अविपाकक्लमोत्क्लेदतिक्ताम्लोद्गारगौरवैः।
हृत्कंठदाहरुचिभिश्चाम्लपित्तंवदेद्भिषक् ॥ २ ॥

अर्थ-अन्नका न पचना, विना परिश्रम करे परिश्रमसा मालूम हो, वमन, क-डुवी, तथा खट्टी डकार आवै, देह भारी रहै, हृदय और कंठमें दाह होय, अ-रुचि होय, ये लक्षण होनेसैं अम्लपित्त वैद्य जाने।

अम्लपित्त दोप्रकारका एक ऊर्ध्वगत तथा दूसरा अधोगत उसमें प्रथम अधोगतके लक्षण

तृड्दाहमूर्च्छाभ्रममोहकारिप्रयात्यधोवाविविधप्रकारम् ।
हृल्लासकोठानलसादकर्णस्वेदांगपीतत्वकरंकदाचित् ॥ ३ ॥

अर्थ–अम्लपित्त अधोगत होनेसे प्यास, दाह, मोह, (इन्द्रियमनोमोह) मूर्च्छा, भ्रम, मोह, सूखी रद्द, मंदाग्नि, कोठ कानमें पसीना देहमें पीलापन ये लक्षण होकर गुदाके द्वारा काले लाल दुर्गंधियुक्त अनेक वर्णके पित्त गिरें।

ऊर्ध्वगतअम्लपित्त

वातंहरित्पीतकनीलकृष्णमारक्तरक्ताभवतीवचास्त्रम् । मां-
सोदकाभंत्वतिपिच्छिलाच्छश्लेष्मानुयातंविविधंरसेन॥ ४ ॥
भुक्तेविदग्धेत्वथवाप्यभुक्तेकरोतितिक्ताम्लवमिंकदाचित् । उ-
द्गारमेवंविधमेवकंठेहृत्कुक्षिदाहंशिरसोरुजंच ॥ ५ ॥

अर्थ–उर्ध्वगत पित्तसैं हरे, पीले, नीले, काले, तामेके रंगके, लाल, असंत खट्टा, मांस धोये हुए जलके समान असंत गाढा, स्वच्छ, कफमिश्रित, खारी, कसेला, आदिसंयुक्त ऐसे पित्त गिरें कभी कभी भोजन करा अन्न विदग्धाव-स्थाको प्राप्त होकर अथवा भोजन करनेके पहिले कडुई खट्टी ऐसी वमन होय, तथा ऐसीही डकार आवें, कंठ, कूख, और हृदय, इन्में दाह होय, माथा दूखे।

कफपित्तजन्यअम्लपित्तके लक्षण

करचरणदाहमौष्ण्यंमहतीमरुचिंज्वरंचकफपित्तम् ।
जनयतिकण्डूमण्डलपिडिकाशतनिचितगात्ररोगचयम् ॥ ६ ॥

अर्थ–हाथपैरोंमें दाह, अंगोंमें गरमी, अन्नमें अरुचि, ज्वर, कंडू (खुजली) रुधिरके बिगडनेसैं देहमें मंडल हों, सैंकडों पिटिका, और अविपाकादि अनेक उपद्रव, ए लक्षण कफपित्तसे होते हैं।

साध्यासाध्यविचार

रोगोऽयमम्लपित्ताख्योयत्नात्संसाध्यतेनवः ।
चिरोत्थितोभवेद्याप्यःकृच्छ्रसाध्यःसकस्यचित् ॥ ७ ॥

अर्थ–यह अम्लपित्तरोग नया होयतो यत्न करनेसैं साध्य होय, और बहुत

दिनका होयतो याप्य जानना, और जो अपथ्य सेवन करनेवाला पुरुष है उस्के यह अम्लपित्तरोग कृच्छ्रसाध्य होय है।

अम्लपित्तमें केवल वायूका और वातकफका संसर्ग होय है सो कहते हैं

सानिलंसानिलकफंसकफंतच्चलक्षयेत्।
दोषलिंगेनमतिमान्भिषङ्मोहकरंहितम् ॥ ८ ॥

अर्थ–वातयुक्त, अम्लपित्त, वातकफयुक्त अम्लपित्त, और कफयुक्त अम्लपित्त, ऐसे तीन प्रकारके अम्लपित्त बुद्धिमान् वैद्य दोषोंके लक्षणोंसे जाने कारण इस्का यह है कि ऊर्ध्वगत, अम्लपित्तमें छर्दि (रद्द) रोगका भास होय है, और अधोगत अम्लपित्तमें अतिसारकीसी चेष्टा मालूम होय हैं, इसीसै वैद्यको मोह होय है इसीसे वैद्यको इस रोगकी सूक्ष्म रीतिसै परीक्षा करनी चाहिये।

वातयुक्त अम्लपित्तके लक्षण

कंपप्रलापमूर्च्छाचिमिचिमिगात्रावसादशूलानि।
तमसोदर्शनविभ्रमविमोहहर्षाश्चवातयुते ॥ ९ ॥

अर्थ–वातयुक्त अम्लपित्तमें कंप, प्रलाप, मूर्च्छा, चिमचिमा (चैंटी काटनेसैं प्रगट खुजलीके समान) देहग्लानि, पेट दूखना, नेत्रोंके आगे अंधकार दीखै, भ्रांति होना, इन्द्रीमनको मोह, रोमांच खडे हों, ये लक्षण होते हैं।

कफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण

कफनिष्ठीवनगौरवजडताऽरुचिशीतसादवमिलेपाः।
दहनबलसादकंडूर्निद्राचिन्हंकफानुगते ॥ १० ॥

अर्थ–कफयुक्त अम्लपित्तमें कफके डेला गिरें, शरीरका अत्यंत जडपना, अरुचि, शीत लगे, अंगग्लानि, वमन, मुख कफसै लिहसा रहै, मंदाग्नि, बलनाश, खुजली, और निद्रा, ए लक्षण होते हैं।

वातकफयुक्त अम्लपित्तके लक्षण

उभयमिदमेवचिन्हंमारुतकफसंभवेभवत्यम्ले।

अर्थ–वातकफयुक्त अम्लपित्तमें ऊपर कहे हुए दोनोंके लक्षण होते हैं।

कफपित्तके लक्षण

भ्रमोमूर्च्छाऽरुचिश्छर्दिरालस्यंचशिरोरुजः।

प्रसेकोमुखमाधुर्यंश्लेष्मपित्तस्यलक्षणम् ॥ ११ ॥

अर्थ–भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन, आलस्य, मस्तकपीडा, मुखसे पानी वहना, मुखमें मिठास, ए कफपित्तयुक्त अम्लपित्तके लक्षण हैं।

इति भाषाटीकायां अम्लपित्तनिदानं समाप्तम्।

विसर्पनिदानम्।

इस्की निदानपूर्वक संख्या रूप संप्राप्ति और निरुक्ति

लवणाम्लकटूष्णादिसंसेवादोषकोपतः।
विसर्पःसप्तधाज्ञेयःसर्वतःपरिसर्पणात्[1] ॥ १ ॥

अर्थ–खारी, खट्टा, कडुवा, गरम, आदि पदार्थ सेवन करनेसे वातादि दोषोंका कोप होकर सात प्रकारका विसर्प रोग होय है, वो सर्वत्र फैलजाय, इसीसे इस्को विसर्प कहते हैं सो (चरकमें) लिखावी है।

सर्व प्रकारके विसर्प रक्तादिक चार दूष्य और
वातादि तीन दोष इन्से होय हैं सो कहते हैं

रक्तंलसीकात्वङ्मांसंदूष्यंदोषास्त्रयोमलाः।
विसर्पाणांसमुत्पत्तौविज्ञेयाःसप्तधातवः॥ २ ॥

अर्थ–रुधिर, मांसका जल, त्वचा, मांस ये दूष्य हैं और वातादि तीन दोष, ए सात धातू विसर्पके उत्पन्न होनेके कारण हैं।

वातविसर्पके लक्षण

तत्रवातात्परीसर्पोवातज्वरसमाकृतिः।
शोफस्फुरणनिस्तोदभेदयामार्तिहर्षवान् ॥ ३ ॥

अर्थ–वादीसे विसर्प जो होय उस्के लक्षण वातज्वरके समान होते हैं, तथा उस्में सूजन, फरकना, नोंचनेकीसी पीडा, तोडनेकीसी पीडा, दर्द और रोमांच खडे हों, तथा वो विसर्प लंबा होय है।

पित्तविसर्पके लक्षण

पित्ताद्द्रुतगतिःपित्तज्वरलिंगोऽतिलोहितः।

---

१ त्रिविधं सर्पति यतो विसर्पस्तेन स स्मृतः। परिसर्पोथवा नाम्ना सर्वतः परिसर्पणात्॥ इति।

अर्थ-पित्तकी विसर्पकी गति शीघ्र होय, अर्थात् वो जल्दी फैल जाय तथा पित्तज्वरके लक्षण इस्में मिलते हों तथा अत्यंत लाल होय।

कफविसर्पके लक्षण

कफात्कंडूयुतःस्निग्धःकफज्वरसमानरुक् ॥ ४ ॥

अर्थ-कफकी विसर्पमें खुजली वहुत होय, तथा चिकनी होय, और उस्में कफ ज्वरकीसी पीडा करे।

सन्निपातविसर्पके लक्षण

सन्निपातसमुत्थश्चसर्वरूपसमन्वितः।

अर्थ-सन्निपातजन्य विसर्पमें जो वातादिकोंके लक्षण कहेहैं सो सब होंय।

अग्निविसर्पके लक्षण

वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः ॥ ५ ॥ अस्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः। करोतिसर्वमंगंचदीप्तांगारावकीर्णवत् ॥ ६ ॥ यंयंदेशंविसर्पश्चविसर्पतिभवेच्चसः। शांतांगारासितोनीलोरक्तोवाऽशूपचीयते ॥ ७ ॥ अग्निदग्धइवस्फोटैःशीघ्रगत्वाद्द्रुतंचसः। मर्मानुसारीवीसर्पःस्याद्वातोऽतिबलस्ततः ॥ ८ ॥ व्यथेतांगंहरेत्संज्ञांनिद्रांचश्वासमीरयेत्। हिक्कांचसततोचस्थामीदृशींलभतेनरः ॥ ९ ॥ क्वचिच्छर्मारतिग्रस्तोभूमिशय्यासनादिषु। चेष्टमानस्ततः क्लिष्टोमनोदेहसमुद्भवाम् ॥ १० ॥ दुर्बोधामश्नुतेनिद्रांसोऽग्निवीसर्पउच्यते।

अर्थ-वातपित्तसे प्रगट विसर्प, ज्वर, वमन, मूर्च्छा, अतिसार, प्यास, भौर, हडफूटन, मंदाग्नि, अंधकारदर्शन, अन्नद्वेष, इन लक्षणकर्के संयुक्त होय, इस्के संयोगसे सर्व शरीर अंगारनसे भरासा मालूम होय जिस जिस ठिकाने वो विसर्प फैले उसी उसी ठिकानेपर अग्नि रहित अंगारके समान काला, नीला, लाल, होकर शीघ्र सूजे, आगसे फूंकेके समान ऊपर फफोला होंय, और उस विसर्पकी शीघ्र गति होनेसे जल्दी हृदयमें जायकर, मर्मानुसारी विसर्प होय, अथवा वो असन्त वलवान् होय, अर्थात् अंगोंको व्यथा करे, संज्ञा और निद्रा इन्का नाश

होय, श्वास बढावै, तथा हिचकी उत्पन्न करै, ऐसी मनुष्यकी अवस्था होय अ-स्वस्थ होनेके कारण धरती, सेज, आसन, इत्यादिकौंमें सुख होय नहीं, हलने चलनेसैं क्लेश होय, मन तथा देहको क्लेश होनेसै उत्पन्न भई ऐसी दुर्बोध निद्रा (मरणरूपी निद्रा)को प्राप्त होय, इस रोगको (अग्निविसर्प) ऐसे कहते हैं ।

ग्रंथिविसर्पके लक्षण

कफेनरुद्धःपवनोभित्वातंबहुधाकफम् ॥ ११ ॥ रक्तंचवृद्ध-रक्तस्यत्वक्शिरास्नायुमांसगम् । दूषयित्वाचदीर्घाणुवृत्तस्थू-लखरात्मनाम् ॥ १२ ॥ ग्रंथीनांकुरुतेमालांरक्तानांतीव्ररु-ग्ज्वराम् । श्वासकासातिसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः ॥१३॥ मोहवैवर्ण्यमूर्च्छांगभंगाग्निसदनैर्युतम् । इत्ययंग्रंथिवीसर्पःक-फमारुतकोपजः ॥ १४ ॥

अर्थ–स्वहेतुसै कुपित भया जो कफ सो पवनकी गतिको रोक कफको भेदकर अथवा वढे भए रुधिरको भेदकर त्वचा, नस, नाडी और मांस इन्मैं प्राप्तहो, और इन्को दुष्टकर लंबी, छोटी, गोल, मोटी, खरदरी, लाल, गांठोंकी माला प्रगट करै उन गांठोंमें पीडा अधिक होय, ज्वर होय, श्वास, खासी, अतिसार, मुखमें पपडी परे हिचकी, वमन, भ्रमता, मोह, वर्णका पलटना, मूर्च्छा, अंगोंका टूटना, मंदाग्नि, ये लक्षण होते हैं इस रोगको ग्रंथिविसर्प कहते हैं यह कफ वायूके कोपसे उत्पन्न होयहै इस्को सुश्रुतमें अपची कहते हैं ।

कर्दमविसर्पके लक्षण

कफपित्ताज्ज्वरस्तंभोनिद्रातंद्राशिरोरुजः । अंगावसादविक्षे-पप्रलापारोचकभ्रमाः ॥१५॥ मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नांपिपा-सेंद्रियगौरवम् । आमोपवेशनंलेपःस्रोतसांसविसर्पति॥१६॥ प्रायेणामाशयंगृण्हन्नेकदेशंनचातिरुक् । पिंडकैरिवकीर्णो-तिपीतलोहितपांडुरैः ॥ १७ ॥ स्निग्धोऽसितोमेचकाभोम-लिनःशोफवान्गुरुः । गंभीरपाकःप्राज्योष्मास्पष्टःक्लिन्नो-ऽवदीर्यते ॥ १८ ॥ पंकवच्छीर्णमांसश्चस्पष्टस्नायुशिरागणः । शवगंधिंचवीसर्पंकर्दमाख्यमुशंतितम् ॥ १९ ॥

अर्थ-कफपित्तसे ज्वर, अंगोंका जिकडना, निद्रा, तंद्रा, मस्तकशूल, अंगग्लानि, हाथ पैरोंका पटकना, वकवाद, अरुचि, भ्रम, मूर्च्छा, मन्दाग्नि, हडफूटन, प्यास, इन्द्रीन्का जकडना, आमका गिरना, मुखादि स्रोतों (छिद्रों)में कफका लेप, इत्यादि लक्षण होते हैं तथा वो विसर्प आमाशयमें उत्पन्न हो पीछे सर्वत्र फेले, उसमें पीडा थोडी होय, उसमें सर्वत्र पीली तामेंके रंगकी, सपेद रंगकी पिडका होय तथा वो विसर्प चिकनी, स्याहीके समान काली, मलिन, सूजनयुक्त, भारी, गंभीरपाक कहिये भीतरसे पकी हो उन्में घोरदाह हो, और वो दवानेसे तत्क्षण गीली होजाय, तथा वो फटजाय, तथा कीचके समान होकर उस्का मांस गल जाय, उसमें शिरा नाडी (नस) ए दीखने लगे, उसमें मुर्दाकीसी बांस आवै, इस विसर्पको कर्दमविसर्प कहते हैं ।

क्षतजविसर्पके लक्षण

बाह्यहेतोःक्षतात्क्रुद्धःसरक्तंपित्तमीरयन् । विसर्पंमारुतःकुर्यात्कुलित्थसदृशैश्चितम् ॥ २० ॥ स्फोटैःशोथज्वररुजादाहाढ्यंश्यावशोणितम् ।

अर्थ-बाह्यकारण करके क्षत (घाव) होकर उसमें वायु कुपित होकर वो रुधिर सहित पित्तको व्रणमें प्राप्तकर विसर्परोग उत्पन्न करे, उसमें कुल्थीके समान स्यामवर्णके फोडा होते हैं, सूजनहो, ज्वर होय, और दाह होय, उस्का रुधिर काला निकले, इस विसर्पको पित्तविसर्पके अन्तर्गत जाननेसे संख्यामें विरुद्ध नहीं पडे अन्यथा संख्या वढजाती है यह भोजका मत है ।

उपद्रव

ज्वरातिसारवमथुस्तृण्मांसदरणंक्लमः ॥ २१ ॥
अरोचकाविपाकौचविसर्पाणामुपद्रवाः ॥ २२ ॥

अर्थ-ज्वर, अतिसार, वमन, प्यास, मांसका गलना, अनायास, श्रम, अरुचि अन्न न पचना, ये विसर्प रोगके उपद्रव हैं ।

साध्यासाध्य लक्षण

सिध्यन्तिवातकफपित्तकृताविसर्पाः सर्वात्मकःकफकृतश्चनसिद्धिमेति । पित्तात्मकोऽजनवपुश्चभवेदसाध्यः कृच्छ्राश्चमर्मसुभवंतिहिसर्वएव ॥ २३ ॥

अर्थ—वात पित्त कफ इन्सैं प्रगट जो विसर्प सो साध्य होय है सन्निपातज, और क्षतज, विसर्प साध्य नहीं होय पित्तसे प्रगट भई विसर्प जिस्का काजलके समान अंग होय वो असाध्य, और जो विसर्प मर्म ठिकानेपर होय, वो सब कष्टसाध्य होय हैं।

इति श्रीमाथुरीभाषाटीकायां विसर्पनिदानम्।

विस्फोटनिदानम्।

लक्षण

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्षारैरजीर्णाध्यशनातपैश्च। तथर्तुदोषेणविपर्ययेणकुप्यंतिदोषाःपवनादयस्तु ॥ १ ॥ त्वचमाश्रित्यतेरक्तमांसास्थीनिप्रदूष्यच। घोरान्कुर्वन्तिविस्फोटान्सर्वान्ज्वरपुरःसरान् ॥ २ ॥

अर्थ—कडुआ, खट्टा, तीखा, (मरिचादि) गरम, दाहकारक, रूखा, खारा, अजीर्ण, भोजनके ऊपर भोजन, और गरमी, ऋतुदोष कहिये शीतोष्णका अतियोग, अथवा ऋतुविपर्यय (ऋतुका पलटना) इन कारणोंसे, वातादिदोष कुपित हो त्वचाका आश्रय कर रुधिर मांस और हड्डी इन्को दूषित कर भयंकर विस्फोट (फोडा) उत्पन्न करें उन्के प्रगट होनेके पूर्व घोरज्वर होय है।

विस्फोटस्वरूप

अग्निदग्धनिभाःस्फोटाःसज्वरारक्तपित्तजाः।
क्वचित्सर्वत्रवादेहेविस्फोटाइतितेस्मृताः ॥ ३ ॥

अर्थ—रक्तपित्तसैं प्रगट भए ऐसे अग्निकर्के पजरेके समान, फोडा अंगमें किसीएक ठिकाने अथवा सब देहमें होंय हैं उन्के होनेसैं ज्वर होय, उन्को विस्फोट ऐसे कहतेहैं इस रोगमेंभी वातका अनुबंध होय है सो भोजने[1] कहा है।

वातविस्फोटके लक्षण

शिरोरुक्शूलभूयिष्ठंज्वरतृट्पर्वभेदनम्।

---

१ यदाह भोजः—यदा रक्तं च पित्तं च वातेनानुगतं त्वचि। अग्निदग्धनिभान् स्फोटान् कुरुतः सर्व देहगान्। सज्वरान् सपरीदाहान् विद्याद्विस्फोटकांस्तु तानिति।

सुकृष्णवर्णताचेतिवातविस्फोटलक्षणम् ॥ ४ ॥

अर्थ-मस्तकमें पीडा, शूल, देहमें पीडा, ज्वर, प्यास, संधीन्में पीडा, फोडान्का वर्ण काला होय, ये वातविस्फोटके लक्षण हैं।

पित्तविस्फोटके लक्षण

ज्वरदाहरुजास्रावपाकतृष्णाभिरन्वितम्।
पीतलोहितवर्णंचपित्तविस्फोटलक्षणम् ॥ ५ ॥

अर्थ-ज्वर, दाह पीडा, स्राव, फोडान्का पकना, प्यास, देह पीली हो, अथवा लाल होय, ए पित्तविस्फोटके लक्षण हैं।

कफविस्फोटके लक्षण

छर्घरोचकजाड्यानिकंडूकाठिन्यपांडुताः।
अवदेनश्चिरात्पाकीसविस्फोटःकफात्मकः ॥ ६ ॥

अर्थ-वमन, अरुचि, जडता, तथा फोडा खुजलीयुक्त हो, कठिन, पीले, और उन्में पीडा होय नहीं, और वे बहुत कालमें पके, यह विस्फोट कफका जानना।

कफपित्तात्मक विस्फोट

कंडूर्दाहोज्वरश्छर्दिरेतैस्तुकफपैत्तिकः।

अर्थ-खुजली, दाह, ज्वर, और वमन, इन लक्षणोंसे कफपित्तजन्य विस्फोट जानना।

वातपित्तात्मकके लक्षण

वातपित्तकृतोयस्तुकुरुतेतीव्रवेदनाम् ॥ ७ ॥

अर्थ-वातपित्तके विस्फोटमें तीव्र पीडा होती है।

कफवातात्मकके लक्षण

कंडूस्तैमित्यगुरुभिर्जानीयात्कफवातिकम्।

अर्थ-खुजली, गीलापना, भारीपना, इन लक्षणोंसे कफवातका विस्फोट जानना।

सन्निपातविस्फोटके लक्षण

मध्येनिम्नोन्नतोंऽतेचकठिनोऽल्पप्रपाकवान् ॥ ८ ॥ दाहरागतृषामोहछर्दिमूर्च्छारुजोज्वरः। प्रलापोवेपथुस्तंद्रासोऽसाध्यश्चत्रिदोषजः ॥ ९ ॥

अर्थ-जो फोडा बीचमें नीचा होय, और ओरपाससैं ऊंचा होय, कठिन, कुछ पका होय है, तथा जिसके योगसैं दाह, अंगमें लाली, प्यास, मोह, वमन, मूर्च्छा, पीडा, ज्वर, प्रलाप, कंप, तन्द्रा, ये लक्षण होते हैं वो सन्निपातका विस्फोट असाध्य हैं।

रक्तजविस्फोटके लक्षण

रक्तारक्तसमुत्थानागुंजाफलनिभास्तथा। वेदितव्यास्तुरक्तेनपैत्तिकेनचहेतुना। नतेसिद्धिंसमायांतिसिद्धैर्योगशतैरपि॥१०॥

अर्थ-रुधिरसै प्रगट भया विस्फोट तामेंके रंगका गुंजा (चिरमिटि)के समान लाल, वो रुधिरके दुष्ट होनेसैं अथवा पित्तके दुष्ट होनेसैं होय है, इसमें सैंकडों अनुभवकरी औषधके करनेसैबी साध्य नहीं होय।

साध्यासाध्यविचार

एकदोषोत्थितःसाध्यःकृच्छ्रात्साध्योद्विदोषतः।
सर्वरूपान्वितोघोरस्त्वसाध्योभूर्युपद्रवः॥ ११ ॥

अर्थ-एकदोषसैं प्रगट भया जो विस्फोट वो साध्य है, द्विदोषका कष्टसाध्य है, और सर्व लक्षणयुक्त होय सो भयंकर तथा जिस्में उपद्रव बहुत होय वो विस्फोट असाध्य है।

उपद्रव

हिक्काश्वासोऽरुचिस्तृष्णाअंगसादोहृदिव्यथा।
विसर्पज्वरहृल्लासाविस्फोटानामुपद्रवाः॥ १२ ॥

अर्थ-हिचकी, श्वास, अरुचि, प्यास, अंगग्लानि, हृदेमें पीडा, विसर्परोग, ज्वर, वमन ये विस्फोटके उपद्रव जानना।

इति विस्फोटनिदानं समाप्तम्।

मसूरिकानिदानम्।



कारण और संप्राप्ति

कट्वम्ललवणक्षारविरुद्धाध्यशनाशनैः। दुष्टनिष्पावशाकादिप्रदुष्टपवनोदकैः॥ १ ॥ क्रुद्धग्रहेक्षणाद्वापिदेहेदोषाःसमु-

द्भताः । जनयंतिशरीरेऽस्मिन्दुष्टरक्तेनसंगताः ॥ २ ॥ मसूराकृतिसंस्थानाःपिडिकाःस्युर्मसूरिकाः ।

अर्थ—कडुआ, खट्टा, नोनका, खारी, विरुद्ध भोजन, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन) दुष्ट अन्न, निष्पाव (शिंवीबीज उरद मुंग) आदि शाक, विषेल फूल आदिसै मिला पवन, तथा जल, शनैश्चरादि खोटे ग्रहोंका देखना, इन सबकारणोंकरके शरीरमें वातादिदोष कुपितहोकर दुष्ट रुधिरमें मिलकर मसूरके समान देहमें अनेक मरोरी उत्पन्न करे, उन्को मसूरिका (माता) ऐसें कहते हैं । दुष्टरक्तेन संगता इस पदके धरनेसे रुधिरका कटु अम्लादि हेतूकर्के विशेषकोप दिखाया, इसीसै ग्रन्थांतरोंमें लिखावी है ।

मसूरिकाके पूर्वरूप

तासांपूर्वंज्वरःकंडूर्गात्रभंगोऽरुचिर्भ्रमः ॥ ३ ॥
त्वचिशोफःसवैवर्ण्योनेत्ररागस्तथैवच ।

अर्थ—तिसमाता(शीतला)के पूर्व ज्वर होय है, खुजली चले, देहमें फूटनी होय, अन्नमें अरुचि, भ्रम होय, अंगके ऊपरकी त्वचामें सूजन होय, तथा वर्ण पलटजाय, नेत्र लाल होंय, ए शीतलाके पूर्वरूप होते हैं ।

वातकी मसूरिकाके लक्षण

स्फोटाःकृष्णारुणारूक्षास्तीव्रवेदनयान्विताः ॥ ४ ॥ कठिनाश्चिरपाकाश्चभवंत्यनिलसंभवाः । संध्यस्थिपर्वणांभेदःकासःकंपोऽरतिःक्लमः ॥ ५ ॥ शोषस्ताल्वोष्ठजिव्हानांतृष्णाचारुचिसंयुता ।

अर्थ—वातमसूरिकाके फोडा काले, लाल, और रूक्ष, होतेहैं उन्मे तीव्र पीडा होय, कठिन होंय, शीघ्र पकें नहीं, इस्के योगसैं संधिहाड और पर्वोंमें फोडनेकीसी पीडा होय, खांसी, कंप, चित्त स्थिर न हो, विना परिश्रमके श्रम होय, तालुआ, होठ, और जीभ, ए सूखने लगे, प्यास, अरुचि, ए लक्षण होते हैं ।

पित्तकी मसूरिकाके लक्षण

रक्ताःपीताःसिताःस्फोटाःसदाहास्तीव्रवेदनाः ॥ ६ ॥ भवं-

१ पित्तं शोणितसंसृष्टं यदा दूषयति त्वचम् । तदाकरोति पिडिकाः सर्वगात्रेषु देहिनाम् ॥ मसूरमुद्गमापाणा तुल्याः कालोपमा इति । मसूरिकास्तु ता ज्ञेयाः पित्तरक्ताधिका बुधैरिति ॥

त्यचिरपाकाश्चपित्तकोपसमुद्भवाः । विड्भेदश्चांगमर्दश्चदाह-
स्तृष्णाऽरुचिस्तथा ॥ ७ ॥ मुखपाकोऽक्षिपाकश्चज्वरस्ती-
क्ष्णःसुदारुणः ।

अर्थ–पित्तकी मसूरिकाका मुख लाल, पीला, सपेद होय है उसमें दाह तथा पीडा बहुत होंय, और ये शीतला शीघ्र पके, इस्के योगसे मल पतला होय, अंग टूटे, दाह, प्यास, अरुचि, मुखपाक, और नेत्रपाक होंय ज्वर तीव्र हो ए लक्षण होंय।

रक्तजमसूरिकाके लक्षण

रक्तजायांभवंत्येतेविकाराःपित्तलक्षणाः ॥ ८ ॥

अर्थ–रक्तजमसूरिकामें पित्तजमसूरिकाके लक्षण होते हैं ।

कफजमसूरिकाके लक्षण

कफप्रसेकःस्तैमित्यंशिरोरुग्गात्रगौरवम् । हृल्लासःसारुचि-
र्निद्रातंद्रालस्यसमन्विता ॥ ९ ॥ श्वेताःस्निग्धाभृशंस्थूलाः
कंडूरामंदवेदनाः । मसूरिकाःकफोत्थाश्चचिरपाकाःप्रकी-
र्तिताः ॥ १० ॥

अर्थ–कफकी मसूरिकामें मुखके द्वारा कफका स्राव होय, अंगमें आर्द्रता, तथा भारीपना, मस्तकमें शूल, वमन आनेकीसी इच्छा होय, अरुचि, निद्रा, तन्द्रा, आलस्य, ये होय, और फोडा, सपेद चिकने अत्यंत मोटे होंय इन्मैं खुजली बहुत चले, पीडा मंद होय, और वे बहुत दिनमें पकें ।

त्रिदोषजमसूरिकाके लक्षण

नीलाश्चिपिटविस्तीर्णामध्येनिम्नामहारुजः ।
चिरपाकाःपूतिस्रावाःप्रभूताःसर्वदोषजाः ॥ ११ ॥

अर्थ–त्रिदोषज मसूरिकाके फोडा नीले, चिपटे, लंबे, वीचमें नीचे ऐसे होंय, उन्में पीडा अत्यंत होय, तथा वे बहुत दिनमें पकें, और उन्मेंसें दुर्गंधयुक्त स्राव होय, वे फोडा सर्व दोषके बहुत होंय हैं।

चर्मपिटिका

कंठरोधोऽरुचिस्तंद्राप्रलापारतिसंयुताः ।
दुश्चिकित्स्याःसमुद्दिष्टाःपिडिकाश्चर्मसंज्ञिताः ॥ १२ ॥

अर्थ-जिसफोडाके होनेसै कंठ रुकजाय, अरुचि, तन्द्रा, प्रलाप, चैन न पडना ये लक्षण होते हैं जिन्की औषधि नही होसके ऐसी चर्मसंज्ञक पिडका जाननी।

रोमांतिक

रोमकूपोन्नतिसमारागिण्यःकफपित्तजाः।

कासारोचकसंयुक्तारोमांत्याज्वरपूर्विकाः॥ १३॥

अर्थ-कफ पित्तसै केशोंके (वालोंके) छिद्रके समान वारीक, और लाल, ऐसी मसूरिका होय इन्के होनेसें खांसी, अरुचि होय तथा इन्के होनेसें पहिले ज्वर होय, इन्को रोमांच (कसूमीमाता) ऐसे कहते हैं।

रसादि सप्तधातु

रसगतमसूरिकान्के लक्षण

तोयबुद्बुदसंकाशास्त्वग्गताश्चमसूरिकाः।

स्वल्पदोषाःप्रजायंतेभिन्नास्तोयंस्रवंतिच॥ १४॥

अर्थ-रसगत मसूरिका पानीके वबूलेके सदृश हो, इन्के फूटनेसे पानी वहै, यह त्वग्गत मसूरिका है कारण इस्का यह है कि दोष स्वल्प है।

रक्तगतमसूरिकाके लक्षण

रक्तस्थालोहिताकाराःशीघ्रपाकास्तनुत्वचः।

साध्यानात्यर्थदुष्टास्तुभिन्नारक्तंस्रवंतिच॥ १५॥

अर्थ-रुधिरगत मसूरिका तामेके रंगकी, जलदी पकनेवाली होती हैं उन्के ऊपरली त्वचा पतली होय है, यह अत्यंत दुष्ट होनेसे साध्य नहीं होय और इस्के फूटनेसे इसमेंसें रुधिर निकले।

मांसगतके लक्षण

मांसस्थाःकठिनास्निग्धाश्चिरपाकास्तनुत्वचः।

गात्रशूलोऽरतिःकंडूमूर्च्छादाहतृषान्विताः॥ १६॥

अर्थ-मांसस्थ मसूरिका कठिन, चिकनी, होय है ये वहुत दिनमें पके तथा इस्की त्वचा पतली होय, अंगोंमें शूल होय, चैन पडे नहीं, खुजली चले, मूर्च्छा दाह और प्यास ए लक्षण होते हैं।

मेदोगतके लक्षण

मेदोजामंडलाकारामृदवःकिंचिदुन्नताः। घोरज्वरपरीताश्च

स्थूलाःकृष्णाःसवेदनाः । संमोहारतिसंतापाःकश्चिदाभ्योविनिस्तरेत् ॥ १७ ॥

अर्थ–मेदोगतमसूरिका मंडलके आकार अर्थात् गोल होय, नरम कुछ ऊंची मोटी तथा काली होय है, इस्के होनेसैं भयंकर ज्वर, पीडा, इन्द्री मनको मोह, चित्तका अस्थिर होना, संताप, ए लक्षण होते हैं इस मसूरिकासै कोई एक आदि मनुष्य बचता होगा इस्में यह दिखाया कि यह अत्यंत कृच्छ्रसाध्य है ।-

अस्थिमज्जागतके लक्षण

अस्थिगात्रसमारूढाश्चिपिटाःकिंचिदुन्नताः । मज्जोत्थाभृशसंमोहवेदनारतिसंयुताः ॥ १८ ॥ छिंदंतिमर्मधामानिप्राणानाशुहरंतिताः । भ्रमरेणेवविद्धानिभवंत्यस्थीनिसर्वतः॥१९॥

अर्थ–अस्थिमज्जागतमसूरिका बहुत छोटी, देहके समान रूक्ष, चिपटी, कुछ ऊंची होय है, असन्त चित्तविभ्रम, पीडा, अस्वस्थता ए होते हैं तिन मर्मस्थानोंके भेदकर्के शीघ्र प्राणहरण करे इस्के होनेसे सर्व हड्डीन्में भौंराके काटनेके समान पीडा होय है ।

शुक्रगतके लक्षण

पक्काभाःपिडिकाःस्निग्धाःश्लक्ष्णाश्चात्यर्थवेदनाः । स्तैमित्यारतिसंमोहदाहोन्मादसमन्विताः ॥ २० ॥ शुक्रजायांमसूर्यांतुलक्षणानिभवंतिच । निर्दिष्टंकेवलंचिन्हंदृश्यतेनतुजीवितम् ॥ २१ ॥

अर्थ–शुक्रधातुगत मसूरिका पकेके समान चिकनी, अलग अलग होय है इन्में असंत पीडा होय, इन्के होनेसे गीलापना अस्वस्थता, मोह, दाह, उन्माद ए लक्षण होते हैं रोगी बचै ऐसे इस्में कोई लक्षण नहीं दीखे इसीसे इस्को असाध्य जानना ।

सप्तधातुगतमसूरिकाके दोषके संबंधसे लक्षण कहते हैं

दोषमिश्रास्तुसप्तैताद्रष्टव्यादोषलक्षणैः ।

अर्थ–ये सप्तधातुगतमसूरिका वातादिकोंके लक्षणोंकर्के तिन दोषोंकर्के मिश्रित प्रगट भई जाननी ।

धातुगत और दोषज मसूरिकामें कौनकौन साध्य है सो कहते हैं

त्वग्गतारक्तजाश्चैवपित्तजाःश्लेष्मजास्तथा ॥ २२ ॥ पित्त-श्लेष्मकृताश्चैवसुखसाध्यामसूरिकाः । एताविनापिक्रियया प्रशाम्यंतिशरीरिणाम् ॥ २३ ॥

अर्थ—रसगत, रक्तगत, पित्तज, कफज, पित्तकफज ये मसूरिका सुखसाध्य है ए औषधके विनाभी शांति होय हैं ।

कष्टसाध्य

वातजावातपित्तोत्थावातश्लेष्मकृताश्चयाः ।
कृच्छ्रसाध्यामतास्तास्तुयत्नादेताउपाचरेत् ॥ २४ ॥

अर्थ—वातज, वातपित्तज, वातकफज, मसूरिका कष्टसाध्य हैं इन्की यत्नपूर्वक चिकित्सा करै ।

असाध्यमसूरिकाके लक्षण

असाध्याःसन्निपातोत्थास्तासांवक्ष्यामिलक्षणम् । प्रवालसदृशाःकाश्चित्काश्चिजंबूफलोपमाः ॥ २५ ॥ लोहजालसमाः काश्चिदतसीफलसन्निभाः । आसांबहुविधावर्णाजायन्तेदोषभेदतः ॥ २६ ॥

अर्थ—सन्निपातज मसूरिका असाध्य हैं उन्के लक्षण कहताहूं, कोई मुंगाके समान लाल होय, कोई जामनके समान, और कोई लोहजालके समान, तथा अलसीके वीजके समान होंय हैं दोषोंके भेदकर्के इन्के अनेकप्रकारके रंग होते हैं ।

सर्वमसूरिकाके अवस्थाविशेषकर्के लक्षण

कासोहिक्काथमोहश्चज्वरस्तीव्रःसुदारुणः । प्रलापारतिमूर्च्छाश्चतृष्णादाहोऽतिघूर्णताः ॥ २७ ॥ मुखेनप्रस्रवेद्रक्तंतथाघ्राणेनचक्षुषा । कंठेघुर्घुरकंकृत्वाश्वसित्यत्यर्थदारुणम् ॥ २८ ॥ मसूरिकाभिभूतोयोभृशंघ्राणेननिःश्वसेत् । सभृशंत्यजतिप्राणान्तृष्णार्तोवायुदूषितः ॥ २९ ॥

अर्थ—खाँसी, हिचकी, मोह, तीव्रज्वर, प्रलाप, असंतोष, मूर्च्छा, प्यास, दाह, नेत्र टेढे, तिरछे, वाँके फटेसे ए लक्षण होते हैं मुख, नाक और नेत्र इन्के

मार्ग होकर रुधिर गिरे, कंठमें घरघर शब्द होय, और भयंकर श्वास ले, जो मसूरिकापीडित रोगी केवल नाकके द्वारा श्वास लेय, वो पुरुष वायु और तृषा इन्सैं पीडित होत संते तत्काल प्राण त्याग करे।

मसूरिकाके उपद्रव

मसूरिकांतेशोथःस्यात्कूर्परेमणिबंधके।
तथांसफलकेवापिदुश्चिकित्स्यःसुदारुणः ॥ ३० ॥

अर्थ-मसूरिका(शीतला)के अंतमें कूर्पर पहुंचा, तथा कंधा, इन्में सूजन होय (इस्के व्यवहारमें गुरू ऐसे कहते हैं) यह चिकित्सा करनेमें कठिन है।

इति श्रीमाथुरीभाषाटीकायां मसूरिकानिदानं समाप्तम्

क्षुद्ररोगनिदानम्।

अजगल्लिका

स्निग्धासवर्णाग्रथितानीरुजामुद्गसन्निभा।
कफवातोत्थिताज्ञेयाबालानामजगल्लिका ॥ १ ॥

अर्थ-बालकके कफवातसे चिकनी, त्वचाके वर्णके समान वर्ण होय, गांठसी बंधी, रुजा(पीडा)रहित, तथा मूंगके सदृश जो पिडिका होय उस्को अजगल्लिका कहते हैं।

यवप्रख्याके लक्षण

यवाकारासुकठिनाग्रथितामांससंश्रिता।
पिडिकाश्लेष्मवाताभ्यांयवप्रख्येतिचोच्यते ॥ २ ॥

अर्थ-कफवातसे प्रगट जौके समान कठिन, गाँठके सदृश मांसमिश्रित, जो पिडिका होय उस्को यवप्रख्या कहते हैं भोजके मतसे इस्को (अंत्रालजी कहतेहैं)।

अंधालजी

घनामवक्त्रांपिटिकामुन्नतांपरिमंडलम्।
अंधालजीमल्पपूयांतांविद्यात्कफवातजाम् ॥ ३ ॥

---

१ श्लेष्मानिलौ श्रितौ त्वायुं पिडिकां पित्तमंडलम्। दुष्टौ जनयतो वक्त्रामल्पपूयामकण्डुराम्। आमोदुस्तरसंकाशां विद्यादन्त्रालजीं तु ताम्।

अर्थ—कफवातसैं प्रगट कठिन जिस्में मुख न हो, तथा ऊंची ऐसी पिडिका होय, तथा जिस्के चारों और मंडलाकार हो, और जिस्में राध थोडी होय, उस्को अंधालजी ऐसे कहते हैं।

विवृतापिडिकाके लक्षण

विवृत्तास्यांमहादाहांपकोदुंबरसन्निभाम्।
परिमंडलांपित्तकृतांविवृतांनामतांविदुः॥ ४॥

अर्थ—पित्तके योगसैं फटे मुखकी, असन्त दाहयुक्त, पके गूलरके समान, चोरों और बल पडी हुई, जो पिडिका होय उस्को विवृता ऐसे कहते हैं।

कच्छपिकाके लक्षण

ग्रथिताःपंचवाषड्वादारुणाःकच्छपोन्नताः।
कफानिलाभ्यांपिडिकाज्ञेयाकच्छपिकाबुधैः॥ ५॥

अर्थ—कफ वायुसै प्रगट गाँठ बंधी, पाँच, अथवा छः, कठिन कछुआके पीठके समान ऊंची जो पिडिका होंय उन्को कच्छपिका ऐसे कहते हैं।

वल्मीकपिडिकाके लक्षण

ग्रीवांसकक्षाकरपाददेशेसंधौगलेवात्रिभिरेवदोषैः। ग्रंथिःस-
वल्मीकवदक्रियाणांजातःक्रमेणैवगतःप्रवृद्धिम्॥ ६॥ मु-
खैरनेकैःस्रुतितोदवद्भिर्विसर्पवत्सर्पतिचोन्नताग्रैः। वल्मीक-
माहुर्भिषजोविकारंनिष्प्रत्यनीकंचिरजंविशेषात्॥ ७॥

अर्थ—कंठ, कंधा, कूख, हाथ, पैर, संधि, गला इनठिकाने तीनों दोषोंसैं सर्पकी वांवीके समान गाँठ होय, उस्का उपाय न करै तब वो धीरेधीरे बढै, उस्मैं अनेकमुख होजाय, उन्मेंसे स्राव होय, नोचनेकीसी पीडा होय, तथा वह मुखके ऊपर कुछ ऊंची होकर विसर्पके समान फैलजाय, इस रोगको वैद्य वल्मीक ऐसे कहते हैं इस्के ऊपर औषधी उपचार नहीं चलै और पुराने होनेसे विशेष असाध्य जाननी।

इन्द्रवृद्धाके लक्षण

पद्मकर्णिकवन्मध्येपिडिकाभिःसमाचिताम्।
इंद्रवृद्धांतुतांविद्याद्वातपित्तोत्थितांभिषक्॥ ८॥

अर्थ–कमलकर्णिकाके समान बीचमें एक पिडका होय, उसके चारों ओर छोटी छोटी फुंसी होंय, उसको इन्द्रवृद्धा ऐसे कहते हैं यह वातपित्तसें उत्पन्न होयहै।

गर्दभिकाके लक्षण

मंडलंवृत्तमुत्सन्नंसरक्तंपिटिकाचितम्।
रुजाकरींगर्दभिकांतांविद्याद्वातपित्तजाम् ॥ ९ ॥

अर्थ–वातपित्तसै प्रगट एक गोल ऊंची तथा लाल और फोडान्सै व्याप्त ऐसा मंडल होय, वो बहुत दूखे, उसको गर्दभिका ऐसे कहते हैं।

पाषाणगर्दभलक्षण

वातश्लेष्मसमुद्भूतःश्वयथुर्हनुसंधिजः।
स्थिरोमंदरुजःस्निग्धोज्ञेयःपाषाणगर्दभः ॥ १० ॥

अर्थ–वातकफसे ठोडीकी संधिमें कठिन, मंद पीडा करनेवाली, चिकनी, ऐसी सूजन होय, उसको पाषाणगर्दभ ऐसे कहते हैं।

पनसिका

कर्णस्याभ्यंतरेजातांपिडिकामुग्रवेदनाम्।
स्थिरांपनसिकांतांतुविद्याद्वातकफोत्थिताम् ॥ ११ ॥

अर्थ–कानके भीतर वात पित्त कफसै जो फुंसी उग्रवेदनासहित प्रगट होय, और वह स्थिर होय, उसको पनसिका कहते हैं।

जालगर्दभके लक्षण

विसर्पवत्सर्पतियःशोथस्तनुरपाकवान्।
दाहज्वरकरःपित्तात्सज्ञेयोजालगर्दभः ॥ १२ ॥

अर्थ–पित्तसै विसर्पके समान इधर उधरको फैलनेवाली पतली, तथा कुछ पकनेवाली, ऐसी सूजन होय उसमें दाह होय, और ज्वर होय, इस्को जालगर्दभ कहते हैं कोई आचारी कहते हैं कि इसमें पकता नही होय यथा।

---

१ कफवातौ प्रकुपितौ मांसमाश्रित्य कर्णयोः। समन्ततः परिस्तब्धां कुरुतः पिडिकां स्थिराम् ॥ विषमां दाहसंयुक्तां विद्यात्पनसिकान्तु ताम्।

२ पित्तोत्कटास्त्रयो दोषा जनयंति त्वगाश्रिताः। श्यावं रक्तं तनुं शोथमपाकं बहुवेदनम् ॥ विसर्पिणं सदाहं च तृष्णाज्वरसमन्वितम्। विसर्पमाहुस्तं व्याधिमपरे जालगर्दभम् ॥

इरिवेल्लिकाके लक्षण

पिडिकामुत्तमांगस्थांवृत्तामुग्ररुजाज्वराम् ।
सर्वात्मिकांसर्वलिंगांजानीयादिरिवेल्लिकाम् ॥ १३ ॥

अर्थ–त्रिदोषसें प्रगट मस्तकमें गोल, असंत पीडा और ज्वर करनेवाली, त्रिदोषके लक्षणसंयुक्त ऐसी पिडिका होय उस्को इरिवेल्लिका कहते हैं ।

कक्षा(कखलाई)के लक्षण

बाहुकक्षांसपार्श्वेषुकृष्णस्फोटांसवेदनाम् ।
पित्तकोपसमुद्भूतांकक्षामित्यभिनिर्दिशेत् ॥ १४ ॥

अर्थ–बाहु (भुजा)की जड कंधा और पसवाडे इन ठिकाने पित्त कुपित होकर काले फोडान्सें व्याप्त तथा वेदनायुक्त जो पिडिका होय उस्को कक्षा वा कखलाई कहते हैं ।

गंधनाम्नीके लक्षण

एकामेतादृशींदृष्ट्वापिडिकांस्फोटसन्निभाम् ।
त्वग्गतांपित्तकोपेनगंधनाम्नींप्रचक्षते ॥ १५ ॥

अर्थ–पित्तके कोपसै जो एक पिडका फोडाके समान बडी त्वचाके भीतर होय, उस्को गंधनाम्नी ऐसे कहते है ।

अग्निरोहिणी (काली फुंसी)

कक्षाभागेषुयेस्फोटाजायंतेमांसदारुणाः । अंतर्दाहज्वरक-
रादीप्तपावकसन्निभाः ॥ १६ ॥ सप्ताहाद्वादशाहाद्वापक्षाद्वा
हंतिमानवम् । तामग्निरोहिणींविद्यादसाध्यांसान्निपातिकीम् १७

अर्थ–कांखके आसपास मांसके विदारणकरनेवाले जो फोडा होते हैं तिसकर्के अंतर्दाह होय, तथा ज्वर होय, वो फोडा प्रदीप्त अग्निके समान लाल होंय, इन फोडान्में वायु अधिक होनेसें सात दिन, पित्ताधिकसैं बारे दिन, और कफाधिक्यसै ९ दिनमें, रोगी मरे यह अग्निरोहिणी नामक त्रिदोषज पिडिका असाध्य है यह कठिन है ।

चिप्यके लक्षण

नखमांसमधिष्ठायवातःपित्तंचदेहिनाम् ।
कुर्वातेदाहपाकौचतंव्याधिंचिप्यमादिशेत् ॥ १८ ॥

तदेवाल्पतरैर्दोषैःकुनखंपरुषंवदेत् ।

अर्थ–वायू और पित्त नखोंके मांसमें स्थित होकर दाह, और पाकको करे, इस रोगको चिप्प ऐसे कहते हैं यह अल्प दोषोंसें होय तो इस्को कुनख कहते हैं ।

अनुशयके लक्षण

गंभीरामल्पसंरंभांसवर्णामुपरिस्थिताम् ।
पादस्यानुशयींतातुविद्यादंतःप्रपाकिनीम् ॥ १९ ॥

अर्थ–पैरोंमें त्वचाके समान वर्ण यत्किंचित् सूजनयुक्त, भीतरसें पकी जो पिडिका होय, उस्को अनुशायी ऐसे कहते हैं ।

विदारिकाके लक्षण

विदारीकंदवद्वृत्ताकक्षावंक्षणसंधिषु ।
विदारिकाभवेद्रक्तासर्वजासर्वलक्षणा ॥ २० ॥

अर्थ–विदारी कंदके समान गोल, कांखमें अथवा वंक्षणस्थानमें जो गांठ तामेके रंगकीसी होय, उस्को विदारिका ऐसे कहते हैं. यह सन्निपातसें होयहै अर्थात् इसमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं ।

शर्करा

प्राप्यमांसंशिरास्नायूःश्लेष्मामेदस्तथानिलः । ग्रंथिंकरोत्य-
सौभिन्नोमधुसर्पिर्वसानिभम् ॥ २१ ॥ स्रवत्यास्रावमनिल-
स्तत्रवृद्धिंगतःपुनः । मांसंविशोष्यग्रथितांशर्करांजनयेत्ततः॥२२॥

अर्थ–कफ मेद और वायु ये मांस शिरा और स्नायु इन्में प्राप्त हो. गांठ बांधते हैं, जब वो फूटे तब उसमेंसें सहत, घृत, चर्बी, इन्के समान स्राव हो तिसकर्के वायु पुनः बढकर मांसको सुखाय उस्की बारीक खिचीसी गांठ करे, उस्को शर्करा कहते हैं ।

शर्करार्बुदके लक्षण

दुर्गंधिक्लिन्नमत्यर्थंनानावर्णंततःशिराः ।
स्रुजंतिरक्तंसहसातद्विद्याच्छर्करार्बुदम् ॥ २३ ॥

अर्थ–शर्करा होनेके अनन्तर नाडीन्सें दुर्गंध क्लेदयुक्त अनेक प्रकारके वर्णका

(घृत, मेद, और वसा, इन्के वर्णका) रुधिर स्रवे, उस्को शर्करार्बुद कहते हैं परंतु भोजने शर्करार्बुदको शर्करारोगके अंतर्गत कहा है।

पाददारीके लक्षण

परिक्रमणशीलस्यवायुरत्यर्थरूक्षयोः।

पादयोःकुरुतेदारींसरुजांतलसंश्रिताम्॥ २४॥

अर्थ–जिस पुरुषको बहुत चलना पडे है उस्के पैर वायूके योगसैं असंत रूक्ष होकर पैरोंके तलुओं विदीर्ण कर दे (फाडदे) उस्को पाददारी कहते हैं अर्थात् बिवाई कहते हैं विपादिका कुष्ठ फटे नहीं है, फूट निकले है, यह इन्में भेद जानना।

कदर (ठेक)के लक्षण

शर्करोन्मथितेपादेक्षतेवाकंटकादिभिः।

ग्रंथिःकोलवदुत्सन्नोजायतेकदरंतुतत्॥ २५॥

अर्थ–पैरोमें कंकर छिदनेसै अथवा कांटे लगनेसै वेरके समान ऊंची गांठ प्रगट होय, उस्को कदर अर्थात् ठेक कहतेहैं अथवा 'ग्रंथिः कोलवदुत्सन्नो' इस जगे 'ग्रंथिः कीलवदुत्सन्नो' ऐसावी पाठ है अर्थात् कीलके समान जो गांठ होय, उस्को कदर कहते हैं यह कदररोग हाथोंमेंभी होय है सो भोजने लिखावी है।

अलस (खारुआ)के लक्षण

क्लिन्नांगुल्यंतरौपादौकंडूदाहरुजान्वितौ।

दुष्टकर्दमसंस्पर्शादलसंतंविभावयेत्॥ २६॥

अर्थ–दुष्ट-कीचमें डोलनेसे, (वर्षाआदिका पानी और सडी कीचमें डोलनेसै) पैरोंकी उंगली गीली रहनेसै, उंगलियोंके वीचमें (सपेद सपेद चकत्ता होजाय) उन्में खुजली, दाह, और गीलापन होय, तथा पीडा होय, उस्को अलस अर्थात् खारुआ कहते हैं यह कफरक्तके दोषसै होता है।

इंद्रलुप्त (चाई)के लक्षण

रोमकूपानुगंपित्तंवातेनसहमूर्च्छितम्। प्रच्यावयतिरोमाणि

---

१ तमेव भिन्नदुर्गंधं घृतमेदोनिभं शिराः। स्रवंति स्रावमनिशं तदा स्याच्छर्करार्बुदम्॥ १॥

२ हस्तयोः पादयोश्चापि गम्भीरानुगतं स्थिरं। मासकील जनयतः कुपितौ कफमारुतौ॥ १॥ सशल्यमिव त देशं मन्यंते तेन पीडितं। शर्करावदर केचिन्मन्यंते वातकंटकम्॥ इति।

ततःश्लेष्मासशोणितः ॥ २७ ॥ रुणद्धिरोमकूपांस्तुततोऽन्ये-
षामसंभवः । तदिंद्रलुप्तंखालित्यंप्राहुश्चाचेतिचापरे ॥ २८ ॥

अर्थ–पित्त वादीके साथ कुपित होकर रोमकूपोंमें अर्थात् वालोंके छिद्रोंमें प्राप्त हो, तव मस्तक अथवा अन्य स्थानके वाल झडने लगें, पीछे कफ और रुधिर रोमकूप कहिये वालोंके प्रगट होनेके स्थानको रोकदे, उससे फेर वाल नहीं ऊगें, इस रोगको इन्द्रलुप्त खालित्य चाचा (चाई) कहते हैं यह रोग स्त्रीन्के नही होय, कारण इसका यह है कि उन्का रुधिर महीनेके महीने शुद्ध होता रहैं है और निकलता रहै है, इसीसे वो रोमकूपोंको नहीं रोके है, सो विदेहाचार्यने लिखावी है और इसी रोगके खालित्य और रुह्या कहते है सो भोजने लिखा है परंतु कार्तिकाचार्य कहता है कि इन्द्रलुप्त रोग मूछ, डाढीमें होय है और खालित्यरोग सिरमें होय है और रुह्यारोग पीडासहित होय है।

दारुणकके लक्षण

दारुणाकंडुसरूक्षाकेशभूमिःप्रपच्यते ।
कफमारुतकोपेनविद्यादारुणकंतुतम् ॥ २९ ॥

अर्थ–कफवायूके कोपसे केशोंकी जमीन अति कठिन होकर खुजावे, खरदरी होंय, तथा वारीक फुंसी होकर पकें, उस्को दारुणक ऐसे कहते हैं कफवातके कोपसे यह रोग होय है इसका कारण यह है कि विना पित्तके पाक नहीं होय, सो विदेहने कहावी है।

अरूंषिकाके लक्षण

अरूंषिबहुवक्त्राणिबहुक्लेदानिमूर्धनि ।
कफासृक्कृमिकोपेनतृणांविद्यादरूंपिकाम् ॥ ३० ॥

अर्थ–रुधिर कफ और कृमि इन्के कोपसैं माथेमें वहुत फुंसी होजाय, उन्मेंसै चेप विशेष निकरे और क्लेदयुक्त होंय इन फुंसीको अथवा व्रणोंको अरूंपिका कहते हैं।

---

१ अत्यंतसुकुमाराणां रजोदुष्टं स्रवंति च । अव्यायामवता यस्मात्तस्मान्न खलतिःस्त्रियाः ॥१॥ इति ।

२ यदत्र पटलाभासं सरजस्कं शिरस्त्वचि । परुषं जायते जंतोस्तस्य रूपं विशेषतः ॥ १ ॥ तोदैः समन्वितं वातसकण्डु गौरवं कफात् । सपिपासं सदाहार्तिरागं पित्तास्रजं तथा ॥ २ ॥

पलित(सपेदबाल)के लक्षण

क्रोधशोकश्रमकृतःशरीरोष्माशिरोगतः ।
पित्तंचकेशान्पचतिपलितंतेनजायते ॥ ३१ ॥

अर्थ-क्रोध शोक और श्रमके करनेसे, उत्पन्न भई जो शरीर ऊष्मा (गरमी) और पित्त सो मस्तकमें जायकर वालोंको पकाय दे, अर्थात् सपेद करदे उसकर्के यह पलितरोग होय है पलित रोगपर मधुकोशटीकाकारने तथा भावप्रकाशने शास्त्रार्थ लिखा हैं ।

मुखदूषिकाके लक्षण

शाल्मलीकंटकप्रख्याःकफमारुतकोपजाः ।
जायंतेपिडिकायूनांविज्ञेयामुखदूषिकाः ॥ ३२ ॥

अर्थ-कफवायुके कोपसै सेमरके कांटेके समान तरुण (जवान) पुरुषके मुखके ऊपर जो फुंसी होंय, उन्को मुखदूषिका अर्थात् मुहांसे कहते हैं इन्के होनेसे मुख बुरा होजाता है ।

पद्मिनीकंटकके लक्षण

कंटकैराचितंवृत्तंमंडलंपाण्डुकण्डुरम् ।
पद्मिनीकंटकप्रख्यैस्तदाख्यंकफवातजम् ॥ ३३ ॥

अर्थ-कमलके कांटेके समान कांटे चारों और युक्त हो, गोल पीले रंगका, खुजली जिस्मे चलती होय, ऐसा एक मंडल होय, उस्को पद्मिनीकंटक ऐसे कहते हैं यह कफवायूसे होय है ।

जंतुमणि (लहसन)के लक्षण

सममुत्सन्नमरुजंमंडलंकफरक्तजम् ।
सहजंलक्ष्मचैकेषांलक्ष्योजंतुमणिःस्मृतः ॥ ३४ ॥

अर्थ-कफरक्तसै जन्मसैंही प्रगट भई समान, तथा कुछ ऊंचा, जिस्में पीडा होय नहीं, ऐसा गोल मंडलके समान देहमें चिन्ह होय, उस्को लक्ष्म कोई लक्ष्य तथा कोई जंतुमणि ऐसे कहते हैं यह स्त्रीपुरुषोंके अंगभेदकर्के शुभाशुभ फलदायक है ।

माष (मस्सा)के लक्षण

अवेदनंस्थिरंचैवयस्मिन्गात्रेप्रदृश्यते ।

मापवत्कृष्णमुत्सन्नमनिलान्माषमादिशेत् ॥ ३५ ॥

अर्थ–वादीसैं शरीरके ऊपर उडदके समान काला, पीडारहित, स्थिर, कठिन, कुछ ऊंची गांठसी प्रगट होय, उसको माष (मस्सा) ऐसें कहते हैं इस श्लोकमें जो चकार है उस्सै कफमेदसेभी मस्से होते हैं यह दिखाया सो (ओजने) कहावी है।

तिलकालक (तिल)के लक्षण

कृष्णानितिलमात्राणिनीरुजानिसमानिच ।
वातपित्तकफोत्सेकात्तान्विद्यात्तिलकालकान् ॥ ३६ ॥

अर्थ–वात पित्त कफके कोपसें काले तिलके समान पीडारहित त्वचासैं मिल ऐसे अंगमें दाग होय उन्को तिलकालक (तिल) कहते हैं (वात पित्त कफोत्सेकात्) इस पाठमें वात पित्त हेतुकर्के कफका शोप होय है उसीसे तिल होते हैं परन्तु चरकके मतसें पित्त रुधिरके शोप होनेसें तिल होते हैं। यस्य पित्तं प्रकुपितं शोणितं प्राप्य शुष्यति। तिलकः पिप्लका व्यंगा नीलिका चास्य जायते ॥ इस वचनसैं वातवी रुधिरको शोपण करै है अन्य ग्रंथमें वात पित्त कफ ए तीनों रुधिरको शोपण करै हैं।

यथा

मारुतःपित्तमादायकफरक्तसमाश्रितः ।
चिनोतितिलमात्राणित्वचितेतिलकालकाः ॥३७॥ इति।

न्यच्छके लक्षण

महद्वायदिवाऽल्पंश्यावंवायदिवासितम् ।
नीरुजंमण्डलंगात्रेन्यच्छमित्यभिधीयते ॥ ३८ ॥

अर्थ–मुखके विना अन्य स्थानमें शरीरके ऊपर बडा, अथवा छोटा, काला, अथवा सपेद, और पीडारहित दाग होय, उस्को न्यच्छ कहते हैं येवी व्यंगका भेद है।

व्यंग (झांइ)के लक्षण

क्रोधायासप्रकुपितोवायुःपित्तेनसंयुतः । मुखमागत्यसहसा

१ वातेरिते त्वचि यदा दूष्येते कफमेदसी। श्लक्ष्णं मृदुसवर्णं च कुरुते मापकं वदेत् ॥१॥

मण्डलंविसृजत्यतः ॥ ३९ ॥ नीरुजंतनुकंशावंमुखेऽव्यंगंतमा-
दिशेत् ॥ ४० ॥

अर्थ–क्रोध और श्रम इन्सै कुपित भया वायू सो पित्तसंयुक्त होकर मुखमें प्राप्तहोकर एक मंडल उत्पन्न करे, वो दूखे नहीं वो पतला तथा श्यामवर्ण होय, उस्को व्यंग ऐसे कहते हैं।

नीलिकाके लक्षण

कृष्णमेवंगुणंगात्रेमुखेवानीलिकांविदुः ॥ ४१ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त व्यंगके लक्षणसदृश जो काला मंडल अंगमें होय अथवा मुखपर होय उस्को नीलिका कहते हैं भोजने इस जगे नीलिकागात्र ऐसा कहा है अर्थात् सर्व देह नीली होय है।

परिवर्तिकाके लक्षण

मर्दनात्पीडनाद्वापितथैवाप्यभिघाततः । मेढ्रचर्मयदावायुर्भ-
जतेसर्वतश्चरन् ॥ ४२ ॥ तदावातोपसृष्टत्वात्तच्चर्मपरिवर्त्तते ।
मणेरधस्तात्कोशस्तुग्रंथिरूपेणलंबते ॥ ४३ ॥ सवेदनंसदा-
हंचपाकंचव्रजतिक्वचित् । परिवर्त्तिकेतितांविद्यात्सरुजांवात-
संभवाम् ॥ ४४ ॥ सकंडूःकठिनावापिसैवश्लेष्मसमुत्थिता ।

अर्थ–लिंगको मर्दन करनेसै, अथवा रगडनेसैं उसी प्रकार लिंगमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे, व्यानवायू कुपित होकर उस्के चर्ममें प्रवेश कर सर्वत्र विचरे, उस समय वातसंस्पर्श हेतुकर्के लिंगकी चर्म पृथक् होजाय, और शिश्नका कोश सूजकर मणीके नीचे गांठके समान होकर लटके, उसमें पीडा होय, दाह होय, और कभी कभी वो पकजाय, इस पीडाको परिवर्तिका कहते हैं यह वातसै होय है और जो कफसै होय तौ उसमें खुजली तथा कठिनता होय।

अवपाटिकाके लक्षण

अल्पीयःखांयदाहर्षाद्बलाद्गच्छेत्स्त्रियंनरः ॥ ४५ ॥ हस्ताभि-
घातादथवाचर्मण्युद्वर्तितेबलात् । मर्दनात्पीडनाद्वापिशुक्र-

१ मारुतः क्रोधहर्षाभ्यामूर्ध्वगो मुखमाश्रितः। पित्तेन सहसंयुक्तः करोति वदनत्वचि ॥१॥ नीरुजं तनुकं श्यावं व्यंगं तमिति निर्दिशेत्। कृष्णमेव त्वकं गात्रे नीलिकां तां विनिर्दिशेत् ॥ इति।

वेगविघाततः ॥ ४६ ॥ यस्यावपाट्यतेचर्मतांविद्यादवपाटिकाम् ।

अर्थ–जिसकी योनिका छिद्र बारीक होय, ऐसी स्त्रीसै बलपूर्वक मैथुन कर्नेसे अथवा हाथके अभिघातसे (चोटसे) बलसे लिंगके चामको उलटनेसै, अथवा मीडनेसै, अथवा जोरपूर्वक दाबनेसै, अथवा शुक्रके वेगको धारण कर्नेसै, उस पुरुषके लिंगकी चाम फटजाय, इस पीडाके अवपाटिका कहते हैं यह अवपाटिका रोगमें तीनो दोषोंके लक्षण पृथक् पृथक् होते हैं यह (मत भोजका है)

निरुद्धप्रकाशके लक्षण

वातोपसृष्टेमेढ्रेतुचर्मसंश्रयतेमणिम् ॥ ४७ ॥ मणिश्चर्मोपनद्धस्तुमूत्रस्त्रोतोरुणद्धिच । निरुद्धप्रकशेतस्मिन्मंदधारमवेदनम् ॥ ४८ ॥ मूत्रंप्रवर्ततेजंतोर्मणिर्विव्रीयतेनच । निरुद्धप्रकशंविद्यात्सरुजंवातसंभवम् ॥ ४९ ॥

अर्थ–वायूके योगसै लिंग पीडित होनेसै चामडी सूजकर मणिभागमें प्राप्त होय, वो मणि चर्मके संकोच होनेसे मूत्रके मार्गको रोके तब मूत्रका रोध होय, तब उस पुरुषका मूत्र ठहर ठहरकर निकले, परन्तु पीडा नहीं होय, और मणी बाहर नहीं निकले, इस रोगयुक्त वातजन्य पीडाको निरुद्धप्रकाश कहते हैं चर्मके संकोच होनेको निरुद्ध कहते हैं, और मूत्रकी धार मन्द निकलनेको प्रकाश कहते हैं अवेदनम् यह जो मूलमें पाठ है इस जगे कोई (सवेदनम्) ऐसा कहते हैं । भोज आचारीके मतसै कहते हैं सो भोजसंहितामें लिखावी है ।

सन्निरुद्धगुदके लक्षण

वेगसंधारणाद्वायुर्विहतोगुदसंस्थितः । निरुणद्धिमहास्त्रोतः-

---

१ मर्दनादभिघाताद्वा कन्यायोनिप्रपीडनात् । लक्ष्यते यदि मेढ्रस्य वर्णभेदैर्विवक्षितम् ॥ १ ॥ अवपाटिकेति तां विद्यात् पृथग्दोषैः समन्विताम् । वाताम्लायरुर(?)नक्षाशूलनस्तोदकारणी । पित्तात्सदाहा रक्ताद्वा दाह पक्वकी कठिना स्निग्धा कण्डूनत्यन्तवेदनी(?) ॥ १ ॥

२ मेढ्रान्ते चर्मणि यदा मारुतः कुपितो भृशम् । द्वारं निरुणद्धि शनैः प्रकाशं च मुहुर्भवेत् ॥१॥ शूलं मूत्रं यत्र कृच्छ्रात्प्रकाशन्तु यदा भवेत् । वातोपसृष्टमेढ्रं च मणिर्न च विदीर्यते । निरुद्धं च प्रकाशं च व्याधिं विद्यात् सुदारुणम् ।

सूक्ष्मद्वारंकरोतिच ॥ ५० ॥ मार्गस्यसौक्ष्म्यात्कृच्छ्रेणपुरीषं तस्यगच्छति । सन्निरुद्धगुदंव्याधिमेनंविद्यात्सुदारुणम् ॥ ५१ ॥

अर्थ-मलमूत्रादिकोंके वेग रोकनेसे गुदाश्रित अपानवायु कुपित होकर, महाश्रोत्र (गुदा)का अवरोध करै, और वो द्वारको छोटा करै, पीछे मार्ग छोटा होनेसै उस पुरुषका मल बडे कष्टसै बाहर निकले, इस भयंकर रोगको संनिरुद्धगुद कहते हैं इस रोगमेंभी निरुद्धप्रकाशके समान चर्मका संकोच होनेसै सन्निरुद्धगुद होय है, अर्थात् अपानवायूके रुकनेसे पुरीष(मल)का अनिर्गम होय है ।

अहिपूतनाके लक्षण

शकृन्मूत्रसमायुक्तेऽधौतेऽपानेशिशोर्भवेत् । स्विन्नेवास्नाप्यमानेवाकंडूरक्तकफोद्भवा ॥ ५२ ॥ ततःकंडूयनात्क्षिप्रंस्फोटाःस्रावश्चजायते । एकीभूतंव्रणैर्घोरंतंविद्यादहिपूतनम् ॥ ५३ ॥

अर्थ-बालकके मलमूत्र करनेके अनंतर गुदाके न धोनेसै, अथवा पसीना आनेसैं तथा धोनेके अनन्तर रुधिर कफसै खुजली उत्पन्न होय, तदनन्तर खुजानेसै शीघ्र फोडा उत्पन्न होय, और उन्सै स्राव होय, पीछे ये सब मिलकर इस भयंकर व्याधिको प्रगट करे। इस्सै अहितपूतन कहते हैं यह रोग बहुधा बाल लोम (छोटे छोटे रोम)में होय हैं। भोज[1] कहता है कि यह रोग दुष्ट स्तन्यपान अर्थात् माताके दुष्ट दूधके पीनेसै बालकके होय है ।

वृषणकच्छूके लक्षण

स्नानोत्सादनहीनस्यमलोवृषणसंस्थितः । यदाप्रक्लिद्यतेस्वेदात्कंडूःसंजायतेतदा ॥ ५४ ॥ कंडूयनात्ततःक्षिप्रंस्फोटाःस्रावश्चजायते । प्राहुर्वृषणकच्छूंतांश्लेष्मरक्तप्रकोपजाम् ॥ ५५ ॥

अर्थ-जो मनुष्य स्नान करतेसमय लगे हुए मलको नहीं धोवे, उस पुरुषका मल अंडकोशोंमें संचित होय, पीछे वो पसीना आनेसै गीला होय, तब अंडकोशोंमें घोर पीडा होय, और खुजानेसै तत्काल फोडा होय, पीछे वो फोडा स्रवकर आपसमैं मिलजाते हैं, कफरक्तसै होनेवाली इस व्याधिको वृषणकच्छू कहते हैं।

१ दुष्टस्तन्यस्य पानेन मलस्याक्षालनेन च । कण्डूदाहरुजावद्भिः पीडकैश्च समाचिता ॥ अहिपूतना संभवति यथादोषञ्च दारुणा ॥ इति ॥

गुदभ्रंशके लक्षण

प्रवाहणातिसाराभ्यांनिर्गच्छतिगुदंबहिः ।
रूक्षदुर्बलदेहस्यगुदभ्रंशंतमादिशेत् ॥ ५६ ॥

अर्थ–जिस पुरुषकी देह रूक्ष और अशक्त होय, उस पुरुषके प्रवाहन (कुन्थन) तथा अतीसार हेतुकर्के गुदा बाहर निकल आवै, अर्थात् कांच बाहर निकल आवै उस रोगको गुदभ्रंश रोग कहते हैं इस रोगमें धातुक्षय होनेसै वात कुपित होय है।

सूकरदंष्ट्रके लक्षण

सदाहोरक्तपर्यंतस्त्वक्पाकीतीव्रवेदनः ।
कंडूमान्ज्वरकारीचसस्यात्सूकरदंष्ट्रकः ॥ ५७ ॥

अर्थ–दाहयुक्त चारों ओर लाल होय, जिस्की त्वचा पकनेवाली होय, तीव्र पीडा युक्त, खुजलीसंयुक्त, तथा ज्वर करनेवाली, ऐसी सूजन अथवा व्रण होय उस्को सूकरदंष्ट्र अर्थात् वराहडाढ कहते है।

इति श्रीदत्तराममाथुरनिर्मितमाधवभावार्थदीपिकाभाषामाथुरीटीकायां क्षुद्ररोगनिदानम् ।

मुखरोगनिदानम् ।

संख्या

दंतेष्वष्टावोष्ठयोश्चमूलेषुदशपंचच । नवतालुनिजिव्हायांपं-
चसप्तदशामयाः ॥ १ ॥ कंठेत्रयःसर्वसराएकषष्टिचतुःपरे ।

अर्थ–दंतरोग ८, होठके रोग ८, दंतमूलके रोग १५, ताळुएके रोग ९, जिव्हाके ५, कंठके रोग १७, और सर्व सर्वसर ३, ऐसे सब मिलकर पैंसट ६५, मुखरोग हैं ये श्लोक माधवके नहीं हैं। भोज संहिताके हैं।

तिनमें ८ होठके रोगकी संप्राप्ति

अनूपपिशितक्षीरदधिमाषादिसेवनात् ।
मुखमध्येगदान्कुर्युःक्रुद्धादोषाःकफोत्तराः ॥ २ ॥

अर्थ–जलसंचारी प्राणीन्के मांस, दूध, दही, उरद आदि पदार्थके सेवन करनेसे कुपित भए कफादिक दोषसो मुखमें रोग उत्पन्न करते हैं।

वातिकओष्ठरोगके लक्षण

कर्कशौपरुषौस्तब्धौकृष्णौतीव्ररुजान्वितौ ।

दाल्येतेपरिपाट्येतेओष्ठौमारुतकोपतः ॥ ३ ॥

अर्थ–वादीके कोपसे होठ कर्कश, खरदरे, कठोर, काले, होते हैं उन्में तीव्र पीडा होय, वो दो टुकडाके समान होजाय तथा होठकी त्वचा किंचित् फटजाय।

पैत्तिकके लक्षण

चीयतेपिडिकाभिस्तुसरुजाभिःसमंततः।

सदाहपाकपिडिकौपीताभासौचपित्ततः ॥ ४ ॥

अर्थ–पित्तसै होठमें चारौं और फुंसीनसै व्याप्त हो, उन्में पीडा होय, तथा पकजावै, और पीलेसै दीखैं। इस्में जो दाह और पाक कहेहैं सो विशेषताके सूचक हैं।

श्लैष्मिकके लक्षण

सवर्णाभिस्तुचीयेतेपिडिकाभिरवेदनौ ।

भवतस्तुकफादोष्ठौपिच्छिलौशीतलौगुरू ॥ ५ ॥

अर्थ–कफसै होठ त्वचाके समान वर्णवाले फुन्सीसै व्याप्त होंय, कुछ दूखें, तथा मलाईके समान चिकने, और शीतल, तथा भारी होंय।

सान्निपातिकके लक्षण

सकृत्कृष्णौसकृत्पीतौसकृच्छ्वेतौतथैवच ।

सन्निपातेनविज्ञेयावनेकपिडिकान्वितौ ॥ ६ ॥

अर्थ–सन्निपातसै होठ कभी काले, कभी पीले, उसी प्रकार कभी सपेद, तथा अनेक प्रकारकी फुन्सीनसैं व्याप्त होय।

रक्तजके लक्षण

खर्जूरीफलवर्णाभिःपिडिकाभिर्निपीडितौ ।

रक्तोपसृष्टौरुधिरंस्त्रवतःशोणितप्रभौ ॥ ७ ॥

अर्थ–रुधिरसै होठोंमें खजूरफलके वर्णकी फुंसी होय, उन्मेंसै रुधिर गिरै, तथा वो होठ रुधिरके समान लाल होंय।

मांसजके लक्षण

मांसदुष्टौगुरुस्थूलौमांसपिंडवदुद्गतौ ।

जन्तवश्चात्रमूर्च्छंतिनरस्योभयतोमुखम् ॥ ८ ॥

अर्थ–मांस दुष्ट होनेसै होठ जड (भारी) मोटे होते हैं, मांसपिंडके समान ऊंचे हौंय, इस रोगवाले मनुष्यके दोनों होठोंमें, अथवा होठोंके प्रांतभागमें कीडे पडजावैं ।

मेदोजके लक्षण

सर्पिर्मंडप्रतीकाशौमेदसाकंडुरौगुरू ।

स्वच्छंस्फटिकसंकाशमास्त्रावंस्त्रवतोभृशम् ॥ ९ ॥

तयोर्व्रणोनसंरोहेन्मृदुत्वंचनगच्छति ।

अर्थ–मेदसै होठ घृतके झाग समान खुजलीसंयुक्त तथा भारी होय तथा उन्मेंसैं स्फटिकके समान निर्मल स्राव बहुत होय इस्मैं भया व्रण भरे नही है तथा उस्मैं मृदुता नहीं रहै ।

अभिघातजके लक्षण

ओष्ठौपर्यवदीर्येतेपीड्येतेचाभिघाततः ।

ग्रथितौचतदास्यातांकंडूक्लेदसमन्वितौ ॥ १० ॥

अर्थ–अभिघातसै (चोट लगनेसे) होठ सर्वत्र चिरजाय, पीडा होय, उसमें गांठ होजाय तथा उनमें खुजली चलतेसमय पीव वहै, कोई कहते हैं कि अभिघातके ओष्ठ रोगमें केवल ऊपरका होठ फटता है इस रोगमेंभी कफ पित्त सहायक जानने, सो भोजने कहावी है ।

दंतमूलगत १५ रोग

शीतादके लक्षण

शोणितंदन्तवेष्टेभ्योयस्याकस्मात्प्रवर्तते । दुर्गन्धीनिसकृष्णानिप्रक्लेदीनिमृदूनिच ॥ ११ ॥ दंतमांसानिशीर्यन्तेपचंतिचपरस्परम् । शीतादोनामसव्याधिःकफशोणितसंभवः॥१२॥

अर्थ–जिस्के मसूढेनमेंसैं अकस्मात् रुधिर वहे, और दांतोका मांस दुर्गंधयुक्त काला पीवसहित तथा नरम होकर गिरे, और एक दांतका मसूढा पकनेसैं वो दूसरे मसूढेको पकावे, यह कफ रुधिरसै प्रगट व्याधिको शीतादनाम कहते हैं ।

१ क्षतावभिहतौ चापि रक्तावोष्ठौ सवेदनौ ॥ भवतः सपरिस्रावौ कफरक्तप्रदूपिताविति । वातजः केवलः स्वकारणकुपितः अत्र तु वायुः अभिघाताल्लभ्यते ॥

दन्तपुप्पुटके लक्षण

दंतयोस्त्रिषुवायस्यश्वयथुर्जायतेमहान् ।
दंतपुप्पुटकोनामसव्याधिःकफरक्तजः ॥ १३ ॥

अर्थ—जिसके दो अथवा तीन दांतकी जडमें महान सूजन होय, उस्को दंत-पुप्पुटनाम कहते हैं यह व्याधि कफरक्तसे होती है, परन्तु आगे जो सौषिररोग कहैंगे उस्सै यह भिन्न है ।

दंतवेष्टके लक्षण

स्रवन्तिपूयंरुधिरंचलादंताभवन्तिच ।
दंतवेष्टःसविज्ञेयोदुष्टशोणितसंभवः ॥ १४ ॥

अर्थ—रुधिर दुष्ट होनेसैं दांतोंमेंसै रुधिर तथा राध बहे, तथा दांत हलने लगे, उस्को दंतवेष्टरोग कहते हैं ।

सौषिरके लक्षण

श्वयथुर्दन्तमूलेषुरुजावान्कफरक्तजः ।
लालास्रावीसविज्ञेयःसौषिरोनामनामतः ॥ १५ ॥

अर्थ—कफ रुधिरसैं दांतोंकी जडमें सूजन होय, उसमैं पीडा होय, और स्राव होय, उस्को सौषिर रोग कहते हैं पूर्वोक्त दंतपुप्पुटमें पीडा और स्राव नहीं होय है इसीसै यह पृथक् है ।

महासौषिरके लक्षण

दन्ताश्चलन्तिवेष्टेभ्यस्तालुचाप्यवदीर्यते ।
यस्मिन्ससर्वतोव्याधिर्महासौषिरसंज्ञकः ॥ १६ ॥

अर्थ—इस त्रिदोष व्याधिकरकें मसूडेके समीपसैं दांत हलैं, और तालुएमें छिद्र पडजाय, चकारसैं दांत और होठभी फटजाय उस्को महासौषिररोग कहते हैं यह रोग मनुष्यको सात दिनमें मारडाले हैं सो भोजने कहाभी है परन्तु गदाधर कहता है सौषिरमें जो भोजने लक्षण कहे हैं सो होय तो उसीको महासौषिर कहते हैं ।

परिदरके लक्षण

दंतमांसानिशीर्यन्तेयस्मिन्ष्ठीव्यतिचाप्यसृक् ।

---

१ सदाहो दंतमूलेषु शोथः पित्तं कफानिलात् । जातः कफं क्षययति क्षीणे तस्मिन्सशोणितम् ॥ विवृद्धमनिशं दंतांस्ताल्वोष्ठमपि दारयेत् । महासौषिरमित्येतत्सप्तरात्रान्निहंत्यसून् ॥

पित्तासृक्कफजोव्याधिर्ज्ञेयःपरिदरोहिसः ॥ १७ ॥

अर्थ–इस रोगकर्के दांतोंका मांस विखर जाय, और थूकनेसे रुधिर गिरे, इस व्याधिको परिदर कहते हैं यह रोग पित्तरुधिरकफसैं होय है।

उपकुशके लक्षण

वेष्टेषुदाहःपाकश्चताभ्यांदन्ताश्चलंतिच। अवाक्कृताःप्रस्रवंतिशोणितंमन्दवेदनाः ॥ १८ ॥ आध्मायन्तेस्नुतेरक्तेमुखेपूतिश्चजायते। यस्मिन्नुपकुशोनामपित्तरक्तकृतोगदः ॥ १९ ॥

अर्थ–जिस्के मसूढेन्में दाहहोकर पाक और दांत हलने लगें, मसूढेन्के घिसनेसे रुधिर मंद पीडाके साथ निकले, रुधिर निकलनेके पिछाडी फेर मसूढे फूल आवैं, और मुखमें वांस आवै, इस पित्तरक्तकृत विकारको उपकुश कहते हैं।

वैदर्भके लक्षण

घृष्टेषुदन्तमूलेषुसंरम्भोजायतेमहान्।
भवन्तिचपलादन्ताःसवैदर्भोऽभिघातजः ॥ २० ॥

अर्थ–मसूढे रगडनेसे सूजन वहुत होय, और दांत हलने लगें, उस्को वैदर्भरोग कहते हैं यह रोग चोटके लगनेसे होय है।

खल्लीवर्धनके लक्षण

मारुतेनाधिकोदन्तोजायतेतीव्रवेदनः।
खल्लीवर्द्धनसंज्ञोवैजातेरुक्चप्रशाम्यति ॥ २१ ॥

अर्थ–वादीके योगसे दांतके ऊपर दूसरा दांत ऊगे, उससमय पीडा होय, जव वो दांत ऊगआवै तव पीडा शांत होय, उस्को खल्लीवर्धन कहते हैं।

करालके लक्षण

शनैःशनैःप्रकुरुतेवायुर्दन्तसमाश्रितः।
करालान्विकटान्दंतान्करालोनचासिद्ध्यति ॥ २२ ॥

अर्थ–वादी धीरेधीरे मसूढेका आश्रय लेकर दांतोंको टेढे तिरछे करे, उस्को कराल रोग कहते हैं यह रोग साध्य नही होय।

अधिमांसकके लक्षण

हानव्येपश्चिमेदंतेमहाञ्शोथोमहारुजः।
लालास्रावीकफकृतोविज्ञेयोह्यधिमांसकः ॥ २३ ॥

अर्थ-जिस्के पीछेकी डाढके नीचे अर्थात् मसूढेमें बहुत सूजन होय, और घोर पीडा होय, तथा लार बहुत बहे, उस्को अधिमांसक कहते हैं यह कफके कोपसे होय है।

नाडीव्रणके लक्षण

दन्तमूलगतानाड्यःपंचज्ञेयायथेरिताः ॥ २४ ॥

अर्थ-नाडीव्रणनिदानमें वात, पित्त, कफ, सन्निपात, और आगंतुज, ऐसे पांच प्रकारके जो नाडीव्रण कहे हैं वे दंतमूल (मसूढेन्में) होते हैं पहिले ११ और ५ नाडीव्रण ऐसे मिलकर १६ दंतमूल (मसूढेके) रोग होते हैं परन्तु कराळरोग सुश्रुतके मतसे अधिक है तथापि संग्रहकारने अपने ग्रंथमें लिखा है इसीसे हमनेभी यहां लिखदीना है ये पांच नाडीव्रण शालाक्यसिद्धान्तके मतसै संख्यापूरणार्थ माधवाचार्यने लिखी है।

दंतरोग ८ लिख्यते

दालनके लक्षण

दीर्यमाणेष्विवरुजायस्यदन्तेषुजायते।

दालनोनामसव्याधिःसदागतिनिमित्तजः ॥ २५ ॥

अर्थ-जिसके दांतोंमें फोडनेकीसी पीडा होय, उस्को दालनरोग कहतेहैं यह रोग वादीसे होय है।

कृमिदंतकके लक्षण

कृष्णच्छिद्रश्चलस्रावीससंरम्भोमहारुजः।

अनिमित्तरुजोवातात्सज्ञेयःकृमिदन्तकः ॥ २६ ॥

अर्थ-वादीके योगसै दांतोंमें काले छिद्र पडजाय, तथा हलने लगें, उन्मेंसे स्राव होय, शोथयुक्त पीडा होनेवाला और कारणविना दूखनेवाले ऐसा होय, उस्को कृमिदंत्तरोग कहते हैं यहां दांतोंमें काले छिद्र पडनेका यह कारण है कि दुष्टरुधिरसै कृमि (कीडा) पैदा होकर दांतोंमें छिद्र करते हैं।

भंजनकके लक्षण

वक्रंवक्रंभवेद्यस्यदन्तभंगश्चजायते।

कफवातकृतोव्याधिःसभंजनकसंज्ञितः ॥ २७ ॥

अर्थ-जिस व्याधिकर्के मुख टेढा होकर दांत फूटने लगें व्याधि कफवातकर्के होय है दांत भंगकारी दोषके प्रभावसै मुखवी टेढा होय है।

दंतहर्षके लक्षण

शीतरूक्षप्रवाताम्लस्पर्शानामसहाद्विजाः ।
पित्तमारुतकोपेनदन्तहर्षःसनामतः ॥ २८ ॥

अर्थ–दांत शीतल, रूक्ष, खटाई, इत्यादि पदार्थ और पवन इन्के लगनेको जो नहीं सहि सके, उस्को दंतहर्ष कहते हैं यह रोग पित्तवायुके कोपसे[1] होय है, इस रोगको वातज होनेपरभी उष्ण (गरमी)को नहीं सहि सके, यह व्याधिका स्वभाव है इस जगे दूसरा जो पाठान्तर है वो नीचे लिखें हैं ।

दंतशर्कराके लक्षण

मलोदन्तगतोयस्तुपित्तमारुतशोणितः ।
शर्करेवखरस्पर्शासाज्ञेयादन्तशर्करा ॥ २९ ॥

अर्थ–दांतोंका मल पित्तवायुके प्रभावसे सूखकर रेतके समान खरदरा स्पर्श मालूम होय, उस रोगको दंतशर्करा ऐसे कहते हैं इस श्लोकमें 'सादंतानांगुणहरा' ऐसाभी पाठ हैं इस्का यह अर्थ हुआ कि दांतोके गुण शुक्ल और दृढादि उन्को दूर करै ।

कपालिकाके लक्षण

कपालेष्विवदीर्णेषुदन्तानांसैवशर्करा ।
कपालिकेतिसाज्ञेयासदादंतविनाशिनी ॥ ३० ॥

अर्थ–कपाल कहिये मट्टीके घडा आदिके जैसें टूक होय हैं ऐसे दांत मलकरके सहित होजांय, तो उसी पूर्वोक्त दंतशर्कराको कपालिका ऐसे कहते हैं यह रोग दांतोका सदा नाश कर्त्ता है ।

श्यावदंतके लक्षण

योऽसृङ्मिश्रेणपित्तेनदग्धोदंतस्त्वशेषतः ।
श्यावतांनीलतांवापिगतःसश्यावदंतकः ॥ ३१ ॥

अर्थ–जो दांत रुधिरसें मिले, पित्तसें जलेके समान सब काले होजाय, उन्को श्यावदंत कहते हैं ।

हनुमोक्षके लक्षण

वातेनतैस्तैर्भावैस्तुहनुसंधिर्विसंहतः ।

---

१ शीतमुष्णं च दशनाः सहते स्पर्शनं नच । यस्य दंतं च हर्षेतु विंद्यात् पित्तसमीरणात् ॥

हनुमोक्षइतिज्ञेयोव्याधिरर्दितलक्षणः ॥ ३२ ॥

अर्थ–वादीके योगसें तिस तिस अभिघातादिककर्के हनुसंधी (ठोडी)में चोट लगनेसैं दांत चलायमान होजांय, उस्को हनुमोक्ष कहते हैं॥ इस्के लक्षण अर्दित-रोग जो वातव्याधिमें कहिआये हैं उस प्रकारके होंय, सुश्रुतने इस रोगको दांतोंके समीप होनेसै दंतरोग कहा है, परंतु संग्रहकारने मुख्य दंतरोग न होनेसै नहीं लिखा। इस्को संग्रहकारने भोजके कहेअनुसार वातव्याधिमें लिखा है इसीसे हनुमोक्षरोगका पाठ किसी पुस्तकमें लिखाहै और किसीमें नहीं लिखा।

जिव्हागत ५ रोग

जिव्हाऽनिलेनस्फुटिताप्रसुप्ताभवेच्चशाकच्छदनप्रकाशा ।

अर्थ–वादीसैं जीभ फटीसी, प्रसुप्त (रसका ज्ञान जातारहे) और पर्वतीवृक्षके पत्रसमान कांटेयुक्त खरदरी हो।

पित्तजके लक्षण

पित्तेनपीतापरिदह्यतेचदीर्घैःसरक्तैरपिकंटकैश्च ॥ ३३ ॥

अर्थ–पित्तसै जीभ पीली हो, उसमें दाह होय, उसमें लंबे लंबे तामेके समान कांटे होंय, इस रोगको लौकिकमें जाली कहते हैं अथवा जोडी कहते हैं।

कफजके लक्षण

कफेनगुर्वीबहलाचिताचमांसोच्छ्रयैःशाल्मलिकंटकाभैः ॥ ३४ ॥

- अर्थ–कफसैं जीभ मोठी भारी होय है और उसैं सेमरकेसे कांटेके समान मांसके अंकुर होंय।

अल्लासके लक्षण

जिव्हातलेयःश्वयथुःप्रगाढःसोऽल्लाससंज्ञःकफरक्तमूर्तिः ।

जिव्हांसतुस्तंभयतिप्रवृद्धोमूलेचजिव्हाभृशमेतिपाकम् ॥ ३५ ॥

अर्थ–जीभके नीचे कफ रुधिरसैं प्रगट ऐसी भयंकर सूजन होय उसको अल्लास कहते है उस्के बढनेसे स्तंभ होय, तथा जीभके मूलमें सूजन होय, यह रोग असाध्य है।

उपजिव्हाके लक्षण

जिव्हाग्ररूपःश्वयथुःसजिव्हामुन्नम्यजातःकफरक्तमूर्तिः ।

लालाकरःकण्डुयुतःसचोषःसातूपजिव्हाकथिताभिषग्भिः ॥ ३६ ॥

अर्थ–कफरुधिरसै जिव्हाग्रके समान (जैसा जीभका आगेका भाग होय है)

ऐसी सूजन जीभको नीची दबायकर उत्पन्न होय, उसके योगसै लार बहुत बहै, और उसमें खुजली चले, तथा दाह होय, दाह इसमें रक्तपित्तका कारण पित्त है उससे होय है, इस रोगको वैद्य उपजिव्हा ऐसे कहते हैं।

तालुगत ९ रोग

कंठशुंडीके लक्षण

श्लेष्मासृग्भ्यांतालुमूलात्प्रवृद्धोदीर्घःशोथोध्मातबस्तिप्रकाशः।
तृष्णाकासश्वासकृत्तंवदन्तिव्याधिंवैद्याःकंठशुंडीतिनाम्ना ॥३७॥

अर्थ—कफरुधिरसें तालुके मूलमें फूलीवस्तीके समान भारी सूजन होय, इसके प्रभावसे प्यास, खाँसी, श्वास, ए होते हैं इस रोगको वैद्य कंठशुंडी कहते हैं।

तुंडकेरीके लक्षण

शोथःशूलस्तोददाहप्रपाकीप्रागुक्ताभ्यांतुंडिकेरीमतातु ।

अर्थ—कफरक्तसें तालुएमें वन कपासके फलके समान सूजन होय, और उसमें पीडा, सूईके छेदनेकासा दुःख, और दाह होकर पके, उसको तुंडकेरी कहते हैं।

अध्रुवके लक्षण

शोथःस्तब्धोलोहितस्तालुदेशेरक्तोज्ञेयःसोऽध्रुवोरुग्ज्वरश्च ॥ ३८ ॥

अर्थ—रुधिरसै तालुएमें लाल स्तब्ध (लठर) ऐसी सूजन होय, उसमें पीडा और ज्वर होय, उसको अध्रुव ऐसे कहते हैं।

कच्छपके लक्षण

कूर्मोत्सन्नोऽवेदनोऽशीघ्रजन्मारोगोज्ञेयःकच्छपःश्लेष्मणावा ।

अर्थ—कफसैं तालुएमें कछुआकी पीठके समान ऊंची सूजन होय, उसमें पीडा थोडी होय, वह शीघ्र बढे नहीं, उसको कच्छपरोग कहते हैं।

अर्बुदके लक्षण

पद्माकारंतालुमध्येतुशोथंविद्याद्रक्तादर्बुदंप्रोक्तलिंगम् ॥ ३९ ॥

अर्थ—रुधिरसै तालुएमें कमलकी कर्णिकाके समान सूजन होय, इसके लक्षण अर्बुदनिदानमें जो रक्तार्बुदके कहेहैं उसके प्रमाण जानने।

मांससंघातके लक्षण

दुष्टंमांसंनीरुजंतालुमध्येकफाच्छूनंमांससंघातमाहुः ।

अर्थ-कफकर्के ताल्लुएमें दुष्ट मांस होकरके जो सूजन होय, और वो दुखै नहीं, उस्को मांससंघात कहते हैं।

तालुपुप्पुटके लक्षण

नीरुक्स्थायीकोलमात्रःकफात्स्यान्मेदोयुक्तःपुप्पुटस्तालुदेशे ॥४०॥

अर्थ-मेदयुक्त कफकर्के ताल्लुएमें पीडारहित और स्थिर तथा वेरके समान सूजन होय, उस्को ताल्लुपुप्पुट ऐसे कहते हैं।

तालुशोषके लक्षण

शोषोऽत्यर्थंदीर्यतेचापितालुश्वासश्चोग्रस्तालुशोपोऽनिलाच्च ।

अर्थ-वादीसै ताल्लु अत्यंत सूखकर फटजाय, तथा भयंकर श्वास होय, उस्को ताल्लुशोष कहते हैं।

तालुपाकके लक्षण

पित्तंकुर्यात्पाकमत्यर्थघोरंतालुन्येवंतालुपाकंवदंति ॥ ४१ ॥

अर्थ-पित्त कुपितहोकर ताल्लुएमें अत्यंत भयंकर पाक (पकी फुंसी) उत्पन्न करे, उस्को ताल्लुपाक कहते हैं।

कंठगत १७ रोग

तिन्मे पांच रोहिणीकी सामान्य संप्राप्ति

गलेऽनिलःपित्तकफौचमूर्छितौप्रदूष्यमांसंचतथैवशोणितम्।

गलोपसंरोधकरैस्तथांकुरैर्निहंत्यसून्व्याधिरयंहिरोहिणी ॥ ४२ ॥

अर्थ-गलेमें वायु पित्त और कफ ए दुष्ट होकर मांसको तथा रुधिरको दूषित कर गलेमें अंकुर (कांटे) उत्पन्न करे हैं, उन्सै गला रुकजाय, यह रोहिणी-नाम व्याधि प्राणनाशक है सव रोहिणी सन्निपातसैं प्रगट होती हैं उत्कर्षके वास्ते वात आदिका व्यपदेश है इन सवका असाध्यत्व भोजने पृथक् पृथक् लिखा है।

वातजाके लक्षण

जिव्हासमन्ताद्भृशवेदनास्तुमांसांकुराःकंठनिरोधनाय ।

सारोहिणीवातकृताप्रदिष्टावातात्मकोपद्रवगाढयुक्ता ॥४३॥

अर्थ-जीभके चारों ओर अत्यंतवेदनायुक्त जो मांसांकुर उत्पन्न होंय, उन्में कंठका अवरोध होय, तथा कंप, विनाम, स्तंभादि वातके उपद्रव होंय।

---

१ सद्यस्त्रिदोपजोहंतित्र्यहात् श्लेष्मसमुद्भवा । पंचाहात्पित्तसंभूता सप्ताहात्पवनोत्थिर्नति ॥

पित्तजाके लक्षण

क्षिप्रोद्गमाक्षिप्रविदाहपाकातीव्रज्वरापित्तनिमित्तजाता।

अर्थ-पित्तसै प्रगट भई रोहिणी शीघ्र बढे, तथा शीघ्रही पके, उस्के योगसे तीव्र ज्वर होय।

कफजाके लक्षण

स्त्रोतोनिरोधिन्यपिमन्दपाकास्थिरांकुरायाकफसंभवासा॥ ४४॥

अर्थ-जो रोहिणी कंठके मार्गको रोध करे (रोकदे) तथा हौले हौले पके, तथा जिस्के अंकुर कठिन होंय, वो कफजन्य जाननी।

त्रिदोषजाके लक्षण

गम्भीरपाकिन्यनिवार्यवीर्यात्रिदोषलिंगात्रितयोत्थितासा।

अर्थ-त्रिदोषसै उत्पन्न भई रोहिणी गंभीरपाकिनी (जिस्में राध बहुत हो) तिस्में औषधीका प्रभाव नही चले, और तीन दोषोंके लक्षणोंसैं युक्त होय, यह तत्काल प्राणोंका हरण करे।

रक्तजाके लक्षण

स्फोटैश्चितापित्तसमानलिंगासाध्याप्रदिष्टारुधिरात्मकातु॥४५॥

अर्थ-रुधिरकी रोहिणी पित्तरोहिणीके समान जाननी, तथा फोडान्सै व्याप्त होय, यह साध्य है।

कंठशालूकके लक्षण

कोलास्थिमात्राकफसंभवोयोग्रंथिर्गलेकंटकशूकभूतः।

खरःस्थिरःशस्त्रनिपातसाध्यस्तंकंठशालूकमितिब्रुवन्ति॥ ४६॥

अर्थ-कफसै गलेमें बेरकी गुठलीसमान गांठ होय, उस्में बारीक कांटे होंय, तथा खरदरी और कठिन होय, यह रोग शस्त्रोंसैं साध्य होय इस रोगको कंठ-शालूकरोग कहते हैं।

अधिजिव्हके लक्षण

जिव्हाग्ररूपःश्वयथुःकफात्तुजिव्होपरिष्टादपिरक्तमिश्रात्।

ज्ञेयोऽधिजिव्हःखलुरोगएपविवर्जयेदागतपाकमेनम्॥ ४७॥

अर्थ-रक्तमिश्रित कफसैं जीभके अग्रभागसदृश जीभमें सूजन होय, इस्को अधिजिव्ह कहते हैं। यह पकनेसें असाध्य जानना।

वलयके लक्षण

बलासएवायतमुन्नतंचग्रंथिंकरोत्यन्नगतिंनिवार्य ।
तंसर्वथैवाप्रतिवार्यवीर्यंविवर्जनीयंवलयंवदन्ति ॥ ४८ ॥

अर्थ-कफसैं ऊंची और लंबी ऐसी गांठ कंठमें उत्पन्न होय उस्के योगसैं कंठमें ग्रास गस्सा उतरे नहीं, तथा उसमें कोई उपाय नहीं चले, इस रोगको वलय कहते हैं इस्को वैद्य त्याग देय ।

बलासके लक्षण

गलेतुशोथंकुरुतःप्रवृद्धौश्लेष्मानिलौश्वासरुजोपपन्नम् ।
मर्मच्छिदंदुस्तरमेनमाहुर्बलाससंज्ञंनिपुणाविकारम् ॥ ४९ ॥

अर्थ-कुपित भए जो कफवायू सो गलेमें सूजन उत्पन्न करे उससे श्वास होय, तथा कंठ दूखे, इस मर्मभेद करनेवाली दुस्तर व्याधिको वैद्य बलास ऐसे कहते हैं ।

एकवृंदके लक्षण

वृत्तोन्नतोऽतःश्वयथुःसदाहःसकंडुरोऽपाक्यमृदुर्गुरुश्च ।
नाम्नैकवृंदःपरिकीर्तितोऽसौव्याधिर्बलासक्षतजप्रसूतः॥५०॥

अर्थ-गलेमें गोल, ऊंची किंचित् दाहयुक्त खुजानेवाली ऐसी सूजन होय, वह किंचित् पके, और कुछ नरम होय, तथा भारी होय, इस्का नाम एकवृन्द है यह व्याधि कफरक्तसै होय है ।

वृन्दके लक्षण

समुन्नतंवृत्तममंददाहंतीव्रज्वरंवृंदमुदाहरंति ।
तंचापिपित्तक्षतजप्रकोपाद्विद्यात्सतोदंपवनात्मकंतु ॥ ५१ ॥

अर्थ-गलेमें ऊंची गोल तीव्र दाह तथा ज्वरयुक्त जो सूजन होय, उस्को वृन्द कहते हैं येवी रक्तपित्तके कोपसै होय है इसमें वायूके संबंध होनेसै सुईके चोंटनेकी पीडा होय * शंका- क्योंजी कंठके १७ रोग कहे हैं और वृन्दको मिलायकर अठारे रोग हुए तो कहिये कि सतरे संख्यामें भेद हुआ * उत्तर- तुमने कहा सो ठीक है, परंतु तुल्यस्थान आकृति होनेसे एकवृन्दकाही भेद वृन्दरोग जानना, ऐसे मानेसे संख्यामें विरोध नहीं पडे। यद्यपि एकवृन्द कफरक्तज है और वृन्दरोग पित्तरक्तज कहाहै, तथापि जैसे वृन्दका चोटनी होने-

करके वातात्मकत्व कहा है, तो बी एकवृन्दकी अवस्थाविशेष होनेसें वृन्दको एक-वृन्दके साथ ग्रहण करा है, जैसे कामलाके लक्षणसें भिन्नबी हैं तथापि हलीमक कामलाकाही भेद जानना, और भोजनेबी इसकी एक वृन्दकाही भेद कहा है, गदाधर कहता है कि छंदानुरोधके निमित्त एकवृन्द शब्दके एकशब्दका लोपकर वृंदशब्दही मूलमें धरा यासें वृन्द और एकवृन्द ए दोनों एकही हैं।

शतघ्नीके लक्षण

वर्तिर्घनाकंठनिरोधिनीयाचिताऽतिमात्रंपिशितप्ररोहैः।
अनेकरुक्प्राणहरीत्रिदोषाज्ज्ञेयाशतघ्नीतुशतघ्निरूपा॥५२॥

अर्थ—कंठमें लंबी और कठिन सूजन होय, उसकरके कंठ रुकजाय, और उस सूजन ऊपर मांसके अंकुर बहुत होंय, तथा उसमें तोद (चोटनी) दाह, खुजली आदि अनेक वेदना होंय, यह प्राण हरनेवाली सूजनको शतघ्नी (लंबे तथा कांटे लंबे जिसमें होंय ऐसे शस्त्र)के समान होय इसीसे इस रोगको यह संज्ञा दीनी है।

गिलायूके लक्षण

ग्रंथिर्गलेत्वामलकास्थिमात्रःस्थिरोऽल्परुक्स्यात्कफरक्तमूर्तिः।
संलक्ष्यतेसक्तमिवाशनंचसशस्त्रसाध्यस्तुगिलायुसंज्ञः॥५२॥

अर्थ—कफरक्तके कोपसें गलेमें आंवलेकी गुठलीके बराबर गांठ उत्पन्न होवे, वह गांठ कठिन मंदपीडावाली हो, इसके होनेसें अन्न गलेमें अटकतासा मालूम देवे, यह रोग शस्त्रके द्वारा अर्थात् शस्त्रसें काटनेसें साध्य होवे इसको गिलायु कहते हैं।

गलविद्रधिके लक्षण

सर्वंगलंव्याप्यसमुत्थितोयःशोथोरुजःसंतिचयत्रसर्वाः।
ससर्वदोषोगलविद्रधिस्तुतस्यैवतुल्यःखलुसर्वजस्य॥५४॥

अर्थ—जो सूजन सब गलेमें व्याप्त होवे, तथा जिसमें सर्व प्रकारकी पीडा होय, वह विद्रधिनिदानमें जो त्रिदोषकी विद्रधि कही है उसके समान गलविद्रधि-के लक्षण जानने।

गलौघके लक्षण

शोथोमहानन्नजलावरोधीतीव्रज्वरोवायुगतेर्निहन्ता।
कफेनजातोरुधिरान्वितेनगलेगलौघःपरिकीर्त्यतेसौ॥५५॥

---

१ श्लेष्मरक्तसमुत्थानमेकवृन्दं विभावयेत्। तुल्यस्थानाकृतिर्वृन्दोवृन्दोरक्तपित्तजः॥१॥इति॥

अर्थ-रक्तयुक्त कफसें गलेमें भारी सूजन होय, उसके योगसें कंठमें अन्नजलका अवरोध (रोकावट) होय, तथा वायुका संचार होय नहीं, इसको वैद्य गलौघ कहते हैं।

स्वरघ्नके लक्षण

यस्ताम्यमानःश्वसितिप्रसक्तंभिन्नस्वरःशुष्कविमुक्तकंठः।
कफोपदिग्धेष्वनिलायतेषुज्ञेयःसरोगःश्वसनात्स्वरघ्नः ॥ ५६ ॥

अर्थ-वायूका मार्ग कफसे लिप्त होनेसे बार बार नेत्रोंके आगे अंधकार आकर जो पुरुष श्वासको छोडे, अथवा मूर्च्छा आकर जिसकी श्वास निकले, जिसको भिन्न स्वर होय, कंठ सूखे, और विमुक्त कहिये कंठ स्वाधीन नहो, अर्थात् थोडाभी अन्न खाया हो तथापि कंठसे नीचे न उतरे, इस वातजरोगको स्वरघ्न कहते हैं।

मांसतानके लक्षण

प्रतानवान्यःश्वयथुःसुकष्टोगलोपरोधंकुरुतेक्रमेण।
समांसतानेतिबिभर्तिसंज्ञांप्राणप्रणुत्सर्वकृतोविकारः॥ ५७ ॥

अर्थ-जो सूजन गलेमें उत्पन्न होकर क्रमसें फैलकर गलेको रोक ले तब बहुत कष्ट हो, इस त्रिदोष विकारको मांसतान कहते हैं यह विकराल रोग प्राणोंका नाश करनेवाला है।

विदारीके लक्षण

सदाहतोदंश्वयथुंसुतीव्रमन्तर्गलेपूतिविशीर्णमांसं।
पित्तेनविद्याद्वदनेविदारींपार्श्वेविशेषात्सतुयेनशेते ॥ ५८ ॥

अर्थ-पित्तसे गलेमें सूजन होवै तिसकरके दाह होय, चवक होय, तथा दुर्गंधियुक्त सडा मांस गिरे, और रोगी जिस करवट सोवै उसी तर्फ वह रोग होता है, मांसके विदारण करनेसे विदारी कहलाता है।

मुखपाक

सर्वसर (मुखपाक मुखआना) तीन प्रकारका है

वातजके लक्षण

स्फोटैःसतोदैर्वदनंसमंताद्यस्याचितंसर्वसरःसवातात्।

अर्थ-वादीके योगसें मुखमें सर्वत्र छाले होजांय, और वह चिनमिनावै, मुख जिव्हा गला होंठ मसूडे दांत और तालु इन सबमें व्याप्ति होनेसें, इस रोगको सर्वसर कहते हैं।

पित्तजके लक्षण

रक्तैःसदाहैःपिडकैःसपीतैर्यस्याचितंचापिसपित्तकोपात् ॥ ५९ ॥

अर्थ–पित्तसें मुखमें लाल तथा पीले छाले होंय, और दाह होवै।

कफजके लक्षण

अवेदनैःकण्डुयुतैःसवर्णैर्यस्याचितंचापिसवैकफेन ॥ ६० ॥

अर्थ–कफसें मुखमें मंदपीडा और त्वचाके समान वर्ण जिनका ऐसे छाले सर्वत्र होंय।

असाध्यमुखरोगके लक्षण

ओष्ठप्रकोपेवर्ज्याःस्युर्मांसरक्तप्रकोपजाः । दंतमूलेषुवर्ज्यौतुत्रिलिंगगतिसौषिरौ ॥ ६१ ॥ दंतेषुनचसिध्यन्तिश्यावदालनभंजनाः । जिव्हातलेष्वलासश्चतालव्येष्वर्बुदंतथा । ॥ ६२ ॥ स्वरघ्नोवलयोवृन्दोबलासश्चविदारिका । गलौघो मांसतानश्चशतघ्नीरोहिणीगले ॥ ६३ ॥ असाध्याःकीर्तिता ह्येतेरोगानवदशैवतु । तेषुचापिक्रियांवैद्यःप्रत्याख्यायसमाचरेत् ॥ ६४ ॥

अर्थ–ओष्ठरोग (होठके रोगोंमें) मांसज, रक्तज, और त्रिदोषज, असाध्य हैं। मसूडोंके रोगोंमें सन्निपात, नाडी, और सौषिर और दांतोंके रोगोंमें श्याव, दालन, और भंजन, जिव्हाके रोगोंमें अलास और तालुएके रोगोंमें अर्बुद, तथा गलेके रोगोंमें स्वरघ्न, वलय, वृन्द, वलास, विदारिका, गलौघ, मांसतान, शतघ्नी, और रोहिणी, ये उन्नीस रोग असाध्य हैं इनपर चिकित्सा करनेवाले वैद्यको प्रत्याख्यान (औषधि) न देनी ये तौ मृत्यु निश्चय होय और देवेतौ कदाचित् वचभी जाय है ऐसे विचार कर औषधी देनी चाहिये।

इति मुखरोगनिदानं समाप्तम् ॥

कर्णरोगनिदानम्।

कर्णशूलके लक्षण

समीरणःश्रोत्रगतोऽन्यथाचरन्समंततःशूलमतीवकर्णयोः ।

करोतिदोषैश्चयथास्वमावृतःसकर्णशूलःकथितोदुरासदः ॥ १ ॥

अर्थ–कानमें वायु दोषोंकरके (कफ पित्त रुधिरसे) आवृत होकर कानोमें उलटी फिरे, तब अत्यंत शूल (दरद) होय, इस रोगको कर्णशूल कहते हैं यह रोग कष्टसाध्य है। कर्णशूलके उपद्रव विदेहने इस प्रकार लिखे हैं "मूर्च्छादाहो ज्वरःकासःक्लमोथवमथुस्तथा। उपद्रवाःकर्णशूलेभवंत्येतेभविष्यतः॥ इति" इसका अर्थ सुगम है।

कर्णनादके लक्षण

कर्णस्रोतःस्थितेवातेशृणोतिविविधान्स्वरान्।

भेरीमृदंगशंखानांकर्णनादःसउच्यते ॥ २ ॥

अर्थ–वायु कानके छिद्रमें स्थित होनेसे अनेक प्रकारके स्वर तथा भेरी, मृदंग, और शंख इनके शब्द सुनाई देवे, इस रोगको कर्णनाद कहते हैं।

बाधिर्य (बहरा)के लक्षण

यदाशब्दवहंवायुःस्रोतआवृत्यतिष्ठति।

शुद्धश्लेष्मान्वितोवापिबाधिर्यंतेनजायते ॥ ३ ॥

अर्थ–जिस समय केवल वायु, अथवा कफयुक्त वायु शब्दवहानेवाली नाडियोंमें स्थित होय, तब उस पुरुषको शब्द सुनाई नहीं देय, अर्थात् बहरा होजाय।

कर्णक्ष्वेडके लक्षण

वायुःपित्तादिभिर्युक्तोवेणुघोषसमंस्वनम्।

करोतिकर्णयोःक्ष्वेडंकर्णक्ष्वेडःसउच्यते ॥ ४ ॥

अर्थ–पित्तादि दोषोंकरके युक्त वायु कानोंमें वेणु(वंसी)का शब्द सुनाई देताहै उसको कर्णक्ष्वेड कहते हैं।

कर्णस्रावके लक्षण

शिरोभिघातादथवानिमज्जतांजलेप्रपाकादथवापिविद्रधेः।

स्रवेद्धिपूयंश्रवणोऽनिलार्दितःसकर्णसंस्रावइतिप्रकीर्तितः ॥५॥

अर्थ–शिरमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे अथवा पानीमें गोता मारनेसे, अथवा कानमें विद्रधि पकनेसे, वायु कुपितहोकर कानोंसे राधि वहे उसको कर्णस्राव कहते हैं।

कर्णकंडूके लक्षण

मारुतःकफसंयुक्तःकर्णकंडूंकरोतिच ।

अर्थ—कफसे मिला हुआ वायु कानोंमें खुजली उत्पन्न करता है।

कर्णगूथके लक्षण

पित्तोष्मशोषितःश्लेष्माजायतेकर्णगूथकः ॥ ६ ॥

अर्थ—पित्तकी गरमीसे कफ सूखकर कानमें मैल जमे, उसको कर्णगूथ कहते हैं।

कर्णप्रतिनाहके लक्षण

सकर्णगूथोद्रवतांयदागतोविलायितोघ्राणमुखंप्रपद्यते । तदासकर्णप्रतिनाहसंज्ञितोभवेद्विकारःशिरसोऽर्द्धभेदकृत् ॥ ७ ॥

अर्थ—वही कानका मैल पतला होनेसे, अथवा स्नेह स्वेदादिकोंकरके पतला होकर मुख और नाकमें प्राप्त होय, तब उसको कर्णप्रतिनाह कहते हैं, इस रोगसे अर्द्धशिर (आधासीसी)का विकार होता है।

कृमिकर्णके लक्षण

यदातुमूर्च्छंत्यथवापिजंतवःसृजन्त्यपत्यान्यथवापिमक्षिकाः ।
तदंजनत्वाच्छ्रवणोनिरुच्यतेभिषग्भिराद्यैःकृमिकर्णकोगदः ॥८॥

अर्थ—जिस समय कानमें कीडे पडजाय, अथवा मक्खी अंडा धरें, तब कृमिलक्षणकरके इस रोगको कृमिकर्ण कहते हैं।

कानमें पतंगादिकीडा घसनेके लक्षण

पतंगाःशतपद्यश्चकर्णस्रोतःप्रविश्यहि । अरतिंव्याकुलत्वंच भृशंकुर्वन्तिवेदनाम् ॥ ९ ॥ कर्णोनिस्तुद्यतेतस्यतथाफुरफुरायते । कीटेचरतिरुक्तीव्रानिस्पन्देमन्दवेदना ॥ १० ॥

अर्थ—पतंग, कनखजूरा, गिजाई, आदि कानमें घसनेसे, बेचैनी होय, जीव व्याकुल होय, और कानमें पीडा होय, तथा कानमें नोचनेकीसी पीडा होय, और वह कीडा कानके भीतर फडके, और फिरे, उस समय घोर पीडा होय, और जब वह बन्द हो तब पीडा बन्द होवे।

द्विविधकर्णविद्रधिके लक्षण

क्षताभिघातप्रभवस्तुविद्रधिर्भवेत्तथादोषकृतोऽपरःपुनः । सं-

रक्तपीतारुणरक्तमास्त्रवेत्प्रतोदधूमायनदाहचोषवान् ॥ ११ ॥

अर्थ-कानमें खुजानेसे व्रण होजाय, अथवा चोट लगनेसे कानमें व्रण होकर विद्रधि होय, उसी प्रकार वातादिदोषोंकरके दूसरे प्रकारकी विद्रधि होय है, जब वह फूटे तब उसमेंसे लाल पीला रुधिर बहे, नोचनेकीसी पीडा होवै, धूआंसा निकलता मालूम होवै, दाह होवै, चूसनेकीसी पीडा होवै।

कर्णपाकके लक्षण

कर्णपाकस्तुपित्तेनकोथविक्लेदकृद्भवेत्।
कर्णेविद्रधिपाकाद्वाजायतेचांबुपूरणात्।

अर्थ-पित्तसे अथवा कान पकनेसे अथवा कानमें पानी जानेसे कर्णपाक रोग होवे उसकरके कान सडजावे और गीला रहे।

पूतिकर्णके लक्षण

पूयंस्त्रवतिवापूतिसज्ञेयःपूतिकर्णकः।

अर्थ-जिसके कानमें राध निकले, वा वास आवे, उसको पूतिकर्ण कहते हैं।

कर्णशोथ कर्णार्बुदकर्णार्शका हवाल देते हैं

कर्णशोथार्बुदार्शांसिजानीयादुक्तलक्षणैः ॥ १२ ॥

अर्थ-कानकी सूजन कानका अर्बुद, और कानकी अर्श (ववासीर) ये रोग होंय तो इनके लक्षण उसी उसी निदानके द्वारा जानने, कुछ थोडेसे यहां लिख-भी देते हैं। कर्णशोथ चार प्रकारकी है, वात पित्त कफ रक्तजके भेदसे इसी प्र-कार कर्णार्श कानकी ववासीरभी चारही प्रकारकी हैं, चारसे विशेष शोथ अर्श-का होना असंभव है यासे चारही हैं।

कर्णार्बुदरोग सात प्रकारका है वात, पित्त, कफ, रुधिर, मांस, मेदा, और शिरा, इनके भेदसे अब कहते हैं कि कर्णरोग सुश्रुतके मतसे २८ प्रकारका है परन्तु चरकके मतसे चारही हैं उनको कहते हैं।

वातजके लक्षण

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्यशोषःस्त्रावस्तनुश्चाश्रवणंचवातात्।

अर्थ-वादीसे कानमें शब्द होय, पीडा होय, कानका मैल सूखजाय, पतला स्राव होय, सुनाई नहीं देवे, अर्थात् बहरा होजाय।

पित्तजके लक्षण

शोथःसरागोदरणंविदाहःसपीतपूतिस्त्रवणंचपित्तात् ॥ १४ ॥

अर्थ–पित्तसे कानमें सूजन होय, कान लाल हो, दाह हो, चिरासा होजाय, तथा किंचित् पीला दुर्गंधियुक्त स्राव होय।

कफजके लक्षण

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोथशुक्लास्निग्धास्रुतिःश्लेष्मभवेतिरुक्च।

अर्थ–कफके प्रभावसे विरुद्ध सुनना, खुजली चले कठिन सूजन होय, सफेद और चिकना ऐसा स्राव होय।

सन्निपातजके लक्षण

सर्वाणिरूपाणिचसन्निपातात्स्रावश्चतत्राधिकदोषवर्णः ॥ १५ ॥

अर्थ–सन्निपातसे सब लक्षण होंय, स्राव होंय, वा जौनसा दोष अधिक होय वैसाही दोषानुसार वर्णका स्राव होय।

कर्णपालीके रोग

कर्णशोथके लक्षण

सौकुमार्याच्चिरोत्सृष्टेसहसापिप्रवर्धिते।

कर्णशोथोभवेत्पाल्यांसरुजःपरिपोटवान् ॥ १६ ॥

अर्थ–सुकुमार स्त्री अथवा बालक कानकी लौरको एक साथ बहुत बढावे तो कानकी पालीमें (लौरमें) सूजन होकर फूलजावे और दूखे।

परिपोटके लक्षण

कृष्णारुणनिभःस्तब्धःसवातात्परिपोटकः ॥ १७ ॥

अर्थ–वादीसे काला लाल और कठिन ऐसा फूल जाय, उस्को परिपोटक कहते हैं।

उत्पातके लक्षण

गुर्वाभरणसंयोगात्ताण्डवाद्घर्षणादपि । शोथःपाल्यांभवे-
च्छ्यावोदाहपाकरुजान्वितः ॥ १८ ॥ रक्तोवारक्तपित्ताभ्या-
मुत्पातःसगदोमतः।

अर्थ–कानमें भारी आभरण (गहना) पहननेसे, अथवा चोटके लगनेसे, अथवा कानको खींचनेसे, रक्तपित्त कुपित होकर कानकी पालीमें हरा, नीला, अथवा लाल सूजन होय उसमें दाह होवै, पीडा होवे, और रक्त वहे, इस रोगको उत्पात कहते हैं।

उन्मंथकके लक्षण

कर्णंबलाद्वर्धयतःपाल्यांवायुःप्रकुप्यति ॥ १९ ॥ सकफंगृ-
ह्यकुरुतेसशोफंस्तब्धवेदनं । उन्मंथकःसकण्डूकोविकारःक-
फवातजः ॥ २० ॥

अर्थ–कानको बलपूर्वक बढानेसे पालीमें (लौरमें) वायु कुपितहोकर कफको संग लेकर कठिन तथा मंद पीडायुक्त सूजनको प्रगट करे, उसमें खुजली चले, इस कफवातजन्यविकारको उन्मंथक कहते हैं।

दुःखवर्द्धनके लक्षण

संवर्ध्यमानेदुर्विद्धेकण्डूदाहरुजान्वितः ।
शोफोभवतिपाकश्चत्रिदोषोदुःखवर्द्धनः ॥ २१ ॥

अर्थ–दुष्टरीतिकरके कानको छेदनेसे, तथा बढानेसे, खुजली दाह पीडायुक्त ऐसी सूजन होय, वह पकजाय उसको दुःखवर्द्धन कहते हैं।

परिलेहीके लक्षण

कफासृक्क्रिमिसंभूतःसविसर्पन्नितस्ततः ।
लिहेच्चशष्कुलींपालींपरिलेहीत्यसौस्मृतः ॥ २२ ॥

अर्थ–कफ रक्त कृमिसे उत्पन्न भया तथा सर्वत्र विचरनेवाली ऐसी जो सूजन कानकी पालीमें होय, वो कानकी पालीको खाय जाय, अर्थात् उसका मांस क्षरने लगे, इसको परिलेही कहते हैं।

इति भावार्थदीपिकाभाथुरीभाषाटीकायां कर्णरोगनिदानं समाप्तम् ॥

नासारोगनिदानम् ।



पीनसके लक्षण

आनह्यतेयस्यविशुष्यतेचप्रक्लिद्यतेधूप्यतिचैवनासा। नवे-
त्तियोगंधरसांश्चजन्तुर्जुष्टंव्यवस्येत्सतुपीनसेन ॥ १ ॥ तं
चानिलश्लेष्मभवंविकारंब्रूयात्प्रतिश्यायसमानलिंगं ।

अर्थ–जिसकी नाक रुकजाय, वात शोषित कफसे नाक भीतरसे सूखीसी रहे, गीली रहे, धुआंसा निकले, जिसकी नाकमें सुगंधि दुर्गंध मिष्ट रसादिककी

गंधि मालूम नहो, उसके पीनस प्रगट भई जाननी, इस वातजन्य विकारको प्रतिश्याय (पीनस) कहते हैं।

पूतिनस्यके लक्षण

दोषैर्विदग्धैर्गलतालुमूलेसंमूर्छितोयस्यसमीरणस्तु । निरेतिपूतिर्मुखनासिकाभ्यांतंपूतिनस्यंप्रवदंतिरोगं ॥ २ ॥

अर्थ–गले और तालुवेमें दुष्टभया पित्तरक्तादि दोषकरके वायु मिश्रित होकर नाक और मुखके मार्गोंमे दुर्गंधि निकले, इस रोगको पूतिनस्य कहते हैं।

नासापाकके लक्षण

घ्राणाश्रितंपित्तमरूंषिकुर्याद्यस्मिन्विकारेवलवांश्चपाकः।
तन्नासिकापाकमितिव्यवस्येद्विक्लेदकोथावथवापियत्र ॥ ३ ॥

अर्थ–जिसकी नाकमें पित्त दूषित होकर फुंसी प्रगट करे, और नाक भीतरसे पकजाय, उसको नासिकापाक कहते हैं इसमें नाकमे राध वहे।

पूयरक्तके लक्षण

दोषैर्विदग्धैरथवापिजन्तोर्ललाटदेशेभिहतस्यतैस्तैः।
नासास्रवेत्पूयमसृग्विमिश्रंतंपूयरक्तंप्रवदन्तिरोगम् ॥ ४ ॥

अर्थ–दोष दुष्ट होनेसे अथवा कपालमें चोटलगनेसे नाकमेंसे राध वहे, और रुधिर वहे, इस रोगको पूयरक्त कहते हैं।

क्षवथु (छींक)के लक्षण

घ्राणाश्रितेमर्मणिसंप्रदुष्टोयस्यानिलोनासिकयानिरेति।
कफानुयातोवहुशोऽतिशब्दंतंरोगमाहुःक्षवथुंविधिज्ञाः ॥ ५ ॥

अर्थ–नासिकाश्रित मर्मके (शृंगाटकमर्म)के विषे वायु दुष्ट होकर कफ सहित भारी शब्दको नासिकाके वाहर निकाले, उसको क्षवथु (छींक) कहते हैं।

आगंतुजक्षवथुके लक्षण

तीक्ष्णोपयोगादतिजिघ्रतोवाभावान्कटूनर्कनिरीक्षणाद्वा।
सूत्रादिभिर्वातरुणास्थिमर्मण्युद्घाटितेऽन्यक्षवथुर्निरेति ॥ ६ ॥

अर्थ–तीक्ष्ण राई आदि पदार्थ खानेसे, अथवा कडुवाखानेसे, मिरच आदि तीखी वस्तुओंके सूंघनेसे, सूर्यके देखनेसे, अथवा कपडेकी वत्ती वनाकर नाकमें

तरुणास्थि मर्म (फणामर्म)में लगानेसे, आगंतुज क्षवथु (छींक) आतीहै आगंतुज और दोषज छींक एकही है।

भ्रंशथुके लक्षण

प्रभ्रश्यतेनासिकयाहियस्यसांद्रोविदग्धोलवणःकफश्च।
प्राक्संचितोमूर्धनिसूर्यतप्तेतंभ्रंशथुंव्याधिमुदाहरन्ति॥ ७॥

अर्थ—सूर्यकी गरमीकर्के मस्तक तप्त होनेसे पूर्वसंचित भया विदग्ध गाढा खारी ऐसा कफ नाकसे गिरे उस व्याधिको भ्रंशथुरोग कहते हैं।

दीप्तके लक्षण

घ्राणेभृशंदाहसमन्वितेतुविनिश्चरेद्धूमइवेहवायुः।
नानाप्रदीप्तेवचयस्यजंतोर्व्याधिंतुतंदीप्तमुदाहरन्ति॥ ८॥

अर्थ—नाक असन्त दाहयुक्त होनेसे उसमें वायु धूआंके सदृश विचरे, और नाक प्रदीप्त होवे अर्थात् गरम होवे इस रोगको दीप्त कहते हैं।

प्रतिनाहके लक्षण

उच्छ्वासमार्गेतुकफःसवातोरुंध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम्।

अर्थ—वायुसहित कफ श्वासके मार्गको बंद करे, तब नाकका स्वर अच्छी रीतिसे चले नहीं, इसको प्रतिनाह कहते है।

नासास्रावके लक्षण

घ्राणाद्घनःपीतसितस्तनुर्वादोषःस्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम्॥ ९॥

अर्थ—नाकसे गाढा पीला अथवा सफेद पतला दोष (कफ) स्रवे, उसको स्राव कहते हैं।

नासापरिशोथके लक्षण

घ्राणाश्रितेस्रोतसिमारुतेनगाढंप्रतप्तेपरिशोषितेच।
कृच्छ्राच्छ्वसेदूर्ध्वमधश्चजंतुर्यस्मिन्सनासापरिशोषउक्तः॥ १०॥

अर्थ—वायुसे नासिकाका द्वार अत्यन्त तप्त होकर सूखजाय, तव मनुष्य वडे कष्टसे ऊपर नीचेको श्वास लेय उस रोगको नासापरिशोष कहते हैं।

चिकित्साभेदार्थपीनसके आमपक्कके लक्षण

शिरोगुरुत्वमरुचिर्नासास्रावस्तनुःस्वरः। क्षामःष्ठीवेत्तथा-

ऽभीक्ष्णमामपीनसलक्षणम् ॥ ११ ॥ आमलिंगान्वितःश्लेष्मा घनश्चाप्सुनिमज्जति। स्वरवर्णविशुद्धिश्चपक्वपीनसलक्षणम् ॥१२॥

अर्थ–शिरमें भारीपन, अन्नमें अरुचि, नासिकासे गरम गरम जलका झरना, आवाज कुछ मन्दी हो, और शरीरका कृश होना, वार वार थूकना, यह आम-(कच्चे) पीनसके लक्षण हैं और जिस्में इसी पूर्वोक्त आम पीनसकेभी लक्षण हों और कफ गाढा हो गया हो, और जलमें गेरनेसे डूबजाय, और मुखसे साफ अवाज निकले, और मुखका रंग (रूहानी) अच्छा होय, तो जानना कि यह पीनस पक गया है।

प्रतिश्यायकी संप्राप्ति

संधारणाजीर्णरजोतिभाष्यक्रोधर्त्तुवैषम्यशिरोभितापैः । प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतावश्यायतोमैथुनबाष्पशोषैः ॥१३॥ संस्त्यानदोषेशिरसिप्रवृद्धोवायुःप्रतिश्यायमुदीरयेच्च ।

अर्थ–वेगोंके रोकनेसे, अजीर्णकारक पदार्थोंके खानेसे, रज (धूल)के नासिकाके भीतर जानेसे अत्यंत भाषण (अत्यंत पढने)से, और अत्यंत गुस्सा करनेसे, तथा ऋतुविपर्यय अर्थात् एक ऋतुमें दूसरे ऋतुके लक्षण होनेसे, शिरोभिताप अर्थात् ग्रीष्म ऋतुमें शिरसे अत्यन्त धूपसेवन करनेसे, रात्रिमें जागनेसे, दिनमें विशेष सोनेसे, और शीत पदार्थोंके अधिक सेवन करनेसे, इसी तरह कोहरके खानेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे, पसीना अथवा आंसुओंके रुकनेसे, शिरमें दोष इकट्ठे हों फिर वायू वृद्धिंगत होकर प्रतिश्याय रोग पीनस उत्पन्न करे ये कारण सद्योजनक अर्थात् तत्काल पीनस करनेवाले हैं।

चयादिक्रमसे इसका दूसरा निदान

चयंगतामूर्द्धनिमारुतादयःपृथक्समस्ताश्चतथैवशोणितम् ॥१४॥ प्रकुप्यमानाविविधैःप्रकोपनैस्ततःप्रतिश्यायकराभवन्ति ।

अर्थ–मस्तकमें पृथक् वातादि दोष तथा सर्व दोष उसी प्रकार रुधिर संचय होकर अनेक प्रकारके कारणोंसें (बलवानसे वैर करना दिवास्वापादि) कुपित होकर प्रतिश्याय उत्पन्न करें।

पूर्वरूपके लक्षण

क्षवप्रवृत्तिःशिरसोऽतिपूर्णतास्तम्भोंऽगमर्दःपरिहृष्टरोमता ।

उपद्रवाश्चाप्यपरेपृथग्विधानृणांप्रतिश्यायपुरःसराःस्मृताः ॥१६ ॥

अर्थ-छींकका आना, मस्तकका भारी होना, अंगोंका जिकडजाना, तथा अंगोंका टूटना, रोमांच अवमंथसे आदिले और धूमादिक (१) तत्काल होनेवाले उपद्रव होंय तव पीनस हानेहार होती है तब ये लक्षण होते हैं ।

वातिकप्रतिश्यायके लक्षण

आनद्धापिहितानासातनुस्रावप्रसेकिनी । गलताल्वोष्ठशोषश्च निस्तोदःशंखयोरपि ॥ १७ ॥ भवेत्स्वरोपघातश्चप्रतिश्याये-ऽनिलात्मजे ।

अर्थ-जिसकी नाकका मार्ग रुकजाय, आच्छादित होजाय, और उसमेंसे पतला पानी निकले, गला तालु होठ ये सूखजाय, और कनपटी दूखे, गला बैठजाय, ये वातके पीनसके लक्षण हैं।

पैत्तिकप्रतिश्यायके लक्षण

उष्णःसपीतकःस्रावोघ्राणात्स्रवतिपैत्तिके ॥ १८ ॥ कृशोति-पाण्डुःसन्तप्तोभवेदुष्णाभिपीडितः । सधूममग्निसहसावम-तीवचनासया ॥ १९ ॥

अर्थ-जिसकी नाकसे दाह और पीला स्राव होवे, वह मनुष्य कृश और पीला होजाय, उसका देह गरम रहे, नाकसे अग्निके समान धुआं निकले, यह पित्तकी पीनसके लक्षण हैं ।

श्लेष्मिकके लक्षण

घ्राणात्कफःकफकृतेश्वेतःपीतःस्रवेद्बहुः । शुक्लावभासःशूना-क्षोभवेद्गुरुशिरानरः ॥ २० ॥ कंठताल्वोष्ठशिरसांकंडूभिरभि-पीडितः ।

अर्थ-नाकसे सफेद पीला बहुत कफ गिरै, उसकी देह सफेद होजाय, नेत्रोंके ऊपर सूजन होय, और मस्तक भारी रहै, और गला तालु होठ और शिर इनमें खुजली विशेष चले, ये कफकी पीनसके लक्षण हैं ।

---

१ पूर्वरूपाणि दृश्यन्ते प्रतिश्याये भविष्यति । [illegible] स्वसा मुखस्राव: शिरस्याभृतम् तथा ॥

सन्निपातके लक्षण

भूत्वाभूत्वाप्रतिश्यायोयस्याकस्मान्निवर्त्तते ॥ २१ ॥
सपक्वोवाप्यपक्वोवासतुसर्वभवःस्मृतः ॥ २२ ॥

अर्थ-जिसकी नाकमें पूर्वोक्त कहे सो सर्व लक्षण मिलें, तथा वह पीनस वारंवार होकर पककर अथवा विना पके नष्ट होजाय, उसको सन्निपातकी पीनस कहते हैं यह विदेह[1] आचार्यके मतसे असाध्य है।

दुष्टप्रतिश्यायके लक्षण

प्रक्लिद्यतेपुनर्नासापुनश्चपरिशुष्यति । पुनरानह्यतेचापिपुनर्विव्रीयतेतथा ॥ २३ ॥ निश्वासोवातिदुर्गंधोनरोगंधंनवेत्तिच । एवंदुष्टप्रतिश्यायंजानीयात्कृच्छ्रसाधनम् ॥ २४ ॥

अर्थ-वारंवार जिसकी नाक झडा करे, और सूखजाय, और नाकसे अच्छी तरह श्वास नहीं आवै, नाक रुकजाय, और फिर खुलजाय, श्वास लेनेमें वास आवै, तथा उस रोगीको सुगंध दुर्गंधका ज्ञान जाता रहे, ऐसे लक्षण होनेसे इसको दुष्प्रतिश्याय कहते हैं यह कष्टसे साध्य होती है यह पीनस पांच पीनसोंके अंतर्गत जाननी इनकाही भेद है यह छठी नहीं हैं।

रक्तप्रतिश्यायके लक्षण

रक्तजेतुप्रतिश्यायेरक्तस्रावःप्रवर्तते । ताम्राक्षश्चभवेज्जंतुरुरोघातप्रपीडितः ॥२५॥ दुर्गंधाच्छ्वासवदनोगंधानपिनवेत्तिसः २६

अर्थ-रुधिरकी पीनसमें नाकसे रुधिर गिरे, नेत्र लाल होंय, उरःक्षतकी पीडाके सदृश पीडा होय, श्वास अथवा मुखमें वास आवै, दुर्गंधिका ज्ञान नहीं होय, उरःक्षतके लक्षण[2] ग्रन्थान्तरमें लिखे हैं सो जानने, किसी पुस्तकमें 'पित्तप्रतिश्यायकृतैर्लिंगैश्चापिसमन्वितः' ऐसा पाठ है इसका अर्थ यह है कि जिसमें पित्तकी पीनसके लक्षण मिलते हों।

असाध्यलक्षण

सर्वएवप्रतिश्यायानरस्याप्रतिकारिणः । दुष्टतांयान्तिकाले-

---

१ नृणां दुष्टप्रतिश्यायः सर्वजश्च न सिध्यति इति विदेहः ॥

२ उरःक्षतं गुरुस्तब्धः पूतिकर्णकफो रसः । सकासः सज्वरो ज्ञेय उरोघातः सपीनसः ॥ अत्र पित्तप्रतिश्यायलिंगान्यपि बोद्धव्यानि तुल्यात् पित्तरक्तयोः ॥

नतदाऽसाध्याभवंतिच ॥२७॥ मूर्च्छंतिक्रमयश्चात्रश्वेताःस्नि-
ग्धास्तथाऽणवः । क्रमिजोयःशिरोरोगस्तुल्यंतेनास्यलक्षणम् २८

अर्थ–सर्व पीनस औषधी न करनेसे असाध्य होती हैं, इसमें नाकमें कीडा पडजाय वो कृमि सफेद चिकने और वारीक होते हैं, कृमिज शिरोरोगोंके सदृश लक्षण होंय, कृमिज शिरोरोगके लक्षण शिरोरोगमें कह आये हैं।

प्रतिश्याय और विकारोंकोभी करता है उनको कहते हैं

बाधिर्यमांद्यमघ्रत्वंघोरांश्चनयनामयान् ।
शोथाग्निसादकासादीनवृद्धाःकुर्वन्तिपीनसाः ॥ २९ ॥

अर्थ–पीनस बढनेसे बहरा होजाय, मंद दीखे, वास आवे नहीं, भयंकर नेत्ररोग होय, सूजन मंदाग्नि खांसी इत्यादि विकार होते हैं, सुश्रुतमें नासिकाके ३१ रोग कहेहैं और इस जगह पीनससे लेकर प्रतिश्यायपर्यन्त १९ रोग कहे हैं बाकी १६ रोगोंको संख्या पूर्णके वास्ते लिखते हैं।

अर्बुदंसप्तधाशोथाश्चत्वारोऽर्शश्चतुर्विधम् ।
चतुर्विधंरक्तपित्तमुक्तंघ्राणेऽपितद्विदुः ॥ ३० ॥

अर्थ–सात प्रकारका अर्बुद रोग, चार प्रकारके शोथ (सूजन) चार प्रकारका अर्श, और चार प्रकारके रक्तपित्त, ये पूर्वोक्त कहे रोग सोलह होते हैं।

वात पित्त कफ रुधिर मांस मेदकरके छः हुए और सातवा शाल्याचय सिद्धांतके मतसे सन्निपातका ऐसे सात प्रकारका अर्बुदरोग हुआ।

वात पित्त कफ सन्निपातके भेदसे चार प्रकारकी सूजन भई तथा वात पित्त कफ सन्निपातके भेदसे चारही प्रकारकी अर्श (बवासीर) और चारही प्रकारका रक्त, रक्तपित्तकी समानतासे एकही जानना, पूर्वोक्त पीनससे लेकर प्रतिश्याय पर्यंत १९ भए और अर्बुदादि १६ हुए, ऐसे सब मिलकर नासिकारोग ३१ हुए।

इति श्रीमाधवार्थदीपिकामाथुरीभाषाटीकायां नासिकारोगनिदानं समाप्तम् ॥

नेत्ररोगनिदानम् ।



कारण

उष्णाभितप्तस्यजलप्रवेशाद्दूरेक्षणात्स्वप्नविपर्ययाच्च । स्वे-

दाद्रजोधूमनिषेवणाच्चछर्देर्विघाताद्वमनातियोगात् ॥ १ ॥
द्रवान्नपानातिनिषेवणाच्चविण्मूत्रवातक्रमनिग्रहाच्च । प्रस-
क्तसंरोदनशोककोपाच्छिरोभिघातादतिमद्यपानात् ॥ २ ॥
तथाऋतूनांचविपर्ययेणक्लेशाभिघातादतिमैथुनाच्च । बाष्प-
ग्रहात्सूक्ष्मनिरीक्षणाच्चनेत्रेविकारान्जनयंतिदोषाः ॥ ३ ॥

अर्थ—गरमीसे तप्तहोकर जलमें प्रवेश (स्नानादि करना ऐसा करनेसे शीतलतामें शरीर व्याप्त होकर शरीरको गरमी ऊपर चढकर नेत्रके तेजको पराभव करनेसे नेत्ररोग उत्पन्न होता है) दूरकी वस्तुको देखनेसे, दिनमें सोना, और रात्रिमें जागनेसे नेत्रमें पसीना जानेसे, अथवा वाफ लगनेसे, अथवा नेत्रोंमें धूल जानेसे अथवा धूंआ जानेसे वमनके वेगको रोकनेसे अथवा बहुत वमन (रद्द) होनेसे पतले अन्नपानके अत्यंत सेवन करनेसे विष्ठा मूत्र और अधोवायु इनके वेगको धीरे धीरे निग्रह (कहिये वेग धारण करनेसे) निरंतर रुदन करनेसे, शोकसे कोपसे मस्तकमें चोट लगनेसे, अति मद्यपान करनेसे, उसी प्रकार ऋतुके विपर्यय (अर्थात् शीत कालमें गरमी और गरमीमें शीतकाल) होनेसे, क्लेश कहिये कामादिक दुःख उससे अभिघात कहिये दुःख होनेसे, अति मैथुन करनेसे, अश्रुपातका वेग धारण करनेसे, और सूक्ष्म पदार्थके अवलोकन करनेसे वातादिदोष नेत्रोंमें रोग पैदा करते हैं सुश्रुतमें नेत्ररोगकी संप्राप्ति इस प्रकार लिखी है ।

यथा

शिरानुसारिभिर्दोषैर्विगुणैरूर्ध्वमाश्रितैः ।
जायन्तेनेत्रभागेषुरोगाःपरमदारुणाः ॥ ४ ॥

अर्थ—कुपित हुए वातादिदोष नेत्रोंकी नसोंमे प्राप्ति हो नेत्रोंका भाग व्याप्त करनेसे उनमें भयंकर रोग उत्पन्न होता है, ये वात पित्त कफ रुधिर सन्निपात और आगंतु इनसे होनेवाले ऐसे नेत्ररोग ७६ हैं ।

नेत्ररोगका प्रायः अभिष्यंद (नेत्रआना) होता है
इसीसे प्रथम उसको कहते हैं

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तादभिष्यन्दश्चतुर्विधः ।
प्रायेणजायतेघोरःसर्वनेत्रामयाकरः ॥ ५ ॥

अर्थ—वात पित्त कफ और रुधिर इनसे चार प्रकारका अभिष्यन्द रोग होता

है, इसकी पीडा नष्ट नहीं होय, तथा यह अभिष्यन्दरोग सर्व नेत्ररोगोंका (अधिमंथादिक उत्पत्तिस्थान जानना सो सुश्रुतमें लिखा है इस रोगको भाषामें नेत्र दूखना कहते हैं अथवा आंखआई कहते हैं)।

वाताभिष्यंदके लक्षण

निस्तोदनस्तंभनरोमहर्षसंघर्षपारुष्यशिरोभितापाः।

विशुष्कभावःशिशिराश्रुताचवाताभिपन्नेनयनेभवन्ति ॥ ६ ॥

अर्थ-वादीसे नेत्र दूखने आये हों उनमें सुई चुभानेकीसी पीडा हो, नेत्रोंका स्तम्भन (ठहरजाना) रोमांच, नेत्रोंमें रेत गिरनेके समान खटकें, तथा रूक्ष होंय मस्तकमें पीडा हो, नेत्रोंसे पानी गिरे, परन्तु नेत्र सूखेसे रहैं और नेत्रोंसे जो पानी गिरे वो शीतल हो।

पित्ताभिष्यंदके लक्षण

दाहप्रपाकौशिशिराभिनन्दाधूमायनंबाष्पसमुच्छ्रयश्च।

उष्णाश्रुतापीतकनेत्रताचपित्ताभिपन्नेनयनेभवन्ति ॥ ७ ॥

अर्थ-पित्तसे नेत्र दूखने आनेसे उनमें बहुत दाह हो, नेत्र पकजाय, उनमें शीतल पदार्थ लगानेकी इच्छा हो, नेत्रोंसे धुआं निकले, अथवा नेत्रोंमें धुआं-जानेकीसी पीडा हो, तथा नेत्रोंसे अश्रु (आंसू) बहुत पडें, और गरम पानी निकले, आंख पीलीसी मालूम पडें।

कफजाभिष्यंदके लक्षण

उष्णाभिनन्दागुरुताक्षिशोथःकण्डूपदेहावतिशीतताच।

स्रावोबहुःपिच्छिलएवचापिकफाभिपन्नेनयनेभवन्ति ॥ ८ ॥

अर्थ-कफसे नेत्र दूखने आये हों उसको गरम वस्तु नेत्रोंमें लगानेसे आराम मालूम हो, (अर्थात् नेत्रमेंसे कसा मालूम हो,) तथा नेत्र भारी होंय, सूजन हो, खुजली चले, कीचडसे नेत्र दूषित हों, और शीतल हों, उनमेंसे स्राव होय, सो गाढा और बहुत होय।

रक्तजाभिष्यंदके लक्षण

ताम्राश्रुतालोहितनेत्रताचराज्यःसमंतादतिलोहिताश्च।

पित्तस्यलिंगानिचयानितानिरक्ताभिपन्नेनयनेभवंति ॥ ९ ॥

अर्थ-रक्ताभिष्यंदसे नेत्रोंसे लाल पानी गिरे, नेत्र लाल होंय और नेत्रोंमें

ओरपासरे खामी लाल लाल दीखें, और जो पित्ताभिष्यंदके लक्षण कहे हैं वो सब लक्षण इसमें होवैं ।

अभिष्यंदसे अधिमंथकी उत्पत्ति होती है सो कहते हैं

वृद्धैरेतैरभिष्यंदैर्नराणामक्रियावताम् ।
तावंतस्त्वधिमंथाःस्युर्नयनेतीव्रवेदनाः ॥ १० ॥

अर्थ–इस अभिष्यंदमें औषधोपचार न करनेसे यह बढकर उतनेही (चार) अभिष्यंदरोग नेत्रोंमें प्रगट होंय, इससें नेत्रोंमें तीव्र पीडा होय, यह अधिमंथके सामान्य लक्षण हैं वेदनाशब्द इस जगह व्यथामात्रका वाचक है इससे यह प्रगट हुआ कि वातके अभिष्यंदसे वातिक अधिमंथ प्रगट होय उसमें तीव्र वातज सर्व निस्तोदादि पीडायुक्त होय, इसी प्रकार पित्तकेसे, कफकेसे, रुधिरकेसे, पित्त कफ रुधिरके अधिमंथ स्वलक्षणकरके जानने ।

दूसरे सामान्य लक्षण

उत्पाट्यतइवात्यर्थंनेत्रंनिर्मथ्यतेतथा ।
शिरसोऽर्द्धंचतंविद्यादधिमंथंस्वलक्षणैः ॥ ११ ॥

अर्थ–आधे शिरमें उपाडनेकीसी पीडा होय, अथवा तोडनेकीसी, तथा मथनेकीसी पीडा हो, व्याधिके प्रभावसे आधे शिरमें पीडा हो, इससे अधिमंथ कहते हैं । इनके लक्षण वातज अभिष्यंदके समान जानने ।

दोषभेदसे कालमर्यादाके लक्षण

हन्याद्दृष्टिंश्लैष्मिकःसप्तरात्राद्योऽधीमंथोरक्तजःपंचरात्रात् ।
षड्रात्राद्वावातिकोवैनिहन्यान्मिथ्याचारात्पैत्तिकःसद्यएव ॥ १२ ॥

अर्थ–कफका अधिमंथ सातदिनमें दृष्टिका नाश करे, रक्तज अधिमंथ पांच दिनमें, वातिक अधिमंथ छः दिनमें, और पैत्तिक अधिमंथ मिथ्योपचारसे तत्काल (तीनदिनमें) दृष्टिका नाश करे, (अर्थात् आंख जाती रहे) इस जगह जो कालकी अवधि कहीहै सो व्याधिके स्वभावसे तथा लंघन प्रलेपादि क्रियाकरके तथा अंजननिषेधके निमित्त कहा है ।

नेत्ररोगके सामान्य लक्षण

उदीर्णवेदनंनेत्रंरागोद्रेकसमन्वितम् ।
घर्षनिस्तोदशूलाश्रुयुक्तमामान्वितंविदुः ॥ १३ ॥

अर्थ—जिस नेत्ररोगमें पीडा विशेष होय, लाली बहुत होकर चमका चलें, तथा उसमें घर्ष (रेत गिरनेसे जैसी पीडा होती है वैसी) पीडा होय, सुई चुभानेकीसी पीडा होय, शूलसा चले, और स्रावयुक्त होवे, उन नेत्रोंको आमयुक्त जानना। अंजन लगानेसे तथा हलका अन्न खानेसे ये लक्षण कहे हैं।

निरामके लक्षण

मन्दवेदनताकण्डूःसंरम्भाश्रुप्रशान्तता।
प्रसन्नवर्णताचाक्ष्णोःसंपक्कंदोषमादिशेत्॥ १४॥

अर्थ—नेत्रोंमें पीडा कम होवे, खुजली चले, सूजन मंद होय, आंसुओंका गिरना बंद होय, नेत्रोंका वर्ण स्वच्छ होय, ये दोष पक होनेके लक्षण हैं।

शोथसहितनेत्रपाकके लक्षण

कण्डूपदेहाश्रुयुतःपक्कोदुंबरसन्निभः।
संरम्भीपच्यतेयस्तुनेत्रपाकःसशोफजः॥ १५॥
शोथहीनानिलिंगानिनेत्रपाकेत्वशोथजे।

अर्थ—नेत्रोंमें सूजन आकर पकजाय, उनमें आंसू बहें, और पके गूलरके समान लाल होंय, ये लक्षण शोथसहित नेत्ररोगके हैं और शोथ (सूजन)के विना जो नेत्रपाक होय उसमें शोथको छोडकर सब लक्षण होंय, यह व्याधि त्रिदोषजन्य जाननी।

हताधिमंथके लक्षण

उपेक्षणादक्षियदाऽधिमंथोवातात्मकःसादयतिप्रसह्य।
रुजाभिरुग्राभिरसाध्यएषहताधिमंथःखलुनेत्ररोगः॥ १६॥

अर्थ—वातज अधिमंथको उपेक्षा करनेसे वह नेत्रोंको सुखाय देवे, उस मनुष्यके नेत्रोंमें तोद (सुईके चुभानेकीसी पीडा) दाहादि भारी पीडा होय, यह हताधिमंथनामक नेत्ररोग असाध्य है इसी रोगको विदेह दृष्ट्युत्क्षेपणं कहता है अथवा दृष्टिनिर्गम तथा सकलाक्षिशोषभी जानना यही सुश्रुतकोभी मंत है इसरोगसे नेत्र सूखे कमलके समान होजाते हैं।

---

१ अंतर्गतः शिराणा तु यदा तिष्ठति मारुतः। स तदा नयनं प्राप्य शीघ्रं दृष्टिं निरस्यति॥ तस्यां निरस्यमानायां निर्मथन्निव मारुतः। नयनं निर्वमत्याशु शूलतोदादिमंथनैः॥

२ अंतःशिराणां श्वसनः स्थितो दृष्टिं च प्रक्षिपन्। हताधिमंथं जनयेत्तमसाध्यं विदुर्बुधाः॥इति विदेहः॥ अथवा शोषयेदक्ष्णोः क्षीणात्तेजोत्रलादयम्॥ तत्पद्मामिव संशुष्कं सवदेदितिलोचनम्॥

वातपर्ययके लक्षण

वारंवारंचपर्येतिभ्रुवौनेत्रेचमारुतः ।
रुजश्चविविधास्तीव्राःसज्ञेयोवातपर्ययः ॥ १७ ॥

अर्थ-वायु क्रमसे कभीकभी भृकुटीमें प्राप्त हो और कभीकभी नेत्रोंमें प्राप्त होकर और अनेकप्रकारकी तीव्र पीडा करे उसको वातपर्यय कहते हैं ।

शुष्काभिपाकके लक्षण

यत्कूणितंदारुणरूक्षवर्त्मसंदह्यतेचाविलदर्शनंच ।
सुदारुणंयत्प्रतिबोधनेचशुष्काक्षिपाकोपहतंतदक्षि ॥ १८ ॥

अर्थ-जो नेत्र खुले नहीं अर्थात् संकुचित होजाय, जिनकी वाफणी कठिण और रूक्ष होय, जिसके नेत्रोंमें दाह विशेष होय, यथार्थ दीखे नहीं, जो खोलनेमें बहुत दुःख होय, उन नेत्रोंको शुष्काभिपाकनामक रोगसे पीडित जानना। यह रोग रक्तसहित वादीसे होता है सो करालाचार्यने लिखा है ।

अन्यतोवातके लक्षण

यस्यावटूकर्णशिरोहनुस्थोमन्यागतोवाप्यनिलोऽन्यतोवा ।
कुर्याद्रुजंवैभ्रुविलोचनेचतमन्यतोवातमुदाहरंति ॥ १९ ॥

अर्थ-घाटी (घार) कान, मस्तक, ठोडी, मन्या नाडी इनमें अथवा इतर ठिकाने स्थित जो वायु भृकुटी (भोंह) वा नेत्रोंमें तोद भेदादि पीडा करे इस रोगको अन्यतोवातरोग कहते हैं अर्थात् अन्य स्थानोंमें स्थित होकर अन्यस्थानोंमें पीडा करे, इसीसे इसको अन्यतोवातरोग कहते हैं सो विदेहका मतभी है ।

अम्लाध्युषितके लक्षण

श्यावंलोहितपर्यन्तंसर्वंचाक्षिप्रपच्यते ।
सदाहशोथंसास्रावमम्लाध्युषितमम्लतः ॥ २० ॥

अर्थ-मध्यमें कुछ नीलवर्ण, और आस पास लाल भरा हो ऐसे सर्व नेत्र पकजाय, और उन्में पीले रंगकी फुंसी होय, उनमें दाह होकर सूजन होय, तथा नेत्रोंसे पानी झरे, यह रोग अम्ल (खटाई आदि खानेसे होता है, सुश्रुतके मतसे यह रोग पित्तसे होता है) इसको अम्लाध्युषित कहते हैं ।

---

१ कुणितः खरवर्त्मासिकृच्छ्रोन्मीलाविलक्षणम् । सदाहमासृजोवातच्छुष्कपाकान्वितं वदेत् ॥

२ मन्यानामन्तरे वायुरुत्थितः पृष्ठतोपि वा । करोति भेदं निस्तोदं शंखं चाक्ष्णोः स्रवस्तथा ॥ तमाहुरन्यतोवातं रोगं दृष्टिविदो जनाः ॥ इति ॥

शिरोत्पातके लक्षण

अवेदनावापिसवेदनावायस्याक्षिराज्योहिभवंतिताम्राः।
मुहुर्विरज्यंतिचयाःसदाहग्व्याधिःशिरोत्पातइतिप्रदिष्टः ॥२१॥

अर्थ-जिसकी नेत्रकी नस पीडासहित अथवा पीडारहित तांबेके समान लाल रंगकी होजाय, और वह बराबर अधिकाधिक (जियादासे जियादा)लाल होजाय, इस रोगको शिरोत्पात्त (सबलवायु) कहते हैं। यह रोग रक्तजन्य है।

शिराहर्पके लक्षण

मोहाच्छिरोत्पातउपेक्षितस्तुजायेतरागस्तुशिराप्रहर्षः।
ताम्राक्षमस्त्रंस्त्रवतिप्रगाढंतथानशक्नोत्यभिवीक्षितुंच ॥ २२॥

अर्थ-अज्ञानकरके शिरोत्पात (सबल)वायुकी उपेक्षा करनेसे अर्थात् इलाज न करनेसे शिराप्रहर्परोग होता है उसमें नेत्रोंसे लाल स्वच्छ ऐसे आंसू गिरें, और उस रोगीको नेत्रोंसे कुछ दिखलाई न देवे।

इति सर्वगता रोगाः।

अब नेत्रोंके काले रंगमें होनेवाले रोग कहते हैं

सव्रणशुक्रलक्षण

निमग्नरूपंतुभवेद्धिकृष्णेसूच्येवविद्धंप्रतिभातियद्वै।
स्रावंस्रवेदुष्णमतीवयच्चतत्सव्रणंशुक्रमुदाहरंति ॥ २३ ॥

अर्थ-नेत्रके कालेभागमें शुक्रकहिये फूलसा होजाय, और वह भीतरसे गडासा होजाय उसमें सुई चुभानेकीसी पीडा होवे, तथा नेत्रोंसे अति गरम और बहुतसा स्राव होवे, इस रोगको सव्रणशुक्र कहते हैं इसमें पीडा बहुत होतीहै, क्षतमें पीडा होना ठीकहीहै और नेत्रसरीखे सुकुमार ठिकानेपर तो विशेष पीडा होती है ऐसें भोजविदेहादिकोंका मत है।

सव्रणशुक्रके साध्यासाध्यलक्षण

दृष्टेःसमीपेनभवेत्तुयत्तुनचावगाढंनचसंस्रवेद्धि।
अवेदनंवानचयुग्मशुक्रंतत्सिद्धिमायातिकदाचिदेव ॥ २४ ॥

अर्थ-जो शुक्र (फूल) दृष्टीके समीप होय नहीं, और एक त्वचामें हो, बहुत स्रवे (झरे)नहीं, जिसमें पीडा न होय, और एकही स्थानमें दो बूंद (फूल) न होंय, ऐसा शुक्र कदाचित् अच्छाभी होजाय परन्तु इनसे विपरीत लक्षण हु-

ष्टीके समीप होना दूसरी त्वचामें होय बहुत स्रवे पीडा होय एक स्थानमें दो बूंद होंय यह शुक्र अच्छा नहीं होय।

अव्रणशुक्रलक्षण

स्यन्दात्मिकंकृष्णगतंसचोषंशंखेन्दुकुन्दप्रतिमावभासम्।
वैहायसाभ्रप्रतनुप्रकाशमथाव्रणंसाध्यतमंवदन्ति ॥ २५ ॥

अर्थ–अभिष्यन्दसे उत्पन्नहोकर नेत्रोंके काले भागमें चोप (कहिये सींग तुमडीकी पीडा)युक्त, शंख चन्द्र कुन्दपुष्प इनके समान सफेद आकाशके समान पतला ऐसा जो व्रणरहित शुक्र होय, उसको सुखसाध्य कहते हैं।

अव्रणशुक्र अवस्थाविशेषकरके साध्य होय है सो कहते हैं.

गम्भीरजातंबहलंचशुक्रंचिरोत्थितंवापिवदन्तिकृच्छ्रं।

अर्थ–जो शुक्र गंभीर हो अर्थात् दो तीन त्वचाके भीतर हुआ हो तथा मोटा हो उसको कृच्छ्रसाध्य कहते हैं।

अव्रण अवस्थाभेदकरके असाध्य होता है उसको कहते हैं

विच्छिन्नमध्यंपिशितावृतंवाचलंशिरासूक्ष्ममदृष्टिकृच्च ॥ २६ ॥
द्वित्वग्गतंलोहितमन्ततश्चचिरोत्थितंचापिविवर्जनीयम्।

अर्थ–जो शुक्रके वीचका मांस गिरजाय, इसीसे शुक्रके स्थानमें गढेला होजाय, अथवा इसके विपरीत कहिये पिशितावृत (अर्थात् उसके चारों ओर मांस होय) चंचल कहिये एक ठिकाने न रहे, शिरान्करके व्याप्त हो, वारीक होगया हो, दृष्टि नाश करनेवाला (यह 'दृष्टेः समीपे न भवेत्' इसका उलटा है) दो पटल कहिये परदोंके भीतर भया हो चारों ओरसे लाल हो और वीचमें सफेद और बहुत दिनका शुक्र हो ऐसेको वैद्य त्याग दे।

दूसरे असाध्य लक्षण

उष्णाश्रुपातःपिडिकाचनेत्रेयस्मिन्भवेन्मुद्गनिभंचशुक्रं ॥ २७ ॥
तदप्यसाध्यंप्रवदंतिकेचिदन्यच्चयत्तित्तिरिपक्षतुल्यम् ॥ २८ ॥

अर्थ–जिसके नेत्रोंसे गरम अश्रुपात (आंसू) गिरकर पिडिका उत्पन्न होवे (दो पटलमें शुक्र जानेसे ये लक्षण होते हैं) तथा जिसमें मूंगके वरावर शुक्र होवे ऐसा नेत्रका शुक्र असाध्य है और जो तीतरके पंखके समान (कहिये काले रंगका) होवे, उसकोभी कोई कोई असाध्य कहते हैं।

अक्षिपाकात्ययके लक्षण

श्वेतःसमाक्रामतिसर्वतोहिदोषेणयस्यासितमण्डलन्तु ।
तमक्षिपाकात्ययमक्षिपाकंसर्वात्मकंवर्जयितव्यमाहुः ॥ २९ ॥

अर्थ-नेत्रके कृष्णभागमें दोषोंके योगसे चारों और सफेद (शुक्र) फैल जावै यह सान्निपातजन्य अक्षिपाकात्ययनामक रोग त्याज्य है ऐसे कहाहै।

अजकाजातके लक्षण

अजापुरीषप्रतिमोरुजावान्सलोहितोलोहितपिच्छिलाश्रुः ।
विगृह्यकृष्णंप्रपयोऽभ्युपैतितच्चाजकाजातमितिव्यवस्येत्॥३०॥

इति कृष्णजाः

अर्थ-काले भागमें बकरीके शुष्क विष्ठाके समान दूखनेवाला लाल हो, और गाढा कुछ कालेसे आंसू बहैं, उसको अजकाजात[1] ऐसे जानना चाहिये।

इति कृष्णजारोगः ॥

दृष्टिके रोग

पहले पटलमें दोष जानेसे उसके लक्षण

प्रथमेपटलेयस्यदोषोदृष्टिंव्यवस्थितः ।
अव्यक्तानिचरूपाणिकदाचिदथपश्यति ॥ ३१ ॥

अर्थ-प्रथम पटलमें दोष स्थित होनेसे वह पुरुष अव्यक्तरूप (घटपटादि पदार्थ) देखे। दृष्टिका प्रमाण सुश्रुतमें कहा है।

यथा

मसूरदलमात्रन्तुपंचभूतप्रसादजम् ।

अर्थ-आधे मसूरदलके समान पंचभूत (पृथ्वी जल तेज वायु आकाशसे) प्रगट है * शंका-इस श्लोकमें तो मसूरदलके समान लिखा है फिर आधे मसूरके समान ऐसा अर्थ आपने कैसे किया * उत्तर-तुमने कहा सो ठीक है परंतु यह अर्थ हमने निमि आचारीके मतसे लिखा है यथा " पंचभूतात्मिका दृष्टिर्मसूरार्द्धदलोन्मिता " इति। अब कहते हैं कि मंडल चार हैं सो सुश्रुतमें लिखा है।

---

१ अजकाजातकाभेद (विदेह) दूसरा कहता है । यथा-कृष्णेरक्ष्णोर्भवेच्छुक्र छगलीनिट्समप्रभं। सांद्रं पिच्छिलरक्तास्नत्रित्वगात्वजकेति सा ॥

यथा

तेजोजलाश्रितंबाह्येतेष्वन्यत्पिशिताश्रितम् ।
मेदस्तृतीयंपटलमाश्रितंत्वस्थिचापरम् ॥ ३२ ॥

अर्थ–प्रथम पटल रुधिर और जलाश्रित है, दूसरा पटल पिशित (मांस)के आश्रय है, तीसरा पटल (मेद)के आश्रित है, चौथा पटल अस्थि (हड्डी)के आश्रित है, इति । सुश्रुतमें नेत्ररोगके भेद बहुत लिखे हैं ।

द्वितीयपटलस्थितदोषके लक्षण

दृष्टिर्भृशंविव्हलतिद्वितीयंपटलंगते । मक्षिकामशकान्केशा-न्जालकानिचपश्यति ॥ ३३ ॥ मण्डलानिपताकाश्चमरी-चीन्कुण्डलानिच । परिप्लवांश्चविविधान्वर्षमभ्रंतमांसिच । ॥ ३४ ॥ दूरस्थानिचरूपाणिमन्यतेचसमीपतः । समीप-स्थानिदूरेचदृष्टेर्गोचरविभ्रमात् ॥ ३५ ॥ यत्नवानपिचात्य-र्थसूचीपाशंनपश्यति ।

अर्थ–दूसरे पटलमें दोषके जानेसे दृष्टि विव्हल हो जाय, (अर्थात् पदार्थोंके देखनेमें असमर्थ होय) उसी प्रकार नेत्रोंके आगे मक्खी मच्छर वाल जाली मंडल पताका किरण कुण्डल आदि अनेक प्रकारके जलके समूह वर्षा मेघ (बादल अंधकार ये नहीं दीखें, ये दृष्टि विव्हल होनेसे होते हैं और विषय भ्रान्तिसे दूरकी वस्तु समीप दीखे, और समीपकी दूर दीखै, और अनेक यत्न करनेसेभी सुईका छिद्र न दीखै ।

तृतीयपटलगतदोषके लक्षण

ऊर्ध्वंपश्यतिनाधस्तात्तृतीयंपटलंगते ॥ ३६ ॥ महांत्यपिच रूपाणिच्छादितानीवचाम्बरैः । कर्णनासाक्षिहीनानिविकृता निचपश्यति ॥ ३७ ॥ यथादोषंचरज्येतदृष्टिर्दोषेबलीयसि । अधःस्थेतुसमीपस्थंदूरस्थंचोपरिस्थिते ॥ ३८ ॥ पार्श्वस्थि-तेपुनर्दोषेपार्श्वस्थंनैवपश्यति । समन्ततःस्थितेदोषेसंकुला नीवपश्यति ॥ ३९ ॥ दृष्टिमध्यस्थितेदोषेमहद्ध्रस्वंचपश्य-

ति । द्विधास्थितेद्विधापश्येद्बहुधावाऽनवस्थिते ॥ ४० ॥ दो-
षेदृष्टिस्थितेतिर्यगेकंवैमन्यतेद्विधा ।

अर्थ–तीसरे पटलमें दोष जानेसे ऊपरकी वस्तु दीखे नीचेकी वस्तु नहीं दीखे, जो वस्तु वडी और भव्य होवै वह वस्त्रसे ढकीसी दीखे, कान नाक और नेत्र इनकरके रहित पुरुषोंको देखे, टेढे बॉके दीखे, और जिस वातादि दोपका रुधिर मांस मेदादिकोंके सहाय होनेसें उनमें जो दोष बलवान होय उसका जैसा रूप (रंग) होवे उसी प्रकारका दीखे, अर्थात् जिस जिस दोपका जैसा वर्ण होय वैसा दीखे, दोष नीचे स्थित होय तो समीपस्थ वस्तु नहीं दीखे, और ऊपर दोष स्थित होय तो दूरकी वस्तु न दीखे, और दोष पार्श्व (पसवाडे)में स्थित होनेसे पसवाडेकी वस्तु नहीं दीखे, और दोष दृष्टिमें सर्वत्र स्थित होवे तो उस पुरुषको सब चीज मिलीसी दीखें दृष्टिके मध्यमें दोष जानेसे वडी वस्तु छोटी दीखे, दो ठिकाने दोष रहनेसे एक वस्तुकी दो दीखें, और दोष अव्यवस्थित (अर्थात् एकही स्थानमें स्थित न होनेसे) एक वस्तुके दो टुकडेसे दिखलाई देवैं, दृष्टिगत दोष तिरछे स्थित होनेसे एक वस्तुके दो टुकडे दिखलाई देवें, यह स्वरूपोंका दीखना तीसरे (पटल)से प्रारंभ होता है, सो विदेहने लिखाभी है ।

चतुर्थपटलगततिमिरलक्षण

तिमिराख्यःसवैरोगश्चतुर्थपटलंगतः ॥ ४१ ॥ रुणद्धिसर्वतो
दृष्टिंलिंगनाशमतःपरं । अस्मिन्नपितमोभूतेनातिरूढेमहा-
गदे ॥ ४२ ॥ चन्द्रादित्यौसनक्षत्रावंतरिक्षेचविद्युतः । नि-
र्मलानिचतेजांसिभ्राजिष्णूनिचपश्यति ॥ ४३ ॥

अर्थ–वह तिमिररोग चौथे पटल (परदे)में पहुंचनेसे दृष्टिको चारों औरसे रोक दे, इसको कोई आचारी लिंगनाश कहते हैं और कोई तिमिर कहते हैं, यह अंधकारमय रोग अति बढजाय तब उस मनुष्यको आकाशमें चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, विजली, और निर्मलतेजभी यथार्थ नहीं दीखें, तेजके पुंजसे दीखें, लौकिकमें इस रोगको नजला कहते हैं लिंगनाशकी निरुक्ति 'लिंग्यते ज्ञायते इत्यनेनेति' 'लिंगमिन्द्रियशक्तिस्तस्य नाशो यस्मिन्निति लिंगनाशः' अर्थात् जिसक-

---

१ यथास्व रज्यते दृष्टिर्दोषैस्त्रिपटलस्थितैः । चतुर्थं पटलं प्राप्य मण्डलं लभते तुतैः ॥ इति ।

रके जाने सो कहिये लिंग (इन्द्री) उसका नाश जिसमें होय उसको लिंगनाश कहते हैं, और इसी रोगको लौकिकमें मोतियाबिन्दुभी कहते हैं ।

तृतीयपटलाश्रितकाचदोषकी दूसरी संज्ञा

सएवलिंगनाशस्तुनीलिकाकाचसंज्ञितः ।

अर्थ-तीसरे पटलगत कांच- (मोतियाविन्दु)की उपेक्षा करनेसे वही फिर चौथे पटलमें पहुंचता है, तब उसे लिंगनाश और नीलिका कहते हैं यह रोग असाध्य है सो निमिआचारी लिखते हैं परन्तु गदाधर आचारी कहते हैं कि विशेषकाचको नीलकाकाच कहते हैं ।

दोषविशेषकरके रूपका दीखना कैसा होता है

तत्रवातेनरूपाणिभ्रमन्तीवहिपश्यति । आविलान्यरुणाभानिव्याविद्धानीवमानवः ॥ ४२ ॥ पित्तेनादित्यखद्योतशक्रचापतडिद्गणान् । नृत्यन्तश्चैवशिखिनःसर्वनीलंचपश्यति ॥ ४३ ॥ कफेनपश्येद्रूपाणिस्निग्धानिचसितानिच । सलिलप्लावितानीवपरिजाड्यानिमानवः ॥ ४४ ॥ पश्येद्रक्तेनरक्तानितमांसिविविधानिच । ससितान्यथकृष्णानिपीतान्यपिचमानवः ॥ ४५ ॥ सन्निपातेनचित्राणिविप्लुतानिचपश्यति । बहुधाचद्विधावापिसर्वाण्येवसमंततः ॥ ४६ ॥ हीनांगान्यधिकांगानिज्योतींष्यपिचपश्यति ॥

अर्थ-वादीसे रोगीको मलिन, कुछ लाल, तिरछी, और भ्रमती, ऐसी वस्तु दीखे ।

पित्तसे सूर्य, खद्योत, (पटवीजना) इन्द्रधनुष, विजली इनको, और नाचनेवाले मोर, तथा सर्व वस्तू नीली दीखें ।

कफसे चिनकी, और सफेद, तथा पानीमें डबोई हुई निकालनेके समान, और भारी अैसा रूप दीखे ।

रुधिरसे लाल, और अनेक प्रकारका अंधकार, तथा किंचित सफेद, काली, और पीली ऐसी वस्तु दीखें ।

सन्निपातसे अनेक प्रकारके विपरीत (अर्थात् एककी अनेक दो अथवा अ-

---

१ काच इत्येष विजयो याप्यस्त्रिपटलस्थितैः । चतुर्थपटलं प्राप्तो लिंगनाशः स उच्यते ॥

नेक प्रकारके रूप दीखें) हीन अंगके अथवा अधिक अंगके रूप गोरी देखे, और ज्योतिस्वरूपसे सब पदार्थ दीखें।

पित्तसे दुसरे परिम्लायसंज्ञक तिमिर होय है

पित्तंकुर्यात्परिम्लायिमूर्छितंरक्ततेजसा ॥ ४७ ॥ पीतादिश स्तथोद्द्योतान्नवीनपिसपश्यति । विकीर्यमाणान्खद्योतैर्वृक्षां-स्तेजोभिरेवच ॥ ४८ ॥

अर्थ–रक्तके तेजसे मिश्रित हुए पित्तसे परिम्लायरोग होय, इसके योगसे रोगीको दिशा, आकाश, और सूर्य, ए पीले दीखें और सर्वत्र सूर्य उगेसे दीखें तथा वृक्षभी तेजस्वरूपसे दीखें, परिम्लायि पित्तको नील कहते हैं सो सात्यकिने लिखा है इस रोगको कोई आचारी रक्तपित्तसे होता है ऐसे कहते हैं सोभी लिखा है

रागभेदसे लिंगनाशको षड्विधत्व कहते हैं

वक्ष्यामिषड्विधंरागैर्लिंगनाशमतःपरम् । रागोऽरुणोमारुतजः प्रदिष्टोम्लायीचनीलश्चतथैवपित्तात् । कफात्सितःशोणितजः सरक्तोसमस्तदोषप्रभवोविचित्रः ॥ ४९ ॥

अर्थ–इसके अनन्तर रागभेदसे छः प्रकारका लिंगनाश होता है, सो इस प्रकार वातजन्य रंग लाल होय है पित्तसे म्लायी, पीला, नीला, अथवा नीलाही रंग होय कफसे सफेद, और रुधिरसे लाल, तथा सब दोषोंसे अनेक प्रकारका रंग होता है।

वातिकरागके विशेष लक्षण

अरुणंमण्डलंदृष्ट्यांस्थूलकाचारुणप्रभं । परिम्लायिनिरोगे स्यान्म्लायिनीलंचमण्डलं ॥ ५० ॥ दोषक्षयात्कदाचित्स्या-त्स्वयंतत्रप्रदर्शनम् ।

अर्थ–परिम्लायि रोगमें दृष्टिके ऊपर मोटा कांचके समान लाल मण्डल होता है, वह म्लान (लाल पीला) अथवा नीला होता है, उसमें दोष घटनेसे कदाचित् देखनेकी शक्ति होय इस जगह दोषशब्दकरके कोई कर्मका ग्रहण करते हैं।

---

१ एवमेव तु विज्ञेया नीलाः पित्तसमुद्भवा इति ॥

२ विदग्धापि परिम्लायि पित्तरक्तेन सगतम् । तेन पीता दिशः पश्येदुद्यन्तमिव भास्करम् ॥ इति ।

दृष्टिमण्डलगतरागके लक्षण

अरुणंमण्डलंवाताच्चंचलंपरुषंतथा ॥ ५१ ॥ पित्तान्मण्डलमानीलंकांस्याभंपीतमेवच । श्लेष्मणाबहलंस्निग्धंशंखकुन्देन्दुपाण्डुरं ॥ ५२ ॥ चलत्पद्मपलाशस्थःशुक्लोबिन्दुरिवांभसः । मृद्यमानेचनयनेमण्डलंतद्विसर्पति ॥ ५३ ॥ प्रवालपद्मपत्राभंमण्डलंशोणितात्मकं । दृष्टिरागोभवेच्चित्रोलिंगनाशेत्रिदोषजे ॥ ५४ ॥ यथास्वंदोषलिंगानिसर्वेष्वेवभवंतिहि ।

अर्थ—वादीसे दृष्टिमंडल लाल, चंचल, और खरदरा होता है पित्तसे दृष्टिमंडल किंचित् नीला, तथा कांचके समान पीला होवे कफसे भारी, चिकना, शंख, कुंदफूलके समान और चन्द्र इनके समान सफेद होय और उसके नेत्रमें हलनेवाला कमलपत्रके ऊपर पानीकी बूंदके समान टेढी तिरछी सफेद बूंद फैलीसी दिखलाई दे रुधिरसे दृष्टिमंडल मूंगाके समान अथवा लाल कमलके समान लाल होवै, और त्रिदोषज लिंगनाशमें तरह तरहके मंडल होंय, तथा सर्वदोषोंके लिंगमंडलमें वातादि दोषोंके न्यारे न्यारे लक्षण होंय ।

आगे कहे गये और पीछे कहे ऐसे दृष्टिरोगोंकी संख्या

षड्लिंगनाशाःषडिमेचरोगादृष्ट्याश्रयाःषट्चषडेवचस्युः ।

अर्थ—पूर्व कहे लिंगनाश रोग छः, और आगे विदग्धदृष्ट्यादि कहे गए वह छः ऐसे सब मिलकर बारह दृष्टिरोग होते हैं ।

पित्तविदग्धके लक्षण

पित्तेनदुष्टेनगतेनवृद्धिंपीताभवेद्यस्यनरस्यदृष्टिः ।
पीतानिरूपाणिचतेनपश्येत्सवैनरःपित्तविदग्धदृष्टिः ॥ ५६ ॥

अर्थ—पित्त दुष्ट होकर बढनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि पीली होय, तथा उसके योगसे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ पीले रंगके दीखें, उस दृष्टिको पित्तविदग्ध कहते हैं ।

दिवांधके लक्षण

प्राप्तेतृतीयंपटलंचदोषेदिवानपश्येन्निशिवीक्षतेसः ।
रात्रौसशीतानुगृहीतदृष्टिःपित्ताल्पभावादपितानिपश्येत् ॥ ३७ ॥

अर्थ-तिसरे पटलमें दोष (पित्त) जानेसे, दिनमें रोगीको नहीं दीखे, रात्रिमें शीतलताके कारण पित्त कम होनेसे दीखे।

कफविदग्धदृष्टिके लक्षण

तथानरःश्लेष्मविदग्धदृष्टिस्तान्येवशुक्लानिहिमंथनेतु।

अर्थ-इसी प्रकार, कफविदग्ध पुरुषको सफेद रूप दीखैं।

रक्तांध(रतोंध)के लक्षण

त्रिषुस्थितोयःपटलेषुदोषोनक्तांध्यमापादयतिप्रसह्य॥ ५८॥

दिवाससूर्यानुगृहीतदृष्टिःपश्यंतुरूपाणिकफाल्पभावात्।

अर्थ-जो दोष (कफ) तीनों पटलोंमें रहे वो रक्तांध रतोंध उत्पन्न करे, वो दिवस (दिन)में सूर्यके तेजसै कफ कम होनेसे दिनमें दीखे।

धूमदर्शीके लक्षण

शोकज्वरायासशिरोभितापैरभ्याहतायस्यनरस्यदृष्टिः॥ ५९॥

धूम्रांस्तथापश्यतिसर्वभावान्सधूमदर्शीतिनरःप्रदिष्टः।

अर्थ-शोक, ज्वर, परिश्रम, और मस्तकताप, इन कारणोंसे पित्त कुपित होकर जिसकी दृष्टिमें विकार होवे, उससे उस मनुष्यको सर्व पदार्थ धूआंके रंगके दीखें, इस रोगको धूमदर्शी वा शोकविदग्धदृष्टि कहते हैं इसमें दिनको धूआंके रंगके पदार्थ दीखे इसका कारण यह है कि रात्रिमें पित्तका तेज घटनेसे निर्मल दीखे।

ह्रस्वदृष्टीके लक्षण

योन्हस्वजात्योदिवसेषुकृच्छ्राद्ध्रस्वानिरूपाणिचतेनपश्येत्॥ ६०॥

अर्थ-जो ह्रस्वजात्य पुरुष होता है उसको दिनमें बडे पदार्थ छोटे दीखे, इसका कारण यह है कि उस समय दृष्टिके मध्य मतदोष होता है, यह रोगभी पित्तजन्य है।

नकुलांध्यके लक्षण

विद्योततेयस्यनरस्यदृष्टिर्दोषाभिपन्नानकुलस्ययद्वत्।

चित्राणिरूपाणिदिवासपश्येत्सवैविकारोनकुलांध्यसंज्ञः॥ ६१॥

अर्थ-जिस पुरुषकी दृष्टि दोषोंसे व्याप्त होकर नौलेकी दृष्टिके समान चमके, वह पुरुष दिनमें अनेक प्रकारके रूप देखे इस विकारको नकुलांध्य कहते हैं।

गम्भीरदृष्टीके लक्षण

दृष्टिर्विरूपाश्वसनोपसृष्टासंकोचमभ्यंतरतश्चयाति ।
रुजावगाढंचतमक्षिरोगंगम्भीरकेतिप्रवदंतितज्ज्ञाः ॥ ६२ ॥

अर्थ-जो दृष्टि वायुसे विकृत होकर भीतरको संकुचित होवे, तथा उसमें पीडा होवे, उसको गंभीरदृष्टि कहते हैं ।

आगंतुज लिंगनाशके लक्षण

बाह्योपुनर्द्वाविहसंप्रदिष्टौनिमित्ततश्चाप्यनिमित्ततश्च ।
निमित्ततस्तत्रशिरोभितापाज्ज्ञेयस्त्वभिष्यंदनिदर्शनःसः ॥ ६३॥

अर्थ-अभिघातज लिंगनाश दो प्रकारका है, एक निमित्तजन्य, दूसरा अनिमित्तजन्य, तिनमें शिरोभितापकरके (विषवृक्षके फलसे मिला पवनका मस्तकमें स्पर्श होनेसे) होय उसको निमित्तजन्य कहते हैं । इसमें रक्ताभिष्यंदके लक्षण होते हैं ।

अनिमित्तके लक्षण

सुरर्षिगंधर्वमहोरगाणांसन्दर्शनेनापिचभास्करस्य । हन्येतदृ-
ष्टिर्मनुजस्ययस्यसलिंगनाशस्त्वनिमित्तसंज्ञः ॥ ६४ ॥ त-
त्राक्षिविस्पष्टमिवावभातिवैदूर्यवर्णाविमलाचदृष्टिः ।

अर्थ-देव, ऋषि, गंधर्व, महासर्प, और सूर्य, इनके सन्मुख दृष्टिको लगाकर (टकटकी लगाकर) देखनेसे जिस मनुष्यकी दृष्टि नष्ट होय, उसको अनिमित्तलिंगनाश कहते हैं, इस रोगमें नेत्र स्वच्छ दीखते हैं, और दृष्टि वैदूर्य्यमणिके समान स्वच्छ कहिये श्यामवर्ण होय अब कहते हैं कि देवादिक भौतिक इंद्रियोंको नहीं बिगाडें, परन्तु उनकी शक्तिका नाश करते हैं, सो चरकमें[1] लिखा है ।

अर्मरोग (५) प्रकारका है

प्रस्तार्यमतनुस्तीर्णश्यावंरक्तनिभंसिते । सश्वेतंमृदुशुक्लार्म
शुक्लेतद्वर्धतेचिरात् ॥ ६५ ॥ पद्माभंमृदुरक्तार्मयन्मांसंची-
यतेसिते । पृथुमृद्वधिमांसार्मबहलंचयकृन्निभम् ॥ ६६ ॥
स्थिरंप्रस्तारिमांसाढ्यंशुष्कंस्नाय्वर्मपंचमम् ।

---

१ देवादयोप्टौ हि महाप्रभावा न दूषयंतः पुरुषस्य देहम् । विशंत्यदृश्यास्तरसा यथैव छायातयोर्दर्पणसूर्यकांतौ ॥

अर्थ—नेत्रोंके सफेद भागमें पतला, विस्तीर्ण, श्यामवर्ण, तथा लाल, ऐसा जो मांस बढे उसको प्रस्तारि अर्मरोग कहते हैं।

शुक्लभागमें सफेद मृदुमांस बहुत दिनमें बढे, उसको शुक्लार्म कहते हैं।

कमलके समान लाल तथा मृदु जो मांस बढे उसको रक्तार्म कहते हैं।

जो मांस विस्तीर्ण, स्थूल, कलेजाके समान (कुछ काला लाल) दीखे उसको अधिमांसार्म कहते हैं।

जो कठिन तथा फैलनेवाले स्रावरहित मांस बढे, उस्को स्नाय्वर्म कहते हैं। विदेहने कहाभी है।

शुक्तिरोगके लक्षण

श्यावाःस्युःपिशितनिभास्तुबिंदवोयेशुक्त्याभाः
सितिनियताःसशुक्तिसंज्ञः ॥

अर्थ—नेत्रके सफेद भागमें श्यामवर्ण मांसतुल्य सीपीके समान जो बिंदु होय, उसको शुक्ति कहते हैं।

अर्जुनके लक्षण

एकोयःशशरुधिरोपमश्वबिन्दुःशुक्लस्थोभवतितदर्ज्जुनंवदंति ॥ ६७ ॥

अर्थ—शुक्लभागमें ससेके रुधिरके समान जो बिन्दु (बूंद) नेत्रमें उत्पन्न होय, उसको अर्जुन कहते हैं।

पिष्टकके लक्षण

श्लेष्ममारुतकोपेनशुक्लेमांसंसमुन्नतम् ।
पिष्टवत्पिष्टकंविद्धिमलाक्तादर्शसन्निभम् ॥ ६८ ॥

अर्थ—कफ वायुके कोपसे शुक्लभागमें पिष्ट (पिसा)सा जो मांस बढे उसको पिष्टक कहते हैं, वो मलसे मिले अर्श (बवासीर)के समान होता है।

जालके लक्षण

जालाभःकठिनशिरोमहान्सरक्तःसंतानःस्मृतइहजालसंज्ञितस्तु ।

अर्थ—नेत्रके सफेद भागमें शिरा (नस)का समूह जालीके समान होय, और वह कठिन तथा रुधिरके समान लाल होवे, उसको जाल कहते हैं।

---

१ प्रस्तारिणोर्मणः स्रावं निरुणद्धि यदानिलः । विनास्रावे विशुष्यं यत् स्नाय्वर्मेतीति तद्विदुः।

शिराजपिटिकाके लक्षण

शुक्लस्थाःसितपिडिकाःशिरावृतायास्ताब्रूयादसितसमीपजाः शिराजाः ॥ ६९ ॥

अर्थ-नेत्रके शुक्लभागमें शिरा (नसों)से व्याप्त ऐसी सफेद फुंसी होय, उसको शिराजपिडका कहतेहैं वह कृष्णभागके समीप होती है।

वलासके लक्षण

कांस्याभोऽमृदुरथवारिबिंदुकल्पोविज्ञेयोनयनासितेबलाससंज्ञः ७०

इतिशुक्लजाः

अर्थ-नेत्रके शुक्लभागमें कांसेके समान कठिन अथवा पानीकी बूंदके समान कुछ ऊंची जो गांठ होय, उसको बलास कहते हैं।

इति शुक्लजाः

नेत्रकी संधिके रोग

पूयालसके लक्षण

पक्कःशोथःसंधिजोयःसतोदःस्रवेत्पूयंपूतिपूयालसाख्यः।

अर्थ-नेत्रकी संधिमें सूजन होवै, और पककर फूटजाय, उसमेंसे दुर्गंधि और राध वहे, तथा तोद (सूई छेदनेकीसी पीडा) होय, उसको पूयालस कहते हैं।

उपनाहके लक्षण

ग्रंथिर्नाल्पोदृष्टिसंधावपाकीकण्डुप्रायोनीरुजस्तूपनाहः ॥ ७१ ॥

अर्थ-नेत्रकी संधिमें वडी गांठ होवै, वह थोडी पके उसमें खुजली बहुत हो, दूखे नहीं, उसको उपनाह ऐसें कहते हैं।

स्राव अथवा नेत्रनाडीके लक्षण

गत्त्वासंधीनश्रुमार्गेणदोषाःकुर्युःस्रावान्लक्षणैःस्वैरुपेतान्।
तंहिस्रावंनेत्रनाडीतिचैकेतस्यालिंगंकीर्तयिष्येचतुर्धा ॥ ७२ ॥

अर्थ-वातादि दोष अश्रुमार्गसे संधियोंमें प्राप्त होकर स्वकीयलक्षणयुक्त स्राव उत्पन्न करे, उस स्रावको कोई नेत्रनाडी कहते हैं यह रोग चार प्रकारका है उ-

---

१ मारुतो पीडितः श्लेष्मा शुक्लभागे व्यवस्थितः। जलबिंदुरिवोच्छूनो मृदुः सकफसंभवः॥ वलासग्रथितं नाम तं शोफं वृत्तमादिशेत्॥

सके लक्षण कहते हैं * शंका-क्यौंजी वातका स्राव क्यौं नहीं कहा * उत्तर-वातमें स्राव नहीं होता है इसीसे विदेहने चारही प्रकारके स्राव कहे हैं।

पाकःसंधौसंस्रवेद्यस्तुपूयंपूयास्रावोऽसौगदःसर्वजस्तु। श्वेतंसान्द्रंपिच्छिलंसंस्रवेद्धिश्लेष्मास्रावोऽसौविकारोमतस्तु॥ ॥७३॥ रक्तास्रावःशोणितार्द्योविकारःस्रवेदुष्णंतत्ररक्तंप्रभूतम्। हरिद्राभंपीतमुष्णंजलंवापित्तास्रावःसंस्रवेत्संधिमध्यात्॥ ७४॥

अर्थ-पूयास्राव नेत्रकी संधिमें सूजन होकर पके, तथा उसमेंसे राध बहे, यह रोग सन्निपातात्मक है।

श्लेष्मास्रव जिसमेंसे सफेद् गाढी और चिकनी राध बहे।

रक्तास्राव जिस विकारमें विशेष गरम रुधिर बहे, उसको रक्तास्राव कहते हैं।

पित्तास्राव जिसकी संधिसे हलदीके समान पीला गरम जल बहे उसको पित्तास्राव कहते हैं।

पर्वणी व अलजीके लक्षण

ताम्रातन्वीदाहपाकोपपन्नाज्ञेयावैद्यैःपर्वणीवृत्तशोथा। जातासन्धौशुक्लकृष्णेऽलजीस्यात्तस्मिन्नेवख्यापितापूर्वलिंगैः॥७५॥

अर्थ-नेत्रकी सफेद काली संधियोंमें तांबेके समान छोटी गोल जो फुंसी होवै और वह फुंसी दाहहोकर पके उसको पर्वणी कहते हैं।

और उसी ठिकाने पूर्वरूपसंयुक्त बडी फुन्सी उठे, उसको अलजी कहते हैं।

पर्वणी और अलजीमें इतनाही अंतर है कि अलजी बडी फुन्सी होती है और पर्वणी छोटी फुंसी होती है यह विदेहका मत है।

कृमिग्रंथीके लक्षण

कृमिग्रंथिर्वर्त्मनःपक्ष्मणश्चकण्डूंकुर्युःकृमयःसंधिजाताः। नानारूपावर्त्मशुक्लांतसंधौचरंत्यंतर्नयनंदूषयंतः॥ ७६॥

---

१. सन्निपातात्कफाद्रक्तात्पित्तात्स्रावोक्षिसंधिषु॥ इति।

२ पर्वणीपिडिका तत्र जायते त्वंकुरोपमा। शुक्लकृष्णांतसंधौ च जनयेद्गोस्तनाकृतिम्। पिडकामलजीं तां तु विद्धि तोदाश्रुसंकुलाम्॥ इति।

अर्थ–जिसके नेत्रके शुक्लभागकी संधिमें और पलकोंकी संधीमें उत्पन्न हुई अनेक प्रकारकी कृमि खुजली और गांठ उत्पन्न करे, और नेत्रके पलक और सफेदी भागकी संधिमें प्राप्त होकर नेत्रके भीतरके भागको दूषित करे, भीतर फिरे उसको कृमिग्रंथि कहते हैं यह सन्निपातात्मक कहते हैं सो विदेहकाभी मत है ।

वर्त्मरोग (मर्मस्थानके)

उत्संगपिडिकाके लक्षण

अभ्यन्तरमुखीताम्राबाह्यतोवर्त्मतश्चया ।
सोत्संगोत्संगपिडिकासर्वजास्थूलकण्डुरा ॥ ७७ ॥

अर्थ–नेत्रके ढकनेवाली वाफणी अर्थात् कोएमें फुंसी होय, और उसका मुख भीतर होय, वह लाल बडी तथा खुजलीसंयुक्त होय, उसको उत्संगपिडका कहते हैं यह सन्निपातसे होती है । गदाधर और विदेहके मतसे पलकोंके कोएके बाहरभी यह रोग होता है । च इस श्लोकमें लिखा है उसका यह प्रयोजन है कि इस जगहभी भ्रुंगीके अंडेकासा रसस्राव जानना ।

कुंभिकाके लक्षण

वर्त्मांतेपिडकाध्माताभिद्यंतेचस्रवंतिच ।
कुंभीकबीजसदृशाःकुंभीकाःसन्निपातजाः ॥ ७८ ॥

अर्थ–पलकोंके समीप कुंभिकाके बीजके समान फुंसी होय, वह पककर फूटजाय, और फूटकर वहे, उसको कुंभिका कहते हैं। कोई आचारी कहते हैं कि कच्छदेशमें दाडिम (अनार)के बीजके आकार कुंभिका होती है ।

पोथकी लक्षण

स्राविण्यःकण्डुरागुर्व्योरक्तसर्षपसन्निभाः ।
रुजावंत्यश्चपिडिकाःपोथक्यइतिकीर्त्तिताः ॥ ७९ ॥

अर्थ–जिसके कोएमें लाल सरसोंके समान रुधिर स्रावहो, खुजलीसंयुक्त भारी तथा पीडासंयुक्त फुंसी होय, उसको पोथकी कहते हैं ।

---

१ ततः पूयमसृक्कृष्णाः पतंति कृमयस्तथा । लक्षणैर्विविधैर्युक्ताः सन्निपातसमुत्थिताः ॥ कृमिग्रंथि तु तं विद्याद्देहिनां नेत्रदूषणम् ॥ इति ।

२ वर्त्मोत्संगादधो जंतोः सन्निपातात्प्रजायते । अभ्यन्तरमुखी स्थूला बाह्यतश्चापि दृश्यते ॥ पिडकापिडकाभिश्च चितान्याभिः समंततः । उत्संगपिडकानाम कठिना मंदवेदना ॥ इति ।

वर्त्मशर्कराके लक्षण

पिडिकायाखरास्थूलासूक्ष्माभिरभिसंवृता ॥
वर्त्मस्थाशर्करानामसरोगोवर्त्मदूषकः ॥ ८० ॥

अर्थ–जिसके कोएमें जो पिडका कठिन और वडी होकर सर्वत्र छोटी छोटी फुन्सियोंसे व्याप्त होय, उसको वर्त्मशर्करा कहते हैं इससे कोए विगड जाते हैं।

अर्शोवर्त्मके लक्षण

उर्वारुबीजप्रतिमाःपिडिकामंदवेदनाः ।
श्लक्ष्णाःखराश्चवर्त्मस्थास्तदर्शोवर्त्मकीर्त्यते ॥ ८१ ॥

अर्थ–ककडीके वीजके वरावर मंद पीडा पृथक् पृथक् कठिन ऐसी फुंसी कोएमें उठें, उसको अर्शोवर्त्म कहते हैं। निमि (विदेह)के मतसे यह सन्निपातात्मक हैं।

शुष्कार्शके लक्षण

दीर्घांकुरःखरःस्तब्धोऽदारुणोऽभ्यन्तरोद्भवः ।
व्याधिरेषोऽतिविख्यातःशुष्कार्शोनामनामतः ॥ ८२ ॥

अर्थ–नेत्रके कोएमें लंवे खरदरे कठिन दुःखदायक ऐसे जो मांसांकुर होंय उस व्याधिको शुष्कार्श कहते हैं यहभी सन्निपातज है।

अंजनाके लक्षण

दाहतोदवतीताम्रापिडिकावर्त्मसंभवा ।
मृद्वीमंदरुजासूक्ष्माज्ञेयासांऽजननामिका॥ ८३ ॥

अर्थ–दाह तोद (चोंटनी)संयुक्त लाल, नरम, छोटी, मंद पीडाकरनेवाली, ऐसी फुंसी नेत्रके कोएमें होय; उसको अंजना कहते हैं, यहभी सन्निपातज है।

बहलवर्त्मके लक्षण

वर्त्मोपचीयतेयस्यापिडिकाभिःसमंततः ।
सवर्णाभिःस्थिराभिश्चविद्याद्बहलवर्त्मतत् ॥ ८४ ॥

अर्थ–जिसके नेत्रका कोया त्वचाके समान वर्ण तथा कठिन फुंसीन्सें व्याप्त होय, उसको बहलवर्त्मरोग कहते हैं येभी सन्निपातज है।

---

१ नीरुजा कठिना वर्त्मोपक्षान्तर्बाह्यतोपि वा। पिडिका सन्निपातेन तदर्शोवर्त्म कीर्त्यते ॥ इति

वर्त्मबंधके लक्षण

कण्डूमताऽल्पतोदेनवर्त्मशोथेनयोनरः ।
नसंप्रच्छादयेदक्षियत्रासौवर्त्मबंधकः ॥ ८५ ॥

अर्थ–जिसके नेत्रके कोयोंमें सूजनसे नेत्रके बराबर सूजन आय जावे, उससे उस मनुष्यको कुछ नहीं दीखे, इस रोगको वर्त्मबंधक कहते हैं इस सूजनमें खुजली चले तथा तोद (चोंटनी) होय यह रोग त्रिदोषज है।

क्लिष्टवर्त्मके लक्षण

मृद्वल्पवेदनंताम्रंयद्वर्त्मसममेवच ।
अकस्माच्चभवेद्रक्तंक्लिष्टवर्त्मेतितद्विदुः ॥ ८६ ॥

अर्थ–नेत्रके नीचे ऊपरके दोनों कोए नरम अल्प पीडा तांबेके वर्ण होकर अकस्मात लाल होजाय, तो इस रोगको क्लिष्टवर्त्मरोग कहते हैं यह रोग कफरक्तज है, यही मत विदेहका है ।

वर्त्मकर्दमके लक्षण

क्लिष्टंपुनःपित्तयुतंशोणितंविदहेद्यदा ।
तदाक्लिन्नत्वमापन्नमुच्यतेवर्त्मकर्दमः ॥ ८७ ॥

अर्थ–क्लिष्टवर्त्म फिर पित्तयुक्त रुधिरको दहन करे, तब वह दही दूध माखनके समान गीला होजाय, अतएव इस व्याधिको वर्त्मकर्दम कहते है यह पित्ताधिक सन्निपातात्मक हैं ।

श्याववर्त्मके लक्षण

वर्त्मयद्बाह्यतोऽतश्चश्यावंशूनंसवेदनम् ।
तदाहुःश्याववर्त्मेतिवर्त्मरोगविशारदाः ॥ ८८ ॥

अर्थ–जिसके नेत्रके कोएके बाहर अथवा भीतर काली सूजन होय, तथा पीडा होय, उसको वर्त्मरोगके जाननेवाले श्याववर्त्म कहते हैं यह वाताधिक त्रिदोषजन्य है विदेहने लिखाभी है।

प्रक्लिन्नवर्त्मके लक्षण

अरुजंबाह्यतःशूनंवर्त्मयस्यनरस्याहि ।

---

१ श्लेष्मा दुष्टेन रक्तेन क्लिष्टमांसमतः समं ॥ बधूजीवनिभं वर्त्म क्लिष्टमांसं तदुच्यते ॥

२ दुष्टं श्लेष्मानिलात्पित्तं वर्त्मनोश्चीयते यदा ॥ अग्निदग्धनिभं श्यावं श्याववर्त्मेति तद्विदुः ॥इति.

प्रक्लिन्नवर्त्मतद्विद्यात्क्लिन्नमत्यर्थमंततः ॥ ८९ ॥

अर्थ-जो कोये अल्पपीडा तथा बाहरसे सूजा हुआ अत्यंत कीचडसे व्याप्त हो उसको प्रक्लिन्नवर्त्म कहते हैं यह कफज विकार है।

अक्लिन्नवर्त्मके लक्षण

यस्यधौतान्यधौतानिसंबध्यंतेपुनःपुनः।

वर्त्मान्यपरिपक्वानिविद्यादक्लिन्नवर्त्मतत् ॥ ९० ॥

अर्थ-जिसके नेत्रके पलक धोनेसे अथवा नहीं धोनेसे वारंवार चिपक जावैं, कोए पककर राधसे नहीं (चिकटें) तो इस रोगको अक्लिन्नवर्त्म कहते हैं, इस रोगको विदेह पिल्लायाया कहता है।

वातहतवर्त्मके लक्षण

विमुक्तसंधिनिश्चेष्टंवर्त्मयस्यनमील्यते।

एतद्वातहतंवर्त्मजानीयादक्षिचिन्तकः ॥ ९१ ॥

अर्थ-जिसके नेत्रके पलक पृथक् पृथक् होंय, तथा जिसके पलकमिचैं और खुलें नहीं, ऐसे नेत्रके कोए मिलें नहीं उसको वातहतवर्त्म शालाक्यसिद्धांतवाला कहता है।

अर्बुदके लक्षण

वर्त्मान्तरस्थंविषमंग्रन्थिभूतमवेदनम्।

आचक्षतेऽर्बुदमितिसरक्तमविलंबितम् ॥ ९२ ॥

अर्थ-नेत्रके कोएके भीतर गोल मंदवेदनायुक्त कुछ लाल जल्दी बढनेवाली ऐसी जो गांठ होय, उसको अर्बुद कहते हैं यहभी सन्निपातज है।

निमेषके लक्षण

निमेषिणीःशिरावायुःप्रविष्टोवर्त्मसंश्रयः।

प्रचालयतिवर्त्मानिनिमेषंनामतंविदुः ॥ ९३ ॥

अर्थ-वर्त्माश्रित (कोएमें स्थित) जो वायु, सो निमेष (कहिये पलकके उघाडने मूंदनेवाली नस)में प्रवेश होकर वारंवार पलकोंको चलायमान करे, उसको निमेष (नेत्रका मिचकाना) कहते हैं विदेहनेभी लिखा है यह रोगभी सन्निपातज है।

---

१ निमेषिणीः शिरावायुः प्रविश्य व्यवतिष्ठते। अत्यर्थं चलते वर्त्म निमेषः स न सिध्यति॥

शोणितार्शके लक्षण

वर्त्मस्थोयोविवर्द्धतलोहितोमृदुरंकुरः ।

तद्रक्तजंशोणितार्शश्छिन्नंछिन्नंप्रवर्द्धते ॥ ९४ ॥

अर्थ–रुधिरके संबंधसे नेत्रके कोएके भीतरभागमें लाल तथा नरम अंकुर वढे, उसको शोणितार्श कहते हैं इसको जैसे जैसे काटे तैसे तैसे वढता है, इस रक्तज व्याधिको विदेह आचारी असाध्य कहते हैं ।

लगणके लक्षण

अपाकीकठिनःस्थूलोग्रंथिर्वर्त्मभवोऽरुजः ।

सकण्डूःपिच्छिलःकोलसंस्थानोलगणस्तुसः ॥ ९५ ॥

अर्थ–नेत्रके कोएमें वेरके समान वडी कठिन खुजलीसंयुक्त चिकनी गांठ होय, उसको लगण कहते हैं । यह रोग कफजन्य है, इसमें पीडा और पकना नहीं होय ।

विसवर्त्मके लक्षण

त्रयोदोषाबहिःशोथंकुर्युश्छिद्राणिवर्त्मनोः ।

प्रस्रवत्यंतरुदकंबिसवद्बिसवर्त्मतत् ॥ ९६ ॥

अर्थ–तीनों दोष कुपित होकर नेत्रके कोयोंको सुजाय देवें, तथा उनमें छिद्र होजाय, उन कोयोंमेसे कमलतंतूके समान भीतरसे पानी झरे, इस रोगको बिसवर्त्म कहते हैं ।

कुंचनके लक्षण

वाताद्यावर्त्मसंकोचंजनयंतियदामलाः ।

तदाद्रष्टुंनशक्नोतिकुंचनंनामतद्विदुः ॥ ९७ ॥

अर्थ–वातादिदोप जव कोएके मार्गको संकुचित करें, तव मनुष्य नेत्रको उघाडकर नहीं देख सके, इस रोगको कुंचन कृच्छ्रोन्मीलन कहते हैं यह रोग सुश्रुताचारीने नहीं लिखा माधवाचारीनेही लिखा है ।

पक्ष्मकोपके लक्षण

प्रचालितानिवातेनपक्ष्माण्याक्षिविशंतिहि । घृष्यंत्यक्षिमुहु-

---

१ वायुः शोणितमादाय शिराणां प्रमुखे स्थितः । जनयत्यंकुरं ताम्रं वर्त्म निच्छिन्नरोहणम् ॥ तच्छोणितार्शोऽसाध्यः स्याद्रक्तास्राव्यथ रक्तजम् ॥

क्षयेणकृमिभिस्तथा ॥ १ ॥ सूर्यावर्त्तानंतवातार्द्धावभेदकशंखकः ।

अर्थ–वात पित्त कफ इनसे ३, सन्निपातसे १, रुधिरसे १, क्षयसे १, कृमिसे १, सूर्यावर्त १, अनन्तवात १, अर्धावभेदक १, और शंखक १, सब मिलकर ११ प्रकारके शिरोरोग (मस्तकशूल) होते हैं ।

वातजके लक्षण

यस्यानिमित्तंशिरसोरुजश्चभवन्तितीव्रानिशिचातिमात्रम् ।
बन्धोपतापैःप्रशमश्चयत्राशिरोभितापःससमीरणेन ॥ २ ॥

अर्थ–जिसका मस्तक अकस्मात् दूखे, और रात्रिमें विशेष दूखे, बांधनेसे अथवा सेकनेसे शांति हो, उसको वातज शिरोरोग जानना चाहिये ।

पैत्तिकके लक्षण

यस्योष्णमंगारचितंतथैवभवेच्छिरोदह्यतिचाऽक्षिनासा ।
शीतेनरात्रौचभवेच्छमश्चशिरोभितापःसतुपित्तकोपात् ॥ ३ ॥

अर्थ–जिसका मस्तक अंगारसे तपाएके समान गरम होवे, और नाकमें दाह होय, शीतल पदार्थसे; किंवा रात्रिमें शान्ति होय, उस मस्तकशूलको पित्त-कोपका जानना ।

श्लैष्मिकके लक्षण

शिरोभवेद्यस्यकफोपदिग्धंगुरुप्रतिस्तब्धमथोहिमंच ।
शूनाक्षिकूटंवदनंचयस्याशिरोभितापःसकफप्रकोपात् ॥ ४ ॥

अर्थ–जिसका मस्तक भीतरसे कफकरके लिप्त (लिहसासा) होवे, भारी बंधासा और शीतल होवे, तथा नेत्र सुजाकर मुखको सुजाय देवे, इस मस्तकरोगको कफके कोपका जानना चाहिये। (शूनाक्षिकूटं) इस जगह कोई (शूलाक्षिकूटं) ऐसा पाठ कहते हैं इसका अर्थ यह है कि मस्तकमें मंद शूल होय शेषं सुगमम् ।

सान्निपातिकके लक्षण

शिरोभितापेत्रितयप्रवृत्तेसर्वाणिलिंगानिसमुद्भवन्ति ॥ ५ ॥

अर्थ–त्रिदोषसे उत्पन्न मस्तकरोगमें तीनों दोषोंके सब लक्षण होते हैं ।

रक्तजके लक्षण

रक्तात्मकःपित्तसमानलिंगःस्पर्शासहत्वंशिरसोभवेच्च ।

अर्थ-रक्तजन्य मस्तकरोगमें पित्तकृतमस्तकरोगके सब लक्षण होते हैं, तथा मस्तकका स्पर्श सहा नहींजाय, यह विशेष होता है।

क्षयजके लक्षण

असृग्वसाश्लेष्मसमीरणानांशिरोगतानामिहसंक्षयेण ॥ ६ ॥ क्षवप्रवृत्तिःशिरसोऽभितापःकष्टोभवेदुग्ररुजोऽतिमात्रम् । संस्वेदनच्छर्दनधूमनस्यैरसृग्विमोक्षैश्चविवृद्धिमेति ॥ ७ ॥

अर्थ-मस्तकके रुधिर वसा कफ और वायु इनके क्षय होनेसे अत्यंत भयंकर मस्तकशूल होता है, छींक बहुत आवें, मस्तक गरम होवे, तथा उसमें स्वेदन वमन धूमपान नस्य और रुधिर निकलना ये उपद्रव करनेसे यह मस्तकशूल होता है, इसको क्षयज मस्तकशूल कहते हैं।

कृमिजके लक्षण

निस्तुद्यतेयस्यशिरोऽतिमात्रंसंभक्ष्यमाणंस्फुरतीवचांतः । घ्राणाच्चगच्छेद्रुधिरंसपूयंशिरोभितापःकृमिभिःसघोरः ॥ ८ ॥

अर्थ-जिसके मस्तकमें टांकीके तोडनेकीसी पीडा होवे, तथा कृमि भीतरसे मस्तक पोखाकर पोला करदेवें, तथा मस्तक भीतरसे फडके, तथा नाकमें रुधिर राध और कीडा पडें यह कृमिजरोग वडा भयंकर है।

सूर्यावर्तके लक्षण

सूर्योदयंयाप्रतिमन्दमन्दमक्षिभ्रुवंरुक्समुपैतिगाढा । विवर्द्धतेचांशुमतासहैवसूर्यापवृत्तौविनिवर्ततेच ॥ ९ ॥ शीतेनशांतिंलभतेकदाचिदुष्णेनजंतुःसुखमाप्नुयाद्वा । सर्वात्मकंकष्टतमंविकारंसूर्यापवृत्तंतमुदाहरन्ति ॥ १० ॥

अर्थ-सूर्यके उदय होनेसे धीरे धीरे मस्तक दूखनेका आरंभ होय, और जैसे जैसे सूर्य वढे तैसे तैसे वह शूल नेत्र और भृकुटी (भौंह) इनमें दो प्रहर दिन चढे तक वढता जाय, और सूर्यके साथ वढकर फिर जैसे जैसे सूर्य अस्त होय तैसे तैसे पीडा मन्द होती जाय, शीतल और गरम उपचार करनेसे मनुष्यको सुख होय, इस सान्निपातिक विकारको सूर्यावर्त्त कहते हैं।

अनंतवातके लक्षण

दोषास्तुदुष्टास्त्रयएवमन्यांसंपीड्यगाढंसरुजांसुतीव्रां । कुर्वं-

तिसाक्षिभ्रुविशंखदेशेस्थितिंकरोत्याशुविशेषतस्तु ॥ ११ ॥
गंडस्यपार्श्वेंचकरोतिकंपंहनुग्रहंलोचनजांश्चरोगान् । अनन्त-
वातंतमुदाहरन्तिदोषत्रयोत्थंशिरसोविकारं ॥ १२ ॥

अर्थ—तीनों दोष (वात पित्त कफ) दुष्ट होकर मन्यानाडीको पीडित कर नेत्र, भोंह, कनपटी, इनमें घोर पीडा करें तथा गंडस्थल और पसवाडेमें पीडा कंप होय, ठोडी जकड जाय, नेत्ररोग होय, इस त्रिदोषजन्य मस्तकरोगको अनंतवात कहतेहै (सुश्रुत)ने अनंतवातरोगको छोडकर मस्तकरोग १० ही कहे हैं ।

अर्धावभेदक (आधासीसी)के लक्षण

रूक्षाशनात्यध्यशनप्राग्वातावश्यमैथुनैः । वेगसंधारणाया-
सव्यायामैःकुपितोऽनिलः ॥ १३ ॥ केवलःसकफोवार्द्धंगृही-
त्वाशिरसोबली । मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटेर्धेतिवेदना-
म् ॥ १४ ॥ शस्त्रारणिनिभांकुर्यात्तीव्रांसोऽर्धावभेदकः । न-
यनंवाथवाश्रोत्रमतिवृद्धोविनाशयेत् ॥ १५ ॥

अर्थ—रूखे अन्नसे, असन्त भोजन, अध्यशन (भोजनके उपर भोजन) पूर्व-दिशाकी पवन सेवन करनेसे, वर्फसे, मैथुनसे, मलमूत्रादिका वेग धारण कर-नेसे, परिश्रम और दंडकसरत करनेसे, इन कारणोंसे कुपित भई जो केवल वायु अथवा कफयुक्त वायु सो आधे मस्तकको ग्रहण कर मन्यानाडी, भृकुटी, कन-पटी, कान, नेत्र, ललाट ये सब एक ओरसे आधे दूखें, कुल्हाडीसे घाव करने-कीसी अथवा अरणी (आंच निकालनेके काष्ठके) मथनेकीसी पीडा होय उ-सको अर्धावभेदक 'आधासीसी' कहते हैं यह रोग जब बहुत बढजाताहै तब एक औरके कानमें बहरापन होजाता है, अथवा एक औरकी आंख मारी-जाती है जिस औरको पीडा होय उधर ये उपद्रव होते हैं । सुश्रुतने इस रोगको त्रिदोषज कहा है ।

शंखकके लक्षण

पित्तरक्तानिलादुष्टाःशंखदेशेविमूर्च्छिताः । तीव्ररुग्दाहरागं
हिशोथंकुर्वन्तिदारुणं ॥ १६ ॥ सशिरोविषवद्वेगीनिरुध्या-

---

१ स्यादुत्तमागं रुजतेर्द्धमात्रं सनादभेदभ्रममोहशूलैः । पक्षाद्दशाहादथवाप्यकस्मात्स्यादर्द्धभेदे त्रितयाद्व्यवस्येत् ॥

शुगलंतथा। त्रिरात्राज्जीवितंहन्तिशंखकोनामनामतः॥१७॥
त्र्यहाज्जीवतिभैषज्यंप्रत्याख्यायास्यकारयेत्।

अर्थ–दुष्ट भए जो पित्त रक्त और वायु सो (इस जगह कफकोभी दुष्ट हुआ जानना यह सुश्रुतने कहा है) विशेष बढकर नेत्रोंमें भयंकर सूजन उत्पन्न करें और इसमें घोर पीडा होय, घोर दाह होय, तथा नेत्र लाल बहुत हों, और यह विषके वेगके समान बढकर गलेमें जाकर गलेको रोकदे, इस शंखकरोगसे रोगीके तीन दिनमें प्राणोंका नाश होय, इन तीन दिनमें कुशल वैद्यकी औषधि पहुंचनेसे रोगी बचे, परंतु प्रथम निश्चयकरके चिकित्सा करना।

इति शिरोरोगनिदानम्॥

प्रदररोगनिदानम्।

विरुद्धमद्याध्यशनादजीर्णाद्गर्भप्रपातादतिमैथुनाच्च। याना-
तिशोकादतिकर्षणाच्चभाराभिघाताच्छयनाद्दिवाच ॥ १ ॥
तंश्लेष्मपित्तानिलसन्निपातैश्चतुःप्रकारंप्रदरंवदंति।

अर्थ–विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) मद्य, अध्यशन (भोजनके ऊपर भोजन) अजीर्ण, गर्भपात, अतिमैथुन, अतिगमन, (चलना) अतिशोक, उपवासादिककरके कर्शन, (अर्थात् व्रतके करनेसे सूखजाना) भारके वहनेसे, (अर्थात् भारी वस्तु उठाकर चलनेसे) काष्ठ कहिये लकडीआदिके लगनेसे, दिनमें सोनेसे, इन कारणोंसे कफ पित्त वायु और सन्निपात इन भेदोंसे चार प्रकारका प्रदररोग होता है।

प्रदररोगके सामान्यरूप

असृग्दरंभवेत्सर्वंसांगमर्दंसवेदनम् ॥ २ ॥

अर्थ–सब प्रदरोंमें अंगोंका टूटना तथा हाथपैरोंमें पीडा होती है।

उपद्रवके लक्षण

तस्यातिवृद्धौदौर्बल्यंश्रमोमूर्च्छामदस्तृषा।
दाहःप्रलापःपांडुत्वंतंद्रारोगाश्चवातजाः ॥ ३ ॥

अर्थ–जब यह प्रदर बहुत बढजाता है तब दुर्बलता होय, थकजाय, मूर्च्छा

आवै, मस्तपन, प्यास, दाह, प्रलाप (बकना) देह पीला होजाय, तन्द्रा और वातजरोग (आक्षेप अपतान कंपादिक होते हैं ।

श्लैष्मिकके लक्षण

आमंसपिच्छंप्रतिमंसपाण्डुपुलाकतोयप्रतिमंकफात्तु ।

अर्थ–कफसे आमरस (कच्चारस) संयुक्त चिकना, किंचित् पीला, मांसके धुले जलके समान स्राव होय, इसको श्वेतप्रदर अथवा सोमरोग कहते हैं ।

पैत्तिकके लक्षण

सपीतनीलासितरक्तमुष्णंपित्तार्त्तियुक्तंभृशवेगिपित्तात् ॥ ४ ॥

अर्थ–किंचित् पीला, नीला, काला, लाल, गरम ऐसा प्रदर वहे, उसमें पित्तके दाह चिमचिमादि पीडा होंय, तथा उसका वेग असन्त होय ।

वातिकके लक्षण

रूक्षारुणंफेनिलमल्पमल्पंवातार्त्तिवातात्पिशितोदकाभं ।

अर्थ–वातसे रूक्ष लाल झागसंयुक्त मांसके और सफेद पानीके समान थोडा थोडा प्रदर वहे, उसमें वादीके (आक्षेपकादि) पीडा होती हैं ।

त्रिदोषजके लक्षण

सक्षौद्रसर्पिर्हरितालवर्णमज्जाप्रकाशंकुणपंत्रिदोषम् ।

तच्चाप्यसाध्यंप्रवदंतितज्ज्ञानतत्रकुर्वीतभिषक्चिकित्साम् ॥ ५ ॥

अर्थ–जो प्रदर शहद, घृत हरिताल, और मज्जा, इनके रंगके समान तथा मुर्दाकीसी दुर्गंधियुक्त होय, इसको त्रिदोषजप्रदर जानना यह असाध्य है अर्थात् इसकी वैद्य चिकित्सा न करैं ।

विशुद्धार्त्तवके लक्षण

मासान्निःपिच्छदाहार्तिपंचरात्रानुबंधिच । नैवातिवहुलंना-
ल्पमार्तवंशुद्धमादिशेत् ॥ ६ ॥ शशासृक्प्रतिमंयच्चयद्वालाक्षा-
रसोपमम् ॥ तदार्तवंप्रशंसन्तियच्चाप्सुनविरज्यते ॥ ७ ॥

इतिप्रदरनिदानम्

अर्थ–जो आर्त्तव (रजोदर्शनका रुधिर) चिकना नहीं होवे, तथा जिसमें दाह शूलादिक नहीं तथा जिसका अनुबंध महीनामें पांच दिवस पर्यन्त होय तथा बहुत न निकले, और थोडाभी न होय, (मध्यम प्रमाणका होय) उसको शुद्धआर्तव

जानना चाहिये और जो आर्त्तव शशोके रुधिरके समान होवे अथवा लाखके रंगकासा लाल होवे, और जिसका रंगा कपडा जलमें डालनेसे वर्ण नहीं पलटे, उसको शुद्ध आर्त्तव कहते हैं ।

इति प्रदररोगनिदानं समाप्तम् ।

योनिव्यापत्तिनिदानम्



विंशतिर्व्यापदोयोनेर्निर्दिष्टारोगसंग्रहे । मिथ्याचारेणताःस्त्रीणांप्रदुष्टेनार्त्तवेनच ॥ १ ॥ जायंतेबीजदोषाच्चदैवाच्चशृणु ताःपृथक् ।

अर्थ—रोगसंग्रहमें योनिके बीस रोग हैं वह मिथ्या आहार और मिथ्या विहारकरके तथा दुष्ट आर्त्तव (रुधिर)से, बीजदोषसे, और दैवकी इच्छासे स्त्रियोंके होते हैं उनके लक्षण पृथक् पृथक् कहता हूं सुनो ।

साफेनिलमुदावृत्तारजःकृच्छ्रेणमुंचति ॥ २ ॥ वंध्यांनष्टार्त्तवांविद्याद्विप्लुतांनित्यवेदनाम् । परिप्लुतायांभवतिग्राम्यधर्मेणरुग्भृशं ॥ ३ ॥ वातलाकर्कशास्तब्धाशूलनिस्तोदपीडिता । चतसृष्वपिचाद्यासुभवंत्यनिलवेदनाः ॥ ४ ॥

अर्थ—जिस योनीसे झागमिला रुधिर बडे कष्टसे वहे उसको उदावृत्तायोनि कहते हैं, और जिसका आर्तव नष्ट हो उसको वंध्या कहते हैं, जिसके निरन्तर पीडा हो उसको विप्लुता कहते हैं जिसके मैथुन करनेमें असन्त पीडा होय उसको परिप्लुत्ता कहते हैं, जो योनि कठोर स्तब्ध होकर शूलतोदयुक्त होवे उसको वातला कहते हैं स्वस्वलक्षणसंयुक्त पित्तला श्लेष्मला योनिभी जाननी चाहियें, और पहले जो चार योनि (उदावृत्ता, वंध्या, विप्लुता, परिप्लुता) कहीहैं इनमें वातकी पीडा होती है, और वातलामें वातकी पीडा विशेष होती है।

सदाहंक्षीयतेरक्तंयस्याःसालोहितक्षया । सवातमुद्वमेद्बीजं वामिनीरजसान्वितम् ॥ ५ ॥ प्रस्रंसिनीभ्रंशतेतुक्षोभितादुःप्रजायिनी । स्थितंस्थितंहन्तिगर्भपुत्रघ्नीरक्तसंक्षयात् ॥ ६ ॥

अत्यर्थंपित्तलायोनिर्दाहपाकज्वरान्विता । चतसृष्वपिचा- द्यासुपित्तलिंगोच्छ्रयोभवेत् ॥ ७ ॥

अर्थ–जिस योनिसे दाहयुक्त रुधिर वहे उसको लोहितक्षया कहते हैं, जिसमेंसे रजोयुक्त शुक्रवायु बराबर वहैं उसको वामनी कहते हैं, जो योनि स्थानभ्रष्ट होय उसको प्रस्रंसिनी कहते हैं जिसमें अंग बाहर निकल आवे और यह विमर्दित करनेसे प्रसव योग नहीं होय है जिस योनिमें रुधिर क्षय होनेसे गर्भ न रहे उसको पुत्रघ्नी कहते हैं, जो योनि अत्यन्त दाह पाक (पकना) और ज्वर इन लक्षणोंकरके संयुक्त होय, उसको पित्तला कहते हैं, इनमें पहली चार (रक्तक्षया वामनी प्रस्रंसिनी और पुत्रघ्नी) इनमें पित्तके लक्षण अधिक होते हैं, और पित्तलामें पित्तके विशेष लक्षण होते हैं और पित्तलामें जो ज्वर, दाह, पाक, कहे हैं सो उपलक्षणमात्र हैं अर्थात् इसमें नीला पीला सफेद आर्तव वहता है ये जानना सो तंत्रान्तरोंमें लिखा है ।

अत्यानन्दानसन्तोषंग्राम्यधर्मेणगच्छति । कर्णिन्यांकर्णिकायोनौश्लेष्मासृग्भ्यांप्रजायते ॥ ८ ॥ मैथुनाचरणात्पूर्वंपुरुषादतिरिच्यते । बहुशश्चातिचरणात्तयोर्बीजंनविंदति ॥ ९ ॥ श्लेष्मलापिच्छिलायोनिःकण्डूयुक्ताऽतिशीतला । चतसृष्वपिचाद्यासुश्लेष्मलिंगोच्छ्रयोभवेत् ॥ १० ॥

अर्थ–जो योनि अतिमैथुनसेभी संतोषको प्राप्त न होवे, उसको अत्यानन्दा कहते हैं, जिसमें कफ रुधिरकरके कर्णिका (कमलके भीतर जो होता है ऐसा मांसकन्द) होय उसको कर्णिनी कहते हैं, जो योनि थोडे मैथुनसे लिंगसे पहले स्रवे उसको चरण कहते हैं, अर्थात् जबतक पुरुषको सुख नहीं हो उसके पहलेही द्रवीभूत होकर वीर्यको ग्रहण नहीं करे जो योनि बहुवार मैथुन करनेसे पुरुषके पीछे द्रवे (छूटे) उसको अतिचरणायोनि कहते हैं यह कफ जनित है ।

---

१ व्यापल्लवणकट्वम्लक्षाराद्यैः पित्तजा भवेत् । दाहपाकज्वरोष्णार्तिनीलपीतसिता भवेत् ॥

यवनशास्त्रानुसारेण स्त्रीरोगाः ।

रिहमुगर्भाऽऽशयस्तस्य हारं सुयुल्मिनाजतः ॥ वारिदस्तवयाविस्वा हेतवः प्रतिबंधकः ॥ १ ॥ तत्रापि द्विविधः सादे माद्दीति परिकीर्त्तितः ॥ तत्र योग प्रतीकारं तत्र वैद्यः समाचरेत्

स्राव और पातके लक्षण

आचतुर्थात्ततोमासात्प्रस्रवेद्गर्भविद्रवः ।

ततःस्थिरशरीरःस्यात्पातःपंचमषष्ठयोः ॥ ११ ॥

अर्थ–पांचवे मास पर्य्यन्त गर्भ पतली अवस्थामें होनेसे जो स्रवे उसे स्राव कहते हैं, और चौथे महीनासे लेकर पांचवें छठे महीने पर स्राव, और शरीरब-ननेपर निकले उसे पात कहते हैं।

गर्भ अकालमें कैसे गिरे इस विषयमें निदानपूर्वक दृष्टान्त

गर्भोऽभिघातविषमाशनपीडनाद्यैःपक्कंद्रुमादिवफलंपततिक्षणेन ।

॥ २ ॥ गर्भे रिहमकोष्ठस्था सौदी संगमवर्तिनी ॥ गिल्नतसौदत्तदर्हेज हिर्कत चापि भृशं भवेत् ॥ ३ ॥ संभवैरिवकत्देर आमदन् हैज एव च ॥ दाहामविश्च गैसत्वं लिंगानिर्देश इ-त्यसौ ॥ ४ ॥ यकसत्संभवेमुष्मिन्वरांगे शोपणं रजः ॥ सूक्ष्मं प्रवर्त्तते शीतं परं सौदाप्रको-पजं ॥ ५ ॥ रतूबत् प्रभवेत्त्वस्मिन्मैलानरिहमुद्भवेत् ॥ हेड्द्रारहेजनामेयंगर्भस्थितिघातका ॥ ६ ॥ कदाचिद्दैवयोगेन सम्भवेद्गर्भलक्षणम् ॥ मासत्रयोत्तरं पातो रतूबत्संगतो ध्रुवं ॥ ७ ॥ मनीते नाशयेनैव विशेत्तिष्येन संयुता ॥ सुरतावसरे तत्र वेदना विन्नछद्भवेत् ॥ ८ ॥ संभोगान-न्तरं नारी वेगादुत्तिष्ठते द्रुतं ॥ रिहममुखान् मनीयातो बहिरेवस्भवेत्पुनः ॥ ९ ॥ अकरत् वंध्य-त्वमाख्यातं भिपुनः स्याद्भिपग्वरैः ॥ परीक्षणीय सद्रीत्या प्रतिकाय यथायथम् ॥ १० ॥ मनी-हैजक्षिपेदप्सुभिन्नभिन्न च संतरेत् ॥ दूषितं तद्विजानीयाद् तहन् शीनन दोपल ॥ ११ ॥ रिहमुहुष्ममयो दोषः प्रदराख्या दढाव्ज ॥ औषधीकीच्चवदनी द्विविधां विदधात्ययं ॥ १२ ॥ कस्याश्चिदंगनायास्तु प्रसवे संकटं भवेत् ॥ अष्टमान्मासतस्तस्यै क्षीरं पातुं दिशेद्भिषक् ॥१३॥ परिपाकाऽनुरूपं तद्रजसोद्रेककृन्न च ॥ तद्विकश्चारिहं दर्दं भवेदुष्णेन वारिणा ॥ जरायुसुखबं-धेन मृतिर्भ्रूणस्य योदरे ॥ जनीनमौत तत्प्रोक्त शूल्य तुल्यं विघातकृत्॥१६॥ अचलं जडवत्ति-ष्ठेन्नार्यसाक्षयकारकम् ॥ इन्नौजस्तस्य कर्त्तव्यो वनिताशर्मणे शनैः ॥ १६ ॥ हिमहस्तपदं तस्याः शीतबाधा भवेद्भृश ॥ मन्दाग्निर्बलहानिश्चानुत्साहः श्वाससम्भवः ॥ १७ ॥ व्यथागर्भा-शयस्था तु मैथुनाऽतिशयात्तथा ॥ भवेद्रनोविकाराच्च प्रसूतेः प्रागनन्तरम् ॥ १८ ॥ दुष्टोपारो-दुखारोस्या ऽऽमभ्रूण पातयत्यधः ॥ समग्रविग्रहाभावमकालेपि च कल्पयेत् ॥ १९ ॥ दृह-तवा सूतममुख्यं इस्तिस्का भ्रान्तिरेव च ॥ अचलौ द्वौ हृदाऽऽभावो भवेद्गर्भसमाकृति ॥ २०॥ प्रदरोन्यः समाख्यातोऽसमयेर्वाकूत्वमासतः ॥ हैजजारी गवद्रक्तपीतवर्णं विमिश्रितं ॥ २१ ॥ अ-न्तर्मुखो व्रणोघोर सतानिरिहमस्मृतः ॥ कंकीकारः कठोरः स्याच्छोथतः सचिरतनात्॥२२॥ अन्ये-ऽप्यत्रविकारास्य तन्क्रेपाखिन्नकोपजत्॥ तर्कियतचापि तवई विधेया विविधाऽगदैः॥२३॥ इति(१)

---

(१) एते श्लोकाः शुद्धा वा अशुद्धा वेति न शक्ता विवेक्तुं वयम् ॥

अर्थ–अभिघात (चोट) विषमाशन (विषमभोजन) पीडनादिक इन कारणोंसे जैसे पकाहुआ फल वृक्षसे चोटलगनेसे क्षणभरमें गिरजाता है, इसीप्रकार गर्भ अभिघातादि कारणोंसे गिरता है।

प्रसूत होतेसमय मूढगर्भ कैसे होता है उसके लक्षण

मूढः करोतिपवनःखलुमूढगर्भेशूलंचयोनिजठरादिषुमूत्रसंगम् ॥१२

अर्थ–मूढ (कुंठितगति) वायू गर्भको मूढ (टेढा) करदे, और योनि तथा पेट इनमें शूल उत्पन्न करै, तथा मूत्रोत्संग (धीरे धीरे पीडासहित मूत निकरे)

मूढगर्भकी आठ प्रकारकी गती

भुग्नोऽनिलेनविगुणेनततःसगर्भःसंख्यामतीत्यबहुधासमुपैतियोनिम्। द्वारंनिरुध्यशिरसाजठरेणकश्चित्कश्चिच्छरीरपरिवर्त्तितकुब्जदेहः ॥१३॥एकेनकश्चिदपरस्तुभुजद्वयेनतिर्यग्गतोभवतिकश्चिदवाङ्मुखोन्यः। पार्श्वप्रवृत्तगतिरेतितथैवकश्चिदित्यष्टधागतिरियंहिपराचतुर्धा ॥१४॥ संकीलकःप्रतिखुरःपरिघोऽथबीजस्तेषूर्ध्वबाहुचरणैःशिरसाचयोनिम् । संगीचयोभवतिकीलकवत्सकीलोद्दश्यैःखुरैःप्रतिखुरःसहिकायसंगी ॥१५॥ गच्छेद्भुजद्वयशिराःसचबीजकाख्योयोनौस्थितः सपरिघःपरिघेणतुल्यः ॥ १६ ॥

अर्थ–विगुण वायुसे गर्भ विपरीत (टेढा) होकर अनेक प्रकारकर्के योनिके द्वारमें आयकर अडजाय है, उस्की आठ प्रकारकी संज्ञा है, सो इस प्रकार है १ कोई गर्भ मस्तकसे योनिके द्वारको बन्दकर देय है, २ कोई पेटसे योनिके मार्गको रोक देय, ३ कोई शरीरके विपरीतपनेसे योनिके मार्गको रोक देय, ४ कोई एक हाथसे योनिके मार्गको रोक दे, ५ कोई मूढगर्भ दोनों हाथोंको बाहर निकालकर योनिके द्वारको रोक दे, ६ कोई गर्भ तिर्छा होकर योनिके मार्गको रोक दे, ७ और कोई गर्भ मन्यानाडीके मुडनेसे नीचेको मुख होय, वह योनिके द्वारको रोक दे ८ उसी प्रकार कोई पार्श्वभंग (पसवाडे भंग) होनेसे योनिके द्वारको रोक देय, इस प्रकार मूढगर्भके आठ लक्षण हैं*दूसरी चार प्रकारकी गति और होती हैं उनको कहते हैं १ संकील, २ प्रतिखुर, ३ परिघ, ४ बीज, इनमें जो गर्भ हाथ पैर ऊपरको कर मस्तकसे योनिको कीलके समान रोक दे, उसको संकीलक

कहते हैं जिस गर्भके हाथ पैर खुरके सदृश बाहर निकल आवें और शरीर योनिके भीतर अटका रहे उसको प्रतिखुर कहते हैं जो गर्भ दोनों हाथ और मस्तक आगे करके अटक जाय उसको बीजक कहते हैं और जो परिघ (आगड)के समान योनिमें गर्भ अटक जाय उस्को परिघ कहते हैं।

असाध्य मूढगर्भ और गर्भिणीके लक्षण

अपविद्धाशिरायातुशीतांगीनिरपत्रपा ।
नीलोद्धतशिराहन्तिसागर्भंसचतांतथा ॥ १७ ॥

अर्थ–जिस गर्भिणीका मस्तक नीचेको हो जाय, देह शीतल होय तथा लज्जा जाती रहे, और जिसकी कोखमें हरी नीली शिरा (नस) उठ खडी होंय, तो वह गर्भिणी उस गर्भको, और गर्भ गर्भिणीको अन्योन्य नाश करते हैं।

मृतकगर्भके लक्षण

गर्भास्यन्दनमावीनांप्रणाशःश्यावपाण्डुता ।
भवेदुच्छ्वासपूतित्वंशूनतांतर्मृतेशिशौ ॥ १८ ॥

अर्थ–गर्भ हले चले नहीं, प्रसव वेदना (पीडा) बंद होजाय, देह हरी नीली होय, और जिसकी श्वासमें दुर्गंध आवे, और पेटके भीतर सूजन होय, अर्थात् पेटमें आंतोंके फूलनेसे पेट सूज जाय, ये गर्भमें बालक मरजाय उसके लक्षण हैं।

गर्भमरणहेतु

मानसागन्तुभिर्मातुरुपतापैःप्रपीडितः ।
गर्भोव्यापद्यतेकुक्षौव्याधिभिश्चप्रपीडितः ॥ १९ ॥

अर्थ–माताके मानसिक तथा आगंतुक दुखःसे, अथवा रोगोंसे गर्भकी पीडा होय, वो बालक गर्भाशयमें मर जाय।

गर्भिणीके दूसरे असाध्य लक्षण

योनिसंवरणंसंगःकुक्षौमक्कल्लमेवच ।
हन्युःस्त्रियंमूढगर्भोयथोक्ताश्चाप्युपद्रवाः ॥ २० ॥

अर्थ–वायुके योगसे योनिका संकोच, गर्भका अटकना, और मक्कल्ल शूल (वातरक्तकी पीडा) तथा आक्षेपक, खांसी, श्वासादिक उपद्रव होनेसे वो गर्भि-

णी बचे नहीं, अथवा, योनिसंवरण नाम रोग ग्रन्थान्तरोंमें लिखाहै सो होय।

इति योनिव्यापत्तिनिदानं समाप्तम्।

सूतिकारोगनिदानम्

अंगमर्दोज्वरःकंपःपिपासागुरुगात्रता।
शोथःशूलातिसारौचसूतिकारोगलक्षणम्॥ १॥

अर्थ–अंगोंका टूटना, ज्वरहो, कंप, प्यास, अंगोंका भारी होना, सूजन, तथा शूल, और अतिसार, ये सूतिकारोगके लक्षण होते हैं।

प्रसूतिरोगकी उत्पत्ति

मिथ्योपचारात्संक्लेशाद्विषमाजीर्णभोजनात्।
सूतिकायाश्चयेरोगाजायन्तेदारुणास्तुते॥ २॥

अर्थ–जिस स्त्रीके बालक प्रगट होचुका हो ऐसी स्त्रीके मिथ्या उपचारकरनेसे अथवा संक्लेश (कहिये दोषजनक अन्नपानके सेवन करनेसे, अथवा संक्लेश कहिये अत्यंत कोप)के करनेसे, अथवा विषमाशन अजीर्ण भोजनादिक करनेसे, प्रसूतरोग होताहै वह घोर दुःखदायक है।

लक्षण

ज्वरातिसारशोथाश्चशूलानाहबलक्षयाः। तन्द्रारुचिप्रसेका-
द्याःकफवातामयोद्भवाः॥३॥ कृच्छ्रसाध्याहितेरोगाःक्षीणमां
सबलाग्नितः। तेसर्वेसूतिकानाम्नारोगास्तेचाप्युपद्रवाः॥ ४॥

अर्थ–ज्वर, अतिसार, सूजन, शूल, अफरा, और बलक्षय, तथा कफ वातजन्यरोगसे उत्पन्नहोनेवाले तन्द्रा अन्नद्वेष और मुखसे पानीका गिरना इत्यादि

---

(१) वातलान्यन्नपानानि ग्राम्यधर्मं प्रजागरं॥ अत्यर्थं सेवमानाया गर्भिण्यां योनिमार्गजः॥ मातरिश्वा प्रकुपितो योनिद्वारस्य संवृति॥ कुरुते रुद्धमार्गत्वात्पुनरतर्गतोनिलः॥ निरुणद्ध्याशयद्वारं पीडयन् गर्भसंस्थित॥ निरुद्धवदनोच्छ्वासो गर्भश्चाशु विपद्यते॥ विपन्नशूनसर्वाङ्गः सर्वाण्येवायनानि च॥ उच्छ्वासरुद्धहृदया नाशयत्याशु गर्भिणीम्॥ योनिसंवरणं नाम व्याधिमेनं प्रचक्षते॥ अंतकप्रतिमं घोरं नारभेत्तु चिकित्सितं॥ इति॥

विकार, अशक्तता, तथा अग्नि मंदहोनेसे कृच्छ्रसाध्य होता है । इन सब ज्वरादिकोंको प्रसूतिरोग कहते हैं । इन सबमें एक रोग प्रधान होता है बाकीके उपद्रवरूप कहलाते हैं ।

इति सूतिकारोगनिदानं समाप्तम् ।

स्तनरोगनिदानम् ।

सक्षीरौवाप्यदुग्धौवादोषःप्राप्यस्तनौस्त्रियः। प्रदूष्यमांसरुधिरेस्तनरोगायकल्पते ॥ १ ॥ पंचानामपितेषांहिरक्तजंविद्रधिं विना ॥ लक्षणानिसमानानिबाह्यविद्रधिलक्षणैः ॥ २ ॥

अर्थ–वातादि दोष गर्भिणी अथवा प्रसूता स्त्रीके सदुग्ध अथवा अदुग्ध स्तनोंमें प्राप्त हो मांस रक्तको दुष्टकरके स्तनरोग उत्पन्न करैं स्तनरोग वात, पित्त, कफ, सन्निपात, आगंतुजके भेदसे पांच प्रकारका है इन पांचोंके लक्षण रक्तविद्रधिको त्यागकर बाह्यविद्रधिके समान होतेहैं सो विद्रधिनिदान जो पीछे कह आए हैं उससे जान लेना चाहिये ।

इति स्तनरोगनिदानं ।

स्तन्य (दूध) रोग

गुरुभिर्विविधैरन्नैर्दुष्टैर्दोषैःप्रदूषितम् ।
क्षीरंधात्र्याःकुमारस्यनानारोगायकल्पते ॥ ३ ॥

अर्थ–गुर्वादिक अनेक प्रकारके अन्नसे दोष (वात पित्त कफ) दुष्ट होकर माताके दूधका नाश करैं उस दुष्ट दूधसे बालकके नानाप्रकारके रोग होते हैं ।

वातादिकसे दूषितदूधके लक्षण

कषायंसलिलप्लाविस्तन्यंमारुतदूषितम् । कट्वम्ललवणंपीतराजिमत्पित्तसंज्ञितम् ॥ ४ ॥ कफदुष्टंघनंतोयेनिमज्जतिसुपिच्छिलम् । द्विलिंगंद्वंद्वजंविद्यात्सर्वलिंगंत्रिदोषजम् ॥ ५ ॥

अर्थ–जो दुग्ध कसैला अथवा पानीके ऊपर तैरनेवाला होय, उसको वातदूषित जानना तथा जो कडुआ, खट्टा, और खारी होकर जिसमें पीली रेखासी प्रतीत होवें उसको पित्तदूषित जानना और जो दूध सघन चिकनासा होवे

और पानीमें डालनेसे नीचेको बैठ जाय, उसको कफसे दुष्ट जानना चाहिये। दो दोषोंके लक्षण जिसमें मिले उसे द्वंद्वज जाने और जिसमें तीनों दोषोंके लक्षण मिलैं उसे त्रिदोषदूषित जानें।

शुद्ध दूधके लक्षण

अदुष्टंचाम्बुनिक्षिप्तमेकीभवतिपाण्डुरम्।
मधुरंचाविवर्णंचतत्प्रसन्नंविनिर्दिशेत्॥ ६ ॥

अर्थ-जो दूध पानीमें डालनेसे मिलजाय, तथा जो दूध कुछ पीला हो और मीठा होकर वे रंगका नहो उसको शुद्ध जानना। अब कहते हैं कि स्त्रियोंके दूध दीखे नहीं परंतु होता है क्यों कि बालक पिया करते हैं इस बातको शुक्र वीर्यका दृष्टान्तदेकर कहते हैं।

इति स्तन्यरोगनिदानम्

विशंस्तेष्वपिगात्रेषुयथाशुक्रंनदृश्यते।
सर्वदेहाश्रितत्वाच्चशुक्रलक्षणमुच्यते॥ ७ ॥

स्तन्यमुच्यत इति शेषः

अर्थ-जैसे सर्व पुरुषोंके देहमें व्याप्तभी परन्तु देहके काटनेसेभी शुक्र दीखता नहीं हैं, उसी प्रकार सर्व स्त्रियोंके देहाश्रित जो दुग्ध है सोभी नहीं दीखता है, परन्तु निःसन्देह है सही।

तदेवचेष्टयुवतेर्दर्शनात्स्मरणादपि। शब्दसंश्रवणात्स्पर्शा-
त्संहर्षाच्चप्रवर्त्तते॥ ८ ॥ सुप्रसन्नंमनस्त्वेवहर्षणेहेतुरुच्यते।
आहाररसयोनित्वादेवंस्तन्यमपिस्त्रियाः॥ ९ ॥ तदेवाऽप-
त्यसंस्पर्शाद्दर्शनात्स्मरणादपि। ग्रहणाच्चशरीरस्यशुक्रवत्सं-
प्रवर्त्तते॥ १० ॥ स्नेहोनिरन्तरस्तत्रप्रसवेहेतुरुच्यते।

अर्थ-वोही शुक्र इष्ट (प्रिय) स्त्रीके देखनेसे, उसका स्मरण (याद) करनेसे, उसकी वाणी सुननेसे, और स्पर्श (आलिंगन) से भया जो आनन्द उस आनन्दसे प्राप्त होय है इस जगह मनका प्रसन्न होना यही आनन्दका कारण है, शुक्रकी उत्पत्ति आहारसे होती है, सोई हेतु स्तन्य(दूध)का जानना, अर्थात् दूधभी जब स्त्री अपने बालकका स्पर्श करे, देखे, उसका स्मरण करे तथा बाल-

कको गोदमें लेनेसे दूध शुक्रके सदृश वढता है इस जगहभी दूधके उतरनेमें स्नेह (प्यार)ही कारण है। यह श्लोक संगृहीत है।

इति श्रीपण्डितदत्तरामप्रणीतमाधवमावार्थदीपिकामाथुरीटीकासमाप्ता ।

बालरोगनिदानम्।

त्रिविधःकथितोबालःक्षीरान्नोभयवर्तनः ।
स्वास्थ्यंताभ्यामदुष्टाभ्यांदुष्टाभ्यांरोगसम्भवः॥ १ ॥

अर्थ-दूध पीनेवाला, और अन्न खानेवाला और दूध अन्न दोनों खानेवाला, ऐसे तीन प्रकारका बालक होता है यदि वोही अन्न दुष्ट न होय तो बालक निरोगा रहे, और वे दोनों दुष्ट होंय तो अनेक रोग प्रगट होते है।

वातदूषितदूधके रोग

वातदुष्टंशिशुःस्तन्यंपिबन्वातगदातुरः ।
क्षामस्वरःकृशांगःस्याद्बद्धविण्मूत्रमारुतः ॥ २ ॥

अर्थ-जो बालक वातदूषितदूधको पीता है उसके वातके रोग होते हैं, उसका शब्द क्षीण होजाय, शरीर कृश होय, और मलमूत्र तथा अधोवायु नहीं उतरे।

पित्तदूषितदूधके लक्षण

स्विन्नोभिन्नमलोबालःकामलापित्तरोगवान् ।
तृष्णालुरुष्णसर्वांगःपित्तदुष्टंपयःपिबन् ॥ ३ ॥

अर्थ-जो बालक पित्तदूषित दूधको पीवे, उसके पसीना आवे मल पतला होजाय, कामलारोग होय, तथा पित्तके औरभी रोग होंय (प्यासका लगना सर्वांगमें दाह आदि अनेक) रोग होय।

कफदूपितदूधके लक्षण

कफदुष्टंपिबन्क्षीरंलालालुःश्लेष्मरोगवान् ।
निद्रार्दितोजडःशूनःशुक्लाक्षश्छर्दनःशिशुः ॥ ४ ॥

अर्थ-जो बालक कफदूपित दूधको पीवे उसके मुखसे लार वहुत गिरे, तथा कफके रोग होंय, (निद्रा आवे अंग भारी होय सूजन होय वमन होय खुजली चले)।

बालकोंकी अंतर्गत पीडा जाननेकी उपाय

शिशोस्तीव्रामतीव्रांचरोदनाल्लक्षयेद्रुजं । सयंस्पृशेद्भृशंदेशं यत्रचस्पर्शनाक्षमः ॥ ५ ॥ तत्रविद्याद्रुजंमूर्ध्निरुजंचाक्षिनिमीलनात् । कोष्ठेविबंधवमथुस्तनदंशांत्रकूजनैः ॥ ६ ॥ आध्मानपृष्ठनमनजठरोन्नमनैरपि । बस्तौगुह्येचविण्मूत्रसंगोत्रासादिगीक्षणैः ॥ ७ ॥ स्त्रोतांस्यंगानिसंधींश्चपश्येद्यत्नान्मुहुर्मुहुः ।

अर्थ—बालकोंके रुदन (रोने)से, उसके थोडी वा बहुत पीडा जाननी, वो बालक जिस ठिकाने वारंवार हाथ लगावे उस ठिकाने और जिस जगह औरके हाथको न लगाने दे उस ठिकाने उसके पीडा जानना चाहिये नेत्रोंके मूंदनेसे, मस्तकपीडा जाने मलावरोध, वमन, स्तन (छातीको) चवाना, तथा पेटका गूंजना, पेटका फूलना, तथा पेटका उछलना, इन लक्षणोंसे बालकके पेटमें पीडा जाननी मलमूत्रके रुकने, तथा डरनेसे, और सर्वत्र देखनेसे, इन लक्षणोंसे उसकी वस्ती (मूत्रस्थान) और गुदामें पीडा जाननी वैद्य बालकके स्रोत (नाक, मुख, कान आदिछिद्रों)को, हाथ पैरसे आदिले अवयवों और संधीयोंको वारंवार देखे तो रोगका यथार्थज्ञान होय ।

द्वंद्वज और सन्निपातजदूषितदुग्धके रोग

द्विलिंगंद्वंद्वजंविद्यात्सर्वलिंगंत्रिदोषजे ।

अर्थ—पूर्वोक्त जो वातादिदूषित दुग्धके लक्षण कहेहैं उनमें दो दोषके लक्षण मिलनेसे द्वंद्वज रोग जानना, और त्रिदोषके लक्षण मिलनेसे सन्निपातका रोग जानना, ये श्लोक प्रक्षिप्त है माधवका नहीं है ।

कुकूणकके लक्षण

कुकूणकःक्षीरदोषाच्छिशूनामेववर्त्मनि ॥ ८ ॥ जायतेतेन नेत्रंचकण्डूरंचस्रवेन्मुहुः । शिशुःकुर्याल्ललाटाक्षिकूटनासाविघर्षणम् ॥ ९ ॥ शक्तोनार्कप्रभांद्रष्टुंनवर्त्मोन्मीलनक्षमः ।

अर्थ—कुकूणक यह रोग बालकोंके दूधके दोषसे होताहै, इस रोगके होनेसे बालकके नेत्र खुजावें, और पानी वहे, नेत्रोंमें कीचड आनेसे वो ललाट नेत्र और नाकको रगडे, धूपके सामने देखा न जाय, उसके नेत्र खुलें नहीं, इसको

लौकिकमें कोथस्राव कहते हैं यह रोग बालकोंकेही होता है सो वाग्भट्टमें लिखा है।

पारिगर्भिकके लक्षण

मातुःकुमारोगर्भिण्याःस्तनंप्रायःपिबन्नपि ॥ १० ॥ कासाग्निसादवमथुतंद्राकार्श्यारुचिभ्रमैः । युज्यतेकोष्ठवृद्ध्याचतमाहुःपारिगर्भिकम् ॥ ११ ॥ रोगंपरिभवाख्यंचदद्यात्तत्राग्निदीपनम् ।

अर्थ-बालकके गर्भिणी माताका दूध पीनेसे उसके खांसी, मन्दाग्नि, वमन, तन्द्रा, अरुचि, कृशता, और भ्रम ये होंय और उसके पेटकी वृद्धि होय, इस रोगको वैद्यगण पारिगर्भिक अथवा परिभव कहते हैं। इस रोगमें अग्निदीपनकर्ता औषधि बालकको देनी चाहिये।

तालुकंटकके लक्षण

तालुमांसेकफःक्रुद्धःकुरुतेतालुकंटकम् ॥ १२ ॥ तेनतालुप्रदेशस्यनिम्नतासूर्भिजायते । तालुपातःस्तनद्वेषःकृच्छ्रात्पानंशकृद्द्रवम् ॥ १३ ॥ तृडक्षिकंठास्यरुजाग्रीवादुर्धरतावमिः।

अर्थ-तालुके मांसमें कफ कुपितहोकर तालुकंठके रोगको करै, उसके होनेसे तालुका ऊपरका भाग नीचा होजाय, तथा भीतरसे बालकका तालुआ बिधजाय, इसीसे बालक स्तन (छाती)को नहीं दावे, और पीवेभीतो बडे कष्टसे पीवे, पतला मल होजाय, प्यास लगे, नेत्र कंठ मुख इनमें पीडा होय, नार गिरै पडे, और जो दूध पीवै उसे डाल दे।

महापद्मविसर्पके लक्षण

विसर्पस्तुशिशोःप्राणनाशनोवस्तिशीर्षजः ॥ १४ ॥ पद्मवर्णोमहापद्मोरोगोदोषत्रयोद्भवः । शंखाभ्यांहृदयंयातिहृदयाद्वागुदंव्रजेत् ॥ १५ ॥

अर्थ-बालकोंके जो मस्तक और वस्ती (मूत्रस्थान)में विसर्प होय, वो बालककी प्राणनाशक जाननी, जो विसर्प लाल कमलके पत्रके समान लाल हो

(१) कुकूणकः शिशोरेव दीनोत्पत्तिनिमित्तजः।

है यह महापद्मरोग त्रिदोषज है। यह कनपटीमें उत्पन्न होकर हृदयपर्यंत जाय है, अथवा हृदयमें होकर गुदापर्यंत जाता है।

और विकार जो बालकोंके होते हैं उन्को कहते हैं।

क्षुद्ररोगेचकथितेअजगल्यहिपूतने। ज्वराद्याव्याधयःसर्वेम-हतांयेपुरेरिताः ॥ १६ ॥ बालदेहेपितेतद्वद्विज्ञेयाःकुशलैः सदा।

अर्थ–क्षुद्ररोगनिदानमें जो अजगल्ली और अहिपूतना कहीहैं सो, और ज्वरादिक सर्व रोग जो बडे मनुष्योंके होतेहैं अर्थात् जिनरोगोंको पूर्वकहि आए हैं वो सब रोग बालकोंकी देहमेंभी होतेहैं, ऐसे कुशल वैद्योंको जानना चाहिये।

सामान्य ग्रहजुष्टके लक्षण

क्षणादुद्विजतेबालःक्षणात्त्रस्यतिरोदिति ॥ १७ ॥ नखैर्दन्तै-र्दारयतिधात्रीमात्मानमेवच। ऊर्ध्वंनिरीक्षतेदन्तान्खादे-त्कूजतिजृम्भते ॥ १८ ॥ भ्रुवौक्षिपतिदंतोष्ठंफेनंवमतिचा-सकृत्। क्षामोऽतिनिशिजागर्तिशूनांगोभिन्नविट्स्वरः॥१९॥ मांसशोणितगन्धिश्चनचाश्नातियथापुरा। सामान्यग्रहजु-ष्टानांलक्षणंसमुदाहृतम् ॥ २० ॥

अर्थ–कभी क्षणभरमें बालक विव्हल होजाय, कभी क्षणभरमें डरे, रोवे, नख और दांतोंसे अपने शरीर और माताको खसोटे, ऊपरको देखे, दांतोंको चबावे, किलकारी मारे, जंभाई लेय, भ्रुव (भौंह)को तिरछी करे, दांतोंसे होठोंको खाय, वारंवार मुखसे झाग डाले, वो अत्यन्त क्षीण होय, रात्रमें सोवे नहीं, देहमें सूजन होय, मल पतला होय, स्वर बैठ जाय, उसके देहमें रुधिर मांसकीसी बास आवै, जितना पहले खाता होय उतना नही खाय, ये सामान्य ग्रह व्याप्त बालकके लक्षण हैं अब कहते हैं कि स्कंदादिक ग्रह पूजाके अर्थ बालकोंको मारे हैं सो चरकमें लिखा है।

---

(१) धात्रीमात्रोः प्राक्प्रदिष्टोपचाराच्छौचभ्रंशान्मंगलाचारहीनान् ॥ त्रिष्टांस्तांस्तांस्तर्जितांस्ताडितांश्च पूजाहेतोर्हिंस्युरेते कुमारान् ॥ इति ॥

स्कंदग्रहगृहीतवालकके लक्षण

एकनेत्रस्यगात्रस्यस्रावःस्यंदनकंपनम् । अर्द्धदृष्ट्यानिरीक्षेतवक्रास्योरक्तगंधिकः ॥ २१ ॥ दंतान्खादतिवित्रस्तःस्तन्यं नैवाभिनन्दति । स्कन्दग्रहगृहीतानांरोदनंचाल्पमेवच ॥ २२ ॥

अर्थ–वालकके एक नेत्रसें पानी गिरे, और अंगमें स्राव (कहिये पसीना) वहे, एक औरका अंग फडके, तथा थर थर कांपे, वो वालक आधी दृष्टिसे देखे, मुख टेढा होजाय, रुधिरकीसी दुर्गंधि आवे, वो वालक दांतोंको चवावै, अंग सिथिल होजाय, स्तनको नहीं पीवै; और थोडा रोवे, यह स्कन्दग्रह लगे वालकके लक्षण हैं । इस जगह स्कन्दग्रहकरके शिवजीके प्रगट करे जो ग्रह हैं उनमेंसे श्री शिवपुत्र स्वामीकार्तिकका ग्रहण न करना चाहिये ।

स्कंदापस्मारके लक्षण

नष्टसंज्ञोवमेत्फेनंसंज्ञावानातिरोदिति ।
पूयशोणितगन्धित्वंस्कन्दापस्मारलक्षणम् ॥ २३ ॥

अर्थ–वालक वेसुधि होय, मुखसे झाग डाले, जव होसहो तव रोवे, उसकी देहमें रुधिरकीसी दुर्गंधि आवै, इन लक्षणोंकरके स्कन्दापस्मारके लक्षण जानने ।

शकुनिग्रहके लक्षण

स्रस्तांगोभयचकितोविहंगगन्धिःसंस्रावव्रणपरिपीडितःसमन्तात् । स्फोटैश्चप्रचिततनुःसदाहपाकैर्विज्ञेयोभवतिशिशुःक्षतःशकुन्या ॥ २४ ॥

अर्थ–शकुनीग्रहसे पीडित वालकके अंग शिथिल होंय, भयसे चकित होय, उसके अंगमें पक्षीके अंगके समान वास आवै, घाव होकर उसमेंसे लस वहे, सर्व अंगोंमें फोडा उत्पन्न होंय और वो पकें तथा दाह होय ।

रेवतीग्रहका लक्षण

व्रणैःस्फोटैश्चितंगात्रंपंकगंधमसृक्स्रवेत् ।
भिन्नवर्चाज्वरोदाहीरेवतीग्रहलक्षणम् ॥ २५ ॥

---

(१) तदुक्तं हिरण्याक्षेण । सस्रावो दाहपाकाद्यैश्चितस्फोटैर्भयान्वितः । संस्रावो विस्रगंधः स्याच्छकुन्या पीडितः शिशुः ॥

अर्थ-रेवती ग्रहसे पीडित बालकके अंगमें घाव और फोडा होंय, उनमेंसे रुधिर वहे, उसमें कीचकीसी वास आवै, दस्त होंय, ज्वर होंय, अंगमें दाह होय।

पूतनाग्रहके लक्षण

अतिसारोज्वरस्तृष्णातिर्यक्प्रेक्षणरोदनम् ।
नष्टनिद्रस्तथोद्विग्नःस्रस्तःपूतनयाशिशुः ॥ २६ ॥

अर्थ-पूतना ग्रहकी पीडासे बालकको दस्त, ज्वर, प्यास होय, टेढी दृष्टिसे देखे, रोवे, सोवे नहीं, व्याकुल होय, शिथिल होजाय, ये लक्षण होते हैं।

अंधपूतनाग्रहके लक्षण

छर्दिःकासोज्वरस्तृष्णावसागंधोऽतिरोदनम् ।
स्तन्यद्वेषोऽतिसारश्चअंधपूतनयाभवेत् ॥ २७ ॥

अर्थ-अंधपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके वमन होय, खांसी, ज्वर, प्यास, चर्बीकीसी दुर्गंधि, बहुत रोना, स्तन्य (छाती)को मुखसे दावे नहीं, अतिसार ये लक्षण होते है।

शीतपूतनाग्रहके लक्षण

वेपतेकासतेक्षीणोनेत्ररोगोविगंधिता ।
छर्द्यतीसारयुक्तश्चशीतपूतनयाशिशुः ॥ २८ ॥

अर्थ-शीतपूतना ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी क्रांति क्षीण होजाय, उसके नेत्ररोग होय, देहमें दुर्गंधि आवे, वमन होय, और दस्त होंय।

मुखमंडिकाग्रहके लक्षण

प्रसन्नवर्णवदनःशिराभिरिवसंवृतः ।
मूत्रगन्धिश्चबह्वाशीमुखमण्डिकयाभवेत् ॥ २९ ॥

अर्थ-मुखमंडिका ग्रहकी पीडासे बालकके मुखकी क्रांति सुंदर होय, और देहकी क्रांति श्रेष्ठ होय, शिरान्में बंधा देह होजाय, उसके देहमें मूत्रकीसी दुर्गंधि आवै, यह बालक बहुत भक्षण करे।

नैगमेयग्रहके लक्षण

छर्दिस्यन्दनकंठास्यशोषमूर्च्छाविगन्धिताः ।
ऊर्ध्वंपश्येद्दशेद्दन्तान्नैगमेयग्रहंवदेत् ॥ ३० ॥

अर्थ-वमन, कंप, कंठ मुखका सूखना, मूर्च्छा, दुर्गंधि, ऊपरको देखे, दांतोंको चवावे इन लक्षणोंसे नैगमेयग्रहकी वाधा जाननी।

इति बालरोगनिदानम्

विषरोगनिदानम्।

स्थावरंजंगमंचैवद्विविधंविषमुच्यते।
मूलात्मकंतदाद्यंस्यात्परंसर्पादिसम्भवम्॥ १॥

अर्थ-विष दोप्रकारका है स्थावर, और जंगम, तथा मूलात्मक स्थावर, और सर्पादिकोंसे जो प्रगट हो वह जंगम विष कहता है।

दशाधिष्ठानमाद्यन्तुद्वितीयंषोडशाश्रयम्।

अर्थ-आद्य अर्थात् स्थावर विष दसजगह रहता है, और जंगम विष सोलः जगह रहता है।

मूलंपत्रंफलंपुष्पंत्वक्क्षीरंसारएवच। निर्यासाधातवश्चैवकन्दश्चदशमःस्मृतः॥ २॥

अर्थ-जड, पात, फल, फूल, छाल, दूध, रस, गोंद, धातु, और कंद ये दश स्थावर विष हैं। तहां मूलविष आठ, क्लीतक, अश्वमार, गुंज, सुगंध, गर्गर, ककरघाट, विद्युच्छिखा, और विजिया, ये हैं।

विषपत्रिका, लम्बावर, दारुक, करम्भ, महाकरंभ, ये पांच पत्रविष हैं।

कुमुद्वती, वेणुका, करम्भ, महाकरम्भ, कर्कोटक, रेणुक, खद्योतक, चमरी, इभगन्धा, सर्पघाति, नन्दन, सारपाकिनी, ये बारह फलविष हैं।

पत्र, कदंव, वल्लिज, करम्भ, महाकरम्भ, ये पांच पुष्पविष हैं।

अंत्रपाचक, कर्तरीय, सौरीय, ककरघाट, करम्भ, नन्दन, वराटक, ये सात त्वचारसके (गोंद)के विष हैं।

कुमुदघ्नी, स्नुही, जालक्षीरी, ये तीन दूधके विष हैं।

फेणाश्मभस्म, ओर हरिताल, ये धातुविष हैं।

कालकूट, वत्सनाभ, सर्षपक, पालक, कर्दमक, वैराटक, मुस्तक, शृंगीविष, प्रपौंडरीक, मूलक, हालाहल, महाविष, कर्कट, ये तेरह कंदविष हैं।

सब मिलकर स्थावर विष पचवन हैं।

विषस्य स्थानम्

जंगमस्यविषस्योक्तान्यधिष्ठानानिषोडश ।
समासेनमयायानिविस्तरस्तेषुवक्ष्यते ॥ ३ ॥

अर्थ–जंगम विषके स्थान सोलह हैं, सो मैंने संक्षेपसे कहे हैं। अब विस्तारसे कहता हूं दृष्टि, श्वास, दांत, नख, मूत्र, विष्ठा, शुक्र, लार, आर्तव, मुख, संदंश, विशर्द्धित, (पादना) गुदा, हड्डी, पित्त, शूकशव, ये सोलह स्थान हैं।

तहां दृष्टि, निश्वास, विष दिव्य हैं, सो दिव्य सर्पादिकका जानना भीम विष, दंष्ट्राविष है।

बिलाव, कुत्ता, वन्दर, मगर, मेंडक, मच्छी, जलगोधिका, शंबूक, (शीप) पंचालक, छिपकरी, मोहारकी मक्खी, पीली मक्खी, ततैया, इनसे आदि ले ये जनावर दंष्ट्रा और नख विषवाले हैं।

चिपिंठ, पिचटक, कषाय, वासिक, सर्षप, वासिक, तोटववर्च, कोडकौटिल्यक, इन जनावरोंके विष्ठा, और मूत्रमें विष होता है।

इनको लोकप्रसिद्धि नामसे जानना।

मूंसेके शुक्रमें विष होता है, मकडी आदि जो कीट हैं सो लूना कहाते हैं। इनके लार, मूत्र, विष्ठा, मुख, नख, शुक्र, आर्तव, इनमें विष होता है।

विच्छू, विश्वंभर, ततैया, राजिलमछलि, चिटिंग, समुद्रका विच्छू, इनकी पूंछमें जो कांटा होता है उसमें विष होता हैं।

चित्रशिर, शरावकुर्दि, शतदारुक, आदि मेदक, शारिका मुख, मुखदंशक, इनके मूत्रपुरीषमें विष जानना।

मक्खी, कणव, जोख, इनके मुख और काटनेमें विष है।

विषसे मरे हुएकी हड्डी, सर्पकी हड्डी, विषियल मछली, इनकी हड्डीमें विष है।

शकुलीनामकी मछली, रक्तराजी, और चरकी नामकी मछली इनके पित्तमें विष हैं।

सूक्ष्मतुंड, चेंटी वहर, कनखजूरा, शूक, मौरा, तोता, इनके तुण्ड अर्थात् मुखके अग्रभागमें विष है।

कीट, और सर्प, इनके मरे देहमें विष है।

और जिनकी गणना यहां नहीं की उनको मुख संदंश वालोंमें जानना ये जंगमविष हैं।

जंगमविषके सामान्यलक्षण

निद्रातन्द्राक्कमंदाहमपाकंरोमहर्षणम् ।
शोथंचैवातिसारंचकुरुतेजंगमंविषम् ॥ १ ॥

अर्थ–निद्रा, तन्द्रा, क्कम, दाह, अन्नका न पचना, रोमांच, सोथ, और अतिसार, ये लक्षण जंगमविषके हैं ।

इति जगमविषसामान्यलक्षणम्

स्थावरविषके सामान्यलक्षण

स्थावरन्तुज्वरंहिक्कांदन्तहर्षंगलग्रहम् ।
फेनच्छर्द्यरुचिश्वासंमूर्च्छांचकुरुतेभृशम् ॥ २ ॥

अर्थ–स्थावरविषसे ज्वर, हिचकी, दांतोंका घिसना, गलेका घिरना, झागसे मिली रद, अरुचि, श्वास और असंत मूर्च्छा, ये लक्षण होते हैं ।

राजा किंवा कोई दूसरा वडा सेठसाहुकार जिसको समीपके रहनेवाले किसी नोकर चाकरने विषमिलाकर अन्न दिया हो उस विषदेनेवालेके ढूंढनेके निमित्त कुछ लक्षण कहताहूं

इंगितज्ञोमनुष्याणांवाक्चेष्टामुखवैकृतैः । जानीयाद्विषदातारमेतैर्लिंगैश्चबुद्धिमान् ॥ ४ ॥ नददात्युत्तरंपृष्टोविवक्षुर्मोहमेतिच । अपार्थंबहुसंकीर्णंभाषतेचापिमूढवत् ॥ ५ ॥ हसत्यकस्मात्स्फोटयत्यंगुलीर्विलिखेन्महीम् । वेपथुश्चास्य भवतित्रस्तश्चान्योन्यमीक्षते ॥ ६ ॥ विवर्णवक्त्राक्षामश्चनखैः किंचिच्छिनत्त्यपि । आलभेतासनंदीनःकरेणचशिरोरुहम् ॥ ७ ॥ वर्त्ततेविपरीतंचविषदाताविचेतनः ।

अर्थ–मनुष्यके अभिप्राय जाननेवाले वैद्यको बोलने चालने तथा मुखकी चेष्टा इनसे, तथा आगे जो कहते हैं इन लक्षणोंसे विषके देनेवाले मनुष्यको बुद्धिमान जान ले । सो इस प्रकार, जो मनुष्य विष दे उससे कोई बात पूछे तो वो उत्तर न दे, और जब बोले तब मोहको प्राप्त हो, अर्थात् घबडा जावे । तथा कदाचित् बोलेभी तो निरर्थक और वहुत अस्पष्ट बोले, तथा अकस्मात् हंसे, हाथकी उंगली चटकावे, पृथ्वीमें रेखा काढे, भयसे कांपे, और डरकर चारों

ओर वारवार सवकी तर्फ देखे, मुखकी चेष्टा जाती रहे, और काला होजाय, नखोंसे कुछ तिनका आदि तोडे, गरीवके समान एकही स्थानपर वैठा रहे, माथेपर हाथ फेरे; वारंवार इधर उधर डोलकर वैठ जाय, उसका चित्त ठिकाने न रहे, तथा उसका चित्त भागनेको चाहे, ये लक्षण विप देनेवालेके जानने। और येही लक्षण घोर अपराध करनेवालेके राजा जान लेवे।

मूलादिविपोंके लक्षण

उद्वेष्टनंमूलविपैःप्रलापोमोहएवच । जृम्भणंवेपणंश्वासो मोहःपत्रविपेणतु ॥ ८ ॥ मुखशोथःफलविपैर्दाहोऽन्नद्वेपए-वच। भवत्युपविपैश्छर्दिराध्मानंश्वासएवच ॥ ९ ॥ त्व-क्सारनिर्यासविपैरुपयुक्तैर्भवन्तिहि । आस्यदौर्गंध्यपारुष्य-शिरोरुक्कफसंस्रवाः ॥ १० ॥ फेनागमःक्षीरविपैर्विड्भेदो गुरुजिव्हता । हृत्पीडनंधातुविपैर्मूर्च्छादाहश्चतालुनि॥११॥ प्रायेणकालघातीनिविपाण्येतानिनिर्दिशेत्।

अर्थ–मूलविपसे रोगीके हाथ पैरोंमें पीडा, और मोह होवे।
पत्रविपसे–जंभाई, कंप, श्वास, और मोह होवे।
फलविपसे–मुखपर सूजन, दाह, अन्नमें अरुचि हो।
पुष्पविपसे–वमन, अफरा, और श्वास होवे।
छाल रस गोंद इनसें मुखमें दुर्गंधि, अंगमें खरदरापन, मस्तकशूल, और मुखके मार्ग कफ गिरे।
दुग्धविपसे–मुखमें झाग आवें, दस्त होय, और जीभ जकड जावे।
धातुविपसे–हृदयमें पीडा होय, मूर्च्छा आवे, तालुएमें दाह होय, ये सव विप वहुधाकरके कालान्तर मारनेवाले होते हैं।

विपलिप्तशस्त्रहतके लक्षण.

सद्यःक्षतंपच्यतेतस्यजन्तोःस्रवेद्रक्तंपच्यतेचाप्यभीक्ष्णम् । कृष्णीभूतंक्लिन्नमत्यर्थपूतिक्षतान्मांसंशीर्यतेयस्यचापि॥१२॥ तृष्णामूर्छाज्वरदाहोचयस्यदिग्धाहतंमनुजंतंव्यवस्येत्। लिं-गान्येतान्येवकुर्याद्मित्रैर्व्रणेदिपंयस्यदत्तंप्रमादात् ॥ १३ ॥

अर्थ–जिस पुरुपका जखम तत्काल पकजावे, तथा उसमें रुधिर वहे, और

वारंवार पके, तथा उसजखममेंसे काला सडा दुर्गंधियुक्त ऐसा मांस निकले, तथा जिसमें प्यास, मूर्च्छा, ज्वर, दाह, ये होवें उसके विषमें बुझे वा लिप्त शस्त्रकी जखम लगी जानना चाहिये।

शत्रूओंनें कपटकरके जिसके व्रणमें विष डाल दिया हो उसकेभी यही लक्षण हैं।

स्थावरविषको कहकर जंगममें सर्पविष ये अतितीक्ष्ण
हैं इसीसें प्रथम सर्पोंकी जात कहते हैं

वातपित्तकफात्मानोभोगिमण्डलिराजिलाः।
यथाक्रमंसमाख्याताव्यन्तराद्वंद्वरूपिणः॥ १४॥

अर्थ—भोगी मंडली और राजिल, ये सर्प अनुक्रमसे वात, पित्त, कफ प्रकृति हैं। और जे व्यंतर अर्थात् जो दो जातिके सर्प और सर्पणीसे प्रगट है वे व्यंतर कहाते हैं। उनकी प्रकृति द्वंद्वज है अर्थात् जिस जिस प्रकारके सर्प सर्पिणीसे प्रगट उसी उसी प्रकारकी प्रकृति उनकी होती हैं। जिनके मस्तकपर चक्र, हल, छत्र, स्वस्तिक, (सतिया) अंकुश, इनका चिन्ह हो; और जिनका फण करछीके समान चौडा हो, और जलदी चलनेवाले हों, उनको भोगी अथवा राजिल सर्प कहते हैं। और जो अनेक प्रकारके चकत्तोंसे चित्रविचित्रहों, तथा मोटे और मंद चलनेवाले, तथा अग्नि और सूर्यकासा प्रकाश जिनका, उनको मंडली सर्प कहते हैं।

और जो चिकने और अनेकप्रकारकी रेखा उनके ऊपर नीचे विद्यमान हों, उनको राजिल सर्प कहते है। इनसर्पोंकी चार जाती हैं। तिन्में मोती, चांदी, सुवर्णकीसी प्रभा होवै, और जो नम्र तथा जिनकी देहमें सुगंध आवै, वो ब्राह्मण जातिके सर्प हैं। और जिनका स्वच्छवर्ण, क्रोधी, और जिनके मस्तकपर सूर्यचन्द्रके समान तथा छत्रका तथा कमलका चिन्ह होवै, वो क्षत्री जातिके सर्प हैं। काले और हीराके समान तथा लोहेके वर्ण हों, और जिनकी धुआं और कबूतरके समान प्रभा हो, वो वैश्यजातिके सर्प हैं। जिनकी देह भैंसा, चीतेके समान हो, और जिनकी त्वचा कठोर हो, तथा अनेक प्रकारका जिनका वर्ण हो, वो शूद्रजातिके सर्प हैं। रात्रिके पिछिले प्रहरमें राजिलजातिके सर्प विचरते हैं। और रात्रिके पहले तीन पहरोंमें मंडली जातिके सर्प विचरते हैं। और दिनमें दर्वीकर जातिके सर्प बहुधा विचरते हैं। इनमें दर्वीकर जातिके सर्प तरुण हैं, और मंडली जातिके वृद्ध, और राजिल जातिके मध्यम अवस्थाके हैं।

इतनी जातिके सर्प निर्विष जानने। जो नौला सँहत हैं, और बालक, तथा जलसे ताडित हैं, और कृश, वृद्ध, तथा जिनकी कांचली छूट रही हो और डर रहे हों, ऐसे सर्प विषरहित होते हैं।

अब सर्पोंके भेद कहते है

तहां प्रथम दर्वीकर सर्पोंके भेद कहते हैं। कृष्णसर्प, महाकृष्ण, कृष्णोदर, श्वेत, कपोत, बलाहक, महासर्प, शंखपाल, लोहिताक्ष, गवेधुक, परिसर्प, खंडफण, ककुदपद्म, महापद्म, दर्भपुष्प, दधिमुख, पुंडरीक, भ्रकुटीमुख, विष्किर, पुष्पाभिकीर्ण, गिरिसर्प, ऋतुसर्प, श्वेतोदर, महाशिरा, अलगर्द, आशीविष ये दर्वीकर जातिके सर्प हैं।

आदर्शमंडल, श्वेतमंडल, रक्तमंडल, चित्रमंडल, प्रषत, रोध्रपुष्प, मिलिंदक, गोनस, वृद्धगोनस, पनस, महापनस, वेणुपत्रक, शिशुक, बभ्रु, कषाय, कलुष, पारावत, हस्ताभरण, चित्रक, एणीपद, ये मंडलीजातिके सर्प है।

पुंडरीक, राजिचित्र, अंगुलराजि, विंदुराजि, कर्दमक, तृणशोषक, संसर्पक, श्वेतहनु, दर्भपुष्प, चक्रक, गोधूमक, किक्कसाद, ये राजिलजातिके सर्प हैं।

गुलगोली, शूकपत्र, अजगर, दिव्यक, वर्षाहिक, पुष्पशकली, ज्योतीरथ, क्षीरिक, पुष्पक, अहिपतानक, अंधाहिक, गौराहिक, वृक्षेशय, इतने सर्प हीनविष जानने।

अब कहतेहैं कि वृचंतर (वर्णसंकर) सर्पभी तीन प्रकारके हैं। माकुली, पोटगल, स्निग्धराजि,।

तहां कृष्णसर्पजातिकी सर्पिणी और गोनसजातिके सर्पसे जो सर्प प्रगट हो वो माकुली कहाता है।

इसी प्रकार राजिल और गोनसीजातिके सर्पिणी सर्पसे जो प्रगट सो पोटगलकसर्प कहाता है।

इसी प्रकार कृष्णसर्प और राजमती जातिकी सर्पिणीसे प्रगट हुए सर्पको स्निग्धराजी कहते हैं।

तहां अकुली सर्पमें पिताकासा विष (जहर) होय है और पोटगल स्निग्धराजी इन दोनोंमें माताकासा विष होता है। इन तीनोंके विपरीततासे दिव्येलक, लोध्रपुष्पक, राजिचित्रक, पोटगल, पुष्पाभिकीर्ण, दर्भपुष्प, वेल्लितक, इन सात जातिके सर्प प्रगट होते हैं।

इनमेंभी प्रथमके तीन सर्पोंमें राजिल सर्पोंकासा विष होता है, और शेषोंमें मंडली सर्पोंकासा जानना ऐसे सब मिलकर अस्सी प्रकारके सर्प हैं। इनमेंभी जि-

नके नेत्र, जीभ, मुख, शिर बडे हों वो पुरुष जानने। और छोटे होंय वो स्त्री जाननी, और जिनमें दोनों स्त्री पुरुषके लक्षण मिलते होंय, तथा मंद विषवाले क्रोधरहित हों उनको नपुंसक जानना।

भोगिप्रभृतिसर्पके काटनेपर वातादिकोंके लक्षण.

दंशोभोगिकृतःकृष्णःसर्ववातविकारकृत् । पीतोमण्डलिजः शोथोमृदुःपित्तविकारवान् ॥ १५ ॥ राजिलोत्थोभवेद्दंशः स्थिरशोथश्चपिच्छिलः। पाण्डुःस्निग्धोऽतिसान्द्रासृक्सर्वश्लेष्मविकारवान् ॥ १६ ॥

अर्थ–भोगी अथवा राजिल (दर्वीकर) सर्पके काटनेसे काटनेकी ठौर काली हो, और सर्व वातके विकार करे इसके सुश्रुतमें (१) बहुत अवगुण लिखे हैं (मंडली) सर्पके काटनेकी ठौर पीली सूजनयुक्त और नरम और पित्तके विकार करे और (राजिल)का दंश, चिकना पीले रंगका वा गाढा तथा उसकी सूजन कठोर होय, उसमें गाढा रुधिर निकले तथा सब प्रकारके कफविकार हों ये लक्षण राजिल-सर्प काटनेके हैं।

विशिष्टदेशमें तथा विशिष्टनक्षत्रमें काटनेके असाध्य लक्षण

अश्वत्थदेवायतनश्मशानवल्मीकसंध्यासुचतुष्पथेषु ।
याम्येचदष्टाःपरिवर्जनीयाऋक्षेशिरामर्मसुयेचदष्टाः ॥ १७॥

अर्थ–पीपलके वृक्षके नीचे, देवताओंके मंदिरमें, मसानमें, बंबई, संध्याकाल (प्रात और सायंकालकी संधि) चौराहेमें, भरणीनक्षत्रमें, (चकारसे आर्द्रा, आश्लेषा, मूल, मघा, कृत्तिका, इन नक्षत्रोंमें) और शिरानाडीके मर्ममें, सर्पके काटनेसे मनुष्य बचे नहीं।

गर्मी होनेसे विषका जोर होता है उसके लक्षण

दर्वीकराणांविषमाशुहन्तिसर्वाणिचोष्णेद्विगुणीभवन्ति ।

अर्थ–दर्वीकर (नाग)का विष तत्काल प्राणनाश करे, और सर्व विष गर्मीके योगसे दुगुना जोर करते हैं।

अजीर्णपित्तातपपीडितेषुबालेषुवृद्धेषुबुभुक्षितेषु ।
क्षीणक्षतेमेहिनिकुष्ठदुष्टेरूक्षेऽबलेगर्भवतीषुचापि ॥ १८ ॥

अर्थ–अजीर्ण पित्त और सूर्यकी घाम इनसे पीडित, बालक, वृद्ध, भूखा,

क्षीण होगया हो, उरःक्षती, प्रमेहवाला, कोडी, रूखा, निर्बल, और गर्भिणी, इनको सर्पके काटनेसे तत्काल मृत्यु हो।

सर्पके काटेके असाध्य लक्षण

शस्त्रक्षतेयस्यनरक्तमस्तिराज्योलताभिश्चनसम्भवन्ति।
शीताभिरद्भिश्चनरोमहर्षोविषाभिभूतंपरिवर्जयेत्तम्॥ १९॥

अर्थ–जिसको विषका अमल चढगया हो, उसके शस्त्रके घाव करनेसे रुधिर निकले नहीं, अथवा चाबुक मारनेसे अंगमें उपडे नहीं, अथवा शीतल पानी अंगपर डालनेसे रोमांच नहों, ऐसे मनुष्यका जहर उतारनेका उद्योग न करे।

दूसरे असाध्य लक्षण

जिह्मंमुखंयस्यचकेशशातोनासावसादश्चसकंठभंगः।
रक्तःसकृष्णश्वयथुश्चदंशोहन्वोःस्थिरत्वंचविवर्जनीयः॥ २०॥

अर्थ–जिसका मुख टेढा और स्तब्ध होजाय, केस (बाल) स्पर्शकरनेसे टूट टूट कर गिर पडें, नाककी हड्डी टेढी होजाय, नार नीचेको झुकी पडे, ऊंची न होय, और काटनेकी जगह सूजन होय, तथा वो दंश लाल अथवा काला होय, तथा स्थिर होय, उस रोगीको त्यागदेय।

तथा असाध्य लक्षण

वर्तिर्घनायस्यनिरेतिवक्त्राद्रक्तंस्रवेदूर्ध्वमधश्चयस्य। दंष्ट्राभिघाताश्चतुरस्ययस्यतंचापिवैद्यःपरिवर्जयेत्तु॥ २१॥ उन्मत्तमत्यर्थमुपद्रुतंवाहीनस्वरंचाप्यथवाविवर्णम्। सारिष्टमत्यर्थमवेगिनंचजह्यान्नरंतत्रनकर्मकुर्यात्॥ २२॥

अर्थ–जिसके मुखसे गाढी लारकी बत्ती गिरे, और नाक मुखके मार्ग तथा गुदाके मार्गसे रुधिर निकले, और जिसके चार दांत लगे होंय उसको त्याग देय अत्यंत उन्मत्त होगया हो, अथवा ज्वर अतिसार आदि उपद्रवोंकरके पीडित हो, बोलनेमें असमर्थ हो, जिसके देहका वर्ण काला होगया हो, नासाभंगादि अरिष्टयुक्त, जिसका वेग (लहर) आवे नहीं, ऐसा अथवा विष्ठा मूत्रादि वेगरहित ऐसे विषवाले पुरुषको त्याग देय अर्थात् उसका उपचार चिकित्सा न करें।

दूषितविषके लक्षण

जीर्णंविषघ्नौषधिभिर्हतंवादावाग्निवातातपशोषितंवा।

स्वभावतोवागुणविप्रहीनंविषंहिदूषीविषतामुपैति ॥ २३ ॥

अर्थ–जो विष पुराना होगया हो अथवा विषकी नाशक औषधीसे हतवीर्य होनेसे, अथवा सरदी, गरमी, अग्नि इनसे सूखी हुई अथवा जे स्वभावसे गुण-रहित हैं, ऐसे स्थावर जंगमात्मक विष दूषीविषताको प्राप्त होते हैं।

दूषीविषके लक्षण

वीर्याल्पभावान्ननिपातयेत्तत्कफान्वितंवर्षगणानुबंधि । तेना-र्दितोभिन्नपुरीषवर्णोविगंधिवैरस्ययुतःपिपासी ॥ २४ ॥ मू-र्छाभ्रमंगद्गदवाग्वमित्वंविचेष्टमानोऽरतिमाप्नुयाद्वा ।

अर्थ–वे दूषीविष अल्पवीर्य होनेसे मारक नहीं होते, किंतु कफसंबंध होनेसे उष्णादि गुण मंद होकर बहुत वर्षपर्यंत गर (विष) रूप होकर रहतेहैं उस विषसे पीडित हुए पुरुषके दस्त होते हैं, उस्का वर्ण पलट जाय, उसके मुखसे बुरी दुर्गंधि निकले, उसके मुखका स्वाद जाता रहै, प्यास लगे, मूर्च्छा आवै, भ्रम होय, वो बोलते समय अक्षर चबावे, वमन करे, विरुद्ध चेष्टा करे और उसको चैन नहीं पडे ।

स्थानभेदकरके उसके विशिष्ट लक्षण

आमाशयस्थेकफवातरोगीपक्वाशयस्थेऽनिलपित्तरोगी ।
भवेत्समुद्धस्तशिरोरुहांगोविलूनपक्षस्तुयथाविहंगः ॥ २५ ॥

अर्थ–पूर्वोक्त विष आमाशयमें स्थित होनेसे कफवातजन्य रोग होय, और पक्वाशयमें आनेसे वातपित्तजन्यविकार होय, तथा उस रोगीके मस्तकके और सब देहके बाल उडकर पंखरहित पक्षी (पखेरू)के समान हो जाय ।

निद्रागुरुत्वंचविजृम्भणंचविश्लेषहर्षावथवांगमर्दः । ततःक-रोत्यन्नमदाविपाकावरोचकंमण्डलकोठजन्म ॥ २७॥ मांस-क्षयंपादकरप्रशोथंमूर्च्छातथाछर्दिमथातिसारम् । दूषीविषं श्वासतृषौचकुर्याज्ज्वरप्रवृद्धिंजठरस्यचापि ॥ २८ ॥ उन्मा-दमन्यज्जनयेत्तथान्यदाहंतथान्यत्क्षपयेच्चशुक्रम् । गाद्गद्यम-न्यंजनयेच्चकुष्ठंतांस्तान्विकारांश्चबहुप्रकारान् ॥ २९ ॥

अर्थ–दूषीविषके प्रभावसे निद्रा, भारीपन, जंभाई, अंग शिथिल, रोमांच,

अंगोंका टूटना, ये प्रथम होकर तदनंतर भोजनके उपरांत हर्ष होना, अन्न पचे नहीं, अरुचि, देहमें चकत्ते तथा गांठ उठे, मांसक्षय, हाथ पैरोंमें सूजन, मूर्छा, वमन, दस्त, श्वास, प्यास, ज्वर, उदररोग, ये विकार होंय तथा अनेक प्रकारके रोग होय, सो इस प्रकार किसीसे उन्माद रोग होय, और किसीसे दाह होय, कोई नपुंसकत्व करे, और कोई गद्गदवाणी करे, कोई कुष्ठरोग करे, और विसर्प विस्फोट आदि अनेक प्रकारके रोग होंय।

दूषीविषकी निरुक्तिके लक्षण.

दूषितंदेशकालान्नदिवास्वप्नैरभीक्ष्णशः।
यस्मात्संदूषयेद्धातूंस्तस्माद्दूषीविषंस्मृतम्॥ ३० ॥

अर्थ-देशकाल, और अन्न, और दिवा निद्रा, इनसे वारंवार दूषित हुए विष धातुओंको दुष्ट करें, इसीसे उसको दूषीविष कहते हैं। दूषीविष दोप्रकारका है एक कृत्रिम, और दूसरा गरसंज्ञक, जो विष पदार्थोंसे बनाया जाय वो कृत्रिम। और निर्विष द्रव्योंके संयोगसे होय उसको गर कहते हैं। सो[1] वृद्धकाश्यपने और चरकमें लिखाभी है।

इन दोनोंविषोंको लक्षण

सौभाग्यार्थंस्त्रियःस्वेदरजोनानांगजान्मलान्। शत्रुप्रयुक्तांश्च गरान्प्रयच्छंत्यन्नमिश्रितान्॥ ३१ ॥ तैःस्यात्पाण्डुःकृशोऽल्पाग्निर्ज्वरश्चास्योपजायते। मर्मप्रधमनाध्मानंहस्तयोःशोथलक्षणम्॥ ३२ ॥ जाठरंग्रहणीदोषोयक्ष्मगुल्मक्षयज्वराः। एवंविधस्यचान्यस्यव्याधेर्लिंगानिनिर्दिशेत्॥ ३३ ॥

अर्थ-घरका अधिकार स्वाधीन करनेको, दुष्ट जनोंके कहनेसे, पतिको वशीकरण करनेके निमित्त, स्त्री अपने पतिको पसीना, आर्तव (रजोदर्शनका रुधिर) तथा अपनी देहके अनेक अंगोंका मैल, अन्नमें मिलाकर खुलाती हैं। अथवा शत्रुकृत गर विषका प्रयोग, अर्थात् वैरी विष अथवा गरको अन्न तथा जलमें मिलाकर खवाय देय, इससे मनुष्य पीला और कृश होय, उसकी अग्नि मंद होय, सब मर्मोंमें पीडा, पेट फूलजाय, हाथोंमें सूजन, उदररोग, ग्रहणीरोग,

१ वृद्धकाश्यपः-संयोगजं तु द्विविधं तृतीयं विषमुच्यते। गरः स्यादविषस्तत्र सविषं कृत्रिमं यतः॥ १ ॥

चरकः-दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे॥ इति॥

राजयक्ष्मा, गुल्म, क्षय, ज्वर, इन रोगोंके तथा इसी प्रकारके रोगोंके लक्षण होते हैं ।

दूषीविषके असाध्यादि लक्षण

साध्यमात्मवतःसद्योयाप्यंसंवत्सरोषितम् ।
दूषीविषमसाध्यंतुक्षीणस्याहितसेविनः ॥ ३४ ॥

अर्थ–दूषीविष पेटमें जानेसे तत्काल उपाय करनेसे और रोगी पथ्यमें रहनेसे साध्य है । और वर्ष दिन व्यतीत हो जाय तो याप्य जानना । और क्षीण तथा अपथ्य सेवन करनेवालेके असाध्य होय ।

लूताविषकी उत्पत्तिके लक्षण

यस्माल्लूनंतृणंप्राप्तामुनेःप्रस्वेदबिंदवः ।
तस्माल्लूताःप्रभाष्यन्तेसंख्ययातास्तुषोडश ॥ ३५ ॥

अर्थ–विश्वामित्रराजा वसिष्ठकी कामधेनु जबर्दस्ती लेकर चला, उस समय वसिष्ठजीको क्रोध आया, उससे ललाटमें पसीनाका बिंदु निकला, सो समीप जो कटे तृण गौके चरनेके अर्थ पडे थे उनपर वो बिंदु पडे, इसीसे लूता (मकडी) प्रगट हुई इन मकडियोंकी सोलह जाति हैं इन सोलहोंकेभी दो भेद हैं एक कृच्छ्रसाध्य, दूसरी असाध्य ।

उनके काटनेके सामान्य लक्षण

ताभिर्दष्टेदंशकोथप्रवृत्तिःक्षतजस्यच । ज्वरोदाहोऽतिसारश्च गदाःस्युश्चत्रिदोषजाः ॥ ३६ ॥ पिडिकाविविधाकारामण्डलानिमहान्तिच । शोथामहान्तोमृदवोरक्तश्यावाश्चलास्तथा ॥ ३७ ॥ सामान्यंसर्वलूतानामेतद्दंशस्यलक्षणम् ।

अर्थ–उन मकडियोंके काटनेसे वो स्थान सडे, और उसमेंसे रुधिर बहे, ज्वर, दाह, अतिसार, और त्रिदोषज, तथा अनेक प्रकारके फोडा बडे बडे चकत्ते, नरम लाल काली नीली और चंचल ऐसी सूजन होय, इत्यादि लक्षण होते हैं इस प्रकार सर्व लूताओंके सामान्य लक्षण जानने ।

दूषीविषलूताके काटनेके लक्षण

दंशमध्येतुयत्कृष्णंश्यावंवाजालकावृतम् ॥ ३८ ॥ ऊर्ध्वाकृतिभृशंपाकक्लेदकोथज्वरान्वितम् । दूषीविषाभिर्लूताभिस्तंदष्टमितिनिर्दिशेत् ॥ ३९ ॥

अर्थ–जिस दंशका मध्यभाग काला, अथवा पीला, अथवा हरा, तथा जालके सदृश ऊंचा होकर शीघ्र पके, तथा उसमेंसे दुर्गंधियुक्त लस बहे, उसमें ज्वर होय, उसको दूषीविष अथवा लूताका काटा हुआ जानना।

प्राणहरलूताके लक्षण

सर्पाणामेवविण्मूत्रशवकोथसमुद्भवाः । दूषीविषाःप्राणहरा इतिसंक्षेपतोमताः ॥ ४१ ॥ शोथाःश्वेताऽसितारक्ताःपीताः सपिटिकाज्वराः । प्राणान्तिकाभिर्जायन्तेदाहहिक्काशिरोग्रहाः ॥ ४२ ॥

अर्थ–सर्पोंके मलमूत्रसे अथवा मरे हुए सर्पके सडजानेसे जो दूषीविषके कीडा उत्पन्न होंय, वे प्राण हरनेवाले होते हैं उनका काटा हुआ स्थान सूज आवे, तथा वो सफेद काला लाल पीला होय, और फुंसी होजाय, और रोगीको ज्वर आवे, दाह होय, हिचकी आवें, मस्तकमें शूल होय।

दूषीविषाखुलक्षण

आदंशाच्छोणितंपाण्डुमण्डलानिज्वरोऽरुचिः ।
लोमहर्षश्चदाहश्चाप्याखुदूषीविषार्दिते ॥ ४३ ॥

अर्थ–विषेलआखु (मूसा)के काटनेसे पीला रुधिर निकले, देहमें गोल चकत्ते उठें, ज्वर होय, अरुचि होय, रोमांच और दाह होय, ये मूंसेके काटनेके विषपीडित मनुष्यके लक्षण हैं।

प्राणहरमूषकविषलक्षण

मूर्च्छांगशोथवैवर्ण्यक्लेदोमन्दश्रुतिज्वरः ।
शिरोगुरुत्वंलालासृक्छर्दिश्चासाध्यमूषकैः ॥ ४३ ॥

अर्थ–जिस मूसेके काटनेसे मूर्च्छा, मूसेके आकार सूजन, देहमें विवर्णता, क्लेद, मंद सुनाई दे, ज्वर, मस्तक भारी, लार और रुधिर इनकी रद होय, ये लक्षण प्राणहर्ता मूसेके असाध्य हैं।

कृकलास (नोला)के काटेके लक्षण

कार्ष्ण्यंश्यावत्वमथवानानावर्णत्वमेवच ।
व्यामोहोवर्चसोभेदोदृष्टेस्यात्कृकलासकैः ॥ ४४ ॥

अर्थ–नोलाके काटनेसे देहका वर्ण काला, अथवा नीला, हरा, तथा अनेक प्रकारका होय, तथा उस रोगीके भ्रांति, और अतिसार होय।

वृश्चिकविषलक्षण

दहत्यग्निरिवादौतुभिनत्तीवोर्ध्वमाशुवै ।
वृश्चिकस्यविषंयातिपश्चाद्दंशेऽवतिष्ठति ॥ ४५ ॥

अर्थ–विच्छूके काटनेसे उस स्थानमें प्रथम आगसी जले, पीछे ऊपरको चढे, पीछे उस काटनेकी जगह फटनेकीसी पीडा होय ।

अब कहते हैं कि बीछू मन्दविष, मध्यविष, महाविषके भेदसे तीन प्रकारका है । तिनमें जो गौके गोबरसे प्रगट होय वो मंदविष है, और काठ ईट इनसे प्रगट होय वो मध्यविष है, और जो सर्पकी सडी देहसे प्रगट होय वो अथवा अन्य विषवाली वस्तुओंसे प्रगट होय वो विच्छू महाविषवाला होता है, मंदविषवाले विच्छू बारह प्रकारके हैं । और मध्यविषवाले तीन प्रकारके हैं । और महाविषवाले पंदरह प्रकारके हैं ऐसे सब मिलकर तीस प्रकारके विच्छू हैं कोई आचार्य २७ प्रकारके कहता है, कृष्ण, श्याव, कर्बुर (विचित्रवर्ण) पीत, गोमूत्राभ, कर्कश, मेचक, श्वेत, लाल, रोमश, शाद्वलाभ, रक्त, ये बारह मंदवीर्य हैं इनके काटनेसे पीडा, कंप, देहका स्तंभ, काले रुधिरका निकलना, इत्यादि रोग होते हैं ।

रक्तोदर, पित्तोदर, कपिलोदर, ये तीन मध्यविषवाले विच्छू हैं इनके काटनेसे जीभमें सूजन, भोजनका न होना, घोर मूर्च्छा ये लक्षण होते हैं ।

श्वेत, चित्र, श्यामल, लोहिताभ, रक्तश्वेत, रक्तोदर, नीलोदर, पीत, रक्त, नीलपीत, रक्तनील, नीलशुक, रक्तबभ्रु, एकपर्व्वा, उपर्व्वा, ये घोर विषवाले १५ विच्छू हैं । इनके काटनेसे सर्पके समान वेग होय, फोडोंकी उत्पत्ति होय, भ्रांति, दाह, ज्वर, नाक, कान, आदि छिद्रोंसे काला रुधिर निकले, इसीसे शीघ्र प्राणत्याग होवे ।

वृश्चिकविषके असाध्य लक्षण

दष्टोऽसाध्यस्तुहृद्घ्राणरसनोपहतोनरः ।
मांसैःपतद्भिरत्यर्थवेदनार्तोजहात्यसून् ॥ ४६ ॥

अर्थ–हृदय, नाक, जीभ, इनमें विच्छूके काटनेसे मांस गल असन्त वेदना होकर मनुष्य मरे ।

कणभदष्टके लक्षण

विसर्पःश्वयथुःशूलंज्वरश्छर्दिरथापिवा ।
लक्षणंकणभैर्दष्टेदंशश्चैवविशीर्यते ॥ ४७ ॥

अर्थ–कणभ एक जातिका कीडा होता है । उसके काटनेसे विसर्प, सूजन,

शूल, ज्वर, वमन, ये लक्षण होते हैं और वो काटनेका स्थान गल जाय, अब कहते हैं कि त्रिकंटक, कुणी, हस्तीकक्ष, उपराजित, ये कणभ कीडाके चार भेद, हैं। इनके काटनेसे पूर्वोक्त रोग होंय, और अंगोंका टूटना, देहमें भारीपन, और काटनेकी ठौर काली हो जाय, ये लक्षण विशेष होंय।

उच्चिटिंगर (झींगर) विषके लक्षण

हृष्टरोमोच्चिटिंगेनस्तब्धलिंगोभृशार्तिमान् ।
दष्टःशीतोदकेनेवसिक्तान्यंगानिमन्यते ॥ ४८ ॥

अर्थ–उच्चिटिंगनामक विच्छूके काटनेसे देहमें रोमांच होंय, लिंग जिकड जाय, घोर पीडा होय, और सब देह परिशीतल जल मानो डाल दिया है, उच्चिटिंगको सुश्रुतवाला झींगर कहता है और कोई उष्ट्रधूम कहते हैं परन्तु आतंकदर्पण टीकाकारने विच्छूका भेद माना है।

मंडूक(मेंडक)विषके लक्षण

एकदंष्ट्रार्दितःशूनःसरुजःपीतकःसतृट् ।
छर्दिर्निद्राचसविषैर्मण्डूकैर्दष्टलक्षणम् ॥ ४९ ॥

अर्थ–विषैल मेंडकके काटनेसे उसका एक दांत लगे, उस ठिकाने पीली सूजन होय, दूखे, प्यास, वमन, और निद्रा ये लक्षण होंय अब कहते हैं कि कृष्णसार, कुहक, हरित, रक्त, यववर्णाभ, भृकुटी, कोटिक, इन भेदोंसे मेंडक आठ प्रकारका है इनके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होंय, और खुजली मुखमें पीले झाग आना, इन आठमेंभी भृकुटी और कोटिक इन दोनों मेंडकोंके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होंय, और दाह, मूर्च्छा, अत्यन्त होंय ये विशेष लक्षण होते हैं।

विषैलमत्स्य(मच्छली)के विषके लक्षण

मत्स्यास्तुसविषाःकुर्युर्दाहंशोथंरुजंतथा ।

अर्थ–विषैल मच्छलीके काटनेसे दाह, सूजन, और शूल, ये होंय, विषैल मच्छलीके सत्ताइस भेद हैं। उनके नाम नहीं लिखें इसलिये कि मिले नहीं।

सविषजलौका (जोंक)के विषके लक्षण

कण्डूशोथंज्वरंमूर्च्छांसविषास्तुजलौकसः ।

अर्थ–विषैल जोंकके काटनेसे खुजली, सूजन, ज्वर, और मूर्च्छा, ये लक्षण होते हैं विषैल जोंख काली विचित्रवर्णकी, अलगर्दा, इंद्रायुध, सामुद्रिका, गोचन्दना, इन भेदोंसे छः प्रकारकी है।

इनमेंभी अंजन चूर्णवर्णा, और पृथुशिराके भेदसे काली जोंक दो प्रकारकी है, वर्म्मि मछलीके समान लंबी छिन्नोन्नत कुक्षिके भेदसे विचित्रवर्णकी जोंक दो प्रकारकी है, रोमशा, महापार्श्वा, कृष्णमुखी, इन भेदोंसे अलगर्दा जोंक तीन प्रकारकी है इन्द्रधनुषके समान ऊपरसे विचित्र होय, वो इन्द्रायुधा जोंक है कुछ सफेद और पीली तथा विचित्रपुष्पके समान चित्रित, ये दो भेद सामुद्रिका जोंकके हैं और बैलके अंडकोशके समान नीचेसे दो भाग होवें उसको गोचन्दना कहते हैं।

गृहगोधिका(छिपकली)के विषके लक्षण

विदाहंश्वयथुंतोदंस्वेदंचगृहगोधिका ।

अर्थ-छिपकलीके विषसे दाह होय, सूजन, नोचनेकीसी पीडा, और पसीना आवैं, कोई गृहगोधिकाको भाषामें विषखपरा कहते हैं।

शतपदी (खानखजूरा)के विषके लक्षण

दंशेस्वेदंरुजंदाहंकुर्याच्छतपदीविषम् ।

अर्थ-खानखजूराके काटनेसें काटनेके स्थानमें पसीना आवे, शूल होय, और दाह होय, अब जानना चाहिये कि परुषा, कृष्णा, चित्रा, कपिलिका, पिचिका, रक्ता, श्वेता, अग्निप्रभा, ये शतपदीके आठ भेद हैं। इनमेंसे छः तो पूर्वोक्त लक्षण करती हैं, और श्वेता तथा अग्निप्रभा, दो जातिकी शतपदीके काटनेसे दाह, और मूर्च्छा, अधिक होय, ये विशेष लक्षण जानना।

मशक(मच्छर वा डांस)के विषके लक्षण

कण्डूमान्मशकैरीषच्छोथःस्यान्मन्दवेदनः ।

अर्थ-मच्छर अथवा डांसके काटनेसे जो किंचित् सूजन होय, उसमें खुजली चले, तथा थोडी पीडा होय, सामुद्र, परिमंडल, हस्तिमस्तक, कृष्ण, पार्वतीय, ये पांच भेद मच्छरोंके हैं।

असाध्य मशकक्षतके लक्षण

असाध्यकीटसदृशमसाध्यमशकक्षतम् ॥ ५२ ॥

अर्थ-पर्वतके ऊपर रहनेवाले मच्छर, अथवा डांसके काटनेसे क्षत असाध्य कीटके समान असाध्य है। असाध्य कीटके विषके लक्षण सुश्रुतमें लिखे हैं सो जान लेने।

सविषमक्षिका(मक्खी)दंशके लक्षण

सद्यःप्रस्राविणीस्याद्वादाहमूर्च्छाज्वरान्विता ।

पिडिकामक्षिकादंशेतासांतुस्थविकाऽसुहृत् ॥ ५३ ॥

अर्थ-विषैलमक्खीके काटनेके ठिकाने काली फुंसी प्रगट होय, वो तत्क्षण वहनेलगे, उस ठिकाने दाह होय, और मूर्च्छा, ज्वर होय, इनमें स्थविका नाम मक्खी प्राणहर्त्ता जानना।

मक्खीके छः भेद हैं जैसे कान्तारिका, कृष्णा, पिंगलिका, मधूलिका, काषायी, और स्थविका, इनमें काषायी और स्थविका दो असाध्य हैं।

चतुष्पादादिकोंके विषके साधारण लक्षण

चतुष्पद्भिर्द्विपद्भिर्वानखदन्तविषंचयत्।
शूयतेपच्यतेचापिस्रवतिज्वरयत्यपि ॥ ५४ ॥

अर्थ-व्याघ्र आदि चतुष्पाद, और वनमनुष्यादि वानरादि द्विपाद इनका नख दांतोका विष सूज आवे, पकजावे, वहे तथा इसके योगसे ज्वर आवै अब कहते हैं कि श्रीमाधवाचार्यने विश्वंभरा, अहिंडूका, कंडूमका, शूकवृन्तादि, पिपीलिका, गोधेरका, और सर्षपिका, इनके विषका निदान नहीं लिखा परंतु इनका निदान सुश्रुतमें कहा है सो ग्रंथकी समाप्तिमें लिखेंगे।

विष उतरगयाहो उसके लक्षण

प्रसन्नदोषंप्रकृतिस्थधातुमन्नाभिकांक्षंसममूत्रविट्कम्।
प्रसन्नवर्णेन्द्रियचित्तचेष्टंवैद्योऽवगच्छेदविषंमनुष्यम् ॥ ५६ ॥

इति विषनिदानम्

अर्थ-जिस पुरुषके वातादि दोष निर्मल होंय, रस रक्तादि धातु निरोग अवस्थामें जैसें होते हैं वैसेही होंय, अन्न खानेकी इच्छा होय मलमूत्र जैसे होतेहैं वैसे होंय शरीरका वर्ण, इन्द्री, मन और व्यापार (देहकी चेष्टा) ये जिसके शुद्ध होंय, उसका विष उतरगया ऐसे वैद्य जाने।

इति श्रीमाथुरकुलकमलप्रकाशकश्रीमत्कन्हैयालालपाठकतनयदत्तरामनिर्मितमाधवभावार्थबोधिनीमाथुरीभाषाटीकायां विषरोगनिदानम्।

इति माधवनिदानं समाप्तम्।

परिशिष्ट (ग्रंथशेष)

विदित हो कि माधवाचार्य्य भिषक्शिरोमणिने बहुतसे रोगोंके निदान स्वग्रंथमें नहीं लिखे, परन्तु उन रोगोंके निदानोंसे बहुधा वैद्योंको काम पडता है, इसी कारण उन निदानोंको अन्य ग्रंथोंसे संग्रहकरके इस जगह लिखते हैं। प्रथम क्लीव (नपुंसक)का निदान चरकसे लिखते हैं।

रेतोदोषोद्भवंक्लैब्यंयस्मात्शुद्ध्यैवसिद्ध्यति। अतोवक्ष्यामिते सम्यगग्निवेशयथातथम्॥ १॥ बीजध्वजोपघाताभ्यांजरया शुक्रसंक्षयात्। वैक्लव्यसम्भवस्तस्यशृणुसामान्यलक्षणम्॥ २॥

अर्थ—क्लैब्य (नपुंसक) होना केवल वीर्यके दोषसे होता है, वीर्य शुद्ध होनेसेही उसकी शुद्धी है, इसी कारण हे अग्निवेश! मैं तेरे आगे क्लीवका लक्षण कहता हूं नपुंसक चार प्रकारका होता है उनको कहते हैं १ बीजके उपघातसे, २ ध्वजोपघातसे, ३ बुढापेसे, ४ और शुक्र (वीर्य)के क्षय होनेसे, जो नपुंसकता प्राप्त होती है उसके सामान्य लक्षणको तूं सुन।

क्लैब्यके सामान्य लक्षण

संकल्पप्रवणोनित्यंप्रियावश्यमथापिवा। नयातिलिंगशैथिल्यात्कदाचिद्यातिवापुमान्॥ ३॥ श्वासार्तःस्विन्नगात्रांसो मोघसंकल्पचेष्टितः। म्लानशिश्नश्चनिर्बीजःस्यादेतत्क्लैब्यलक्षणम्॥

अर्थ—आपको प्रिय और वशीभूत स्त्रीकोभी प्राप्त होकर जो पुरुष नित्य विषय न करे, और कदाचित् करे तो जब कभी करे, वो पुरुष श्वाससे व्याकुल हो देहमें पसीना होय, निष्फल मनोरथ, और चेष्टा (विषयादि) होय, लिंग जिसका ढीला, और बीजरहित होय, ये नपुंसकके सामान्य लक्षण हैं।

बीजोपघात क्लीवके लक्षण

सामान्यलक्षणंह्येतद्विस्तरेणप्रवक्ष्यते। शीतरूक्षाम्लसंक्लिष्टविरुद्धाजीर्णभोजनात्॥ ५॥ शोकचिन्ताभयत्रासात्स्त्रीणां चात्यर्थसेवनात्। अभिचारादविस्रम्भाद्रसादीनांचसंक्षया-

त् ॥ ६ ॥ वातादीनामोजसश्चतथैवानशनाच्छ्रमात् । ना-
रीणामनभिज्ञत्वात्पंचकर्मापचारतः ॥७॥ बीजोपघातोभवति
पाण्डुवर्णःसुदुर्बलः । अल्पप्रजोपहर्षश्चप्रमदासुभवेन्नरः ॥ ८॥
हृत्पाण्डुरोगतमककामलाश्रमपीडितः । बीजोपघातजंक्लैब्यं-

अर्थ-प्रथम जो कहे वो नपुंसकके सामान्य लक्षण हैं अब उनको विस्तारसे कहता हूं । शीतल, रूक्ष, थोडा मिला हुआ, तथा विरुद्ध (क्षीरमत्स्यादि) कच्चा अन्न, इत्यादि पदार्थोंके भोजन करनेसे आदिशब्दसे खट्टा चरपरा, कसेला, पदार्थ खानेसे शोक (सोच) चिंता, भय, और त्रास, तथा अत्यंत स्त्रीरमण करनेसे किसी शत्रुका अभिचार (जादूटोना)से, तथा किसीका विश्वास न करनेसे, रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे, वातादि दोषोंके वढनेसे, उसी प्रकार उपवास (व्रतादि) और श्रम करनेसे, स्त्री सुखके न जाननेसे पंचकर्म (वमनविरेचनादि)के अपचारसें, बीजोपघात (अर्थात् बीजमें किसी प्रकारका विकार होना)होता है इसके होनेसे बीजका वर्ण पीला होता है, तथा देह दुर्वल हो जाय, उस पुरुषके संतान थोडी हो, तथा स्त्रीगमनमें इच्छा न होना हृदयवेग और पांडुरोग होय, तमक श्वास, कामला, अनायास, श्रम, इनसे पीडित होय ये लक्षण बीजोपघात क्लीबके हैं ।

ध्वजभंगक्लीबकी उत्पत्ति

ध्वजभंगकृतंशृणु ॥ ९ ॥ अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धाजीर्ण-
भोजनात् । अत्यम्बुपानाद्विषमापिष्टान्नगुरुभोजनात् ॥ १० ॥
दधिक्षीरानूपमांससेवनादतिकर्षणात् । कन्यानांचैवगमना-
दयोनिगमनादपि ॥ ११ ॥ दीर्घरोम्णींचिरोत्सृष्टांतथैवचरज-
स्वलाम् । दुर्गंधांदुष्टयोनिंचतथैवचपरिस्रुताम् ॥ १२ ॥
नरस्यप्रमदांमोहादतिहर्षात्प्रगच्छतः । चतुष्पदाभिगमना-
च्छेफसश्चाभिघाततः ॥ १३ ॥ अधावनाद्वामेढ्रस्यशस्त्रदन्त-
नखक्षतात् । काष्टप्रहारनिश्शोपशूकानांचातिसेवनात्॥१४॥
रेतसश्चप्रतीघाताद्ध्वजभंगःप्रवर्तते ।

अर्थ-अत्यंत खट्टा, नोनका, खार, विरुद्ध, (क्षीरमत्स्यादि) अपक्क अन्न भोजन करनेसे तथा वहुत जल पीनेसे, विषमान्न और भारी ऐसे पदार्थके खानेसे,

दही दूध जलसमीप रहनेवाले पक्षीका मांस खानेसे, व्याधिकरके कृश होनेसे, कन्याके साथ गमन करनेसे, जिसके योनि नहीं ऐसी स्त्रीके साथ गमन करनेसे, अथवा अयोनि कहिये गुदाभंजन करनेसे, तथा जिसकी योनिपर वडे वडे वाल हों और जिस स्त्रीने वहुत दिनोंसे मैथुन करना छोडदिया हो तथा रजस्वला और जिसकी योनिमें दुर्गंधि अति हों तथा दुष्टयोनि और जिसकी सोमादिरोगोंसे योनि चुचाती हो ऐसी स्त्रियोंसे मैथुन करनेसे तथा उन्मत्त होकर गमन करनेसे और अति हर्षसे गमन करनेसे, तथा चतुष्पाद(वकरी कुतियाआदि)से गमन करनेसे, तथा लिंगमें किसी प्रकारकी चोट लगनेसे, तथा लिंगके न धोनेसे, तथा शस्त्र दांत नख इनकरके घाव होनेसे, लकडी आदिकी चोट लगनेसे, लिंगके पिसजानेसे, तथा लिंगके मोटे करनेके निमित्त शूकादि प्रयोग करनेसे, अर्थात् इनका अत्यंत सेवन करनेसे, तथा वीर्यके विगडनेसे, मनुष्यके ध्वजभंग (अर्थात् लिंग खडा होकर तुरंत मुरझाजाय) यह रोग होता है इसके लक्षण आगे कहते हैं।

ध्वजभंगके लक्षण

श्वयथुर्वेदनामेढ्रेरोगश्चैवोपलक्ष्यते ॥ १५ ॥ स्फोटाश्चतीव्रा जायन्तेलिंगपाकोभवत्यपि । मांसवृद्धिर्भवेच्चापिव्रणाःक्षिप्रंभवंत्यपि ॥ १६ ॥ पुलापोदकसंकाशःस्रावःश्यावारुणप्रभः । वलयीकुरुतेचापिकठिनंचपरिग्रहम् ॥ १७ ॥ ज्वरस्तृष्णाभ्रमोमूर्च्छाच्छर्दिश्चास्योपजायते । रक्तंकृष्णंस्रवेच्चापिनीलमाविललोहितम् ॥ १८ ॥ अग्निनेवचदग्धस्यतीव्रोदाहः सवेदनः । वस्तौवृषणयोर्वाऽपिसीवन्यांवंक्षणेषुच ॥ १९ ॥ कदाचित्पिच्छिलोवापिपाण्डुस्रावश्चजायते । श्वयथुश्चभवेन्मन्दस्तिमितोऽल्पपरिस्रवः ॥ २० ॥ चिरात्सपाकंव्रजातिशीघ्रंवाथप्रपद्यते । जायन्तेकृमयश्चापिक्लिद्यतेपूतिगंधिच॥ २१॥ प्रशीर्यतेमणिश्चास्यमेढ्रंमुष्कावथापिच । ध्वजभंगकृतंक्लैब्यमित्येतत्समुदाहृतम् ॥ २२ ॥ एवंपंचविधंकेचिद्ध्वजभंगंवदंत्यपि ।

अर्थ–ध्वजभंगवाले मनुष्यके लिंगपर सूजन हो, और लिंगमें पीडा हो,

तथा लाल हो, उसके ऊपर घोर फोडा होतेहैं, तथा लिंग पकजावै, और मांसकी वृद्धी होय, तथा लिंगमें फोडा होय, उसमें चांवलके मांडके समान और काला लाल स्राव होय, कंकणके समान गोल लपेटा होय, और उसकी जड कठिन होय, तथा उस पुरुषके ज्वर, प्यास, भ्रम, मूर्च्छा, वमन ये रोग हों तथा लिंगमेंसे काला नीला लोहित और दुष्ट रुधिर निकले, उसका लिंग अग्निसे दग्धके समान होजाय, मूत्राशय अंडकोश ऊरुकी संधियोंमें घोर दाह और पीडा होय, कभी कभी गाढा और पीला स्राव होय, और सूजन मंद और गीली होय, तथा थोडा स्राव होय, और देरमें पके, अथवा शीघ्रही पकजावे, उसके लिंगमें कीडा पडजाय, क्लेदयुक्त और दुर्गंध आवै, लिंगके ऊपरकी सुपारी गलजाय, तथा लिंग और अंडकोश दोनों गलकर गिरजाय, यह ध्वजभंगकृत नपुंसकके लक्षण कहे हैं कोई सुश्रुतादिक आचारी इस ध्वजभंग नपुंसकके ईर्ष्यक, सौगंधिक, कुंभिक, आसेक्य, और महापंड इन भेदोंसे पांच प्रकारका बतलाते है उनकोभी प्रसंगवससे इस जगह सुश्रुतसे लिखते हैं तहां प्रथम।

[आसेक्यनपुंसकके लक्षण

पित्रोरत्यल्पवीर्यत्वादासेक्यःपुरुषोभवेत्।
सशुक्रंप्राश्यलभतेध्वजोच्छ्रायमसंशयम् ॥ १ ॥

अर्थ–मातापिताके अति अल्पवीर्यसे जो गर्भ रहे वो पुरुष आसेक्यनाम नपुंसक होताहै वो पुरुष अन्य पुरुषसे अपने मुखमें मैथुन कराकर उसके वीर्यको खाजाय, तब उसको चैतन्यता (अर्थात् लिंग सतरहो) तब स्त्रीसे मैथुन करै इसका दूसरा नाम मुखयोनि है।

सौगंधिकनपुंसकके लक्षण

यःपूतियोनौजायेतससौगंधिकसंज्ञितः।
सयोनिशेफसोर्गंधमाघ्रायलभतेबलम् ॥ २ ॥

अर्थ–जो पुरुष दुष्टयोनिसे उत्पन्न होय, उसको योनि तथा लिंगके सूंघनेसे चैतन्यता प्राप्ति होय, उसको सौगंधिक कहते हैं इसका दूसरा पर्यायवाचक नाम नासायोनि है।

कुम्भिकनपुंसकके लक्षण

स्वगुदेऽब्रह्मचर्याद्यःस्त्रीषुपुंवत्प्रवर्तते।
कुम्भिकःसतुविज्ञेयः

अर्थ–जो पुरुष पहले अपनी गुदा भंजन करावै तब उसको चैतन्यता प्राप्त होय, तब स्त्रीके विषै पुरुषके समान प्रवृत्त होय, उसको कुम्भिकनपुंसक कहते हैं कोई आचार्य इसका और प्रकारसे अर्थ करतेहैं अर्थात् जो पुरुष लौंडेबाजी करते हैं वो प्रथम स्त्रीके पीछे बैठकर पशूके समान शिथिल लिंगसेही उसकी गुदाभंजन करे, इस प्रकार करनेसे जब चैतन्यता प्राप्ति होतीहै तब मैथुन करै, उसका नाम कुम्भिक कहते हैं और गुदायोनि यह इसका पर्यायवाचक नाम है इसकी उपपत्ति काश्यपने इस प्रकार लिखी है कि ऋतुकालमें अल्प रजस्क स्त्रीसे श्लेष्मरेतवारे पुरुषके संभोग करनेसे उस स्त्रीन्का कामदेव शान्ति नहो इस कारण उस स्त्रीका मन अन्य पुरुषसे संभोग करनेकी इच्छा करे तब उसके कुंभिकनाम नपुंसक होता है।

ईर्ष्यकनपुंसकके लक्षण

ईर्ष्यकंशृणुचापरम् ॥ ३ ॥ दृष्ट्वाव्यवायमन्येषांव्यवायेयःप्रवर्तते । ईर्ष्यकःसतुविज्ञेयोदृग्योनिरयमीर्ष्यकः ॥ ४ ॥

अर्थ–जो मनुष्य दूसरेको मैथुन करते देख आप मैथुन करे उसको ईर्ष्यकनपुंसक कहते हैं इसका दूसरा पर्यायवाचक नाम दृग्योनि है। कोई (दृग्योनिरयमीर्ष्यकः) इस जगह (षण्ढकंशृणुपंचमम्) ऐसा पाठ कहतेहैं अर्थात् षण्ढक जो पंचमनपुंसक हैं उसके लक्षण सुन।

महाखण्डनपुंसकके लक्षण

योभार्यायामृतौमोहादंगनेवप्रवर्तते ।
ततःस्त्रीचेष्टिताकारोजायतेखण्डसंज्ञितः ॥ ५ ॥

अर्थ–जो पुरुष ऋतुकालमें मोहसे स्त्रीके सदृश प्रवृत्त होय, अर्थात् आप नीचेसे सीधा हो ऊपर स्त्रीको चढाकर मैथुन करे, उससे जो गर्भ रहे वो पुरुष स्त्रीकीसी चेष्टा करे, और स्त्रीके आकार होय स्त्रीकी चेष्टा (आप स्त्रीके समान नीचे सोकर अन्य पुरुषसे अपने लिंगके ऊपर वीर्य पतन करावै)

नारीखण्डनपुंसकके लक्षण

ऋतौपुरुषवद्वापिप्रवर्ततांगनायदि ।
तत्रकन्यायदिभवेत्साभवेन्नरचेष्टिता ॥ ६ ॥

अर्थ–ऋतुसमय यदि स्त्री पुरुषके सदृश प्रवर्त होय, अर्थात् पुरुषको नीचे सुलाय उसके ऊपर चढ पुरुषके समान मैथुन करे, उस मैथुनसे जो कन्या प्रगट हो वो

पुरुषकेसे आकारवान होय, और पुरुषकीसी चेष्टा करे (अर्थात् स्वयं स्त्रीरूपभी होकर दूसरी स्त्रीके ऊपर पुरुषके समान उसकी योनिसे अपनी योनि घर्षण करे) ये षंडनपुंसकके दोनों भेद है इससे पांच प्रकारकेही ध्वजभंगनपुंसक जानने परंतु चरकके मतसे नपुंसक स्त्री पुरुषके भेदसे दो प्रकारका है और जितने पुरुषके नपुंसक भेद हैं उतनेही स्त्रीके जानने ।

उक्तश्लोकोंका संग्रह

आसेक्यश्चसुगंधीचकुम्भिकश्चेर्ष्यकस्तथा ।
सरेतसस्त्वमीज्ञेयाअशुक्रःपण्डसंज्ञितः ॥ ७ ॥

अर्थ—आसेक्य, सुगंधी, कुम्भिक, और ईर्ष्यक, ये चारों प्रकारके नपुंसक शुक्रवीर्यसहित जानने, और पण्डसंज्ञक नपुंसकके वीर्य नहीं होता है वो वीर्यरहित जानना । कोई शंका करे कि जब वीर्यसहित है तब आप उसको नपुंसक कैसे कहतेहो इस वास्ते कहते हैं ।

अनयाविप्रकृत्यातुतेषांशुक्रवहाःशिराः ।
हर्षात्स्फुटत्वमायान्तिध्वजोच्छ्रायस्ततोभवेत् ॥ ८ ॥

अर्थ—इन्की विरुद्ध चेष्टाके करनेसे उनके शुक्रके वहनेवाली जो नाडी हैं सो हर्ष (आनंद)से फूलती हैं, इससे उनको चैतन्यता (लिंगसतर होना) होता है, वीर्यके प्रभावसैं नहीं होता, ये ध्वजभंगनपुंसकके पांच भेद हैं अब जरासंभव नपुंसकके लक्षण कहते हैं ।]

जरासम्भवनपुंसकके लक्षण

क्लैब्यंजरासम्भवंहिप्रवक्ष्याम्यथतच्छृणु । जघन्यमध्यप्रवरंवयस्त्रिविधमुच्यते ॥ २३ ॥ अथचप्रवरेशुक्रंप्रायशःक्षीयते नृणाम् । रसादीनांसंक्षयाच्चतथैवावृष्यसेवनात् ॥ २४ ॥ बलवर्णेन्द्रियाणांचक्रमेणैवपरिक्षयात् । परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहाराच्छ्रमात्क्रमात् ॥ २५ ॥ जरासम्भवजंक्लैब्यमित्येतैर्हेतुभिर्नृणाम् ।

अर्थ—अब मैं जरा (बुढापे)में नपुंसक होनेके लक्षण कहता हूं उनको सुन । अवस्था तीन हैं, जघन्य (अर्थात् छोटी) और मध्यम, तथा प्रवर (बडी) इन तीनोंमें प्रवर अर्थात् वृद्ध अवस्थामें बहुधा करके शुक्र (वीर्य) क्षीण होता है,

उसके हेतु यह हैं रसादि धातुओंके क्षीण होनेसे, तथा वृष्य (वीर्य कर्ता) औषधिके न खानेसे, बल वर्ण इन्द्री इनके क्रमसे क्षीण होनेसे, आयु (अवस्था)के घटनेसे, भूखा रहनेसे, (श्रम महनत)के करनेसे, इन कारणोंसे जरासम्भव नपुंसक होता है।

जरासम्भवनपुंसकके लक्षण

जायतेतेनसोत्यर्थक्षीणधातुःसुदुर्बलः ॥ २६ ॥ विवर्णोविह्वलोदीनःक्षिप्रंव्याधिमथाश्नुते । एतज्जरासम्भवंहिचतुर्थक्षयजंशृणु ॥ २७ ॥

अर्थ—पूर्वोक्त जरासम्भवक्लीवके होनेसे मनुष्य धातुक्षीण, दुर्बल देहका, हीनवर्ण, विव्हल, दीन, ऐसा होजाय और वो शीघ्रही व्याधि (रोग)को प्राप्ति होय, यह जरासम्भवके लक्षण कहे अब चतुर्थ क्षयजक्लीवके लक्षण सुनो।

क्षयजक्लीवके लक्षण

अतिप्रचिन्तनाच्चैवशोकात्क्रोधाद्भयादपि । ईर्ष्योत्कण्ठात्तथोद्वेगात्समाविंशतिकोनरः ॥ २८ ॥ कृशोवासेवतेरूक्षमन्नपानमथौषधम् । दुर्बलप्रकृतिश्चैवनिराहारोभवेद्यदि॥२९॥ अथाल्पभोजनाच्चापिहृदयेयोव्यवस्थितः । रसःप्रधानधातुर्हिक्षीयेताशुनरस्ततः ॥ ३० ॥

अर्थ—अत्यंत चिन्ता, अतिशोक, अतिक्रोध, अतिभय, ईर्ष्या, उत्कंठा, उद्वेग, और जो पुरुष वीस वरसका होय, तथा जो पुरुष कृश होकर अन्नपानकी वस्तु तथा रूखी औषधियोंका सेवन करे, और दुर्बल प्रकृति होकर निराहार रहे, अथवा थोडा भोजन करे वोभी हृदयमेंही स्थित रहे, इन कारणोंसे रस है प्रधान जिनमें ऐसी जो धातु सो क्षीण होय, इसी कारणसे वो मनुष्य क्षीण होता जाय।

रक्तादयश्चक्षीयन्तेधातवस्तस्यदेहिनः । शुक्रावसानास्तेभ्यो हिशुक्रंधामपरंमतम् ॥ ३१ ॥ चेतसोवातिहर्षेणव्यवायंसेवतेतुयः । शुक्रंतुक्षीयतेतस्यततःप्राप्नोतिसंक्षयम् ॥ ३२ ॥ घोरांव्याधिमवाप्नोतिमरणंवासमृच्छति । शुक्रंतस्माद्विशेषे-

णरक्ष्यमारोग्यमिच्छता ॥ ३३ ॥ एतन्निदानलिंगाभ्यामुक्तं क्लैव्यंचतुर्विधम् ।

अर्थ–उस पुरुषके रक्तादि धातु क्षीण होंय उन धातुओंकी शुक्र अवसान (मर्यादा) है, क्योंकि सबका शुक्रही धाम (ठिकाना) है, चित्तके हर्षसे जो मैथुन करै, तब उसका शुक्र क्षीण होय, तदनंतर संक्षयको प्राप्त होय, जब मनुष्यका शुक्र क्षीण होजाता है, तब घोर व्याधि इस मनुष्यको प्राप्त होतीहै और मरण होता है. अत एव आरोग्यकी इच्छा करनेवाला मनुष्य शुक्र (वीर्य)की जरूर रक्षा करे, यह निदान और चिन्होंसे नपुंसक चार प्रकारका कहा है ।

केचित्क्लैव्येत्वसाध्येद्वेध्वजभंगक्षयोद्भवे ॥ ३४ ॥
वदन्तिशेफसश्छेदाद्वृषणोत्पाटनेनवा ।

अर्थ–कोई आचार्य लिंग और अंडकोशोंके गिर पडनेसे ध्वजभंग, और क्षयज, इन दोनों नपुंसकोंको असाध्य कहते हैं ।

मातापित्रोर्बीजदोषादशुभैश्चकृतात्मनः ॥ ३५ ॥ गर्भस्थस्य यदादोषाःप्राप्यरेतोवहाःशिराः । शोषयन्त्याशुतन्नाशाद्रेतश्चाप्युपहन्यते ॥ ३६ ॥ तत्रसंपूर्णसर्वांगःसभवत्यपुमान्पुमान् । एतेत्वसाध्याव्याख्याताःसन्निपातसमुच्छ्रयात् ॥ ३७॥

अर्थ–गर्भमें नपुंसक कौन कारणसे होता है ऐसे कोई प्रश्न करे उसके निमित्त कहते है । मातापिताके वीजदोषसे, पूर्वजन्मके पापोंसे, गर्भमें रेत (वीर्य) के वहनेवाली नाडियोंमें दोष प्राप्त होकर उन नाडियोंको सुखाय देवे, जब रेतके वहनेवाली नाडी सूख जावें तब वीर्यका क्षय हो, इससे बालक जो प्रगट होय उसके सब अंग यथार्थ होय परंतु लिंग नहीं होवे, सन्निपातके बढनेसे ये असाध्य रोग कहा हैं ।

शुक्रार्तवदोषनिदान

शुक्रंपौरुषमित्युक्तंतस्माद्वक्ष्यामितच्छृणु । यथाहिवीजंकालाम्बुकृमिकीटाग्निदूषितम् ॥ १ ॥ नविरोहतिसन्दुष्टंतथा शुक्रंशरीरिणाम् । अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्म्यानांचसेवनात् ॥ २ ॥ अकालेचाप्ययोनौवामैथुनंनचगच्छतः । रू-

पित्तदूषित शुक्रके लक्षण

सनीलमथवापीतमत्युष्णंपूतिगंधिच ।
दाहलिंगंविनिर्यातिशुक्रंपित्तेनदूषितम् ॥ ९ ॥

अर्थ–पित्तसे दूषित शुक्र नीला, पीला, अत्यंत गरम होता है। उसमें बुरी वास आवै, और जब निकले तब लिंगमें दाह होवे।

कफदूषित शुक्रके लक्षण

श्लेष्मणाबद्धमार्गन्तुभवत्यत्यर्थपिच्छिलम् ।

अर्थ–कफसे शुक्र शुक्रवहा नाडियोंके मार्ग रुकनेसे, अत्यंत गाढा हो जाता है।

स्त्रियमत्यर्थगमनादभीघातात्क्षयादपि ।
शुक्रंप्रवर्ततेजन्तोःप्रायेणरुधिरान्वयम् ॥ १० ॥

अर्थ–अत्यन्त स्त्रीगमन करनेसे, चोट लगनेसे, मनुष्यके रुधिरसंयुक्त वीर्य निकलता है।

कृच्छ्रेणयातिग्रथितमवसादितथाष्टमम् ।
इतिदोषाःसमाख्याताःशुक्रस्याष्टौसलक्षणाः ॥ ११ ॥

अर्थ–अष्टम जो अवसादि शुक्र हैं सो बडी कठिनतासे गांठके समान निकलतेहैं, ये शुक्रके आठ दोष कहेहैं।

शुद्धशुक्रके लक्षण

स्निग्धंघनंपिच्छिलंचमधुरंचविदाहिच ।
रेतोदोषान्विजानीयात्स्निग्धंस्फटिकसन्निभम् ॥ १२ ॥

अर्थ–सचिक्कण, गाढा, पिच्छिल (मलाईके समान) मीठा, दाहरहित, और जो स्निग्ध, स्फटिक मणिके समान होय, ये शुद्धवीर्यके लक्षण हैं।

शुक्रदोषनिदान

सुश्रुतसे

वातपित्तश्लेष्मशोणितकुणपगंध्यनल्पग्रंथि । पूतिपूयक्षीणरेतसःप्रजोत्पादनेनसमर्थाः ॥१३॥ तत्रवातवर्णवेदनं। वातेनपीतवर्णवेदनं। पित्तेनश्लेष्मवर्णवेदनं । श्लेष्मणाशोणित-

वर्णपित्तवेदनंरक्तेनकुणपगंध्यनल्पंचरक्तेनपित्तेनच ग्रंथिभूतंश्लेष्मवाताभ्यांपूतिपूयनिभंपित्तवाताभ्यांक्षीणशुक्रंप्रागुक्तं पित्तवाताभ्यांमूत्रपुरीषगंधि सर्ववर्णवेदनंसन्निपातेनेति । तेषुकुणपग्रंथिपूयक्षीणरेतसःकृच्छ्रसाध्याःमूत्रपुरीषरेतसःअसाध्याः ॥

अर्थ–वात, पित्त, कफ, रुधिर, इनसे दूषित हुआ, शवगंधि और बहुत दुर्गंधियुक्त, तथा राधके समान ऐसा जिस पुरुषका रेत (वीर्य) होय उसके संतान नहीं होय। जिसका वीर्य वादीसे दुष्ट होय उसका वर्ण काला, लाल, ऐसा होय। तथा उसमें तोदादिक पीडा होय, पित्तसे दुष्ट हुए शुक्रका वर्ण पीला, नीला, इत्यादि वर्णोंका होय। तथा उसमें चोषादि पीडा होय। कफसे दुष्ट हुए शुक्रका वर्ण श्वेत होय, तथा उसमें मन्द पीडा होय, रुधिरसे दुष्ट हुए शुक्रका वर्ण लाल होवे, उसमें चोषादि (चूसनेकीसी पीडा होवे) तथा रुधिरसे शुक्रमें मुर्दाकीसी वास आवै। और विशेष ऐसा हो कफसे दूषित हुआ शुक्र गांठदार होय, पित्त कफसे दूषित शुक्रमें राधकीसी वास आवै, पित्तवादिसे शुक्र क्षीण होता है। सन्निपातसे दूषित भये शुक्रमें पूर्वोक्त सब वर्णन होय, और पीडा होय, तथा उसमें मूत्र और विष्ठाकीसी वास आवै, इनमें कुणप, ग्रंथी, पूय, क्षीणरेत, ये चार कृच्छ्रसाध्य हैं। और मूत्र पुरीष (विष्ठा) रेतस असाध्य, और बाकीके सब साध्य हैं।

आर्त्तवदोषके लक्षण

आर्त्तवमपित्रिभिर्दोषैःशोणितचतुर्थैः पृथक्द्वंद्वैःसमस्तैश्चोपसृष्टमबीजंभवति ॥ तदपिदोषवर्णवेदनाभिर्ज्ञेयम्। तेषुकुणपग्रंथिपूतिपूयक्षीणमूत्रपुरीषप्रकाशमसाध्यं ॥

अर्थ–आर्त्तव अर्थात् स्त्रियोंका रज वातादि पृथक् दोष, रक्त, द्वंद्व, और सन्निपात, इनकरके दुष्ट होनेसे गर्भधारणके अयोग्य होय। तिन दोषोंकरके वर्ण और वेदना जाननी चाहिये। तिनमें कुणप, पूतिपूय, क्षीण, मलमूत्रके समान जो होय सो असाध्य है बाकीके साध्य जानने।]

विष्टम्भगर्भके लक्षण

गर्भिणीके कुसमय भोजन करनेसे अथवा रूक्षादि पदार्थ खानेसे, वायुसे कोपित होकर गर्भ शुक्र शुष्क कर अर्थात् गर्भको सुखाय देवे, इसीसे उस गर्भका

हलना चलना बढना बंद होय, और समय पाकर उसका वादीकी पीडा होकर स्राव होय।

उपविष्टगर्भके लक्षण

गर्भिणी स्त्रीके अनन्त दाहकर्त्ता पदार्थ खानेसे रुधिरका स्राव बहुत होय, इसीसे वो गर्भ पीछे बढता न दीखे, उसका हलना चलना मात्र होय, ऐसे गर्भको उपविष्ट कहते हैं। ये विष्टंभ गर्भकाही भेद है।

मंथरकज्वर (मोतीज्वर)के लक्षण

योगरत्नसे

ज्वरोदाहोभ्रमोमोहोह्यतीसारोवमिस्तृषा।
अनिद्रामुखशोषश्चताल्लुजिव्हाचशुष्यति ॥ १ ॥
ग्रीवायांपरिदृश्यन्तेस्फोटकाःसर्षपोपमाः।
घृताशनात्स्वेदरोधान्मंथरोजायतेनृणाम् ॥ २ ॥

अर्थ–अधिक घृत खानेसे, अथवा पसीना रोकनेसे, मनुष्यको मंथरज्वर (मोतीज्वर) आता है। इसके लक्षण कहते हैं ज्वर, दाह, भ्रम, मूर्च्छा, अतीसार, वमन, प्यास, निद्रानाश, मुख तालु और जीभ इनका सूखना, कंठमें सरसोंके समान सफेद मोतीके आकार फोडा होय, इस ज्वरको माधवने पित्तज्वरके अंतरगत अर्थात् ये पित्तज्वरके अंतरगत माना हैं इसीसे इसको पृथक् नहीं कहा, परंतु व्यवहारमें इसको पृथक् मानते हैं तथा बहुतसे ग्रंथकारोंने इसका नाम जुदा कहकर चिकित्सामी पृथक् कही है।

अलर्क (कुत्ता) विषनिदान

वाग्भट्टसे

शुनःश्लेष्मोल्बणादोषाःसंज्ञांसंज्ञावहाश्रिताः। मुष्णन्तःकुर्वते
क्षोभंधातूनामतिदारुणम् ॥ १ ॥ लालावानंधबधिरःसर्व-
तःसोऽभिधावति। स्रस्तपुच्छहनुस्कंधःशिरोदुःखीनताननः॥२॥

अर्थ–कुत्ताके कफाधिक दोष संज्ञाके वहानेवाले स्रोतों(छिद्रों)में प्रवेश करके संज्ञानाशके सदृश करे और उसकी धातूका क्षोभ करे। इस योगसे उस कुत्ताके मुखसे लार बहे, तथा वो अंधा बहरा होकर इधर उधर दौडने लगे, उसकी पूंछ सीधी होजाय, और ठोडी कंधा ढीले होजाय, इसको बावला-कुत्ता कहते हैं।

उसके काटनेके लक्षण

दंशस्तेनविदष्टस्यसुप्तःकृष्णंक्षरत्यसृक् ।
हृच्छिरोरुग्ज्वरःस्तम्भस्तृष्णामूर्च्छोद्भवोनच ॥ ३ ॥

अर्थ–उस वातले कुत्ताके काटनेसे काटनेकी जगह शून्य होजाय, उसमेंसे काला रुधिर वहे, तथा उस मनुष्यका हृदय और मस्तक दूखे, ज्वर होय, देह जकडजाय, प्यास लगे, तथा मूर्च्छा आवे ।

अनेनान्येपिबोद्धव्याव्यालादंष्ट्राप्रहारिणः ।
सृगालाश्वतराश्वर्क्षद्वीपिव्याघ्रवृकादयः ॥ ४ ॥

अर्थ–इसप्रकार डाढा प्रहार करनेवाले सर्प, स्यार, खिचर, घोडा, रीछ, चीता, वाघ, भेडिआ, आदिशब्दसे सिंह, वानर, आदि इनके लक्षणभी कुत्तेके समान जानने ।

सविष निर्विषदंशके लक्षण

कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्लेदज्वरभ्रमाः । विदाहरागरुक्पाक-
शोफग्रंथिविकुंचनम् ॥ ५ ॥ दंशावदरणंस्फोटाःकर्णिकाम-
ण्डलानिच । सर्वत्रसविषेलिंगंविपरीतन्तुनिर्विषे ॥ ६ ॥

अर्थ–खुजली, नोचनेकीसी पीडा, वर्णका वदलना, शून्यता, क्लेद, ज्वर, भ्रम, दाह, लाली, दर्द, पकना, सूजन, गांठ, चोटनी, काटनेकी जगह चीरा पड़ें, फोडा, कर्णिका मंडल, ये लक्षण सविष दांतके होते हैं । इससे विपरीत लक्षण निर्विषके जानने ।

असाध्य लक्षण

दष्टोयेनतुतच्चेष्टारुतंकुर्वन्विनश्यति ।
पश्यंस्तमेवचाकस्मादादर्शसलिलादिषु ॥ ७ ॥

अर्थ–जिस प्राणीका काटा हुआ मनुष्य उसी प्राणीका सर्व चेष्टा करे, और रुदन करे, तथा आदर्श (शीसा) पानी आदि पदार्थोंमें उसी प्राणीका प्रतिविंब देखे वो रोगी मरजाय ।

जलसंत्रासनामाके लक्षण

योऽद्भ्यस्त्रस्येदद्दष्टोपिशब्दसंस्पर्शदर्शनैः ।
जलसंत्रासनामानंदष्टंतमपिवर्जयेत् ॥ ८ ॥

अर्थ-जो पुरुप पानीके शब्द, स्पर्श, और अवलोकन (देखने)से डरपे उसको जलसंत्रासनामा कहते हैं। उसकोभी वैद्य त्याग देवे, कोई शंका करे कि जलविना कैसे मनुष्य डरता है इसवास्ते कहते हैं।

अदृष्टस्यापिजन्तोर्हिजलत्रासोभवेद्यदि । तस्यारिष्टंहिविषजंब्रुवतेविषचिन्तकाः ॥ ९ ॥ जलंविनाजलत्रासोजायतेश्लेष्मसंचयात् ।

अर्थ-जिस मनुष्यको जलके विना देखेभी भय लगे, उसको विषज्ञ वैद्य विषज रोग कहते हैं। यह जलविना जलसे त्रास कफके संचयसे होता है सो लिखते हैं।

बुद्धिस्थानंयदाश्लेष्माकेवलंप्रतिपद्यते ॥ १० ॥ तदाबुद्धौ निरुद्धायांश्लेष्मणाधिष्ठितोनरः। जाग्रत्सुप्तोथवात्मानंमज्जन्तमिवमन्यते ॥ ११ ॥ सलिलात्रासदातंद्राजलत्रासंतु तंविदुः ।

अर्थ-जिस समय केवल कफ बुद्धिके स्थानमें जाकर प्राप्त होताहै तब इस पुरुपकी बुद्धि कफकरके आच्छादित होनेसे जागते सोते अपने आपेको जलमें डूवा हुआ जाने। इसी कारण वो मनुष्य जलसे डरताहै इसीसे इसको जलत्रास जानना।

अब विषनिदानमें कह आये हैं कि विश्वंभरा, अहिंडुका, कंडूमका, शूकवृन्तादि, पिपीलिका, गोधेरका, और सर्षपिका इनका निदान ग्रंथके अंतमें लिखेगे सो यहां सुश्रुतसे लिखतेहैं।

गोधेरकदंशके लक्षण

प्रतिसूर्यःपिंगभासोबहुवर्णोमहाशिराः ॥ १२ ॥ तथानिरूपमश्चापिपंचगोधेरकाःस्मृताः । तैर्भवन्तीहदष्टानांवेगज्ञानानिसर्पवत् ॥ १३ ॥ रुजश्वविविधाकाराग्रंथयश्चसुदारुणाः।

अर्थ-प्रतिसूर्य, पिंगभास, बहुवर्ण, महाशिरा, निरूपम, ये पांच प्रकारके गोधेरक (गोह) होते हैं। इनके काटनेसे वेग और ज्ञान सर्पके समान जानना। और अनेक प्रकारके रोग तथा दारुण गांठ प्रगट होय। गोधेरककी उत्पत्ति ग्रंथान्तरोंमें लिखी है[1]।

---

(१) कृष्णसर्पेण गोधायां भवेज्जन्तुश्चतुष्पदः। सर्पो गोधेरको नाम तेन दष्टो न जीवति।

सर्षपिकादंशके लक्षण

गलगोलीश्वेतकृष्णारक्तराजीतुमण्डला ॥ १४ ॥ सर्वश्वेता सर्षपिकेत्येवंषट्ताभिर्दष्टेसर्षपिकावर्ज्यन्दाहशोफक्केदाभव- न्तिसर्षपिकयाहृदयपीडातिसारश्च ॥ १५ ॥

अर्थ-गल गोली, श्वेतकृष्णा, रक्तराजी, रक्तमंडला, सर्वश्वेता, सर्षपिका, इस प्रकार सर्षपिकाके छः भेद हैं। इनमें सर्षपिकाको छोडकर बाकी गलगोली आदिके काटनेसे दाह, सूजन, और क्लेद होय, और सर्षपिकाके काटनेसे पूर्वोक्त लक्षण होवें और हृदयमें पीडा तथा अतिसार होय।

विश्वंभराके लक्षण

विश्वम्भराभिर्दष्टेदंशःसर्षपिकाकाराभिःपिड- काभिश्चीयतेशीतज्वरार्त्तश्चपुरुषोभवति ॥ १६ ॥

अर्थ-विश्वंभराके काटनेकी ठौर सरसोंके समान फुन्सियोंसे व्याप्त हो, और शीतज्वरकरके रोगी व्याकुल होय।

अहिंडुकाके लक्षण

अहिण्डुकाभिर्दष्टेतोददाहकण्डुश्वयथवोमोहश्च।

अर्थ-अहिंडुकाके काटनेसे नोचनेकीसी पीडा होय, दाह, खुजली, सूजन, और मोह होय।

कंडूमकादष्टके लक्षण

कण्डूमकाभिर्दष्टेपीतांगश्छर्द्यतीसारज्वरादिभिर्हन्यते ॥ १७ ॥

अर्थ-कंडूमकादि कीडाओंके काटनेसे देह पीली होजाय, वमन, अतिसार और ज्वरादिरोगोंसे मनुष्य पीडित होय।

शूकवृन्तादिदष्टलक्षण

शूकवृन्तादिभिर्दष्टेकण्डूकोठाःप्रवर्द्धन्तेशूकश्चात्रलक्ष्यते।

अर्थ-शूकवृन्तादि कीडोंके काटनेसे खुजली, चकत्ता और शूकरोग हो।

पिपीलिकादंशलक्षण

पिपीलिकास्थूलशीर्षासम्वाहिकाब्राह्मणिका ॥ १८ ॥ गुलि- काकपिलिकाचित्रवर्णेतिषट्ताभिर्दष्टेदंशेश्वयथुरग्निस्पर्शव- द्दाहशोफौभवतः ॥ १९ ॥

अर्थ–स्थूलशीर्षा, सम्वाहिका, ब्राह्मणिका, अंगुलिका, चित्रवर्णा, ये छः प्रकारकी पिपीलिका (चेंटी) हैं इनके काटनेकी जगह सूजन, अग्निस्पर्शके समान दाह और चकत्ते होवें।

स्नायुके निदान

शाखासुकुपितोदोषःशोथंकृत्वाविसर्पवत् । भिनत्तितक्षतेतत्रसोष्मामांसंविशोष्यच ॥ १ ॥ कुर्यात्तन्तुनिभंजीवंवृतंसितद्युतिंवहिः । शनैःशनैःक्षताद्यातिछेदात्कोपमुपैतिच ॥ २ ॥ तत्पाताच्छोफशान्तिःस्यात्पुनःस्थानांतरेभवेत् । सस्नायुकेतिविख्यातःक्रियोक्तातुविसर्पवत् ॥ ३ ॥ बाह्वोर्यदिप्रमादेनजंघयोस्तुद्यतेक्वचित् । संकोचंखंजतांचैवछिन्नोजन्तुःकरोत्यसौ ॥ ४ ॥

अर्थ–हाथपैरोंमें दोष कुपित होकर विसर्पके सदृश सूजन होय वो सूजन फूटकर घाव पडजावै, और उसमें आगसीवले, तथा मांस शुष्क होकर सूतके समान गोल सफेद जीव डोरेके सदृश वाहर निकल आवे, वो धीरे धीरे घावसे वाहर निकलतेसमय टूट जावे तो वहुत दुःख देता है, यदि वो समग्र वाहर निकल आवै तो सूजन जातीरहै और उसमेंसे कुछ टुकडा वाकी रहजावै तो वह फिर दूसरे स्थानपर निकले उस रोगको स्नायुक (नहरुआ) कहते हैं इसपर चिकित्सा विसर्परोगकीसी कही है कदाचित् हाथ वा पैरोंमें नहरुआ होकर टूट जावे तो हाथ पैरसे टोंटा अथवा लूला होजाय।

ध्वजभंगके संगृहीतश्लोक

यौवनेऽनंगवेगेनाशिशुनाकेलिमाचरेत् ।
गुह्यदोषेणतल्लिंगेशैथिल्यमुपजायते ॥
स्वगुदोत्पाटनंवाल्येपरैःकारयतिस्वयम् ।
कुरुतेतेनदोषेणध्वजभंगोभिजायते ॥
अथवायोभवेन्मर्त्यःकरमैथुनलम्पटः ।
तस्यनूनंप्रजायेतध्वजभंगंसुदुर्जयम् ॥

(करमैथुन) हथरस इति प्रसिद्धः

रोगानुक्रमणिका

ज्वरोऽतिसारोग्रहणीअर्शोऽजीर्णोविषूचिका । अलसश्चवि-
लम्बीचक्रमिरुक्पाण्डुकामलौ ॥ १ ॥ हलीमकंरक्तपित्तंरा-
जयक्ष्माउरःक्षतम् । कासोहिक्कासहश्वासःस्वरभेदस्त्वरोच-
कम् ॥ २ ॥ छर्दिस्तृष्णाचमूर्च्छाद्यारोगाःपानात्ययादयः ।
दाहोन्मादावपस्मारःकथितोऽथाऽनिलामयः ॥ ३ ॥ वातर-
क्तमुरुस्तम्भआमवातोथशूलरुक् । पित्तजंशूलमानाहउदाव-
र्त्तोथगुल्मरुक् ॥ ४ ॥ हृद्रोगोमूत्रकृच्छ्रंचमूत्राघातस्तथा-
श्मरी । प्रमेहोमधुमेहश्चपिटिकाश्चप्रमेहजाः ॥ ५ ॥ मेदस्त-
थोदरंशोथोवृद्धिश्चगलगण्डकः । गण्डमालाऽपचीग्रंथिरर्बुदं-
श्लीपदंतथा ॥ ६ ॥ विद्रधिर्व्रणशोथश्चद्वौव्रणौभग्ननाडि-
के । भगन्दरोपदंशौचशूकदोषस्त्वगामयः ॥ ७ ॥ शीतपित्त-
मुदर्दश्चकोठश्चैवाऽम्लपित्तकम् । विसर्पश्चसविस्फोटःसरोमा-
न्त्योमसूरिकाः ॥ ८ ॥ क्षुद्राऽऽस्यकर्णनासाऽक्षिशिरःस्त्री-
बालकग्रहाः । विषंचेत्ययमुद्देशोरुग्विनिश्चयसंग्रहे ॥ ९ ॥

अर्थ–अर्श (बवासीर) छर्दि रद्द मूर्च्छाद्या (मूर्च्छा भ्रम तन्द्रा निद्रा सं-न्यास) पानात्यय (मदात्यय) अपस्मार (मृगी) अनिलामय (वातव्याधि) आनाह (अफरा) गुल्म (गोलेका रोग) अश्मरी (पथरी) वृद्धि (अंडवृद्धि) ग्रंथि (गांठ) त्वगामय (कोढरोग) आस्य (मुखरोग) ग्रह (पूतनादिबालग्रह) ये हमने कठिन शब्दोंके अर्थ लिखदिये हैं ।

रोगानुक्रमणिका लिखनेका यह प्रयोजन है कि इतने रोग इस ग्रंथमें कहे हैं इससे विशेष रोग प्रक्षिप्त जानने इस रोगानुक्रमणिकाके रोगोंके ऊपर हमने १-२-३ ऐसे अंक करदीने हैं । सो बुद्धिवान समझलेंगे ।

टीकाकर्त्ताकी वंशावली

श्रीमन्माथुरमण्डलेद्विजकुलेश्रीमाथुराणांकुलेघासीरामइति
प्रथामधिगतोजातःसतांमोदकृत् ॥ श्रीचन्द्रःकिलरामचन्द्र-

विबुधोजातोहरिश्चन्द्रकःपुत्रास्त्रीणित्रयीवधर्मनिपुणाःसर्वैनृ-पैःपूजिताः ॥ १ ॥

अर्थ–श्रीमान्माथुरमण्डल द्विजकुल श्रीमाथुर (चोवे)न्के कुलमें श्रीघासी-राम इस नामसे प्रसिद्ध सज्जन मनुष्योंके आनंदकर्त्ता प्रगट भये, उनके श्रीचंद्र और परम बुद्धिवान रामचंद्र, और हरिश्चंद्र, ये तीन पुत्र वेदत्रयी (ऋक् साम यजु)के समान और और सर्व राजमान्य प्रगट भये।

तेषांहरिश्चंद्रसमानकीर्त्तिर्जातोहरिश्चंद्रगुणाभिरामः।

बभूवतस्मात्किलकृष्णलालोसंगीतशास्त्रार्थविचारदक्षः ॥ २ ॥

अर्थ–तिन घासीरामके तीन पुत्रोंमें हरिश्चंद्रके समान कीर्त्ति जिनकी ऐसे हरिश्चंद्र भये तिनके संगीतशास्त्र (गानविद्या)के अर्थ विचारमें कुशल कन्हैयालाल प्रगट होत भये।

तस्यपुत्रअहंजज्ञेदत्तरामोविमूढधीः।

भाषायांमाधवस्यार्थोयथामतिनिरूपितः ॥

अर्थ–तिन कन्हैयालालका पुत्र में तुच्छ बुद्धिवाला दत्तराम प्रगट हुआ, मैंने अपनी बुद्धिके अनुसार माधवनिदानका अर्थ भाषामें निरूपण किया।

समाप्तोऽयंग्रंथः
